महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित
श्रीभागवत विवृति

सुबोधिनी

हिन्दी भावानुवाद

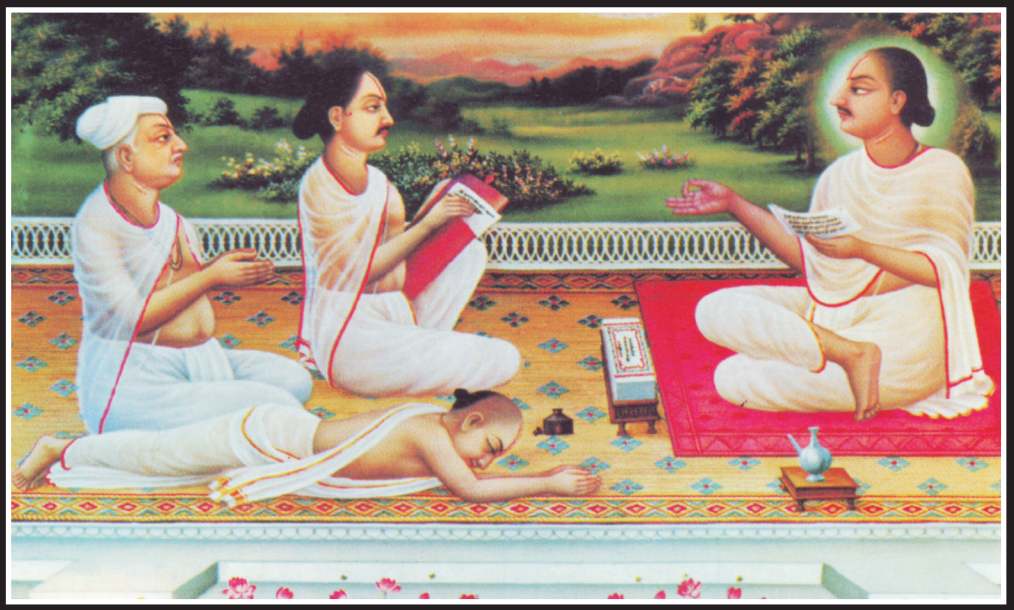

दशमस्कन्ध

तामस प्रमेय प्रकरण

(प्रक्षिप्ताध्याय १२–१४) (अध्याय १५–२१)

खंड ८

जय श्रीकृष्ण

श्रीवल्लभाधीशो जयति

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित

श्रीभागवत विवृति

'सुबोधिनी' दशम स्कन्ध

तामस प्रमेय प्रकरण

(प्रक्षिप्ताध्याय १२-१४)

(तामय प्रमेय प्रकरण १५-२१)

हिन्दी भाषानुवाद

अनुवादक:

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु(पुष्करणा), जोधपुर

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

... तब व्यासजीने भागवतपुराण प्रकट किया जिसके अभ्यास (श्रवण–स्मरण–कीर्तन) से लोग मुक्त हो सकते हैं, बशर्ते भागवतका आजीविकार्थ उपजीवन न किया जाय. यह श्रीमद्भागवत एक श्रेष्ठ साधन है. अतः प्रयत्नपूर्वक, किसी लौकिक हेतु या दम्भ के बिना, आदरके साथ इसका पठन करना चाहिये. भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कण्ठमृ ही क्यृ न अटक जायें परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं ही करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके अन्य किसी भी उपायसे अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध.२।६७, २४३, २५४).

जो लोग भगवद्गुणगानको अपनी आजीविकाका साधन बनाते हैं ऐसे गुणगानकर्ता गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये जमीनमृ खोदे गये गहरे गढ्ढेकी तरह होते हैं. (जलभेद.५)

मुंह–हाथ–पांव आदि धोनेमृ प्रयुक्त गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमृ जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे अधम होते हैं दक्षिणा लेकर कथा करनेवाले ...आशय यह है कि गढ्ढेमृ भरे हुवे प्रक्षालनोच्छिष्ट गंदे जलकी तरह इन गानोपजीविअृका भाव सत्पुरुषृकेलिये ग्राह्य नहिं होता ... पौराणिकृके भावृका निरूपण करनेके बाद जो गायकृका निरूपण किया गया है वह यह दिखलानेकेलिए कि (आजीविकार्थ पुराणृका उपयोग करनेवाले) पौराणिक भी ऐसे गायकृके तुल्य नीच ही होते हैं.

(श्रीकल्याणरायविरचित जलभेदविवृति ५).

।। प्रासंगिक ।।

यह ज्ञापित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित श्रीभागवतकी विवृति 'सुबोधिनी'के हिन्दी अनुवादका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है.

यह तो सुविदित है कि मूल संस्कृत सुबोधिनीका पुनः प्रकाशन पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीके सम्पादकत्वमें श्रीवल्लभविद्यापीठश्रीविट्ठलेश-प्रभुचरण आश्रम ट्रस्ट, कोल्हापुर द्वारा किया गया है.

सुबोधिनीके गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी, गो.वा.श्रीमग्नलाल शास्त्री तथा गो.वा.श्रीव्रजलाल सांकळीया आदि विद्वानों द्वारा लिखित गुर्जरभाषानुवादका पुनः प्रकाशन श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी द्वारा किया जा चुका है.

इसी तरह श्रीरामानुजमतानुयायी किन्तु सुबोधिनीके परम प्रेमी श्रीटी. रामनन्ने सुबोधिनीका अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सद्गुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा मूल संस्कृत सहित प्रसिद्ध करवाया है, जो २४ खंडोंमें उपलब्ध होता है. यह अंग्रेजी अनुवाद श्रीरामन्ने श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर द्वारा प्रकाशित, सम्प्रति अनुपलब्ध, सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका ही किया है. वे लिखते हैं:

> "I owe a deep debt of gratitude to Sri Subodhini Parakashan Mandal (Jodhpur). My traslation is, to a very large extent, based on this book and I am, indeed, very grateful for this Mandal".

सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका प्रकाशन ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल''(जोधपुर) नामकी संस्थाको स्थापित करके उसके द्वारा गो.वा. श्रीनन्दलालजी मानधना,जोधपुर ने करवाया था. इनको इस भगीरथ कार्यमें गो.वा.श्रीरामचन्द्र(नन्ददास) वर्मा का साथ मिला. इन दोनों महानुभावोंकी निष्ठा प्रेरणा उत्साह और समर्पण से पुष्टिमार्गके अनेक विद्वानोंने मिल-जुलकर सुबोधिनीका अनुवाद तैयार किया. इनमें उल्लेखनीय हैं:

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु (जोधपुर)

दशमस्कन्धके नब्बे अध्यायोमेंसे चोहत्तर अध्याय;

तृतीय स्कन्धके १ से २१ अध्याय.

गो.वा.श्रीआनन्दीलालजी शास्त्री (श्रीनाथद्वारा)

प्रथम स्कन्धके १ से ९ अध्याय, दशमस्कन्धका चौथा अध्याय.

गो.वा.श्रीनारायणप्रसाद व्यास(कोटा)

प्रथमस्कन्धके १० से १९ अध्याय.

गो.वा.पं.गोरधनजी शास्त्री(कोटा)

दशमस्कन्धके चौदह अध्याय,

गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी(नाथद्वारा)

द्वितीय स्कन्धके १ से ४ अध्याय. तृतीय स्कन्धके २२ से ३३ अध्याय .

गो.वा.श्रीरमानाथ शास्त्री(कांकरोली)

द्वितीय स्कन्धके ५ से १० अध्याय.

गो.वा.श्रीसबलकिशोर चतुर्वेदी (मथुरा)

दशमस्कन्धका तीसरा अध्याय.

इस अनुवादके संशोधन तथा सम्पादन कार्यमें पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला), गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी (श्रीनाथद्वारा) तथा गो.वा.श्रीरणछोड कलाधर भट्ट(मुम्बई) का भी योगदान रहा है. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला) तो ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर'' के संरक्षक भी हैं.

इस श्रीभागवत-सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादके पुनःप्रकाशनका एकमेव उद्देश्य यही है कि श्रीवल्लभवाङ्मय कभी भी किसी भी जिज्ञासुकेलिए अलभ्य न रहे. हमें विश्वास है कि इस पुनःप्रकाशनसे सुबोधिनीके अध्येताओंको अवश्य लाभ होगा.

अन्तमें सुबोधिनीके हिन्दी भाषानुवादके पूर्व प्रकाशक, अनुवादक, संशोधक, सम्पादक, द्रव्यसहायक आदि सभीके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तथा इस कार्यमें निःस्वार्थ भावसे सहयोग करनेवाले सभी वैष्णवोंका भी सादर स्मरण करते हैं.

सुबोधिनी स्वाध्याय मंडल

क्या आप पुष्टिमार्गी हैं?

एक बार श्रीवल्लभाचार्यके ये आदेश पढ़ें.

सोचें, क्या आप श्रीवल्लभके मार्ग पर चल रहे हैं?

परब्रह्म श्रीकृष्णको ही अपना आश्रय-रक्षक जानें. मन-वचन-कर्मसे अन्याश्रय कदापि न करें.

भगवानने पुष्टिजीवोंको अपनी स्वरूपसेवाकेलिये भूतल पर प्रकट किया है. कृष्णसेवा ही पुष्टिजीवका स्वधर्म है. अतः कृष्णसेवाको जो स्वधर्म समझता है वही पुष्टिजीव है और वही पुष्टमार्गमें प्रवेशके योग्य है.

भगवत् शास्त्रको अच्छी तरहसे समझकर, आत्मनिवेदित होकर अपने तन-धनसे अपने घरमें श्रीकृष्णकी सेवा करें.

घरमें बिराजते ठाकुरजीको ही अपना सर्वस्व समझें जो खास आप ही के उद्धारार्थ कृपा करके आपके घर पधारे हैं. उनको छोडकर अन्य ठाकुरजीके दर्शन-सेवा केलिये भटकना अपने सेव्यप्रभुका तिरस्कार है.

अपनी सभी वस्तु-व्यक्ति-व्यवहारका समर्पण अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें ही करें. वे ही उनके सच्चे स्वामी हैं.

अपने ठाकुरजीको सर्वस्व समर्पित करके उस समर्पित महाप्रसादसे ही खान-पान-दान आदि सभी लौकिक-शास्त्रीय कार्य करें. असमर्पित पदार्थके उपयोगका सर्वथा त्याग करें.

हवेली-मन्दिरोंमें भेंट-सामग्री देकर कराये जाते सेवा-मनोरथ पुष्टिसिद्धान्तके अनुसार सेवा-भक्ति है ही नहीं; वो न केवल सेवा-भक्तिके नामपर पाखंड है अपितु परम पवित्र भगवत्सेवाको धंधा बनानेवाले दुष्टोंको पोषित करना है.

भगवत्सेवा-मनोरथ-कीर्तनके निमित्त भेंट-सामग्री मांगना-स्वीकारना उनको व्यापार-धंधा बनाना है. ऐसा पाप करनेवालेका नर्कमें पात होता है.

अतः भगवत्सेवा–मनोरथ–कीर्तनके निमित्त किसीको कुछ भी न दृ.

अनजानेमें भी यदि कोई अवैष्णव सेव्य ठाकुरजीका दर्शन कर लेता है तो हमारी एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. ऐसा हो जाने पर श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराकर शुद्ध करना चाहिये.

भगवत्सेवा अपने ही घरमृ करृ. सार्वजनिक हवेली–मन्दिरमृ सेवा–मनोरथ करना पुष्टिसिद्धान्तके अत्यन्त विरुद्ध है.

दर्शनको कभी भक्ति न समझें. दर्शनका आग्रह उसीका रखें जो कृपा करके आपके घरमें आपकेलिये आपके माथेपर बिराज रहे हैं, जिनकी सेवा आप स्वयं कर रहे हैं.

मंदिर–हवेलियृमृ दिया जाता या वहांसे खरीदा जाता प्रसाद–पातल महापातकी देवद्रव्य होता है. ऐसा प्रसाद खानेवाला नर्कमृ ही जाता है.

प्रसादका नहीं किन्तु घरके ठाकुरजीने जो अङ्गीकार किया है उस समर्पित महाप्रसादको लेनेका आग्रह रखें.

भगवत्सेवाकी ही तरह भागवतका पाठ भी स्वयं ही करें. भक्तिभावकी वृद्धिके अलावा दूसरे किसी भी हेतुसे भागवतका पाठ न करें.

प्राण निकल जायें तो भले ही निकल जायें परन्तु दक्षिणा लेकर भागवतकी कथा–कीर्तन कभी भी न करें.

दक्षिणा लेकर कथा–कीर्तन करनेवालृके मुखसे कथा–कीर्तन सुनना गटरका पानी पीनेके समान हीन कृत्य है. व्यावसायिक कथावक्ताओृके संगको दुष्टसंग समझकर उनका त्याग करो.

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।
।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

भूमिका

पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी
(किशनगढ-पार्ला)

तामस प्रमेय प्रकरणका औपनिषद सन्दर्भ

उसने चाहा: मैं एक अनेक बन जाऊं–अनेक-रूप धारण करनेको पैदा हो जाऊं!... यह सब कुछ उसने बनाया. यह जो कुछ है उसे बना कर वह उसीमें प्रविष्ट हो गया. सबमें प्रविष्ट होकर वह सत्-प्रत्यक्ष और त्यत्=परोक्ष बन गया, वह निरुक्त= निर्वचनीय और अनिरुक्त=अनिर्वचनीय बन गया, निलयन= आधार और अनिलयन=आधारनिरपेक्ष बन गया, विज्ञान और अविज्ञान बन गया, सत्य और अनृत भी सत्य बन गया. यह जो कुछ है उसे 'सत्य' कहा जाता है... उसने अपने आपको बनाया; इसलिये इसे 'सुकृत' कहा जाता है. जो कुछ है वह सुकृत ही है. रस ही वह है. इसी रसको पाकर यह आनन्दी बन पाता है. इस आकाशमें आनन्द भरा हुवा न होता तो कौन जीना या सांस भी लेना चाहता! यही तो सबको आनन्दित करता है. जब भी इस अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन में जो भयरहित प्रतिष्ठाको पा लेता है तो वह अभयपदको पा लेता है. जब भी इसमें कुछ तनिक भी अन्तर कोई करने लगता है तो उसे भय लगना शुरु हो जाता है. वही भय इसे न माननेवालेको भी सताता है... पवन इससे डरकर चलता है, सूरज इससे डरकर उगता है, अग्नि और इन्द्र भी इससे डरते हैं, मृत्यु तो इस (अमृत)को अपनी मृत्यु मान कर भग जाती है. ऐसे इस आनन्दकी यह मीमांसा हो रही है... इस आनन्दमय आत्माकी ओर जानेपर... जहांसे मनके साथ-साथ वाणी भी लौट आती है. ब्रह्मके आनन्दको जाननेके बाद किसीसे डरनेकी कोई बात रह नहीं जाती. उसे जाननेवालेको कभी चिन्ता नहीं होती–मैं कौन सा भला काम कर

नहीं पाया अथवा मैं कैसा पाप कर बैठा हूं! जो इन्हें इस तरह जान लेता है, वह अपनी आत्माका सच्चा पालन-पोषण-प्रीणन करता है... यह ऐसी उपनिषद् है

(तैत्तिरीयोपनिषत्).

केवलद्वैतवादकी धारणाके द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मस्वरूप कि वह सकल नामोंका एकमात्र वाच्य या धारक सृष्टिकर्ता है, ऐसे रूपमें ही केवल ब्रह्मका स्वरूप उपनिषदोंमें वर्णित नहीं हुवा है; अपितु अन्तर्यामितया शरीर-शरीरिभावसे सकल रूपोंका भी एकमात्र धारक सृष्टिभर्ता भी वही है ऐसा भी वर्णित हुवा ही है. जगत्में जगदीश, विशिष्टाद्वैतवादकी धारणाके द्वारा प्रस्तुत, केवल अन्तर्यामितया ही व्याप्त नहीं है; अपितु अशेष नाम-रूप-कर्मोंके उत्पत्ति-स्थिति-लयके एकमात्र उपादानके रूपमें भी उसे व्याप्त माना गया है. ब्रह्माण्डमें प्रकट अनेकानेक नाम-रूप-कर्मोंकी विक्रियामें, विशेषाद्वैतवादकी धारणा जैसे विकृतिभावापन्न ब्रह्मको प्रस्तुत करती है, वैसा ही केवल वह हो नहीं जाता; अपितु स्वयं अविकृत रहते हुवे ही वह इन नाम-रूप-कर्मोंको प्रकट करता है. अनेकानेक प्रापञ्चिक नाम-रूप-कर्मोंका एकमात्र अविकृत आश्रय ब्रह्म, अविभागाद्वैतवादकी धारणाके द्वारा प्रस्तुत गगनोपम आधारकारणकी तरह, स्वयं नीरूप निराकार या निष्क्रिय ही रहता हो ऐसा भी कहा नहीं जा सकता; क्योंकि इस प्रपञ्चमें अपने पारमार्थिक दिव्य रूप आकार एवं कर्मों को भी आत्ममायया अथवा आत्मीय भक्तभावनया वह धारण तो करता ही है. स्वमायाके अनुरूप अथवा स्वकीय भक्तजनोंकी भक्तिमयी भावनाके अनुरूप धारण किये गये नामरूपकर्मोंके कारण, केवलाद्वैतवादकी धारणा-''ब्रह्म नाम-रूप-कर्मोंके अत्यन्ताभावसे उपलक्षित निर्विशेष ही होता है'' स्वीकारी नहीं जा सकती है. इसी तरह इन नाम-रूप-कर्मोंको भी 'स्वप्रतिपन्नोपाधिमें त्रैकालिक निषेधके प्रतियोगी' मायिक भी नहीं माना जा सकता है; क्योंकि अक्षरब्रह्मतया जैसे वह निराकार व्यापक सच्चिदानन्द है, वैसे ही परब्रह्म पुरुषोत्तमतया दिव्य आकारवान् भी वह है ही.

उल्लिखित वेदान्तके अनेक सम्प्रदाय ब्रह्मका जैसा निरूपण करते हैं,

उनमें कोई त्रुटि नहीं है, परन्तु उन-उन वर्णनोंकी परिधिमें ब्रह्मको परिच्छिन्न नहीं माना जा सकता है!

श्रुतिके

''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म... ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि ... सर्वाणि रूपाणि... सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति तदेतत् त्रयं सद् एकम् अयम् आत्मा; आत्मो एकः सन् एतत् त्रयम् तदेतद् अमृतं सत्येन छन्नम् प्राणो वा अमृतं नाम-रूपे सत्यं ताभ्याम् अयं प्राणश्छन्नः''.

(बृह.उप.१।६।१-३)

इस वचनमें व्यष्टीभूत नामरूपकर्मोंकी वाक्-प्राण-कर्मरूप समष्टिको न केवल 'ब्रह्म' कहा गया है; अपितु नामादि त्रयीकी एकात्मता और एकात्माकी त्रिरूपताके निरूपणप्रसंगमें अमृतस्वरूप प्राणको (त्रैकालिक-निषेध-प्रतियोगी असत्य नामरूपोंसे नहीं प्रत्युत) सत्य नामरूपोंसे छन्न माना गया है. इसलिये ब्रह्मसूत्र ''**अतएव प्राणः**''(१।१।२२) की नीतिके अनुसार यहां भी ब्रह्मका या ब्रह्मके विभूतिरूप सामर्थ्यका निरूपण ही अभिप्रेत मानना उचित है. वैसे श्रीशंकराचार्य इस उपनिषद्वचनके भाष्यमें एक अतीव मननीय विधान करते हैं: ''यस्यच यस्माद् आत्मलाभो भवति स तेन अप्रविभक्तो दृष्टो, यथा घटादीनां मृदा'' ऐसी स्थितिमें जिज्ञास्य ब्रह्मसे आत्मलाभ पानेवाले नाम-रूप-कर्मीको भी जिज्ञास्य ब्रह्मसे अप्रविभक्त ही मानना चाहिये. फलतः मायी ब्रह्ममें मायिक नाम-रूप-कर्मोंका अत्यन्ताभाव स्वीकारा नहीं जा सकता है. इस तरह ब्रह्मसे अप्रविभक्त=अनारोपित होनेसे इन नाम-रूप-कर्मोंका ब्रह्ममें त्रैकालिक निषेध भी सम्भव नहीं.

वैसे तो जिस या जिन मायारूप शक्तिओंके कारण एकमेवाद्वितीय ब्रह्म अनेकविध नाम-रूप-कर्मोंको धारण करता है वे स्वयं यदि ब्रह्मसे अप्रविभक्त हों तो नाम-रूप-कर्मोंके मायिक होनेपर भी उनका ब्रह्ममें अत्यन्ताभाव स्वीकारना वदतोव्याघात ही होगा!

''रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो

मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति अयं वै हरयो अयं वै दश च सहस्राणि बहूनि च अनन्तानि च तदेतद् ब्रह्म अपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम्. अयम् आत्मा ब्रह्म सर्वानुभूः इति अनुशासनम्''

(बृह. उप. २।५।१९)

के भाष्यमें श्रीशंकराचार्य एक महत्त्वपूर्ण शंका–समाधान यों भी करते हैं: ''एवं तर्हि अयम् अन्यः परमेश्वरो अन्ये हरयः इत्येवं प्राप्ते, उच्यते–अयं वै हरयो अयं वै दश च सहस्राणि च बहूनि च अनन्तानि च''. इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मैक्यके अन्तर्भूत होनेसे मायाओंकी अनेकताकी तरह ब्रह्मैक्य भी मायाओंकी अनेकतामें तादात्म्येन व्याप्त है. अनेकता एकात्मिका है तथा एकता अनेकात्मिका! इसे द्वैताद्वैत नहीं किन्तु शुद्धाद्वैत समझना चाहिये, क्योंकि ये एकता और अनेकता पारस्परिक अत्यन्ताभावरूप नहीं है.

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, अतएव, निबन्धके शास्त्रार्थ प्रकरणमें कहते हैं कि अखंडाद्वैतके भान होनेपर सब कुछ ब्रह्मतया ही प्रतीत होने लग जाता है. अतः ब्रह्मज्ञान होनेपर (नाम–रूप–कर्मोंके द्वैतसे घटित) विकल्पमात्रावगाहिनी बुद्धि बाधित हो जाती है–स्वयं विकल्पोंका स्वरूपतः बाध हो नहीं सकता.

क्योंकि सर्वभवनसमर्थ सत्यसंकल्प सच्चिदानन्दैकरस ब्रह्मकी अभिन्न–निमित्तोपादानताके बिना नाम–रूप–कर्मोंके विकल्प आत्मलाभ पा नहीं सकते, अतः उन्हें ब्रह्मसे अप्रविभक्त ही स्वीकारना पड़ता है. अतएव ''**अजोऽपि सन् अव्ययात्मा...सम्भवाम्यात्ममायया**'' (भग.गीता.४।६) के भाष्यमें श्रीशंकराचार्य 'आत्ममायया'=आत्मनो मायया, न परमार्थतो लोकवत् जो कहते हैं उसे; और ''ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः'' की मूलधारणाको लक्ष्य रखनेपर श्रीशंकराचार्यके–

'' **जन्म** मायारूपं, **कर्म च** साधुपरित्राणादि, **मे** मम, **दिव्यम्** अप्राकृतमैश्वरम्, **एवं** यथोक्तं, **यो वेत्ति तत्त्वतः** तत्त्वेन यथावत्, **त्यक्त्वा देहम्** इमं, **पुनर्जन्म** पुनरुत्पत्तिं, **नैति** न प्राप्नोति, **मामेति** आगच्छति, स मुच्यते'' (गीता भाष्य ४।९)

इस वचनको भी सावधानीसे विचारें तो बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि भूतलपर प्रकट भगवद्रूप या भगवत्कर्म स्वप्रतिपन्नोपाधिमें त्रैकालिक निषेधके प्रतियोगी हो नहीं सकते; अन्यथा हमारे जन्मकर्मोंकी तरह वे हों तो हमारे

जन्मकर्मोंके ज्ञानसे भी मुक्ति सुलभ माननी पड़ेगी!

यहां श्रीमधुसूदन सरस्वतीने भाष्यकार श्रीशंकराचार्यके मतका उपन्यास करने के बाद ''अन्येतु... केचित्तु ... ते 'निर्युक्तिकं ब्रुवाणस्तु न अस्माभिः निवार्यते' इति न्यायेन नापवाद्याः यदि सम्भवेत् तत् तथैव अस्तु...'' कहकर सम्भवतः वाल्लभ मतको ही जो 'निर्युक्तिक' कहा है, वह तो स्वयं उनकी व्याख्यानशैली तथा स्वभाष्यकाराभिमत व्याख्यानशैली के बीच रहे विरोधाभास, जिसे श्रीधनपतिने सुस्पष्टतया उजागर कर ही दिया है, के अवलोकन करनेपर निजनिरूपणकी निर्युक्तिकताका ही निदर्शन बन जाता है. रही बात वाल्लभ मतके निर्युक्तिक होनेकी तो ब्रह्म यदि यौक्तिक प्रमेय होता तो आरोप भी युक्तिसंगत माना जा सकता ब्रह्म तो, परन्तु, जैसा कि श्रीशंकराचार्य

> ''तस्मात् तार्किकचाटभटराजाप्रवेश्यम् अभयं दुर्गम् इदम्, अल्पबुद्ध्यगम्यं शास्त्रगुरुप्रसादरहितैः च, 'कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति'-'देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा'-'नैषा तर्केण मतिरापनेया' वरप्रसादलभ्यत्व-श्रुतिस्मृतिवादेभ्यः च, 'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदु अन्तिके' इत्यादि-विरुद्धधर्म-समवायित्व-प्रकाशकमन्त्रवर्णेभ्यः च. (बृहदा.भाष्य२।१।२०)

वचनमें कहते हैं कि तर्कागोचर विरुद्धधर्माश्रय शास्त्रैकगम्य प्रमेय है, सो ब्रह्मनिरूपणमें निर्युक्तिकताका आरोप तो स्वयं ही निर्युक्तिक सिद्ध हो जाता है!

नाम-रूप-कर्मोंके ब्रह्मतादात्म्य तथा सर्वभवनसमर्थ-सत्यसंकल्प ब्रह्मकी पारमार्थिक नामरूपकर्मधारकताके विचारार्थ प्रवृत्त होनेकी दिशामें अग्रसर होनेपर यहां हम एक खास मोड़पर पहुंच जाते हैं. यह वह मोड़ है कि जहांसे 'निगमकल्पतरुफल'रूप भागवतमें वर्णित सर्गादि दशविध लीलाओंके अनन्य कर्ता श्रीकृष्णकी दशमस्कन्धके १२=१५ से लेकर २५=२८ अध्यायोंमें वर्णित प्रमेयरूपताका तथा साधनरूपताका उपनिषद्वर्णित प्रमेय एवं साधन के साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसे दृष्टिगोचर बना पाना सुलभ हो जाता है.

लौकिक विषयोंकी अनुभूति सर्वदा सुख-दुःखके द्वन्द्वमें जकड़ी हुई

रहती है. उन्हीं विषयोंकी या घटनाओंकी अनुभूति, परन्तु, साहित्य संगीत चित्रकला मूर्तिकला अथवा नाटक आदि कलात्मक माध्यमोंके द्वारा जब सम्पन्न होती है तो अनुभूयमान सुख-दुःख भी एक विलक्षण आनन्दको प्रकट करने लग जाते हैं. कोई व्यक्ति वस्तु या घटना वास्तविक हो या अवास्तविक, प्रकट वर्तमान कालकी हो अप्रकट भूत-भविष्यत्कालकी, जाति-गुण-धर्म-रूप-रंग-गंध इत्यादिके आधारपर हम लक्षण दे पाते हों या नहीं, मूर्त हो या अमूर्त, जीवन-मरण स्वप्न-जागरण ज्ञानाज्ञान जड़-चेतन शुभाशुभ सुन्दरासुन्दर के क्रिया-कलापोंको एक सक्षम अभिनेता अपने कुशल अभिनयद्वारा प्रकट करके रसिकजनोंके हृदयको रसानुभूतिसे परिपूर्ण कर सकता है. इसी तरह ब्रह्म भी, यदि इस जगत्में प्रकट हुवे सारेके सारे सत्-त्यत् निरुक्त-अनिरुक्त निलयन-अनिलयन विज्ञान-अविज्ञान मूर्त-अमूर्त मर्त्य-अमृत नित्य-अनित्य चल-कूटस्थ आदि रूपोंको धारण करनेवाला एक अभिनेता जैसा ही हो तो, इस ब्रह्मकी लीलाके रूपमें जगत्को जाननेवाला जागतिक सुख-दुःख शोक-मोह ज्ञानाज्ञान के सकल द्वन्द्वोंमे भी एक निर्द्वन्द्व आनन्दकी रसानुभूति कर पानेको समर्थ बन सकता है. अतएव तामस प्रकरणकी विवेचनामें श्रीमहाप्रभु यह बात भारपूर्वक कह दी थी कि दिव्य चतुर्भुज आकारवाले श्रीकृष्णका द्विभुज प्राकृत शिशुरूप बन जाना एक दिव्य नाटन है. इस नाटनमें उनके तात्त्विक लीलास्वरूपको जान पानेके साधन/प्रमाण स्नेहभक्तिमूलक अज्ञान और अन्यथाज्ञान ही हो सकते हैं, वैराग्य सांख्य योग तप जप ध्यान व्रत होम यज्ञादि नहीं. यहां भागवतशास्त्रीय सावधानी एक यह अपेक्षित है: अवतारकालमें प्रकट प्रमेयबलके कारण तो अज्ञानमूलक या अन्यथाज्ञानमूलक वैराग्यादि विहित साधनोंकी तरह ही अविहित स्नेह या भक्ति या ईर्ष्या मात्सर्यादि भी कारगर हो सकते हैं. अनवतारकालमें, परन्तु, अज्ञानमूलक या अन्यथाज्ञानमूलक भक्तिभाव भी कारगर हो नहीं पाता. अर्थात् अज्ञानमूलक भक्तिभाव भी निर्बल होता है और भक्तिमूलक हों तो अज्ञान या अन्यथाज्ञान भी प्रबल भागवतोपायतया अभिनन्दनीय ही माने गये हैं–"**विज्ञानं च अविज्ञानं च सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत्! यदिदं किञ्च 'सत्यम्' इति आचक्षते!**"

इस श्रुति-स्मृति-सूत्र सारभूत भागवत रहस्यको भलीभांति समझने

केलिये इस एक सुबोधिनी(१०।१४।४३) वचनका अवगाहन अतीव उपकारी होगा :

> भगवान् जैसे अर्थसृष्टिरूप हैं, वैसे ही शब्दसृष्टिरूप भी भगवान् ही हैं. रूपसृष्टिकी तुलनामें, परन्तु, नामसृष्टि विलक्षण है: देशतः कालतः और स्वरूपतः रूपसृष्टिमें परिच्छेद प्रकट हुवा है; जबकि नामसृष्टिमें ऐसा परिच्छेद नहीं होता. रूपसृष्टि स्थूल होती है; जबकि नामसृष्टि सूक्ष्म होती है. रूपसृष्टि परिवर्तनशील प्रतीत होती है; जबकि नामसृष्टि कूटस्थ होती है. रूपसृष्टिके बारेमें जड़-विषय होनेका भास होता है; जबकि नामसृष्टि चेतनप्रत्ययरूपा प्रतीत होती है. यदि नामसृष्टि ऐसी ही हो तो, रूपसृष्टिको (ये-ये प्रत्ययाः ते-ते निरालम्बनाः, प्रत्ययत्वात् स्वप्नप्रत्ययवत् न्यायवश) नामसृष्टिमें लीन या नामान्तर्भूत मान लेना उचित नहीं है. क्योंकि सिद्धान्त सिद्धान्ताभास या पाषंड रूप जो नाना वाद प्रकट हुवे हैं उनके अनुरोधवश भगवान्, नामबाह्यतया यथेच्छ तत्तद् रूपोंमें भी प्रकट हो सकते हैं. अनेक रूपोंमें वाच्य तथा वाचक बन पानेकी भगवान्में अनेकविध स्वाभाविक शक्तियां हैं. अतएव वक्ता किसी बातको जैसे भी बोलना चाहता हो वह बात वैसे बोली जा सकती है. जिस किसी शब्दसे जो बात हमें कहनी हो हम कह पाते हैं (अन्यथा इतने मतमतान्तर प्रकट कैसे हो पाते?).

इस उद्धरणके अवलोकन करनेसे जो धारणा उभर कर सामने आती है वह यह है कि तत्त्वनिर्धारणार्थ जो कतिपय निकष दर्शनशास्त्रों द्वारा प्रस्तावित किये गये हैं, यथा:

> (१)अनुभूतिके यथार्थ अर्थात् अपने विषयके अनुरूप होनेपर, अनुभूतिको 'प्रमाण' और उसके विषयको 'प्रमेय' कहा जा सकता है.
>
> (२)फलाविसंवादिनी प्रवृत्तिकी जनक होनेपर, अनुभूतिको 'प्रमाण' और उसके विषयको 'प्रमेय' कहा जा सकता है.
>
> (३)अनधिगत एवं अबाधित अर्थरूप विषयके बारेमें पैदा

होनेपर, अनुभूतिको 'प्रमाण' और उसके विषयको 'प्रमेय' कहा जा सकता है.

(४)स्वतो अविसंवादी होनेपर, अनुभूतिको 'प्रमाण' और उसके विषयको 'प्रमेय' कहा जा सकता है.

(५)सकल धारणाओंसे संकलित अनेकान्त दृष्टि ही प्रमाण होती होनेसे ऐसी अनेकान्त धारणाका विषय ही प्रमेय होता है. तत्तद् धारणाओंके विषय व्यवहारमें प्रमाणिक होनेपर भी परमार्थतः प्रामाणिक नहीं होते.

इनमें शुरुआतके दो निकषोंमें अनुभूतिमें प्रामाण्यका आधान अनुभूतिसे बाह्य उसके विषयके गुणोंपर निर्भर दिखलायी देता है; अतः जो विषय इन गुणोंसे रहित हों वे स्वविषयिणी अनुभूतिमें प्रामाण्यके आधानार्थ सक्षम नहीं हो पाते. क्योंकि अनुभूतिमें उसके विषयका भास जिस तरहका हो रहा हो, वस्तुतः विषयके वैसे न होनेपर, अनुभूतिको 'प्रमाण' कह पाना शक्य नहीं. बीचके दो निकषोंमें अनुभूतिमें प्रामाण्यका आधान स्वयं अनुभूतिमें रहे गुणोंपर निर्भर होता है; अतः स्वयं अनुभूतिके इन गुणोंसे रहित होनेपर वह अपने आपमें प्रामाण्यके प्रकटनार्थ सक्षम नहीं हो पाती. क्योंकि अपना विषय अनधिगत एवं अबाधित है या नहीं यह बात अनुभूतिको स्वयंसे पूछनी पड़ती है, विषयसे नहीं. इसी तरह स्वयंमें कहीं कोई स्वतोविसंवादिता है या नहीं इस शंकाका समाधान भी अपने विषयसे पूछ कर नहीं किन्तु अपने-आपसे पूछ कर ही पाना पड़ता है. अन्तिम निकषके बारेमें यह उल्लेखनीय हो जाता है कि सकल धारणाओंके अन्तर्गत अनेकान्तदृष्टिको ही अप्रामाणिक माननेवाली धारणाका अन्तर्भाव तो अनेकान्तदृष्टिमें स्वीकार्य हो नहीं पाता. फलतः अनेकान्तदृष्टिका एकान्तिक प्रामाण्य सर्वमान्य नहीं हो पाता.

इस सन्दर्भमें यह जान लेना आवश्यक है कि लोकव्यवहारके सन्दर्भ में श्रीमहाप्रभुके मतमें प्रथम निकषको मान्यता प्रदान की गई है

''निश्चयो यथार्थानुभवः अर्थो हि ज्ञानस्य अर्धम् अङ्गम् अतएव स्मृतिः न निश्चयात्मिका, अर्थाभावात्. अनुमितिरपि

सम्बन्धिव्यवधानेन अर्थजनितैव''.

(सुबो.३।२६।३०)

अर्थात् यथार्थ अनुभव निश्चयरूप होता है. क्योंकि अनुभूतिका विषय= अर्थ ज्ञानका आधा अंग होता है; अतएव स्मृति निश्चयरूपा नहीं होती, स्मर्यमाण अर्थके अविद्यमान होनेके कारण यद्यपि स्वयं अपने विषय अग्निसे अनुमितिरूप अनुभूति भी उत्पन्न नहीं होती; फिरभी विद्यमान अग्निसे पैदा होनेवाली विद्यमान धुंआसे पैदा होनेके कारण अनुमितिको विद्यमान अर्थ परम्पराजनित मानना पड़ता है. इस विवरणसे सिद्ध होता है कि लोकव्यवहारसंबन्धी प्रामाण्यव्यवस्थाके बारेमें श्रीमहाप्रभुने प्रथम निकषको मान्य रखा है. तृतीयस्कन्धके पंदरहवें अध्यायके ४६ वें श्लोकमें श्रीमहाप्रभुने एक उल्लेखनीय बात जो इस सम्बन्धमें कही है वह यह है कि ब्रह्मके बारेमें किसी भी तरहका कोई निर्णय लेना हो तो दोमेंसे कोई एक आधार हमारे पास अवश्य होना चाहिये: या तो शास्त्रोंका भलीभांति बोध अथवा ब्रह्मसाक्षात्काररूप स्वानुभव. शास्त्र भी ''तं त्वौपनिषदं पुरुषम्'' एवं ''मनसैवानुद्रष्टव्यम्'' जैसे दो तरह के वचनोंद्वारा यही बात कहना चाहता है. जब शास्त्रोंमें यह कहा जाता है कि ''न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्'' या ''न तं विदाथ'' तो उसका तात्पर्य अनधिकारी दुष्टजनोंको ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं होता इतना ही केवल होता है. कथमपि एतावता यह विवक्षित नहीं मान लेना चाहिये कि सदधिकारिओंको भी कभी ब्रह्मसाक्षात्कार हो ही नहीं सकता. यह बात और है कि ब्रह्मसाक्षात्कार, केवल निजसत्त्वके सदधिकारिओंको भी नहीं हो पाता. वह तो जीवसत्त्व जब भगवत्कृत जीववरणरूप साधनका अवान्तरव्यापार हो तभी सम्भव हो पाता है. ''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'' सदृश वचनोंका यही आशय है.

अतः अलौकिक प्रमेय ब्रह्मके बारेमें श्रीमहाप्रभुको व्यवस्थित विकल्प मान्य है:

(१) प्रमाणबलमूलक व्यवस्था

इस (१) कल्पमें पुनः दो अवान्तर कल्प श्रीमहाप्रभुने दिखलाये हैं:

(क)पूर्ण ज्ञानके उदयसे पूर्वभावी प्रामाण्यव्यवस्था

(ख)पूर्ण ज्ञानके उदयसे उत्तरभावी प्रामाण्यव्यवस्था.

अतः (१/क)कल्पके बारेमें श्रीमहाप्रभुने अपना मत ''**वेदाः श्रीकृष्ण–वाक्यानि .... न तन्मानं कथंचन**''(शास्त्रा.प्रक.७–८) में श्रुति गीता सूत्र और भागवत की एकवाक्यतापन्न वचनराशिको प्रमाण मानकर निरूपित किया है.

(१/ख)कल्पके बारेमें भी यहां स्पष्टता कर दी गई है कि ''**वाङ्मात्रमेव प्रमाणम्, अर्थस्य भगवद्रूपत्वात्**''(शास्त्रा.प्रक.९). यहां 'पूर्णज्ञान'पदप्रयोग ब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानके अभिप्रायवश नहीं हुवा है किन्तु मान्य सकल शास्त्रोंके सुव्यवस्थित बोधके अभिप्रायवश हुवा है. इस पूर्णज्ञानोदयवाले कल्पका निरूपण श्रीमहाप्रभुने ''**अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैः रामायणैः सहितभारतपञ्चरात्रैः अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः**'' (शास्त्रा.प्रक.१०४) वचनमें किया है.

जिज्ञासा या शिष्योपदेश की अवस्थामें श्रुत्यादि प्रमाणचतुष्टयीके, अन्यथा प्राप्तबोधावस्थामें सकल शास्त्रोंके भी, आधारपर एकमेवाद्वितीय ब्रह्मके अनेकविध परस्परविरुद्ध गुण–धर्म–रूपोंको धारण करनेके तथ्यको दृष्टिगत रखकर प्रमाणबलावलम्बिनी व्यवस्था स्वीकार करके ब्रह्मनिरूपणमें सकल विरोधाभासों का उपशमन किया जा सकता है.

प्रमाणबलके उभयविध कल्पोंमें यह नितान्त अवधारणीय है कि इनमें याथार्थ्यावगति स्वयं दुष्परीक्ष्य होनेसे '' '**वेदाः**' **इति शब्दएव प्रमाणं, तत्रापि अलौकिकज्ञापकमेव तत् स्वतः सिद्धप्रमाणभावं प्रमाणम्**''(शास्त्रा.प्रक.७). अर्थात् अलौकिक प्रमेयके ज्ञापक होनेसे वेदादि शास्त्रोंके शब्द ही प्रमाणतया मान्य हुवे हैं; और इनका प्रमाण होना भी स्वतः प्रामाण्यके रूपमें अभिप्रेत माना गया है. इससे सिद्ध होता है कि यहां तृतीय निकष श्रीमहाप्रभुको अभिमत है.

(२)प्रमेयबलमूलक व्यवस्था

श्रीमहाप्रभुने यह स्पष्टीकरण भी दिया है कि विचारकों अथवा भक्तों की धारणाओंके या भावनाओंके अनुरूप स्वरूपधारण करनेकी भगवत्सामर्थ्य

अर्थात् प्रमेयबलके आधारपर भी ब्रह्मनिरूपणमें सकल विरोधाभासों का उपशमन किया जा सकता है.

ऐसी स्थितिमें प्रमेयबलके कल्पमें यह अवधारणीय है कि निजेच्छया या निजभक्तोंके भावोंके अनुरोधवश वह प्रमेय जिस रूपमें प्रकट हुवा हो उससे विपरीत रूप, चाहे शास्त्रप्रमाणसिद्ध ही क्यों न हो, का दुराग्रह प्रामाण्यव्यवस्थाके प्रथम निकषका अनादर है. कमसे कम यह तत्तत् स्वरूपधारणलीलाके प्रसंगमें होती भगवत्स्वरूपानुभूतिके सन्दर्भमें तो अपरिहार्य है ही.

अर्थात् प्रमाणबलवाली व्यवस्थामें प्रथम निकषरूप याथार्थ्यके दुष्परीक्ष्य होनेसे, प्रमाणके अनुसार, अर्थात् तृतीय निकषके अनुसार, प्रमेयस्वरूपका निर्धारण किया जाना चाहिये. इसी तरह प्रमेयबलवाली व्यवस्थामें, याथार्थ्यके सर्वथा सुपरीक्ष्य होनेसे, स्वतः प्रकट प्रमेयके अनुसार, अर्थात् प्रथम निकषके अनुसार, किसी एक अनुभूतिके, अथवा दो अनुभूतिओंके परस्पर विरुद्ध होनेपर भी, प्रमाण या अप्रमाण होनेका निर्धारण किया जाना चाहिये.

परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने, 'कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुं' निजसामर्थ्यवश शिशुरूप बालरूप कुमाररूप किशोररूप या युवारूप अथवा पुत्र अनुज सखा प्रियतम शिष्य सारथी गुरु आदि बननेके जो-जो रूप-गुण-स्वभाव-सम्बन्ध-कर्म तत्तद् लीलाओंमें प्रकट किये उन्हें. व्यावहारिक सत्य मायिक मिथ्या या आरोपित मान लेनेपर :

> ''एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च... एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति''(कठोप. २२।९-१२).
>
> ''यद् एकम् अव्यक्तम् अनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्ताद्... तदेवाग्निः तद् वायुः तत् सूर्यः तदु चन्द्रमाः तदेव शुक्रम् अमृतं तद् ब्रह्म तद् आपः स प्रजापतिः''(महाना.उप.१।५-७).
>
> ''सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते''

(चित्त्युप.१२।७).

''स विश्वकृद् विश्वविद् आत्मयोनिः ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः, प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ... य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय'' (श्वेता.उप. ६।१६-१७).

''सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्''. (ब्र.सू.३।३।१).

''वायुर्यमोऽग्निः वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामह श्च''(गीता ११३३९).

जैसे अनेकानेक शास्त्रवचनोंके डिंडिमघोषको अनसुना बनाना पड़ेगा. अन्यथा यह स्वीकारना बहुत कठिन है कि एकमेवाद्वितीय ब्रह्म, मायारूप उपाधिके बिना, स्वतः अनेक रूप धारण कर नहीं सकता! ऐसी स्थितिमें महाभारत-भागवतादिमें वर्णित अवतीर्ण श्रीकृष्णके स्वरूप या लीला को मायिक या केवल व्यावहारिक सत्य मानना श्रीकृष्णके आत्ममायापरिगृहीत जन्म-कर्मोंकी दिव्यताका प्रत्याख्यान है.

अतएव उपनिषद् गीता ब्रह्मसूत्र भागवतादि शास्त्रोंके आधारपर श्रीमहाप्रभुने मायाके भी त्रिविध रूप स्वीकारें हैं :

(१) सर्वभवनसामर्थ्यरूपा माया
(२) योगमाया
(३) व्यामोहिका माया

(१)उल्लिखित शास्त्रोंमें सर्वभवनसामर्थ्यरूपा मायाका निरूपण इन वचनों हुवा है:

''... मायी सृजते विश्वम् एतत्... मायां तु प्रकृतिं विद्यान् मायिनं तु महेश्वरम्'' (श्वेता.उप.४९-१०)
''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपः ईयते''(बृह.उप. २।५।१९)
''भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ... प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ... दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया... मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते...''
(गीता ७।४-५-१४, ९।१०)

''... प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितं स एष प्रकृतिं
सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः... अभ्यपद्यत लीलया
गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः
–प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः सतोऽभिव्यञ्जकः
कालो ब्रह्म तत् त्रितयं त्वहम्''
(भाग.पुरा.३।२६।३–५; ११।२४।१९).

(२)शास्त्रोंमें योगमायाका निरूपण इन वचनोंमें देखा जा सकता है:

''मायाविग्रहधारण:''(कृष्णोप.११)
''सम्भवाम्यात्ममायया'' ''रूपं परं दर्शितम् आत्मयोगात्''
(गीता४।६–११।४७)
''यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलम्'' (भाग ३।२।१२).

(३)शास्त्रोंमें व्यामोहिका मायाका निरूपण भी अनेक स्थलोंपर मिलता ही है :

''तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः''(श्वेता.उप.४।६)
''न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः माययापहृतज्ञानाः''
(गीता७।१५)
''ऋते अर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत च आत्मनि तद् विद्याद्
आत्मनो मायाम्'' (भाग. २।९१३३).

वैसे तर्कलाघवके विचारसे तो एक सर्वभवनसामर्थ्यरूपा मायाके निरूपणसे ही सभी विराधाभासोंका परिहार शक्य है, फिर भी न तो भगवत्स्वरूप तर्कोत्प्रेक्षित माना गया है और न तर्कके लाघव–गौरवकी आपत्ति पर कुछ सिद्ध या असिद्ध ही हो जाता है. बृहदारण्यकोपनिषद्के पूर्वोद्धृत वचनमें 'मायाभिः' पदमें बहुवचनका प्रयोग, इसी तरह गीता–भागवतादिमें मायाजन्य मोहकी कहीं प्रशंसा और कहीं निन्दा, योगमाया और व्यामोहकमाया के भेदके कण्ठोक्त प्रमाण बन जाती है. वैसे 'ब्राह्मण–परिव्राजक' अथवा 'उपस्थित सज्जनों! सन्नारिओं! एवं सभाध्यक्ष महोदय!' न्यायकी तरह ही सर्वभवनसामर्थ्यरूपा माया और योगमाया/व्यामोहकमायाके बीच भेद समझना चाहिये. अर्थात् सभाध्यक्ष

'सज्जन सन्नारी'में अन्तर्भूत होनेपर भी जैसे पृथक्कृत्य उल्लेखनीय होता है वैसे ही सर्वभवनसामर्थ्यके अन्तर्गत ही भक्ति/मुक्तिका प्रदायक आनन्दात्मक स्वलीलाविहारौपयिक साधु योगमायाबल; तथा संसृति/दुर्गतिका प्रदायक दुःखात्मक जीवमोहौपयिक असाधु व्यामोहकमायाबल, यों दोनों ही बलोंका उल्लेखनीय कुछ न कुछ स्वरूपवैलक्षण्य है ही. संक्षेपमें जड़-जीव-ईश्वररूपको प्रकट करनेवाले बलको 'सर्वभवनसामर्थ्य' कहा जाता है; और प्रकट हुवे जड़-जीव-ईश्वररूपोंके साथ क्रीड़ामें प्रकट बलको 'योगमाया' या 'व्यामोहकमाया' कहा जाता है.

द्वितीयस्कन्धके नवमाध्यायके प्रारम्भमें इनका सुविशद निरूपण श्रीमहाप्रभुने किया है. वहां यह दिखलाया गया है:

> सच्चिदानन्द ब्रह्मके सदंशकी शक्ति क्रियारूपा माया होती है. चिदंशकी शक्ति व्यामोहिकारूपा माया होती है. आनन्दांशकी शक्ति सर्वभवनसामर्थ्यरूपा माया होती है. ये तीन तरहकी शक्तियां सच्चिदानन्दांशोंके धर्मोंके बोधक 'सत्ता'/'सत्त्व', 'चैतन्य'/'चित्त्व' एवं 'आनन्दत्व' रूप पदोंद्वारा अभिधेय बनती हैं. अखण्डैकरस सच्चिदानन्दमें जब ये धर्म पृथक्-पृथक अर्थक्रिया प्रकट करना शुरु करते हैं तो धर्मीभूत सदंश चिदंश एवं आनन्दांश भी परस्पर पृथक्-पृथक् रूप प्रकट करने लग जाते हैं. श्रुतिमें 'प्रजायेय' पदद्वारा ब्रह्मके सृष्टिसंकल्पका निरूपण किया गया है. अतएव आनन्दांश जब इतरद्वयापेक्षया उत्कृष्ट बन जाता है, तब इतर दोनों अर्थात् सदंश और चिदंश अपनेसे उत्कृष्ट आनन्दांशके अनुषंगी एवं अनुसेवी बन जाते हैं. परिणामस्वरूप सदंशकी क्रियाशक्ति एवं चिदंशकी व्यामोहकशक्ति आनन्दांशमें पर्यवसित हो जाती हैं. इसी तरह क्रिया एवं ज्ञान की शक्तिओंका धर्मी या आश्रय आनन्दांश बन जाता है. मूलमें ज्ञानरूप धर्मवाले चिदंशकी ज्ञानशक्ति जब आनन्दांशमें पर्यवसित हो जाती है, तब स्वयंकी ही शक्ति स्वयं चिदंशको व्यामोहित करने लग जाती है. और इस तरह उस चिदंशको जीव बनना पड़ता है. क्रियाशक्तिके जानेके कारण सदंश

जड़ अव्यक्त=प्रकृति बन जाता है. बादमें आनन्दांशमें पर्यवसित हुई क्रियाशक्तिके यथायथ उद्‌गम या तिरोगम के कारण महदहंकारादि क्रमसे घट-पटपर्यन्त व्यष्टि/समष्टि जड़रूपोंके यथायथ आविर्भाव या तिरोभाव होते रहते हैं. इसी तरह चिदंश भी आनन्दांशमें पर्यवसित स्वकीय ज्ञानशक्तिके अंशभूत अनेकानेक ज्ञानोंसे अनेकानेक जीवोंके रूपमें अभिव्यक्त या तिरोहित होते रहते हैं. मूलमें स्वयंकी परन्तु आनन्दांशमें जा कर पर्यवसित हुई चिदंशशक्ति व्यामोहिका माया, जब जीवको मोहित करने लगती है, तब वह जीव बोधरूप होनेके बावजूद आनन्दांशसे पृथक् हो जानेके कारण आनन्दांशकी खोजमें निकटमें उपलब्ध प्राणका संगी बन जाता है. ऐसे प्राणसंगी चिदंशको 'जीव' कहा जाता है, '''जीव' प्राणधारणे'' धातुसे शब्दनिष्पत्तिके आधारपर भी यह सिद्ध हो सकता है. स्वयं चिदंशकी मायासे मोहित जीवको भगवान् जबतक पूर्ण ज्ञानशक्ति प्रदान नहीं करते, तबतक वह प्राणधारणके प्रयत्नोंको छोड़ नहीं पाता. पूर्णज्ञान पा लेनेपर प्राणसंगके व्यसनको छोड़ कर वह पुनः शुद्ध चिद्रूपतामें अवस्थित हो जाता है. इस शुद्धावस्थामें प्राकृत सत्त्वादि गुणत्रयी, बुद्धि, अहंकार, मन से शुरू करके रूपरसादि गुणवाले जड़देहके घटक पृथिव्यादि विषयोंकी आधीनतासे भी चिदंश छुटकारा पा लेता है. एतावता चिदंशमें जगत्कर्तृत्वकी सामर्थ्य तो आ नहीं पाती, क्योंकि वह शक्ति तो केवल आनन्दांशमें ही रहती है... आनन्दांशके साथ मिलन होनेपर ही जीवको आनन्दानुभूति हो पाती है... यह प्रक्रिया सर्वश्रुतिवचनोंके अनुरोधवश श्रुतार्थापत्ति-सिद्ध है; और शास्त्रवचनाशयनिर्धारणार्थ सर्वत्र उपयुक्त भी. अन्य प्रक्रिया शास्त्राभिप्रायको कुण्ठित बनाती हैं.

योगमायाका निरूपण श्रीमहाप्रभुने दशमस्कन्ध (भाग.पुरा.१०।३।४७ तथा १०।२६।१) में इन शब्दोंमें किया है :

यह योगार्थ ही होती है. भगवान्‌की दिव्य लीलामें जब

लीलोपयोगी लोकव्यामोहन या चमत्कार दिखाना अभीष्ट होता है, तब इसे व्यापारित किया जाता है. योगमाया यथास्थित वस्तुका भी अन्यत्र स्थापन कर देती है. इस शक्तिका उपयोग प्रभु लीलार्थ करते हैं. प्रमाण और रक्षण की लीलामें जैसे बलभद्रको साथ रखा जाता है वैसे ही लोकमें अलौकिक लीलारूप कार्यको सिद्ध करनेको योगमायाको साथ रखा जाता है. बलभद्र और योगमाया के बीच योगमाया अन्तरंगतर होती है. इसके कारण प्रमाण और फल(=आनन्द)का अपने प्रमेय=विषय या साधन से अन्यत्र भी योजन(उपलम्भकत्व/उपलम्भ) सम्भव हो जाता है (इसी तरह विदित प्रमेयका अश्रुतपूर्व प्रमाणसे होते अनुभवके साथ योजन या विहित साधनकी श्रुतपूर्व फलकी अप्रापकता के साथ योजन भी शक्य हो जाता है).

यहां संक्षेपमें पुनः इतना जान लेना आवश्यक है कि तैत्तिरीयोपनिषद्का जो वचन इस भूमिकाके उपक्रममें दिया गया है, उसमें उपलक्षणविधया परिगणित सत्-त्यद् आदिके द्वन्द्वोंको, जो सच्चिदानन्द ब्रह्मने अपने चिदंश या आनन्दांश के निगूहनद्वारा इस जगत्में प्रकट किया गया है, उसे सर्वभवनसामर्थ्यरूपा मायाद्वारा ही किया हुवा कार्य जानना चाहिये. ऐसे द्वन्द्वात्मक जगत् में अपने आनन्दांश या चिदंश को तिरोहित किये बिना जब सच्चिदानन्द भगवान् स्वयं लीलार्थ प्रकट होते हैं तो, पूर्वोक्तविध द्वन्द्व अपनी योगमायाद्वारा प्रकट करते हैं. जब भक्ति या मुक्ति में से कोई भी एक फल जीवात्माको देना अभीष्ट न हो, तब व्यामोहक मायाद्वारा उस जीवात्माको मोहित बना दिया जाता है.

इस प्रसंग तामसफलप्रकरणके प्रारम्भमें श्रीमहाप्रभुने एक निरतिशय मननीय निरूपण किया है, जिसे यहां उद्धृत करनेके लोभका संवरण दुर्वार है :

> भक्तिप्रतिपादक एवं ज्ञानप्रतिपादक यों दो तरहके शास्त्रोंके आधारपर भगवान्के वास्तविक स्वरूपका जैसे बोध होता है; वैसे ही कभी-कभी स्वयं भगवत्स्वरूप स्वयमेव स्वबोधजनक बन जाता है. व्रजमें भगवान् अपने सच्चिदानन्दरूपमें अवतीर्ण या प्रकट

हुवे हैं, मुक्ति (या भक्ति) के प्रदानार्थ ही. अतः जिस किसीका जिस किसी उपायद्वारा भगवान् के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है, उसे उसी उपायसे मुक्ति (या भक्ति) मिल जाती है. भूतलपर भगवान्को प्रकट करने हेतु ज्ञान या भक्ति उपयोगी उपाय हैं; परन्तु भगवान् यदि स्वेच्छया स्वतः प्रकट हो गये हों तो फिर ज्ञान या भक्ति की कोई उपयोगिता रह नहीं जाती! यहां तो भगवान् स्वतएव सर्वजनोंके नयनगोचरतया प्रकट हो गये हैं, मुक्ति(/भक्ति) दानार्थ. क्योंकि ईश्वरेच्छाको शास्त्रनियमोंमें जकड़ा नहीं जा सकता! अतः भगवान्के आविर्भावके तीन उपाय सिद्ध होते हैं :

१. स्वेच्छा

२. भक्ति अथवा

३. ज्ञान.

अनवतारकालमें ज्ञान या भक्ति दो ही औत्सर्गिक हेतु बनते हैं; परन्तु अवतारदशामें ज्ञान-भक्ति प्रयोजक नहीं रह जाते. (वैसे) बरसातमें तो जल सर्वत्र सुलभ रह सकता है, एतावता क्या कूप या नदी आदिको कोई अनुपयोगी मान सकता है?

अस्तु, अब हमें यह देखना है कि जन्मप्रकरणके बाद प्रमाण प्रकरणमें निरूपित भक्तिहेतुक अज्ञान एवं अन्यथाज्ञान रूप प्रमाणोंके प्रमेय बने भगवत्स्वरूपका वर्णन इस प्रमेयप्रकरणमें कैसे हुवा है. ये अज्ञान और अन्यथाज्ञान व्यामोहिका मायाके कार्य नहीं हैं प्रत्युत योगमायाके कारण प्रकट हुवे हैं. अर्थात् स्वयं भगवान्के द्वारा अपनी दिव्य योगमायाके बलसे परिगृहीत रूपके वश ये अज्ञान और अन्यथाज्ञान पनपे हैं. जैसे कोई शिल्पी अपनी छेनीसे तराश-तराश कर किसी शिलामें सौन्दर्यको प्रकट कर देता है, वैसे भगवत्स्नेहोद्भूत दिव्य अज्ञान और अन्यथाज्ञान के वश प्रमाणलीला ही शनैः-शनैः घनीभूत हो कर प्रमेयलीलामें साकार होती हुई इस अवस्थाको प्राप्त हुई है!

भक्तिकी विभिन्न अवस्थाओंको बीजभाव, वरण रुचि स्नेह आसक्ति

और व्यसन के रूपमें निरूपित किया गया है. व्रजमें प्रकट होनेका प्रभुका संकल्प वरणस्थानीय भावांकुरणकी प्रक्रिया है. प्राकृत शिशुकी तरह मनोहर शिशुवपुः धारण उस अंकुरित रुचिको प्रेमकन्दलित बनानेकी प्रक्रिया है. यह जन्मप्रकरणका वर्ण्यविषय है. अपनी मनोहारिणी बालक्रीड़ाओंसे उस कन्दलित प्रेमको भगवान् प्रणय–स्नेहोद्भूत अनेकविध मनोरथोंकी शाखाप्रशाखाओंसे सम्भृत तथा पल्लवित करते हैं. यह प्रमाणप्रकरणका वर्ण्य विषय है. इस प्रमेयप्रकरणमें उस पल्लवित प्रणय–स्नेहको रागात्मिका आसक्तिमें कलिकायित किया जाना है कि जिसे अग्रिम साधनप्रकरणमें अनुरागात्मिका प्रत्याशाओंके कुसुमके रूपमें खिलाना है. इसी तरह अन्तिम फलप्रकरणमें इसे प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवद्व्यसनमें फलित हो जाना है.

प्राकृत बालकके रूपमें अवस्थित भगवान् ही प्रमेयभावापन्न भी हैं. अतएव प्राकृत बालककी तरह तो भगवान् असमर्थ नहीं हैं. भगवान् अपने अप्राकृत अलौकिक सामर्थ्यको यदा–कदा सकलज़न–नयन–गोचरतया प्रकट भी कर देतें हैं; तब भी व्रजके गोप–गोपीजन अपना वात्सल्य या स्नेहभाव भगवान्के बारेमें छोड़ नहीं पाते. श्रीमहाप्रभु, अतएव, कहते हैं–''**अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति यथा कृष्णः, यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि, सर्वजगदाधारो भवति**'' (शास्त्रा.प्रक.५४) अर्थात् अणुपरिमाण होनेपर भी ब्रह्म व्यापक हो सकता है. जैसे श्रीकृष्ण, माता यशोदाकी गोदमें लेटे हुवे होनेपर भी, अखिल ब्रह्माण्डके आधार होते हैं. अपनी यह विरुद्धधर्माश्रयता भगवान्ने बाललीलामें प्रकट न की हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है. स्तनपानरत भगवान् ने अपने मुखारविन्दमें ही समग्र ब्रह्माण्डके दर्शन अपनी माताको करा दिये; और इसे साक्षात् स्वनेत्रोंसे निरखनेके बाद भी माता यशोदा स्वीकार न सकी! इससे पता चलता है कि वह बालरूप कितना मनोहारी रूप रहा होगा!!

''**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**'' या ''**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्**'' जैसे वचनोंमें वर्णित आत्मतत्त्वके साक्षात्कारकेलिये उपनिषदोंमें कहा गया है: ''**तद् एतत् प्रेयः पुत्रात्–एतं वै तम् आत्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च... व्युत्थाय अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति**'' तो यह ज्ञानिओंकेलिये तो अवश्य ही सच बात है. उस सर्वात्माकी सर्वरूपता

ज्ञानिओंके लिये अवश्य ही सर्वाधिक स्पृहणीय होती होगी; परन्तु माता यशोदाकेलिये वह सर्वरूपता नहीं किन्तु पुत्ररूपता ही नितान्त स्पृहणीय है. अतएव ऐसी तत्त्वसाक्षात्कारैषणासे 'व्युत्थित' होनेके कारण, माता यशोदा श्रीकृष्णको अपने आत्मज होनेके अलावा और कुछ मानने तैयार ही नहीं है! सर्वात्माके पुत्ररूपेण प्रमेय बननेपर पुत्रत्वसे अधिक प्रिय सर्वात्मत्व हो नहीं पाता–सर्वात्मत्वसे भी कहीं अधिक प्रेम पुत्रत्वके बारेमें ही प्रकट हो जाता है. इस लीलाचमत्कृतिका वर्णन प्रमाणप्रकरणी सुबोधिनी (भाग.पुरा.१०।८।४५) में इस तरह किया गया था :

> क्रियाशक्तिके निरूपणद्वारा भगवन्माहात्म्यकी प्रतिपादिका वेदत्रयीने, ज्ञानशक्तिके निरूपणद्वारा उसी माहात्म्यकी प्रतिपादिका उपनिषदोंने, नित्यानित्य वस्तुकी विवेचनाद्वारा अनित्य वस्तुके मोहसे छुड़ा कर नित्य वस्तु भगवान्‌की ओर ले जानेवाले सांख्यशास्त्रने, भगवदितर विषयोंकी चिन्तासे चित्तको छुड़ा कर केवल भगवान्‌में उसे निरुद्ध करनेवाले योगशास्त्राने, भगवन्माहात्म्यनिरूपक पाशुपत एवं वैष्णव तन्त्रशास्त्रोंने, इसी तरह तत्तद् दर्शनशास्त्रोंने भी तत्तत् प्रमेयोंके रूपमें जिन श्रीकृष्णका माहात्म्य गाया है, ऐसे श्रीकृष्णके माहात्म्यको निजनेत्रोंसे निहार कर भी, माता यशोदा, सर्वात्मा माननेके बजाय अपना आत्मज ही मानना चाहती हों तो पुत्रभाववाली अविहित भक्तिमें माता यशोदा सुप्रतिष्ठित हो गयी हैं, यह सिद्ध हो जाता है (फिरभी इसे अज्ञानजन्य मोह माननेसे बड़ा अज्ञान या मोह, और क्या हो सकता है?).

भगवान्‌के जन्म लेनेके साथ शुरु हुई उत्सवोंकी परम्पराद्वारा, अनेकविध असुरोंके उपद्रवोंसे पैदा होते भयद्वारा, उन सभीसे भगवान्‌के उबर जाने कौतुकद्वारा, गर्गमुनिके विस्मयजनक वचनद्वारा, यमलार्जुनभंगद्वारा; और बकासुरवधादिके अनेकविध उपद्रवोंकेद्वारा भी भगवान्‌ने मुख्यतया नन्द-यशोदाके; और वैसे तो सभी व्रजजनोंके हृदयोंको अपनेमें निरुद्ध=

निरतिशयासक्त बना लिया था. अतः बाल्यावस्थामें भी प्रमेयरूपता सम्पन्न हो जानेसे, इन सात अध्यायोंवाले प्रकरणमें स्नेहोत्तरभाविनी भक्तिकी तृतीय अवस्था आसक्तिका ही सप्तविध निरूपण अभिप्रेत है. इसमें मुख्यता गोप–गोपिकाओंकी है.

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छह भगवद्धर्मोके अलावा सातवें धर्मी स्वयं भगवान् के निरूपणार्थ ही ये क्रमशः सात अध्याय हैं. तदनुसार :

प्रमेयप्रकरणके प्रथम (आदितः १२ = १५) अध्यायमें : व्रजलीलामें अपने असाधारण अलौकिक सौन्दर्यवश सभीका मन अपने वशमें, अर्थात् अपनेमें निरुद्ध, कर लेनेके कारण भगवान्का ऐश्वर्य गुण निरूपित हुवा है. 'निरोध'का अर्थ, जैसा कि हम देख ही चुके हैं, प्रपञ्चको भूलभालकर भगवान्में मनका लग जाना है. अतः प्रपञ्चासक्तिको तोड़नेका अनुभाव भगवान्ने व्रजमें बसनेवाले दुष्टजनोंके निग्रहद्वारा प्रकट किया. इसमें सर्वप्रथम प्रमेयरूप भगवान्ने अपने समग्र लीलापरिकरकी दिव्यता अपने अग्रज श्रीबलभद्र, जो प्रमाणरूप हैं, उन्हें समझायी है. इससे उनमें निजावेश इंगित हुवा है. अतएव भगवदाविष्ट श्रीबलरामद्वारा धेनुकासुरके वधका वर्णन भी श्रीकृष्णके ही चरित्रनिरूपणतया किया गया समझना चाहिये. इस लीलाकेद्वारा प्रमेयरूप भगवान्ने प्रमाणाविष्ट हो कर निजासक्तिमें व्रजवासिओंकेलिये अनुपयोगी ऐसे देहाध्यासके निवारणका अनुभाव प्रकट किया है. क्योंकि भगवदासक्तिमें अनुपयोगी देहाध्यास तो अज्ञानजन्य ही होता है, जबकि उपयोगी तो योगमायाजन्य ही होता है, यही तो भागवतका गूढ़ रहस्य है. इस तरह प्रपपञ्चविस्मृति + भगवदासक्ति निरोधके समीकरणमें पूर्वदल– 'प्रपपञ्चविस्मृति' के अन्तर्गत देहाध्यासके निर्वतनके बाद जो उत्तरदल 'भगवदासक्ति' हैं उसके अन्तर्गत भगवद्रूपासक्तिका निरूपण "**तं गोरजश्छुरितकुन्तल... यदपांगमोक्षम्**"(भाग.पुरा.१०।१२।४२–४३) श्लोकोंमें हुवा है.

इस लोकातिशायी सौन्दर्यके कारण मुख्यतया यहां गोपिकाओंके, और

आनुषंगिकतया अन्योंके भी, मानसिक निरोधका निरूपण हुवा है. इसी तरह इस प्रकरणके वेणुगीतवाले अन्तिमाध्यायमें वाचिक निरोधका; तथा आगे चलकर फलप्रकरणमें कायिक निरोधका भी निरूपण किया जायेगा.

द्वितीय (आदितः १३=१६) अध्यायमें : कालीयनागके दमनके वर्णनद्वारा भगवान्के वीर्य गुणका निरूपण अभिप्रेत है. भगवदासक्त जीवकेलिये तत्तद् इन्द्रियोंकी तत्तद् विषयोंमें रही आसक्ति कालीयनागके फनोंमें रहे विषकी तरह अनिष्टकारिणी होती हैं. कालीयनागके फनोंकी जैसी हमारी इन्द्रियोंपर, यदि भगवच्चरणरूपा भक्ति नाचने लग जाये तो, भगवदासक्तिमें अनुपयोगी विषोपम विषयोंमेंसे इन्द्रियोंकी आसक्ति निवृत्त हो सकती है. यों देहाध्यासके निवर्तनके बाद गो-गोप-गोपिकाओंका भगवदासक्तिमें अनुपयोगी जो इन्द्रियाध्यास था, उसका निवर्तन यहां निरोधांगतया वर्णित हुवा है. यह कालीयदमन व्रजभक्तोंकी भगवदासक्तिकी दृढ़ताकी ही परीक्षा थी.

तृतीय (आदितः १४=१७) अध्यायमें : "**कृष्णं हृदाद् विनिष्क्रान्तं ... उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इव प्रजाः**"(१०।१४।१३-१४) श्लोकोंमें अपने दर्शनके दानकेद्वारा व्रजजनोंके प्राणोपम अभीष्ट श्रीकृष्णने सकल व्रजवासिओंको जो प्राणदान किया, उसके वर्णनद्वारा सुस्पष्टतया भगवान्के यश गुणका निरूपण हुवा है. व्रजभक्तोंको भगवान् में साधारण लौकिक स्नेह नहीं था प्रत्युत भगवान् उन्हें निरतिशय प्राणप्रिय थे, यही प्राणदानके वर्णनका अभिप्राय है.

प्रथमाध्यायके अन्तमें, वृन्दावनमें विचरनेवाले तृषार्त गो-गोप-बालकोंके विषदूषित जलपानसे निष्प्राण होनेका तथा भगवान्की अमृतवर्षिणी दृष्टिसे पुनुरुज्जीवित होनेका उल्लेख हुवा है. यह उल्लेख भी अज्ञानप्रयुक्त प्राणाध्यासके निवर्तनद्वारा गो-गोपबालकोंको, भगवदासक्तिहेतु उपयोगी प्राणाध्यासके प्रदानकी ही लीला थी. स्वनिरूपक अध्यायसे पूर्ववर्णनका हेतु वे स्वयं जा कर व्रजस्थित सभी व्रजजनोंको भगवान्के जलहृदमें कूदनेके वृत्तान्तसे अवगत करें, यही प्रतीत होता है.

जलह्रदसे सकुशल बाहर निकलते भगवान् के दर्शनमें मिलते आनन्दको, केवल नेत्रेन्द्रियोंके सुखतया वर्णित न कर, व्रजवासिओंके तनमें लौट आये प्राणकी तरह वर्णन करना भी, व्यामोहिका मायासे जन्य प्राणाध्यास व्रजवासिओंमें अब रह नहीं गया था, इस तथ्यके सूचनार्थ है. सभी व्रजजन योगमायासे जन्य अलौकिक प्राणाध्याससे सम्पन्न हो गये थे.

पुनश्च इसी तरह दावाग्निपानके वर्णनद्वारा भगवन्माहात्म्यका जो निरूपण हुवा है, वह भी व्रजवासिओंके चित्त भगवान्में भक्तिभावपूर्ण हो कर निरुद्ध हो गये थे, केवल लौकिक आसक्तिके रूपमें नहीं; क्योंकि असाधारण भगवन्माहात्यको स्वयं निजनेत्रोंसे निरखनेके बाद भी व्रजजनोंकी आसक्तिमें लेशमात्र अन्तर नहीं पड़ा. यह यशोरूप माहात्म्यका ज्ञान, जो भक्तिका पूर्वांग माना गया है, उसकी ही विवक्षासे हुवा निरूपण है.

यहां तक सभी व्रजजनोंकी दृढ़ भगवदासक्तिका सामान्यतया निरूपण किया गया. अब इसके बाद गोपबालकों, गायों, गोकुलस्थ अन्य भी सभी व्रजजनों; तथा गोपिकाओं की भी आसक्तिका विभागशः पृथक्-पृथक् वर्णन किया जाना अभिप्रेत है.

चतुर्थ (आदितः १५=१८) अध्यायमें प्रलम्बवधका वर्णन तथा कालदुःख निवारणका वर्णन भगवान्के श्री गुणके निरूपणार्थ है. इनम-प्रलम्बके वधद्वारा मुख्यतया भगवान्ने व्रजके गोपबालकोंके, वैसे अन्य भी सभी व्रजजनोंके, अन्तःकरणाध्यासके निवारणका अनुभाव प्रकट किया है. यहां वृन्दावनलीला तथा गोष्ठलीला यों उभयविधलीलाओंका वर्णन हुवा है.

पञ्चम (आदितः १६=१९) अध्यायमें : जीवात्माके साथ जो अज्ञानरूप दोष होता है उसे, निजासक्तिमें दावाग्निरूप जान कर, भगवान्ने शान्त किया. अतः द्वितीय दावाग्निपानद्वारा भगवान्ने अपना माहात्म्य प्रकट करके निरोधांगभूत भगवदासक्तिकी भक्तिस्वरूपताको दृढ़ करनेको अपने ज्ञान गुणको ही अपनी गायोंकेलिये प्रकट किया है.

षष्ठ (आदितः १७=२०) अध्यायमें : वर्षा और शरद् ऋतुओंके वर्णनमें, वैसे तो स्वयं श्रीहरिको तटस्थ सा दरसाते हुवे, भगवल्लीलासामयिक कालका ही निरूपण मुख्यतया हुवा है. अन्ततः इस तरह भगवल्लीलार्थ अभीष्ट कालमें सभी बातोंके दोषरहित हो जानेके वर्णनसे भी भगवान्का माहात्म्य ही यहां भी निरूपित हुवा जान लेना चाहिये. इस अध्यायके उपक्रममें ही **''गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः, मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ''**(१०।१७।२) वचनमें भी यही बात स्पष्ट कर दी गयी है. दृढ़ आसक्तिवाले निरुद्ध भक्तोंके ही बीचमें सम्पन्न की गयी क्रीड़ाद्वारा भगवान्का वैराग्य गुण यहां सूचित हुवा है.

सप्तम (आदितः १८=२१) अध्यायमें इन छह गुणधर्मों वाले धर्मिस्वरूप स्वयं परब्रह्मका रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति श्रुतिवचनके अनुसार रसात्मक वर्णन यहां अभिप्रेत है.

निष्पाद्य रसानुभूतिके किसी भी प्रकारमें एक तो प्रमुख अंगी स्थायिभाव होता है, जो आभ्यन्तर होनसे रसिकजनकेलिये हृदयैकगम्य होता है; और दूसरा अंगभूत निष्पादक आलम्बनविभाव होता है, जो बाह्य होनेसे सर्वजनोंके नयनगम्य होता है. रसशास्त्रीय मर्यादाके सन्दर्भमें ''विभावानुभाव-सञ्चारिभावैः निष्पन्नः स्थायिभावो रसः स्मृतः'' वचनके अनुसार विभावादि सकल उपादान निष्पादक कोटिमें आते हैं तथा स्थायिभाव निष्पाद्य कोटिमें.

रसानुभूति न तो केवल सुखानुभूति होती है और न केवल दुःखानुभूति ही सुख या दुःख सभी कुछ जिसमें अनुकूलतया आस्वाद्य बन जायें ऐसी आनन्दानुभूतिको ही 'रसानुभूति' कहा जाता है. सामान्यतया, अतएव, आलम्बनविभाव आनन्दजनक होता है; और स्थायिभाव आनन्दरूप. प्रकृत प्रसंगमें भगवान्को आलम्बनविभाव तथा भगवदासक्तिको स्थायिभाव समझना चाहिये. ''**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्**''(तैत्ति.उप.३।६।१) वचनके आधारपर भगवत्स्वरूपानन्द हो अथवा भगवदासक्तिरूप आनन्द हो दोनों ही मूलमें आनन्द

होनेसे साक्षात् परब्रह्मात्मक ही हैं. अतएव ''**बर्हापीडं नटवरवपुः...**''(भा. १०।१८।५) वचनकी सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुने भगवान्का दो रूपोंमें आलम्बनविभाव होना समझाया है :

(१) निष्पाद्य रसानुभूतिके बाह्य आलम्बनतया निष्पादक भगवान्, प्रत्यग्र भोक्तृभावापन्न होनेके कारण, प्रत्यक्ष सन्निधिमें 'वर' पदसे अभिधेय होते हैं.

(२) निष्पाद्य स्थायिभाव जहां स्वयं ही 'आसक्तिभ्रम'न्यायेन घनीभूत हो जानेके कारण निष्पादक सकल आभ्यन्तर सामग्रीतया जब आलम्बनविभावादिको भी भोग्यभावापन्न बना देता है तब भगवान् 'नट' पदसे अभिधेय बन जाते हैं.

ब्रह्मको 'आनन्द' जैसे कहा गया है, वैसे ही 'आनन्दमय'(तैत्ति.उप.३।६।१ तथा २।५।१) भी कहा गया है. ''**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'' (तैत्ति.उप.२।१।१) वचनके आधारपर आनन्दको देशकृत कालकृत तथा स्वरूपकृत त्रिविध परिच्छेदोंसे रहित भी माना गया है. अतः जब आनन्द सर्वतः अनन्त ही हो तो, न तो प्राचुर्य और न विकार ही अर्थ उपपन्न हो पाते हैं, क्योंकि अनन्तका अनन्तसे गुणाकार करनेपर गुणनफल भी अनन्त ही तो मिलता है–प्रचुर अनन्त नहीं; और 'मयट्' को विकारके अर्थमें तो स्वयं ब्रह्मसूत्रकारने मान्य नहीं रखा है. फिरभी ''**अजायमानो बहुधा विजायते**'' (तैत्ति.आर.३।१३।४०-४१) वचनद्वारा निर्दिष्ट नीतिका अनुसरण करनेपर आत्मरमणशील ब्रह्मको यदि आनन्दरूप मान लें तो आत्मभावित भक्तोंके हृदयमें भगवदासक्ति या स्थायिभाव को परमानन्दतया रसरूप मानना चाहिये. ऐसे ही भक्तोंके हृदयमें विद्यमान भगवदासक्तिरूप आनन्दको स्थायिभावात्मक रस मान लें तो नयनोंके सामने स्नेहके आलम्बनविभावतया रममाण भगवान्को आनन्दमय भी माना जा सकता है. संक्षेपमें परब्रह्म, केवल स्वरूपतया अगणितानन्द होनेपर भी लीलाविशिष्टतया आनन्दमय बन जाता है. अगणित आनन्दमें भी यह विलक्षण प्राचुर्य भगवत्स्वरूप या भगवल्लीला की अपेक्षासे न होकर, रसिक भक्तके स्वरूपासक्त या लीलासक्त

हृदयकी अपेक्षासे ही होता है.

प्रकृतमें भगवान् भी नटवरवपु बन कर प्रकट हुवे हैं. इस नटवरवपुद्वारा किये गये वेणुवादनने ही व्रजस्थित गोपीजनोंके हृदयमें विद्यमान निरुपधिक भगवदासक्तिको शृंगारात्मिका बनाया है. तदनुरूप शृंगारात्मिका रतिका आलम्बनविभावोचित नयनगोचर अलौकिक रूप भी भगवान्ने धारण किया है. अवशिष्ट उद्दीपनविभाव शरदऋतुसामयिक वनश्री हरिणी अप्सरायें गाय पक्षिगण नदी गोवर्धन आदि हैं. अनुभाव तो स्वयं भगवान्की विचित्र वेषभूषा है ही.

इस तरह वेणुवादनरत स्वयं भगवान्का दर्शन एवं वेणुनादश्रवण भी व्रजमें ही हो जानेकी अलौकिक घटना लौकिक प्रक्रियासे तो सम्भव नहीं! इसे 'आसक्तिजन्य भ्रम' मानना पूर्वप्रतिपादित भगवद्रूप-भगवल्लीलाकी अलौकिकताके बारेमें नितान्त अनभिज्ञताका प्रकाशन ही होगा. अतएव इस अलौकिक अनुभावको समझानेको उदाहरणतया तो 'आसक्तिभ्रम' न्याय उपयोगमें लाया जा सकता है, एतावता भ्रम ही मान लेना 'गोमयं पायसं' न्याय होगा! अपने दुर्बोध स्वरूपका बोध प्रदान करनेको भगवान् भूतलपर प्रकट होते हैं. भगवानकी उन दिव्य लीलाओंके अमृतसागरकी लहरिओमे हिलोरे लेनेके प्रेमी जन तो, ब्रह्मसायुज्यकी अभिलाषासे भी विरत हो कर, निरन्तर भगवान्के चरणकमलोंको घेर कर रहनेवाले परम हंसोंके संगकी कामनासे अपना घरबार आदि सभी कुछ छोड़ बैठते हैं! (भाग.पुरा.१०।८७।२१) इस वचनके भी आशयका शान्त चित्तसे विचार करनेपर यह तो स्पष्ट है ही. अतः जैसे ऋषियोंको ब्रह्मविद्योपदेशके कारण परमतत्त्वकी अपरोक्षानुभूति हो जाती थी, वैसे ही इस वेणुनादामृतपायनरूप विद्योपदेशद्वारा भगवान्ने व्रजमें स्थित गोपिकाओंको, वहीं व्रजमें बैठे-बैठे, वृन्दावनलीलाके अपरोक्षदर्शनकी सामर्थ्य प्रदान कर दी थी! इस वेणुनादको ऐसे दिव्य सामर्थ्यवाला नादामृत श्रीमहाप्रभु मानते हैं. यह भगवदासक्ति उस भगवत्स्नेहके कारण पनपी हैं कि जिसे स्वयं भगवान्ने ही अपने वेणुकूजनद्वारा उद्बुद्ध किया है.

इस प्रसंग में व्रजस्थ गोपीजनोंकेद्वारा वृन्दावनलीलाका वर्णन, जैसी

दिव्य भगवदासक्तिके कारण एवं भगवदनुभावकी जैसी दिव्यानुभूतिके कारण हुवा है, भगवान्के अन्तरंग गोपसखाओंकी भी वैसी ही दिव्य भगवदासक्ति एवं भगवदनुभावकी वैसी ही दिव्यानुभूतिकी सामर्थ्य, उपलक्षणविधिसे यहां भी अभिप्रेत समझ लेनी चाहिये. पूर्वाध्यायमें जिस कालका वर्णन हुवा था, वह तो द्वादशमासात्मक होता है, उस कालसे अधिक उत्तमता द्योतित करनेको यहां तेरह श्लोकोंमें भगवान्का वर्णन किया गया है. इस विवेचनासे यह सिद्ध होता है कि निरूप्यमाण अति अद्भुत वेणुवादनमें भगवान्ने प्रकृत लीलामें परिगृहीत प्रमेयरूपके बोधदायी ब्रह्मविद्योपदेशका अनुभाव प्रकट किया है.

इस तरह प्रमेय–प्रकरणमें प्रतिपाद्य विषयका संक्षेपमें अनुशीलन करनेके बाद अब हमें साधन–प्रकरण में प्रतिपाद्य विषयके अनुशीलनार्थ प्रवृत्त होना है...

(श्रीवल्लभविद्यापीठ–श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणाश्रम टस्ट, कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित की गई मूल संस्कृत श्रीसुबोधिनीकी पूज्य गो.श्रीश्याम मनोहरजी द्वारा लिखित भूमिकाका यहां प्रकाशन किया गया है.)

।। अनुक्रमणिका ।।

भागवतार्थ निबन्ध दशमस्कन्धान्तर्गत तामसप्रमेयप्रकरण ०१
श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रस्तोत्र (तामसप्रमेयप्रकरणके नाम) ०७

दशम स्कन्ध

(प्रक्षिप्त अध्याय)

अध्याय १. अघासुरका उद्धार १
अध्याय २. ब्रह्माजीने वत्सॄका हरण किया २१
अध्याय ३. ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की. ५१

(तामस प्रमेय प्रकरण)

अध्याय १२/१५. धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालॊंकी कालिय नागसे रक्षा. ९१
अध्याय १३/१६. कालिय नाग पर कृपा. १४७
अध्याय १४/१७. कालियके कालिय दहमॆं आनेकी कथा तथा भगवान्का व्रजवासियॊंको दावानलसे बचाना. २१३
अध्याय १५/१८. प्रलम्बासुरका उद्धार. २२९
अध्याय १६/१९. गौओं तथा गोपॊंको द्वितीय दावानलसे बचाना. २५०
अध्याय १७/२०. वर्षा और शरद् ऋतुका वर्गन. २६२
अध्याय १८/२१. वेणुगीत. ३१५

अनुवादक

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु, जोधपुर

भहाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित तत्वार्थदीपनिबन्धका

।। भागवतार्थ प्रकरण ।।

दशम स्कन्ध (निरोधलीला)

तामस प्रमेय प्रकरण (अध्याय १२-१८)

पिछले (प्रमाण) प्रकरणके अन्तमें कहा जा चुका है कि उसमें प्रायः सब अध्यायोंमें पुरुषोंकी निष्ठाका ही वर्णन है. अब इस (प्रमेय प्रकरण)में माता यशोदा आदिका भी निरूपण है.

प्रमेये बालरूपेऽपि प्रमाणादखिलं स्थितम् ।।५६।।
उत्सवेन भयेनापि कौतुकेन विशेषतः ।।
गर्गवाक्यैर्मुग्धभावैरत्याश्चर्यनिरूपणैः ।।५७।।
यमलार्जुनभङ्गेन बकघातादिभिस्तथा ।।
सर्वव्यसननिर्मुक्त्या कृष्णासक्तसभून्मनः ।।५८।।
अतः प्रमेयसम्पत्त्या कृष्णासक्तिर्हि वर्ण्यते ।।

जिनका ज्ञान प्राप्त करना है उन बाल स्वरूप श्रीकृष्णमें भी अज्ञान सहित अन्यथा ज्ञान (श्रीकृष्ण नन्दके पुत्र हैं ऐसा ज्ञान)को प्राप्त करके पृथक्-पृथक् लीलाओंका कर्तापन नन्द पुत्र श्रीकृष्णमें होनेका निर्णय किया गया है।।५६।।

(इसलिए) १.उत्सवसे २.भयसे ३.विशेष करके कौतुकसे ४.गर्गजीके वाक्योंसे तथा ५.मुग्ध भाव(भोलापन)स, ६.बहुत आश्चर्यके दिखानेसे ७.जुड़े हुए दो अर्जुन वृक्षोंके भंगसे तथा ८.बकासुरके वध आदिसे सबका दुःख दूर करनेसे सबका मन श्रीकृष्णमें आसक्त हो गया. अब प्रमेयकी संपूर्णतामें कृष्णमें सबकी आसक्तिका वर्णन किया जाता हैं।।५७-५८।।

सर्वतस्त्वधिकः स्नेहः पूर्वत्र विनिरूपितः ।।५९।।
आसक्तिस्तु द्वितीये हि तृतीये व्यसनं मतम् ।।
फलप्राप्तिश्चतुर्थे हि सिद्धो रोधश्चतुर्विधः ।।६०।।

(इस प्रकार उत्सव आदिसे सबका मन भगवानमें आसक्त हो गया यह बात प्रमाण प्रकरणके सात अध्यायोंसे क्रमशः कही गई, अब प्रमेयकी संपूर्णतासे भगवानकी पौगण्ड अवस्थामें की हुई भगवदासक्तिका वर्णन किया जाता है.)

तामस प्रकरणके चार उप-प्रकरणमें क्रमसे चार प्रकारके निरोधका वर्णन है यथा इस प्रमेय प्रकरणमें की हुई लीलाओंसे यशोदा, गोपीजन, गोपबाल और गौ आदिकी दृढ़ आसक्ति हुई है जिसका कारण, प्रभुका प्रमेय बल है. प्रभुने अपने प्रमेय बलसे, लीलाओं द्वारा व्रजस्थोंकी आध्यात्मिकी अविद्याका नाश किया है. जब तक अविद्या रहती है, तब तक दोष भी रहते हैं. दोषोंके निवृत्त होनेके अनन्तर, तत्त्वका ज्ञान होता है. अतः भगवानने 'प्रमाण' प्रकरणमें, आधिभौतिकी अविद्या पूतनाका नाश कर, व्रजवासियोंकी आधिभौतिकी अविद्या मिटाई है और इस प्रमेय प्रकरणमें आध्यात्मिकी अविद्या मिटानेके लिये क्रमशः देहादि अध्यास और स्वरूप विस्मृति रूप धारण करनेवाले धेनुक आदिका नाश किया है, जिससे व्रजवासियोंको तत्त्वज्ञान होनेमें, रुकावट नहीं हुई और दृढ़ आसक्ति रूप मध्यम निरोध सिद्ध हुआ है.

यहां पर प्रमेय प्रकरणका सूक्ष्म तात्पर्य दिखाया है. अधिक परिचय श्री सुबोधिनीके पठनसे प्राप्त किया जा सकता है.

आसक्तिः सप्तधा त्वत्र रूपसौन्दर्यभावतः ।।
क्रिययाऽभीष्टदानेन स्त्रीगोबाला वशीकृताः ।।६१।।

इस प्रकरणके अनुसार सात प्रकारकी आसक्ति होना बताया गया है, प्रथम रूपका सुन्दर होना, द्वितीय क्रिया द्वारा, तृतीय इच्छाके अनुरूप पदार्थोंके दानसे, स्त्रियों तथा गायों एवं बालकोंको कृष्णने अपने वशमें किया था.

व्याख्या : रूपकी सुन्दरताका प्रकार अध्याय १२/४२-४३में बताया गया है. उससे भगवानने स्त्रियोंको वशमें किया. उसी भांति गायोंको क्रियासे आसक्त किया. भगवानने धेनुकका वध कर उस वनमें ऊगी (उत्पन्न) घासको गायें निर्भयतापूर्वक चर सके ऐसा किया. श्लोक संख्या ४०में क्रिया द्वारा गायोंको वशमें किया और इच्छित पदार्थोंके दानसे बालकोंको आसक्त किया. बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए तथा उनके विषपान करनेके पश्चात् उनके प्राणोंको लाकर उनको सजीव करना, यह इच्छित पदार्थका दान देना ज्ञात होता है.

क्षणं चाऽदर्शने तस्य मृतिः पर्व द्वितीयकम् ।।
माहात्म्यज्ञानसिद्ध्यर्थं मरणान्मोचनं ततः ।।६२।।

भगवानके एक क्षण भी दर्शनके अभावमें मृत्यु होने जैसा होता है यह आसक्तिका दूसरा प्रकरण है इसके पश्चात् भगवानके माहात्म्यका ज्ञान हो इसलिए

भगवान् उनको मरणसे मुक्त करते हैं.

एक क्षण भी भगवानके दर्शन बिना नहीं रहा जा सकता है यह आसक्ति का दूसरा विभाग है. इसको १३/१०-२२ अध्यायोंमें बताया गया है. उसके पीछे भगवानके माहात्म्यका ज्ञान व्रजजनोंको हो इसके लिये भगवान् उनको मरणसे मुक्त करते है और सजीवन करते हैं. कारण कि माहात्म्यका ज्ञान उनको नहीं हो तो उनकी आसक्ति जो भगवानमें थी वो भक्ति नहीं हो सके. इसलिए उनकी आसक्ति भक्ति रूप हो इसके लिये मरे हुए को सजीवन करके भगवानने उनका स्वयंके माहात्म्य का ज्ञान कराया है.

एवं त्रिभिर्दृढासक्तिरध्यायैर्विनिरूपिता ।।

साधारण्येन सर्वेषां .....

इस भांति तीन अध्यायसे सभीकी साधारण रीतिसे दृढ़ आसक्ति भगवानमें बताई.

..... विशेषेण विभागशः ।।६३।।

बालानां च गवां चैव सर्वेषामेव गोकुले ।।

भोग्यस्त्रीणां क्रमेणैव दृढासक्तिर्निरूपिता ।।६४।।

बालकोंकी, गायोंकी, गोकुलमें रहने वाले सभीकी, भोग करने योग्य स्त्रियोंकी; दृढ़ आसक्ति विशेषकर पृथक् पृथक् बताई है.

व्याख्या: पन्द्रहवें अध्यायमें बालकोंकी दृढ़ आसक्ति बतायी गयी है. सोलहवें अध्यायमें गायोंकी, सत्रहवे अध्यायमें सभी गोकुलवासियोंकी तथा अठारवें अध्यायमें गोपियोंकी आसक्ति अलग-अलग प्रकारसे बतायी है. पन्द्रहसे अठारवें अध्याय तक चार अध्यायोंमें इन चारोंकी भगवानमें आसक्ति अलग-अलग वर्णित है. इस भांति सात अध्यायोंमें सात प्रकारकी आसक्तिका वर्णन किया है.

रूपस्याऽनुभवः स्त्रीषु तेनाऽदौ गोपीकामनः ।।

वचनं चान्तिमे प्रोक्तं कायिकस्तु ततः परम् ।।६५।।

स्त्रियोंको रूपका अनुभव होता है. इस कारण आरम्भमें गोपियोंके मनकी स्थितिका वर्णन किया है तथा अन्तिम अध्यायमें उन्हींके वचनोंको बताया है. देह व्यापार तो इसके पश्चात् कहेंगे.

व्याख्या : रूपका सौन्दर्य तो सभीको दिखाई पड़ता है फिर भी स्त्रियां ही

उसका अनुभव करती हैं ऐसा क्यों मालुम होता है? ऐसा प्रश्न पैदा हो तो जानना चाहिये कि आरम्भमें ही इस पेटाप्रकरणमें पहले बारहवें अध्यायके श्लोक ४२-४३में भगवानके स्वरूपका दर्शन होने पर स्त्रियोंके मनकी कैसी स्थिति हुई यह बताया गया है, और अन्तमें अठारवें अध्यायमें वेणुगीतमें उस रूपसम्बन्धी उनका कथन बताया है. उनके कायिक व्यापार पीछे तामस साधन प्रकरणमें कहेंगे.

बलभद्रस्य बोधाय भगवद्वचनानि हि ।।
स्वधर्माः सकला एव बलभद्रे निरूपिताः ।।६६।।

बलभद्रमें भगवानके आवेश होनेका भगवानके वचनोंसे बताया गया है. भगवानने अपने सभी गुण बलभद्रमें बताये हैं.

व्याख्या : बारहवें अध्यायमें बलभद्रके भगवान् होनेका श्रीकृष्णने कहा है और फिर बलभद्र धेनुकका वध करते हैं. वह कथा यहां क्यों बताई है ? ऐसा प्रश्न उपस्थित होता है तब जानना चाहिये कि श्रीकृष्णका बलभद्रमें आवेश हुआ है और आवेशसे ही बलभद्रने धेनुकके वधका कार्य किया है वह भी श्रीकृष्णका ही चरित्र है यह बतानेके लिये ही यह कथा कही है.

लोकानां च प्रतीत्यर्थं तेन धेनुकमारणम् ।।
आसक्तेषु परीक्षा हि कालीयदमने मता ।।६७।।
स्नेहमात्रान्न चैतावत्किं तु जीवनदानतः ।।
युक्तासक्तिरिति प्रोक्तं दावाग्नेर्मोचनं महत्।।६८।।

और लोगोंके विश्वासके लिये ही बलभद्रसे धेनुकका वध कराया. आसक्तिकी स्नेहके विभागकी परीक्षा तो कालिय नागदमन प्रसंगसे ज्ञात होता है. केवल इतना ही नहीं किया, परन्तु जीवनका दान करनेसे आसक्ति हमेशा बनी रहे इसलिए दावाग्निमेंसे छुड़ानेका प्रभाववाला कार्य किया उसको बताया है.

व्याख्या : लोगोंको बलभद्रमें श्रीकृष्णका आवेश होनेका निश्चय हो इसलिए श्रीकृष्णने बलभद्रसे धेनुकका वध कराया. और अपने ऊपर उनके स्नेहकी परीक्षा कालिय नागदमनके प्रसंगमें की. और अपने ऊपर उनकी आसक्ति सदा बनी रहे इसलिए दावाग्नि पान कर उनको जीवनदान किया.

ततः कृष्णप्रसादेन कालदुःखनिवारणम् ।।
बालकानां समस्तानां कीडया बाधनाद्रिपोः ।।६९।।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णकी कृपासे ब्रजमें कालका दुःख रुक जाता है.

क्रीडासे और शत्रुके वधसे सभी बालकोंकी दृढ़ आसक्ति स्थिर हो गयी.

व्याख्या : ग्रीष्मऋतु भी बसन्त जैसी रहती होनेसे वहां कालका दुःख नहीं होता था. फिर भगवानने बालकोंके साथ क्रीड़ा की तथा क्रीड़ामें प्रलम्बका वध किया, इससे बालकोंकी भगवानमें दृढ़ आसक्ति स्थिर हो गयी.

गवां दावाग्निमोक्षेण सर्वेषां कालजैर्गुणैः ।।
गोपीनां वेणुनादेन दृढासक्तिः स्थिराऽभवत् ।।७०।।

दावाग्निमेंसे छुड़ानेके कारण गायोंकी, कालसे होते गुणोंसे मुक्त करानेसे सभी ब्रजवासियोंकी और वेणुके नादसे गोपियोंकी श्रीकृष्णमें स्थिर एवं दृढ़ आसक्ति हुई.

व्याख्या : गायोंकी आसक्ति दृढ़ एवं स्थिर इस कारण हुई कि उनको दावाग्निसे छुड़ाया. सत्रहवें अध्यायमें वर्षा और शरद ऋतुके गुणोंका वर्णन किया. उसमें जो–जो कालके जैसे गुण थे वो कहा, उससे आध्यात्मिक कालसे होता सभीका दुःख दूर हुआ ऐसा बताया. उससे भगवानमें सभी ब्रजजनोंकी आसक्ति दृढ़ एवं स्थिर हुई. अठारहवें अध्यायमें वेणुनाद भगवानने किया उसके प्रभावका गोपियोंने वर्णन किया. उससे गोपियोंकी भगवानमें आसक्ति दृढ़ एवं स्थिर हुई.

१. देहाध्यास – यह अध्यास जीवको भगवानकी भक्तिसे बहिर्मुख करानेके लिये देहके धर्मोमें आसक्ति कराता है, जिससे जीव समझने लगता है कि मैं 'देह' हूं, इसका पालन पोषण ही मेरा धर्म है अपना (जीवका) धर्म भूल जाता है, 'धेनुक' राक्षस देहाध्यासका रूप है, जिसको नाशकर भगवानने व्रजवासियोंका 'देहाध्यास' मिटाया है.

२. इन्द्रियाध्यास – यह इन्द्रियाध्यास 'जीव'को अपना सत्य स्वरूप विस्मृत कराके इन्द्रिय रूप ही मैं हूं, ऐसा ज्ञान करा देता है, जिससे जीव अपनेको इन्द्रिय रूप समझकर उनकी और उनके धर्मोकी रक्षा करनेमें प्रयत्नशील होता है, ये इन्द्रियाँ विषय रूप विषसे भरी होनेसे, मृत्यु करानेवाली हैं अतः यह जीव जन्म मरणके चक्करसे छूटता नहीं है, 'कालीय सर्प' इन्द्रियाध्यासका रूप है, उसके शिर विषसे भरे हुए रहते है, इसके संयोगसे, जीवकी यह दशा होती है, अतः भगवानने उसका मर्दन कर उसको यमुनाजीसे निकाल दिया अर्थात् व्रजवासियोंके हृदय रूप ह्रदसे, इन्द्रियाध्यासको निकालकर उनका हृदय शुद्ध बना दिया.

३. प्राणाध्यास – इस अध्याससे जीव प्राणोंको अपना रूप समझता है,

जब तक यह अध्यास नष्ट नहीं होता है, तब तक जीव संसारसे छुटकारा नहीं पा सकता है.

प्रथम दावाग्नि प्राणाध्यास रूप है अतः भगवानने दावाग्निका पान कर व्रजवासियोंका प्राणाध्यास नष्ट किया है.

४. अन्तःकरणाध्यास – यह अध्यास अन्य अध्यासोंसे बलवान् दोष हैं, अतः यह अध्यास जीवको संसारमें विशेष आसक्त कराता है. इस महान् दोषके नाश हुए बिना जीवकी मुक्ति नहीं होती है 'प्रलम्बासुर' दैत्य अन्तःकरणा–ध्यासका रूप हैं, यह अध्यास महान् दोष है अतः इस दैत्यका नाम भी 'प्रलम्ब' है जिसका नाश कर, भगवानने व्रजवासियोंका यह महान् अध्यास मिटा दिया, जिससे व्रजवासियोंकी मुक्तिका प्रतिबंध नष्ट हो गया.

५. स्वरूप विस्मृति – अविद्याके इस पांचवे पर्वसे, जीवको अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गई है, जिससे 'जीव' अपनेको ब्रह्मका अंश रूप न समझकर, देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण रूप समझने लगा है. जीव जब तक, इस भुलावेमें पड़ा रहता है, तब तक अपने स्वरूपमें स्थित होकर, ब्रह्मानन्दका सुख ही नहीं पा सकता है तो अनन्त आनन्दोदधि भजनानन्दका पान तो उसके लिये अत्यन्त ही दूर है. 'द्वितीय दावाग्नि' स्वरूप विस्मृति करानेवाली अविद्याका रूप थी, जिसका भी पान कर भगवानने व्रजवासियों पर परम अनुकम्पा की है.

इस प्रकार भगवानने अविद्या रूप प्रलम्ब आदि असुरोंका नाश कर गोप गोपीजनादिकी आध्यात्मिक अविद्या अपने प्रमेय बलसे नाश की है, जिससे, वे दृढ़ आसक्ति रूप मध्यम निरोधके अधिकारी हुए और आगेकी लीलाके भी अधिकारी बने. इस प्रमेय प्रकरणकी लीलाओंसे व्रजवासियोंका दृढ़ आसक्ति रूप मध्यम निरोध सिद्ध हुआ है.

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित तत्त्वार्थदीपनिबन्धके अन्तर्गत
भागवतार्थ प्रकरणके तामस प्रमेय उप प्रकरणकी कारिकाएं
हिन्दी अनुवाद सहित समाप्त.

।। श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रं स्तोत्रम् ।।

दशमस्कन्धके तामस प्रमेय प्रकरणके नाम

(क्षेपक तीन अध्यायामृ स्थित भगवान् श्रीकृष्णके नाम)

अरण्यभोक्ताप्यथवा बाललीलापरायणः ।
प्रोत्साहजनकश्चैवमघासुरनिषूदनः ।।१६७।।

(८०५)अरण्यभोक्ता. अरण्यवन प्रदेशमें बिराजमान होकर भोजन करनेवाले.

(८०६) बाललीलापरायणः. बालकके समान क्रीड़ा करनेमें तत्पर.

(८०७) प्रोत्साहजनकः. गोपबालकोंको क्रीड़ामें उत्साह उत्पन्न करनेवाले.

(८०८)अघासुरनिषूदनः. अजगरके देहधारी अघासुर दैत्यको मारनेवाले.

व्यालमोक्षप्रदः पुष्टो ब्रह्ममोहवर्धनः ।
अनन्तमूर्तिः सर्वात्मा जंगमस्थावराकृतिः ।।१६८।।

(८०९) व्यालमोक्षप्रदः. अजगर देहधारी अघासुरको मुक्ति देनेवाले.

(८१०) पुष्टः. अघासुरके गलेमें जाकर अपने शरीरको बढ़ानेवाले श्रीकृष्ण.

(८११)ब्रह्ममोहप्रवर्धनः. ब्रह्माको मोह बढ़ानेवाले.

गोपबालकों सहित हाथमें अनेक वस्तुओंको लेकर भोजन करते हुये, गोधनघास चरते हुये दूर निकल गया. अतएव सब गोपबालकोंको आश्वासन देते हुये आप श्रीकृष्ण हस्तकमलमें दही और भातका दौना लेका गोधनको पीछे लौटानेके लिये आगे गये. परन्तु ब्रह्माजीने गोधन तथा सब बालगोपालोंको अपनी योगशक्तिके द्वारा अदृश्य करके निद्राधीन बना दिया. अतएव ब्रह्माजीका ऐसा कार्य देखकर प्रभुने जितने भी गाय, गोपबालकोंका रूप धारण करके ब्रह्माजीको ही मोहमें डाल दिया. इस स्कन्धके तेरहवें अध्यायमें यह कथा है.

(८१२)अनन्तमूर्तिः. अनन्त जिनकी मूर्तियां हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(८१३) सर्वात्मा. सबके अन्तर्यामी अर्थात् सबके आत्मारूप.

(८१४)जंगमस्थावरकृतिः.

जङ्गम=गोपबालक वत्सादि और स्थावर वस्त्राभरण तथा गोपबालकोंके धारण किये हुए सब स्थावर आकृतियोंको धारण करनेवाले श्रीकृष्ण.

ब्रह्ममोहनकर्ता च स्तुत्य आत्मा सदाप्रियः ।

पौगण्डलीलाभिरतिर्गोचारणपरायणः ।।१६९।।

(८१५) ब्रह्ममोहनकर्ता. ब्रह्माजीको मोह उत्पन्न करनेवाले.

(८१६)स्तुत्यः. स्तुति करने योग्य.

(८१७)आत्मा. सर्व देहधारियोंके आत्मारूप परमात्मा.

(८१८)सदाप्रियः. सर्वकालमें सबको प्रिय लगें ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(क्षेपक अध्यायाृके नाम समाप्त हुवे)

(८१९) पौगण्डलीलाभिरतिः

सात वर्षसे ग्यारहवर्ष पर्यन्तकी अवस्थाको पौगण्डावस्था कहा जाता है. इस अवस्थाकी लीला क्रीड़ाके द्वारा सर्वस्थानमें रमण करनेवाले श्रीकृष्ण.

(८२०) गोचारणपरायणः

स्वच्छ और सुन्दर तृणजलादि द्वारा गौओंका भलीभांति पोषण करना यही जिनका प्रिय कार्य है ऐसे गोविन्द प्रभु.

वृन्दावनलतागुल्मवृक्षरूपनिरूपकः ।
नादब्रह्मप्रकटनो वयःप्रतिकृतिस्वनः ।।१७०।।

(८२१) वृन्दावनलतागुल्मवृक्षनिरूपकः

वृन्दावनकी लतायें, छोटे तथा बड़े वृक्षादिमें जिनका जैसा रूप, जैसी शोभा, जिनकी जैसी फूल फलादि सम्पत्ति है तदानुसार उनके महत्त्वको वर्णन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८२२) नादब्रह्मप्रकटनः. नाद=गान इस शब्दब्रह्मको प्रकट करनेवाले परमात्मा.

नाद–गानरूप ॐकार ये शब्दब्रह्मका मूल है. वहांसे ही सारे शब्द प्रकट हुये हैं. ॐकार अक्षरब्रह्मका स्वरूप है. अक्षर ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रका स्वरूप है. अतएव शब्दब्रह्मको प्रकट करनेवाले श्रीकृष्ण ऐसा बताया गया है.

(८२३)वयःप्रतिकृतिस्वनः

पक्षियोंके शब्दको सुनकर तदानुसार प्रतिशब्द उच्चारण करनेवाले प्रभु.

बर्हिनृत्यानुकरणो गोपालानुकृतिस्वनः ।
सदाचारप्रतिष्ठाता बलश्रमनिराकृतिः ।।१७१।।

(८२४) बर्हिनृत्यानुकरणः.

मयूरके नृत्यका अनुकरण करनेवाले अर्थात् मयूर जिस प्रकार नृत्य करता है उस प्रकार अनुकरण कर नृत्य करनेवाले नटवर वेषधारी श्रीकृष्ण.

(८२५)गोपालानुकृतिस्वनः

गौओंके पालन करनेवाले गोपालोंके शब्दोंका अनुसरणकर शब्दोच्चार करनेवाले तथा तदानुसार आचरण करनेवाले गोपरूपधारी श्रीहरि.

(८२६)सदाचार प्रतिष्ठाता. सत्पुरुषोंके आचारका स्थापन करनेवाले.

सत्पुरुषोंका आचार इस प्रकार होता है कि ज्येष्ठ भ्राता यदि श्रमित हो गया हो तो छोटे भाईको उस समय उसकी सेवा करनी चाहिये. ऐसे सदाचारका स्थापन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८२७)बलश्रमनिराकृतिः. अपने ज्येष्ठ भ्राताके परिश्रमका निवारण करनेवाले.

तरूमूलकृताशेषतल्पशायी सखिस्तुतः।
गोपालसेवितपदः श्रीलालितपदाम्बुजः ।।१७२।।

(८२८)तरूमूलकृताशेषतल्पशायी

वृक्षके समीपमें बालकोंके द्वारा सुरचित नवपल्लव पुष्पकी शय्यामें पौढ़नेवाले.

(८२९) सखिस्तुतः

समान शोभावाले स्नेही मित्रोंके द्वारा जिनका यशोगान होता है ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्.

(८३०)गोपालसेवितपदः

गोपबालकों द्वारा जिनके चरणकमलकी सेवा हो रही है ऐसे गोविन्द भगवान्.

(८३१)श्रीलालितपदाम्बुजः

श्री अर्थात् लक्ष्मीजी स्नेहपूर्वक जिनके चरणकमलोंकी सेवा करती हैं ऐसे भगवान् श्रीनारायण.

गोपसंप्रार्थितफलदाननाशितधेनुकः।
कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजः ।।१७३।।

(८३२)गोपसंप्रार्थितफलदाननाशितधेनुकः

श्रीदामा तथा सुबलादि गोपबालकोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना करनेपर ताड़ वृक्षके फलोंको देखकर गर्दभाकारमें स्थित धेनुकासुर दैत्यका विनाश करानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८३३)कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजः

कालीयनागके फणोंके ऊपर नृत्य करनेसे उसके मस्तकपर रहे हुए माणिक मणिद्वारा रक्त बने हुये रमणीय जिनके चरणकमल हैं ऐसे श्रीकृष्ण.

दृष्टिसञ्जीविताशेषगोपगोगोपिकाप्रियः।
लीलासम्पीतदावाग्निः प्रलम्बवधपण्डितः ।।१७४।।

(८३४)दृष्टिसञ्जीविताशेषगोपगोगोपिकाप्रियः

अमृतमयी दृष्टिके द्वारा संजीवित किये हुए समग्र गोप गौ और गोपिकाओंके प्रिय प्राणरूप–जीवनरूप श्रीकृष्ण भगवान्.

(८३५)लीलासम्पीतदावाग्निः. लीलामात्रमें सहज दावानलका पान करनेवाले.

(८३६)प्रलम्बवधपण्डितः

प्रलम्बासुर दैत्यका वध करनेके लिये बलदेवजीको आज्ञा देनेमें चतुर.

दावाग्न्यावृतगोपालदृष्ट्याच्छादनवह्निपः।
वर्षाशरद्विभूतिश्रीर्गोपीकामप्रबोधकः ।।१७५।।

(८३७)दावाग्न्यावृतगोपालदृष्ट्याच्छादनवह्निपः

दावानल अग्नि द्वारा घिरे हुए गोपबालकोंकी आंखें बन्द कराके दावाग्निका पान करनेवाले परमदयालु श्रीकृष्ण भगवान्.

(८३८)वर्षाशरद्विभूतिश्रीः

वर्षाऋतु एवं शरद्ऋतुकी विभूति द्वारा जिनकी सुन्दरता वृद्धिगत हुई है ऐसे भगवान्.

(८३९)गोपीकामप्रबोधकः

गोपीजनोंमें मदनरसका उदय करानेवाले रसेष भगवान् श्रीकृष्ण.

गोपीरत्नस्तुताशेषवेणुवाद्यविशारदः।
कात्यायनीव्रतव्याजसर्वभावाश्रिताङ्घ्रिनः ।।१७६।।

(८४०)गोपीरत्नस्तुताशेषवेणुवाद्यविशारदः

गोपीजनरूप रत्नोंके द्वारा स्तुति किये गये समस्त वेणुवाद्यके विशारद अर्थात् गोपीजनोंमें वेणुवाद्यके वर्णन करनेकी विविध प्रकारकी ध्वनिको प्रकाशित करनेवाले श्रीमुरलीधर प्रभु श्रीकृष्ण.

अध्याय १२

(प्रक्षिप्त प्रथम अध्याय)*

अघासुरका वध

कथामात्रं हरेर्वाच्यं सर्वत्रेत्यत्र केचन ।।
कथां वक्तुं भागवतीं क्वचित् सिद्धामलौकिकीम् ।।का.१।।
योजयित्वा त्वाधुनिका अध्यायत्रितयं जगुः ।।
शब्दार्थसङ्गतीनां हि स्पष्टा तत्र विरुद्धता ।।का.२।।
लोकप्रसिद्धेस्तच्चापि कथञ्चिद् रूप्यते स्फुटम् ।।

कारिकार्थ : भगवानके सर्व-चरित्र सर्वत्र कहने चाहिए, इस विचारसे (पद्मपुराणमें प्रसिद्ध) कहीं भी कही गई भगवानकी अलौकिक कथाको कहने केलिए किसी आधुनिक विद्वानोंने ये तीन अध्याय बनाकर यहां कहे हैं. उनमें शब्द, अर्थ और संगति की विरुद्धता स्पष्ट प्रतीत होती है. यद्यपि उसमें विरुद्धता स्पष्ट है तो भी ये कथाएं लोकमें प्रसिद्ध हैं. अतः उनका स्पष्ट विवेचन किया जाता है.

व्याख्यार्थ : एकादश अध्यायके अन्तमें व्रजमें कुमार अवस्थाको छोडा, यों कहा और द्वादश अध्यायके प्रारम्भमें कहा कि वे दोनों (श्रीकृष्ण व बलरामजी) पौगण्ड वयको धारणकर व्रजमें पशुपाल बनें. इस प्रकारसे दोनों अध्यायोंका परस्पर संदर्भ[१] है. अतः तीन अध्यायोंमें कही हुई कथाओंके सम्बन्धकी संगति नहीं बैठती तो भी पद्म पुराणमें प्रसिद्ध वत्सहरण लीलाकी आडमें अघासुर वध और ब्रह्मा द्वारा भगवानकी स्तुति आगे पीछे अध्यायोंमें कहकर हरिकी कौतुक लीला कही है. लोग लौकिकमें कौतुकवाले होते हैं.

***. तीन अध्याय प्रक्षिप्त होनेके कारण:**

(१) ११वें अध्यायके अन्तमें कुमार अवस्था छोडी, कहकर १२वें अध्यायके प्रारम्भमें लिखा है कि श्रीकृष्ण व बलरामने पौगण्ड वय धारण की. इसके बीचमें कोई भी कथा नहीं कही है यदि वत्सहरण, अघासुरवध आदि कथाएँ कहनी होती तो अन्तिम श्लोक कुमार अवस्थाके त्यागका ११वें अध्यायके अन्तमें न कहकर इन तीनों अध्यायोंके अन्तमें कहते.

(२) प्रक्षिप्त अध्यायोंके कर्ताको वही श्लोक पुनः तीसरे अध्यायके अन्तमें देना पडा है नहीं देते तो संदर्भ नहीं बैठता था. अतः इन अध्यायोंकी प्रक्षिप्तता इससे भी स्पष्ट

प्रतीत होती है.

(३) भागवतमें ३३२ अध्याय हैं, इन तीन अध्यायोंकी गणनासे ३३५ अध्याय होते हैं. प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामी आदिने भी भागवतके ३३२ अध्याय माने हैं इससे भी ये अध्याय प्रक्षिप्त हैं.

(४) प्रक्षिप्त अध्यायत्रयी अध्यायके २९वें श्लोकमें कहा है कि भगवानने असुरको मारा तब कंस भी वहां था. अपने सामने अघासुरके मुखमें श्रीकृष्णका प्रवेश देखकर कंस और उसके साथी प्रसन्न हुए. अनन्तर भगवान् उनका नाश करते हैं वह भी कंसने देखा होगा. इस प्रकार होते हुए भी अरिष्ट वधके अनन्तर नारदजी कंसको कहते हैं कि जिन दोनोंने तुम्हारे पुरुषोंको मारा आदि कहनेसे इसका विरोध होता है. कारण कि बकी और बकके छोटे बन्धु अघासुरका वध तो कंसने स्वयं देखा था इससे भी ये अध्याय प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं.

(५) भगवानने ब्रह्माको वरदान दिया था कि तुझे कभी भी मोह नहीं होगा अतः ब्रह्माको यह ज्ञान है कि श्रीकृष्ण ईश्वर हैं और इसलिए ब्रह्माने २।७।२७ में श्रीकृष्णके ईश्वरत्वका प्रतिपादन किया है ब्रह्मा जिनको ईश्वर समझते हैं उनके साथ इस प्रकारकी धृष्टता कैसे करेगा अतः यह कथा प्रक्षिप्त है.

(६) तृतीय स्कन्धमें उद्धवजीने और द्वादशस्कन्धमें सूतजीने भी इस कथाका वर्णन नहीं किया है. इसके अतिरिक्त गोपियोंने लीलानुकरणके समय इस लीलाका अनुकरण नहीं किया है. इत्यादिसे इसकी प्रक्षिप्ततामें किसी प्रकारका संशय नहीं है. इसकी प्रक्षिप्ततामें रश्मिकार, श्रीप्रभुचरण, प्रकाशकार, योजना लेखकने अनेक कारण दिये हैं जिनका संक्षिप्तसार उपरोक्त है विशेष उन ग्रंथोंमें देखिए. – 'अनुवादक'

तत्र तु प्रथमेऽध्याये लीलामाह सुविस्तराम् ।।
अघासुरस्य च वधं मुक्तिश्चापि स्वयुक्तितः ।।का.३।।

कारिकार्थ : इन तीन अध्यायोंके पहले अध्यायमें, विस्तार पूर्वक लीला कही है. अघासुरका वध और अपनी युक्तिसे मुक्ति भी कही है.

प्रथम अध्यायमें प्रारम्भके दश श्लोकोंसे भगवानकी लीलाका वर्णन करते हैं.

श्रीशुक उवाच

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।।
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि किसी दिन वनमें भोजन करनेके विचारसे प्रभात काल होते ही उठकर, सुन्दर सींगके शब्दसे अपने मित्र ग्वाल बालोंको

जगाके बछडोंके यूथोंको आगे कर भगवान् व्रजसे निकले।।१।।

किसी दिन वनमें भोजन करनेका मनमें विचार करके, प्रभात कालमें ही उठकर जो ग्वाले थे और मित्र भी थे उन सबको सींगके शब्दसे अर्थात् सींगकी ध्वनिसे जगाया. श्लोकमें 'शृङ्गरवेण चारुणा'का विशेषण देनेका भाव यह है कि सींगकी ध्वनि चारु सुन्दर थी जिसको सुनकर ग्वालोंने पहचान लिया कि श्रीकृष्णकी यह ध्वनि है क्योंकि ऐसी सुन्दर ध्वनि दूसरेकी नहीं हो सकती है. यों समझ सुजाग होकर उठे और समझा कि कृष्ण बुला रहे हैं. गायें दुह लेनेके पीछे बछड़ोंको साथमें लेकर निकले।।१।।

उस समय (जब कृष्ण निकले) सब ग्वाल भी (बछडोंको लेकर निकले) उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

तेनैव सार्धं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरि सङ्ख्यान्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ।।२।।

आपके साथ आपके प्रेमी ग्वालबाल भी अच्छे-अच्छे छींके, बैंत, सींग और बांसुरी लिए सहस्रोंसे भी अधिक संख्यावाले, अपने बछडोंको आगे कर आनन्दसे निकले।।२।।

भगवानके साथ सहस्त्रों बालक निकले, वे बालक भगवानसे प्रेम करनेवाले थे जिससे उन्होंने ओदन सहित छींके, बछड़ोको चरानेकेलिये बैंत, बजानेकेलिये सींग और बाँसुरी ली थी, वे भी अपने बछड़ोंको आगे कर प्रसन्नता पूर्वक घरोंसे निकले. प्रत्येक ग्वालेके पास दस दस हजार बछड़े थे।।२।।

नीचेके श्लोकमें कहते हैं कि उन सब ग्वाल बालोंने अपने-अपने बछडोंको कृष्णके बछडोंमें सम्मिलित कर दिया.

कृष्णवत्सैरसङ्ख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ।।
चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ।।३।।

श्रीकृष्णके अगणित बछडोंके साथ अपने बछडोंके यूथोंको मिलाकर उनको चराते हुए वे बालक जहां तहां बच्चोंके खेल खेलने लगे।।३।।

ग्वाल बाल अपने अपने दस-दस हजार बछड़ोंको लेकर निकले. जब व्रजसे बाहर आये, तब विचार करने लगे कि, यदि हम अपने बछड़ोंको श्रीकृष्णके बछड़ोंके साथ मिलाकर नहीं चरायेंगे तो हम जो वनमें खेल खेलने आयें हैं, वे खेल स्वच्छन्दतासे खेल नहीं सकेंगे. इसलिए हमको अपने बछड़े

श्रीकृष्णके बछड़ोंके साथ मिला देना चाहिए. यों विचार कर अपने बछड़े श्रीकृष्णके साथमें कर दिये. अतः भगवानके बछड़ोंके साथ अपने बछड़ोंको मिला दिया, जो नहीं मिलाते तो स्वच्छन्द लीला न हो सकती थी. यों करने पर भी यदि कोई बछड़े अलग कहीं निकल जाते तो बालक्रीडा करते हुए उनको भी साथमें चरा लेते हुवे भिन्न-भिन्न स्थानोंमें खेलते थे।।३।।

उन सबने अपने अपने शरीरको फूलादिसे सजाया. इसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ।।
काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ।।४।।

यद्यपि ग्वाल बालोंने काच, गुञ्जा, मणि और सुवर्णका शृंगार पहले किया था तो भी वनमें जाकर उन्होंने अपनेको फल, कोंपल, गुच्छों, पुष्प, मोर पंख और धातुओंसे सजाया।।४।।

प्रथम काच आदिसे विभूषित थे तो भी वनमें उत्पन्न पुष्पोंके गुच्छे केवल पुष्प, मोर पिच्छ, गेरूआदि धातुओं, गुञ्जाफल आदि पदार्थोंसे अपनेको भूषित करने लगे.

घूंघची वनमें उत्पन्न होनेसे फल होते भी इसकी गणना काचमें की जाती है. कारण कि फल सदा नहीं रहते हैं ये नित्य होती है।।४।।

निम्न श्लोकमें बालकोंका परस्पर रमण कहते हैं.

मुष्णन्तोन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ।।
तत्रत्याश्च ततो दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ।।५।।

आपसमें छींका आदि पदार्थ चुराते, जानने पर दूरसे फेंक देते थे, और उस स्थान पर जो खडे होते वे हंसते-हंसते दूरसे ही दे देते थे।।५।।

एक दूसरेके छींके आदि चुरा लेते. जब किसीको पता पड़ जाता कि इसने मेरा छींका आदि ले लिया है तो वहांसे दूर फेंक देते थे. फेंके हुए छींके जिनके ऊपर गिरते वे भी उन छींकोंको तथा दूसरोंको भी फेंक देते थे, फिर हंसते हुए उनको ही लौटा देते थे।।५।।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।।
अहम्पूर्वमहम्पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ।।६।।

जब वनकी शोभा देखनेके लिए श्रीकृष्ण दूर चले गए तो मैं पहले, मैं

पहले, श्रीकृष्णको छूवूंगा ऐसा कहके खेलते थे।।६।।

जब देखते कि श्रीकृष्ण दूर चले गये हैं और जान लेते कि वनकी शोभा देखनेके लिए दूर गए हैं तब 'मैं पहले कृष्णको छू लूंगा' इस प्रकार स्पर्धा पूर्वक कहते सब ग्वाले श्रीकृष्णको छूकर खेलते थे।।६।।

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ।।
केचिद् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ।।७।।

कितने ही बंसी बजाते थे कितने ही सींगेकी ध्वनि कर रहे थे, कोई-कोई भ्रमरोंके साथ उनके समान गुँजर करते थे कोई-कोई तो कोयलोंके स्वरमें स्वर मिला कर कुहु कुहु कर रहे थे।।७।।

वहां कितने ही बालक वेणुनाद करनेवाले बने, कितने ही सींग बजानेवाले हुए, कितने ही भ्रमरोंके साथ उनके सहगान करते थे, कितने ही कोयलोंके साथ वैसा कूजन करते थे।।७।।

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः ।।
बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ।।८।।

पक्षियोंकी छायाके साथ दौडते थे. हंसोके साथ अच्छी तरह चलते थे, बकोंकी पंक्तिके साथ बैठ जाते थे, मयूरोंके साथ नृत्य करते थे।।८।।

कितने ही बालक आकाशमें गोलाकार बनकर उड़ते हुए पक्षियोंकी जो परछाई पृथ्वी पर पड़ती हुई दौड़ती जाती थी उसके साथ उत्कर्ष पूर्वक दौड़ते थे. कितने ही हंसोंके साथ अच्छी तरह चलते थे उसी प्रकार बकोंके साथ उनकी तरह बैठ जाते थे, कितने ही मयूरोंके साथ नृत्य करते थे।।८।।

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ।।
विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ।।९।।

बंदरोंकी पूंछे खेंचते हुए उनके साथ पेडों पर चढ जाते थे. उनके साथ दांत निकालकर मुख मोडते और वृक्षों पर कूदते थे।।९।।

बन्दरोंकी अनेक प्रकारकी जातियां होती हैं, उनमें एक जाति है जिसकी पूंछें लम्बी होती हैं. उस जातिके बन्दरोंको संस्कृतमें कीश कहते हैं. 'बाल' शब्दके दो अर्थ होते हैं: १.पशुकी पूंछ २.बच्चे. आचार्यश्री दोनों अर्थ करते हैं. १.लम्बी पूंछवाले बन्दरोंकी पूंछे जोरसे खींचते थे. २.बन्दरोंके बच्चोंको खींचकर उनके साथ पेड़ों पर चढ जाते थे. बन्दरोंकी तरह दांत निकालते थे और

पृथ्वी पर चलते–चलते उनके समान वृक्षों पर कूदते जाते थे।।९।।

साकं भैकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः ।।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ।।१०।।

मेंडकोंके समान उछलते हुए चलते थे. नदी और झरनोंमें डुबकियां लगाते थे. परछाईयोंको हँसते और प्रतिध्वनिको अपशब्द कहते थे।।१०।।

मेंडक जिस प्रकार भूमि पर उछलते हुए चलते हैं वैसे ही ग्वाले भी उनके साथ उसी प्रकार पृथ्वी पर चलते थे. जिस तरह मेंडक नदी और झरणोंमें डुबकियां मारकर नहाते हैं वैसे ही वे ग्वालबाल भी उनके साथ नदी और झरणोंमें डुबकियां मारते हुए नहाते थे. 'संप्लुत' शब्द जो श्लोकमें दिया है उसका दूसरा अर्थ गढ़े भी होता है. अतः इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है. वे जैसे कि ग्वालबाल मेंडकोंके साथ नदी, झरणों और गढ़ोंको कूद जाते थे, दर्पण आदिमें पडे हुए प्रतिबिम्बोंका तथा किनारों पर जो प्रतिध्वनियां आती थीं उन सबका तिरस्कार करते थे।।१०।।

निम्न कहे हुए दो श्लोकोंमें उनके भाग्यकी प्रशंसा करते हैं.

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ।।
मायाश्रितानां नरबालकेन सार्धं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ।।११।।

जो भगवान् ज्ञानियोंको ब्रह्मरूप और आनन्दरूपसे केवल अनुभवमें आते हैं ऐसे भाववाले भक्तोंका परम दैवत रूप है. मायासे मोहित पुरुषोंकेलिए मनुष्य बालरूप है वैसे भगवानसे वे ग्वाल बाल क्रीडा कर रहे हैं इससे जाना जाता है कि, इन्होंने कोई पुण्य पुञ्ज इकठ्ठा कर रक्खा है जिससे ये भगवानसे रमण कर सके हैं।।११।।

जगतमें लोग तीन प्रकारके होते हैं १. ज्ञानी, २. भक्त और ३. प्राकृत. इसलिए जो जैसा है उसकी बुद्धिमें भगवान् वैसे ही दिखते हैं, क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि 'तं यथा यथोपासते तथैव भवति' परमात्माकी जो जिस भावसे उपासना करता है भगवान् उसको उसी प्रकारसे दर्शन देते हैं. जैसे कि ज्ञानियोंकी बुद्धिमें सद्रूप ब्रह्मस्वरूपसे, आनन्दरूपसे और अनुभूतिरूप–ज्ञान स्वरूपसे स्थित होते हैं. वे ज्ञानी उस स्वरूपसे रमण करते हैं अर्थात् आनन्द प्राप्त करते हैं.

दास–भावको प्राप्त भक्तोंका नियन्ता और स्वामी तथा आराध्य हैं. वे इनमें ही खेलते हैं अर्थात् आनन्द मग्न हो जाते हैं.

प्राकृतोंको भगवान् केवल मनुष्य–बालक प्रतीत होते हैं. वे उसमें ही सन्तुष्ट रहते हैं. जिन्होंने पुण्य पुञ्ज इकट्ठे किये हैं, वे सब ग्वाल–बाल अपने–अपने भावानुसार उनसे क्रीड़ा करते थे जो सबोंको उनकी भावनाके अनुसार आनन्द प्रदान करते थे. इन ग्वालोंके बड़े भाग्य हैं।।११।।

वे ग्वालबाल बडे भाग्यशाली हैं जो उनकी दृष्टिके आगे भगवान् बिराजमान हैं. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ।।१२।।

बहुत जन्म तक कष्ट सहकर मनको वश करनेवाले योगीजनोंको भी जिनके चरणकी रज दुर्लभ है, वे ही आप भगवान् जिनकी दृष्टिके सामने प्रत्यक्ष विराज रहे हैं. उन व्रजवासियोंके भाग्यका क्या, कहां तक वर्णन करूँ।।१२।।

बहुत जन्मकी तपस्यासे जितेन्द्रिय और शरीर इन्द्रियां तथा अन्तःकरणसे शुद्ध हुए योगीजन भी जिनकी चरण रज प्राप्त नहीं कर सकते हैं वे ही यह कृष्ण स्वयं बिना प्रार्थनाके जिन बालकोंके अथवा सकल व्रजवासियोंके नेत्रोंका विषय हो रहे हैं. उन व्रजवासियोंके भाग्यका वर्णन वाणी और मनसे नहीं हो सकता है तब उनके भाग्यका वर्णन कैसे किया जाय।।१२।।

इस प्रकार वे खेल ही रहे थे तो वहां अघासुर नामक दैत्य आ गया. उसके मारने तककी समग्र कथाका वर्णन २१ श्लोकोंसे करते हैं.

अथाघनामाभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ।।१३।।

तदनन्तर इन लोगोंकी सुखपूर्वक क्रीडाको सहन न करता हुआ अघासुर नामवाला बडा दैत्य वहां आया. अमृतपान कर अमर बने हुए देव भी अपने जीनेकी इच्छासे जिसके मरनेके दिनकी नित्य प्रतीक्षा कर रहे हैं।।१३।।

इसका नाम भी सार्थक था. कहते हैं पापको, पापमें जितनी बुराईयां होती है उतनी ही इसमें थी. विशेष, असुर तो था ही अतः इनकी आनन्दप्रद क्रीड़ा देखकर सहन नहीं कर सका. वह इतना तो पाप पुञ्ज था, जो अमृत पिये हुए अमरदेव भी अपने जीनेकेलिये इसके मरनेकी नित्य प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि उनको यह ज्ञान था कि अमृतमें जो अमर बनानेकी शक्ति है उस शक्तिकों भी यह मिटा सकता है।।१३।।

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।।
अयं तु मे सोदरनाशकृत् तयोर्द्वयोरथैनं सबलं हनिष्ये ।।१४।।

कंसके भेजे हुए पूतना और बकका छोटा भ्राता अघासुर श्रीकृष्णकी प्रमुखतावाले सब ग्वाल बालोंको देखकर, विचारकर, कहने लगा कि यह जो मेरे भाई तथा बहिनको नाश करनेवाला है, इसलिए उसके बदलेमें सेना सहित इसका नाश करूँगा।।१४।।

श्रीकृष्ण जिनकी अगवानी कर रहे थे उन सबको देखकर, कंसके भेजे हुए, पूतना और बकके प्रसिद्ध छोटे भाईने जो विचार किया उसका वर्णन उत्तरार्धमें करते हैं. यह भगवान् ही मेरी बहिन पूतना और भाई बकको मारनेवाला है. श्लोकमें 'तु'शब्द इसलिए दिया है कि अघासुरका यही निश्चय था कि मेरी बहिन तथा भाईकी कालने मृत्यु नहीं की है और कर्मोंके कारण भी उनकी आयु पूरी नहीं हुई थी. अतः इसने ही मारा है अर्थात् दूसरे किसी काल और कर्मने नहीं मारा है. इस कारणसे मैं दोनोंके नाशके बदलेमें उपद्रव करूंगा अर्थात् सैन्य सहित इसका नाश करूंगा।।१४।।

इस प्रकार करनेसे बालकोंके लिए भी उत्पात होगा जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।।
प्राणे गते वर्ष्मसु कानुचिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ।।१५।।

जब ये सब, मेरे मित्रोंके बक और बकीके तिल और जल होंगे तब व्रजवासी मरे हुए के समान हो जायेंगे. प्राणोंके जानेके पीछे देहकी चिन्ता कैसी? देहधारियोंके प्राण तो बालक ही हैं।।१५।।

मृतकोंकी तृप्ति करनेवाले तिल और जल होते हैं. ये जब मेरे बन्धुओंके तृप्ति करानेकेलिये तिल जलरूप होंगे तब व्रजवासी, गौ और पुरुष नाश हुएके समान बन जायेंगे. जब प्राण ही चले गये तो देहके जानेकी चिन्ता काहे की? व्रजवासियोंके बालक ही प्राण हैं. बालकोंके जाने पर वे भी नहीं रहेंगे।।१५।।

इति व्यवस्याजगरं बृहद् वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ।।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशयः खलः ।।१६।।

ऐसा निश्चय कर सबको निगल जानेकी आशावाला वह खल एक योजन लम्बा बडे पर्वतके समान स्थूल बडे अजगर जैसा देह धारण कर गुफाके

सदृश मुंह फाडकर मार्गमें सो गया।।१६।।

इस प्रकार अपनी बहिन और भाईको इनको मारकर तृप्त करनेका निश्चय कर एक योजन विस्तारवाला महापर्वतके समान स्थूल, भ्रम उत्पन्न करनेकेलिये अपना मुख गुफा जैसा बनाकर बड़े अजगररूपसे सबको निगलनेकेलिये मार्गमें सो गया. इसका कारण बताते हैं कि श्लोकमें 'खलः' विशेषण दिया है. जिसका भाव है कि वह खल होनेसे निर्दयी था।।१६।।

इसके रूपका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशङ्गदंष्ट्रः ।।

ध्वान्तान्तरास्यो विततार्ध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ।।१७।।

नीचेका होठ पृथ्वी पर और ऊपरका बादलोंको छूता था, मुखका मध्य भाग गुफाके समान, दाढैं पर्वतके शिखरके सदृश, मुखके अन्दरका भाग अन्धकारके समान, जीभ इतनी लम्बी मानो कोई सडक बनी हुई है, श्वास कठोर पवनके समान और आँखे दावानलके जैसी गर्म थीं।।१७।।

उसके रूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिसका नीचेका होठ पृथ्वी पर है और ऊपरका होठ बादलोंमें है. मुखका मध्य भाग कन्दराके समान है, जिसकी दाढ़ें गिरिशिखरके समान लम्बी थी, मुखके अन्दरका भाग जिसका अन्धकारयुक्त है, जिसकी जीभ लम्बी सड़क जैसी है, जिसके श्वास असह्य पवन जैसे है, जिसके आँखोका स्पर्श जंगलकी अग्निके समान उष्ण है अथवा श्वास सहित ईक्षण उष्ण स्पर्शवाली है. ऐसे भी अजगरको देखकर बालक घबराये नहीं किन्तु उस रूपको अपना इष्टरूप समझा अर्थात् खेलनेका खिलौना समझा।।१७।।

यह असुर है, हमको नाश करनेके लिए इसने ऐसा रूप धारण किया है, इस प्रकारका उन बालकोंमें असत् भाव (दुष्ट भाव, दोषवाला भाव) नहीं था इसलिए वे डरे नहीं. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तं दृष्ट्वा तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ।।

व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ।।१८।।

इस प्रकारके इस अजगरको देखकर सब बालक उसको वृन्दावनकी सम्पत्ति समझ खेलते-खेलते फटे हुए अजगरके मुखकी समानता करने लगे।।१८।।

उसको वैसा देखकर यह वृन्दावनकी शोभा है यों मान लिया, यह वृन्दावनकी शोभा है वा नहीं इसका एक क्षण विचार कर कहने लगे कि यह है तो वृन्दावनकी शोभा–सम्पत्ति अर्थात् खिलौना, किन्तु अजगरके मुखसमान देखनेमें आता है. इस प्रकारके विचारसे उन्होंने इसको वृन्दावनकी श्री मान ली. अतः बालक निर्भय होकर जो चाहे उसकी कल्पना करने लगे. इसलिए श्लोकमें 'स्म' शब्द प्रसिद्धि वाचक दिया है।।१८।।

निम्न पांच श्लोकोंसे बालकोंने उसके विषयमें कल्पनाएँ की उसका वर्णन करते हैं.

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम् ।।
अस्मत्सङ्ग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ।।१९।।

अहो ! मित्रों ! यह जो सामने देखनेमें आ रहा है, वह किसी कपटी प्राणीके समान है या नहीं. उस पर भी अपनेको निगलनेके लिए अजगरके फटे हुए मुखके समान लगता है वा नहीं यह कहो।।१९।।

बालकोंने यह देखकर आश्चर्य प्रकट किया इसलिए श्लोकमें 'अहो' शब्द दिया है. हे मित्रों ! आप सब निर्णय करके कहो कि यह सामने स्थित कपटी प्राणी अपनेको निगलनेकेलिये ही अजगरके फटे हुए मुखके सदृश आचरण करता है वा नहीं।।१९।।

ऊपरके श्लोकमें किए हुए प्रश्नके उत्तरमें कितने ही बालक कहने लगे कि यह कपटी प्राणी नहीं है किन्तु अनुमानसे कहा कि यह अजगरका मुख ही है. उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद् घनम् ।।
अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ।।२०।।

वास्तवमें सूर्यकी किरणोंसे थोडासा लाल ऊपरके होंठके समान बादल और उसकी छायासे लाल हुआ यह स्थल नीचेके होंठके समान दिखाई देता है।।२०।।

सूर्यकी किरणोंसे थोड़ेसे लाल हुए ऊपरके होंठके समान बादलको देखो और उसकी परछाईसे लाल नीचे भागके होठके सदृश नदी तटको देखो।।२०।।

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ।।
तृङ्गशृङ्गालयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ।।२१।।

बांयी और दाहिनी पर्वतकी दोनों गुफाएँ होंठोंके पासवाले हिस्सोंसे क्या होंड नहीं करती है? ऊँचे पर्वतके शिखर, उसकी दाढोंकी होड करते हैं।।२१।।

ओष्ठोंके पासवाले हिस्सोंसे, वाम और दक्षिण तरफवाली पर्वतकी कन्दराएँ प्रतिस्पर्धा कर रही हैं. वास्तविक देखा जाय तो कन्दरा ही ओष्ठोंके प्रान्त भागके समान दिखती है. ऊंचे शिखरोंकी पङ्क्तियां भी उसकी दाढोंसे होड करती हैं. इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है, देखो।।२१।।

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रति गर्जति ।।
येषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ।।२२।।

यह योजन नापवाला लम्बा मार्ग जिह्वा जैसा मालूम होता है जिसके अन्दरका यह अन्धेरा भी मुखके मध्य-भागके समान भासता है।।२२।।

यह चारों ओर विस्तारवाला योजन पर्यन्त मार्ग जिह्वाके सदृश भास रहा है. गर्जना आदि तो समानता बताती है. शिखर पर्वतोंकी दाढें हैं उनके भीतरका अन्धकार, मुखके भीतरके अन्धकार जैसा दिखता है।।२२।।

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद् भाति पश्यत ।।
तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोप्यन्तरामिषगन्धवत् ।।२३।।

दावाग्निसे गर्म यह कठोर वायु श्वासके समान भासता है. देखो दावाग्निसे जले हुए प्राणियोंकी दुर्गन्ध भी भीतर रहे अपक्व मांस जैसी लगती है।।२३।।

यह पवन दावाग्निके समान उष्ण और कठोर है. अथवा दावाग्निसे जो यह पवन उष्ण और कठोर हुआ है. वह पवन जैसा भासमान होता है इसको देखो अर्थात् इसका विचार करो. दावानलमें जले हुए जानवरोंकी दुर्गन्ध वैसी लगती है, जैसे पेटके भीतर खाये हुए कच्चे मांसकी दुर्गन्ध हो।।२३।।

जो हमको निगलनेके लिए यह आया हो तो क्या करना चाहिए इस प्रकार शंका कर निर्णय करते हैं कि कैसा भी हो हमको इसके भीतर घुसना ही चाहिए. इसमें आनेवाले प्रतिबन्धोंको हटाते हैं जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति ।।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ।।२४।।

इसमें घुसे हुए अपनेको क्या यह निगलेगा? यदि निगलेगा तो बकके

समान श्रीकृष्णके हाथसे यह भी शीघ्र नाश हो जाएगा यों कहकर भगवानके सुन्दर मुखका दर्शन करते हुए ये बालक तालियां बजाते हुए हंसते-हंसते उसके मुखमें घुसने लगे।।२४।।

इसमें प्रविष्ट हम लोगोंको क्या यह ग्रसेगा? यदि ग्रसेगा तो बककी तरह यह पापी भी क्षणमात्रमें श्रीकृष्णके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो जायेगा. यह निश्चय कर बकके शत्रु भगवानके सुन्दर मुखारविन्दको देखकर ऊंची आवाजसे हँसते हुए तालियां बजाते हुए उसके मुखमें प्रवेश करने लगे।।२४।।

इत्थं मिथोतथ्यमतज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते।।
रक्षो विदित्वाखिल भूतहृत्स्थितः स्वानां निषेद्धुं भगवान् मनो दधे।।२५।।
तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न जीर्णाः शिशवः सवत्साः।।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा।।२६।।

सर्वभूतोंके हृदयमें स्थित भगवान् जानते थे कि यह राक्षस है. बालक अनजान होनेसे इसके (सत्यस्वरूपको) नहीं पहचानते हैं, इसलिए जो कहते हैं वह असत्य है. यों विचारकर भगवानने इनको रोकनेके लिए मन (ध्यान) दिया अर्थात् रोकनेका विचार किया. इतनेमें तो वे बालक बछडों सहित अघासुरके पेटमें पहुँच गए. किन्तु उसने इनको निगला नहीं, क्योंकि वह श्रीकृष्णके भीतर आनेकी राह देख रहा था कि कृष्ण आवे तो पीछे निगलनेका कार्य करूंगा।।२५-२६।।

ये बालक इसके मुखमें प्रवेश नहीं करें क्योंकि यह सर्प निगलनेके लिए यहां स्थित है. ऐसा विचारकर जब तक बालकोंको कहें कि मत घुसो तब तक बालक उसके मुखमें घुस गये. इस प्रकार दोनों श्लोकोंका सम्बन्ध है इसलिए दोनों श्लोकोंका अर्थ साथमें दिया है.

इस प्रकार बालकोंने आपसमें 'सत्य ही' असत्यवत् कहा. उनको सुनकर, विचारकर समझा कि यह सच्चा ही अजगर है. इस प्रकार निश्चयकर भगवान् कहने लगे कि यह राक्षस होते हुए भी अजगरके रूपका झुठा ढोंग करता है अथवा बालकोंकी बुद्धिमें वृन्दावनकी श्रीका भ्रम उत्पन्न करता है. अतः यह वास्तविक राक्षस ही है यह जानकर अपने मित्रोंको रोकनेकेलिये सर्वज्ञ भगवानने मन किया अर्थात् इच्छा की, इतनेमें तो बालक बछड़ों सहित राक्षसके उदरके अन्दर प्रविष्ट हो गये. भीतर जाने पर प्राण रहित हो गये तो भी जठराग्निने उनको

जलाया पकाया नहीं. पक जाते तो उनका उपमर्द हो जाता वह नहीं हुआ था. उनको क्यों नहीं जलाया उसका कारण कहते हैं कि अपने भाई और बहनका मरना उसे याद था जिससे भगवानसे दृढ़ वैर भाववाला और जातिसे भी दुष्ट होनेसे भगवानकी प्रतीक्षा[१] कर रहा था अर्थात् आनेकी राह देख रहा था. इसलिए उनको अपनी जठराग्निसे पकाया नहीं।।२५-२६।।

१. (१) अपने मनमें यह निश्चयकर रखा था कि मेरे भाई बहिनको जिसने मारा है उसको मारूंगा ही. (२) भगवान् आवें तो उनके साथ इनको भी पका लूँगा.- अनुवादक.

निम्न श्लोकमें भगवानके विचारोंका वर्णन करते हैं.

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान् घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ।।२७।।

सबके अभयदाता जिनका नाथ दूसरा कोई नहीं है ऐसे भगवान् दीनोंको अपने हाथसे निकल कर मृत्युकी जठराग्निका ग्रास रूप बना हुआ देखके, दयासे पीडित हुए और दैवके कृत्यसे विस्मित हो विचार करने लगे।।२७।।

श्रीकृष्ण उनको, गोकुलवासियोंको और सबोंको अभयदान देनेवाले हैं. इन सर्व बालकोंका मेरे बिना कोई दूसरा नाथ नहीं है. अब इस समय मेरे हाथसे निकल गये हैं. और उसके मुखमें पड़ गये है तो आप ही निकल आयेंगे. आप क्यों विचार करते हो? इस पर कहते हैं कि नहीं ये दीन हैं इसलिए उपेक्षाके योग्य नहीं है, क्योंकि अघासुर जो मृत्युरूप है उसकी जठराग्निके ग्रासरूप हो गये हैं. मैं ही इनका नाथ हूँ मुझे इनको यहाँसे निकालना चाहिए. प्रारब्धके कारण इस दशाको प्राप्त हुए इनको देखकर भगवान् विस्मित हुए।।२७।।

यह देखकर भगवान् विचार करते हैं कि इस विषयमें अब क्या करना चाहिए वह विचार निम्न श्लोकमें बताते हैं.

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवितं न वा अमीषां च सतां विनाशनम् ।।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तद् ज्ञात्वाविशत् तुण्डमशेषदृग्घरिः।।२८।।

अब यहां क्या करना चाहिए? यह दुष्ट अघासुर भी न बचे और ये सत्पुरुष भी न मरें, ये दोनों बात कैसे सिद्ध हो इसका अच्छे प्रकारसे विचारकर उसके उपायका निश्चयकर, सर्व दृष्टा हरि उसके मुखमें प्रविष्ट हुए।।२८।।

जो इसको मारेंगे तो ये बालक भी मर जायेंगे. यदि ये बालक मर जावें

और दूसरे ऐसे ही बालक बनाकर ले चलें तो भी वे बालक तो मर ही गये. अतः ऐसी युक्ति करें जिससे ये बालक तो बच जायें और केवल राक्षसका नाश हो. ये दोनों कार्य तब सिद्ध होंगे जब मैं इसके मुखमें प्रवेश करूंगा. यों निश्चयकर श्रीकृष्णने उसके मुखमें प्रवेश किया. कारण कि यह सर्वद्रष्टा एवं सर्व दुःखहर्ता हैं. इस (मुखमें प्रवेशरूप) एक ही साधनसे दोनों फलों (राक्षसको मारना व बालकोंको बचाना)की प्राप्ति, भगवानने समझ कर उसके मुखमें प्रविष्ट हुए।।२८।।

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ।।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ।।२९।।

इस समय बादलोंकी ओटमें खडे हुए देव हाहाकार करने लगे और अघासुरके सम्बन्धी कंसादिक राक्षस प्रसन्न हुए।।२९।।

जिस समय अघासुरके मुखमें भगवान् प्रविष्ट हुए उस समय आकाशमें देखनेकेलिये आये हुए देव बादलोंकी ओटमें खड़े थे. वे भगवानका प्रवेश देखकर हाहाकार कर दुःख प्रकट करने लगे और कंसादिक अघासुरके सम्बन्धी जो भी राक्षस वहां आकाशमें देखनेके लिये आये थे वे प्रवेश देखकर हर्षको प्राप्त हुए।।२९।।

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ।।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ।।३०।।

यह हाहाकार सुनकर अविकारी भगवान् श्रीकृष्ण बछडोंके साथ आपको भी चूर्ण करनेकी इच्छावाले (अघासुर)के गलेमें बहुत शीघ्रतासे बढ़ने लगे।।३०।।

दोनों (देव और कंस आदि राक्षसों)के हर्ष तथा शोककी ध्वनि सुनकर भगवान् कृष्ण अव्यय होनेके कारण स्वतः निर्भय थे क्योंकि आपका तो यह राक्षस लेशमात्र भी कुछ बिगाड कर नहीं सकता था. किन्तु बछड़ों सहित बालकोंकी तो हानि करनेमें यह राक्षस समर्थ था इस विचारसे बछड़ों सहित बालकोंको बचानेके लिये और राक्षसके नाशार्थ उसके गलेमें बढ़ने लगे, अर्थात् स्थूल होने लगे।।३०।।

ततोतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।।
पूर्णोन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन् विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ।।३१।।

उनके बढनेसे स्थूल देहवाले सर्प अघासुरका गला घुट गया, आँखे बाहर निकल पडी. जिससे इधर उधर तड़फड़ाने लगा और पवनका मार्ग रुक जानेसे उसके शरीरके भीतर भरा और रुका हुआ वायु उसके ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर बाहिर निकल गया।।३१।।

इसके अनन्तर बड़ी देहवाले सर्पका गला घुट जानेसे आंखे बाहिर निकल आई, इधर उधर तड़फड़ाने लगा. शरीरके मध्यमें पूर्ण रीतिसे वायु रुक गया था निकलनेका स्थान न होनेसे मुख्य प्राण मस्तकको फोड़कर ब्रह्मरन्ध्रसे बाहिर निकल गया।।३१।।

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ।।
दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्राद् मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययो ।।३२।।

उस मार्ग(ब्रह्मरन्ध्र)से सर्पके प्राण और इन्द्रियादि सबके बाहिर निकल जाने पर मुकुन्द भगवान् अपनी दृष्टिसे मरे हुए बछडों और मित्रोंको जिलाकर उनके साथ मुखसे बाहिर निकल आए।।३२।।

जब अघासुरके उसी मार्ग (ब्रह्मरन्ध्र)से सर्व प्राण, इन्द्रियां और आत्मा बाहिर निकल गये तब मरे हुए बछड़ों तथा मित्र बालकोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे जीवित कर उनके साथ मुकुन्द भगवान् मुखके रास्तेसे निकल आए. सर्पके प्राणोंके जानेके अनन्तर आपने पूर्ववत् छोटा स्वरूप कर, वैसा किया अर्थात् निकल आए।।३२।।

भगवानके बाहिर निकलने पर निम्न श्लोकमें अघके सायुज्यका वर्णन करते हैं.

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्नोज्ज्वलयद् दिशो दश ।।
प्रतीक्ष्य खेवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ।।३३।।

अजगरके मोटे शरीरसे निकली हुई ज्योति, अपने प्रकाशसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आकाशमें स्थित होकर भगवानके बाहिर पधारनेकी राह देखती थी, जब भगवान् बाहिर पधारे तब वह ज्योति देवताओंके देखते-देखते उनमें प्रविष्ट हो गई।।३३।।

स्थूल इस सर्पके शरीरसे निकला हुआ अद्भुत महत् तेजरूप ज्योति अपने तेजसे दश दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बाहर (आकाशमें) स्थित रहकर भगवानके बाहिर आगमनकी प्रतीक्षा कर रही थी, भगवानके बाहिर

पधारने पर देवताओंके देखते-देखते उनमें प्रविष्ट हो गई. मायावादी कहते हैं कि तेजोरूप लिङ्ग शरीर प्रविष्ट हुआ।।३३।।

इससे देवता प्रसन्न हुए जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

ततोतिहृष्टाः स्वकृतोकृताहर्णं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।।
गीतैः सुगा वाद्यघनाश्च वाद्यकैः स्तवैस्तु विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ।।३४।।

इसके अनन्तर अत्यन्त प्रसन्न हुए देवोंने अपने लिए कार्य करनेवाले भगवानकी पुष्पोंसे, अप्सराओंने नृत्यसे, गायकोंने गानेसे, बाजे बजानेवालोंने वाद्योंसे, विप्रोंने स्तोत्रोंसे, वैष्णवोंने जय जय शब्दसे पूजा की।।३४।।

भगवानने हमारे (देवोंके)लिये यह कार्य (अघासुर वध) किया है अतः देवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवानकी पूजा करने लगे. देवोंने पुष्पोंसे, अप्सराओंने नृत्योंसे, सुन्दर गायकोंने गानोंसे, वाद्य बजानेवालोंने वाद्योंसे, विप्रोने स्तोत्रोंसे, वैष्णवगणोंने जय जय शब्दोंसे पूजा की।।३४।।

तब ब्रह्माको भी आश्चर्य हुआ जिसका वर्णन निम्न श्लोकोंमें करते हैं.

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतकजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।।
श्रुत्वा स्वधाम्नोन्त्यज आगतोचिराद् दृष्ट्वा महेशस्य जगाम विस्मयम् ।।३५।।

ब्रह्माजी ये अद्भूत् स्तोत्र, सुन्दर बाजे, गायन और जय घोष आदि अनेक उत्सवके मंगल शब्द, अपने धामके पास ही सुनकर शीघ्र ही वहां आ गये. भगवानकी सामर्थ्य देखकर विस्मयको प्राप्त हुए।।३५।।

उनके अद्भुत स्तोत्रादिक ब्रह्माजीने अपने घर पर ही सुने. सुनकर शीघ्र आ गये वहां भगवानको और उनके सामर्थ्यको देखकर विस्मयको प्राप्त हुए. क्योंकि जो स्तोत्र वाद्यादि यहां हुए उनकी ध्वनि मेरे घर तक सुननेमें आई जिससे ब्रह्मा भगवानके ऐश्वर्यको जानकर विस्मित हुए।।३५।।

मुक्त हुए राक्षसका शरीर भी भगवद्भक्तोंके रमणके काम आया. यह नीचेके श्लोकमें बताते हैं.

राजन्नाजघरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेद्भुतम् ।।
व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ।।३६।।

हे महाराज ! वृंदावनमें शुष्क अजगरका अनूठा यह चर्म व्रजवासियोंके, बहुत समय तक खेलनेके समय छिप जानेके लिये गुफाका काम देने लगा।।३६।।

हे राजन् ! वृन्दावनमें शुष्क होने से यह अजगरका चर्म दुर्गन्ध रहित हो

गया. अतः बहुत समय तक व्रजवासियोंके खेलनेके लिये गुप्त स्थान हुआ।।३६।।

दूसरे आश्चर्यका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ।।३७।।

अपना अजगर रूप मृत्युसे छुड़ाना, कुमार अवस्थामें किया हुआ यह भगवानका कर्म (लीला) देख कर विस्मयको प्राप्त हुए बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें आनेके पश्चात् व्रजमें आकर सुनाया।।३७।।

भगवानकी कुमार अवस्थामें की हुई यह लीला अपने (बालक और वत्सों)को अजगरसे छुड़ाना अर्थात् मृत्युसे बचाना और पौगण्डावस्थामें शरीरका शुष्क होता देखा बालक अचम्भेमें पड गए, व्रजमें आकर कहने लगे कि आज इस (कृष्ण)ने बड़े सर्पको मार डाला है. यह आगेके अध्याय (३, श्लोक ४८)में कहा जाएगा।।३७।।

निम्न दो श्लोकोंमें अघासुरकी मुक्तिका युक्तिसे समर्थन करते हैं.

नैतद् विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ।।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधूतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ।।३८।।

छोटे और बड़े सबके नियमन करनेवाले और कर्ता, मनुष्य-बाल रूप मायावी भगवानके इस प्रकारके कर्म करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है. जिनके स्पर्शमात्र से पापी अघासुर भी निष्पाप होकर, दुष्टोंको दुर्लभ ऐसी मुक्तिको प्राप्त हो गया।।३८।।

मनुष्य-बाल रूप होना ही माया है, उस मायावालेका इन बालकोंको मृत्यु से छुडाना (अपनी अमृतमयी दृष्टिसे अजगरके भीतर ही जीवित करना और अघासुरको मोक्ष देना) कोई आश्चर्यकारक कार्य नहीं है क्योंकि यह वास्तवमें पर (ब्रह्मादि) और अवर (अस्मदादिकों)का नियन्ता और कर्ता है. पापरूप अघके भी जिसके स्पर्शसे पाप धुल गए और जो मुक्ति दुष्टोंको मिलनी दुर्लभ है उस भगवत्समताको प्राप्त हुआ।।३८।।

भगवानका यह कार्य आश्चर्यकारक नहीं है, जिसका हेतु निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं.

सकृद्यदंगप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।।

स एव नित्यात्मसुखानुभूतिः व्युदस्तमायः परमोङ्ग किं पुनः ।।३९।।

जिनकी केवल मनोमयी मूर्ति भी हृदयमें धारण करनेसे मुक्ति देती है तो आत्मसुख स्वरूप सच्चिदानंद मायासे परे सर्व श्रेष्ठ स्वयं जिसके हृदयमें पधारे उसकी मुक्ति होनेमें कौनसी विचित्रता है।।३९।।

एक बार जिस भगवानकी शरीरके समान मनोमयी मूर्ति, हृदयमें धारण की हुई मुक्ति देती है तो फिर वह ही नित्य आत्म-सुखानुभूति स्वरूप सच्चिदानंद आत्मा पूर्ण ज्ञानके कारण मायासे परे, सबसे उच्च स्थितिवाले स्वयं हृदयमें पधार कर मुक्ति देवें इसमें क्या कहना है।।३९।।

इतना कहकर परम प्रसन्न हुए शुकदेवजी शान्त हो गए अर्थात् आगे बोले नहीं तब राजा पूछने लगे, जिसका वर्णन सूतजी निम्न श्लोकमें करते हैं.

सूत उवाच

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।।
पप्रच्छ भूयोपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ।।४०।।

सूतजी कहते हैं, हे ब्राह्मणों ! इस तरह निज पालक भगवानका विचित्र चरित्र सुनकर उस चरित्र श्रवणमें चित्तवाले राजा परीक्षितने व्यासजीके पुत्रसे फिर भी वही चरित्र पूछा।।४०।।

हे शौनकादिक द्विजों ! यादवोंके देव श्रीकृष्णसे रक्षा किए हुए राजा परीक्षित् अपने पालकका चरित्र सुनकर फिर भी वही चरित्र व्यास पुत्र शुकदेवजीसे पूछने लगे, कारण कि भगवानके चरित्र पुण्यरूप तथा विचित्र है और भगवानके चरित्रोंने परीक्षितका चित्त अपनी तरफ आकृष्ट कर लिया था।।४०।।

तीन श्लोकोंसे राजाके किए हुए प्रश्नका वर्णन करते हैं.

राजोवाच

ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ।।
यत् कौमारे हरिकृतं विदुः पौगण्डकेऽर्भकाः ।।४१।।

राजा परीक्षितने कहा कि हे ब्रह्मन्! भगवानने कुमार अवस्थामें जो लीला की थी बालकोंको उस लीलाका ज्ञान पौगण्ड अवस्थामें हुआ, एक कालमें किए हुए कर्मका ज्ञान दूसरे कालमें कैसे हुआ।।४१।।

श्लोकमें शुकदेवजीको 'ब्रह्मन्' कहा है, जिसका तात्पर्य है कि शुकदेवजी ज्ञानवान् हैं अतः इस प्रश्नका उत्तर देनमें समर्थ हैं (कुमार अवस्थामें

जो हरिने किया उसका कीर्तन बालकोंने पौगण्ड वयमें किया) इसमें शंका होती है कि एक कालमें किया हुआ कर्म उसका दूसरे कालमें ज्ञान कैसे हुआ होगा।।४१।।

तद् ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो ।।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ।।४२।।

हे गुरु ! महायोगी ! वह मुझे कहो ! मुझे इसका आश्चर्य है मेरे विचारमें निश्चयसे यह हरिकी माया ही है, मायाके बिना वैसा हो नहीं सकता है।।४२।।

जो कि इसमें कुछ कारण होगा, तो भी वह मुझे कहो. आप महायोगी हो अत: आप सब कुछ जानते ही हो. आपसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है और यह महान् आश्चर्य है. इतना समझमें आता है कि निश्चयसे यह हरिकी माया है जो हरिकी माया न होती तो बालकोंको इस प्रकार भ्रम न हो सकता था. अतः कहना या समझना चाहिये कि यह सब भगवानका चरित्र ही है।।४२।।

शुकदेवजी मेरे प्रश्नका उत्तर देवें, इसलिए निम्न श्लोकमें अपनी बडाई करते है.

वयं धन्यतमा लोके गुरोपि क्षत्रबन्धवः ।।
यत् पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ।।४३।।

हे गुरु ! हम क्षत्र बन्धु हैं, तो भी आपके मुखारविन्दसे निकले हुए श्रीकृष्णके कथारूप अमृतका पान करनेसे बड़े भाग्यशाली हैं।।४३।।

जो कि क्षत्रियोंमें भी अधम हैं तो भी हम बड़े भाग्यशाली हैं. क्योंकि आप हमारे गुरू हो और आपसे कृष्ण कथारूप अमृत बार-बार पान कर रहे हैं।।४३।।

यद्यपि इतना कहकर शुकदेवजी समाधिस्थ होके शान्त हो गए थे किन्तु राजाके पूछने पर फिर शुकदेवजी कहने लगे. यह सूतजी निम्न श्लोकमें कहते हैं.

सूत उवाच

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिः संस्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।।
कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ।।४४।।

श्री सूतजी कहते है कि हे शोनकादिक ऋषिओं ! इस तरह भगवानका स्मरण कराते ही शुकदेवजीकी सर्व इन्द्रियां भगवानमें लीन हो गईं. फिर किसी प्रकारके कष्टपूर्वक शुकदेवजीने बहिर्दृष्टि कर वैष्णव-श्रेष्ठोमें उत्तम वैष्णव राजा

परीक्षितको धीरे–धीरे उत्तर देना प्रारम्भ किया।।४४।।

सम्यक् प्रकारसे स्मरण कराए हुए अनन्त भगवानमें शुकदेवजीकी सर्व इन्द्रियां लीन हो गईं अर्थात् शुकदेवजी समाधिस्थ हो गए थे. किन्तु वैसा होते हुए भी शुकदेवजी कष्टसे बाहिरकी दृष्टि प्राप्त कर धीरे–धीरे उत्तर दिया. समाधि त्यागके अनन्तर ऊंचे स्वरसे बोला नहीं जा सकता है. शुकदेवजीने समाधि त्यागकर भी उत्तर देनेकी आवश्यकता इसलिए समझी कि प्रश्न करनेवाला राजा वैष्णवोत्तमोंमें भी श्रेष्ठ वैष्णव था।।४४।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके दशमस्कन्धमृ प्रक्षिप्त तीन अध्यायृामृसे प्रथम प्रक्षिप्त अध्यायका (स्कन्धानुसार अध्याय १२)का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १३

(प्रक्षिप्त द्वितीय अध्याय)

ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण तथा ब्रह्माका मोहभङ्ग

द्वितीये वत्सहरणं बालैर्ब्रह्मभ्रमस्ततः ।।
स्तोत्रस्योपक्रमश्चैव भोजनादि निरूप्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ : इस द्वितीय अध्यायमें भोजनसे लेकर ब्रह्माका बालक और बछडोंको चुराकर ले जाना तथा ब्रह्माको भ्रम होना, अन्तमें भगवानकी स्तुति करनेका उपक्रम करना, यह निरूपण किया जाता है.

पहले दो श्लोकोंमें प्रश्नका वर्णन करते हैं.

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।।
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे भागवतोत्तम! हे महाभाग! तुमने श्रेष्ठ प्रश्न किया है. क्योंकि भगवानकी कथा बार-बार सुनने पर भी तुम उसे नवीनके समान समझते हो।।१।।

हे बड़े भाग्यशाली! तुम इसलिए बड़े भाग्यवान हो कि तुम्हारी बुद्धि भगवानके चरित्रमें स्थिर है. वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हो इससे यह बताया कि आपकी यह उत्तमता सहज है, क्योंकि सदा भगवानकी कथा सुनते हुए भी उसको नवीन-नवीन ही समझते हो।।१।।

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत् स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ।।२।।

सार ग्रहण करनेवाले सत्पुरुष स्वभावसे ही यह मानते हैं कि हमारी वाणी, कान और चित्त ये सब भगवानके अर्थ हैं. जैसे स्त्री लम्पट पुरुषोंको स्वभावसे बार-बार स्त्रियोंकी कथाएं नवीन लगती हैं इसलिए उन्हें सुनना चाहते हैं वैसे ही सत्पुरुष स्वभावसे ही भगवानके चरित्रोंको प्रतिक्षण नवीन समझ कर सदैव सुनना चाहते हैं।।२।।

और तुम्हारा इस प्रकार प्रश्न करना योग्य ही है. कारण कि भक्तिवालोंका यह स्वभाव ही है. अतः उनका धन, वाणी, कान तथा अन्तःकरण

भगवानमें ही प्रवण होते हैं. प्रवण होनेसे उनको भगवानके चरित्र प्रतिक्षण नवीन ही भासते हैं. जब रस भीतर घुस जाता है तब स्वभाव भी रसरूप हो जाता है. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि स्त्रियोंकी सुनी हुई, कही हुई, या ध्यानमें लाई हुई कथा स्त्रीलम्पट पुरुषोंको आनन्द देनेवाली होती है वह स्त्रियोंकी वार्ता तो निकृष्ट है किन्तु यह भगवत् चरित्र उत्तम व श्रेष्ठ है।।२।।

यह चरित्र महान् अद्भूत होनेसे श्रवणीय है. निम्न श्लोकोंमें इस प्रकार कहते हैं.

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ।।३।।

हे राजन्, सावधान होकर सुनो यह गुह्य है तो भी तुम्हें कहता हूँ. कारण कि गुरु प्रिय शिष्यको गुह्य भी बताता है।।३।।

यह चरित्र अत्यन्त अद्भुत है. अतः सावधान होकर श्रवण करो. यह गुह्य है तो भी तुम्हें सुनाता हूँ, कारण कि प्रेमी शिष्यको गुरुजन गुह्य भी बताते हैं।।३।।

निम्न ११ श्लोकोंमें वत्सहरण लीलाके जतानेके लिए पहले अघासुरके मुखसे छुड़ाए हुए बालकोंका उत्तर चरित्र कहते हैं.

तथाघवदनान् मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ।।४।।

भगवानने इस प्रकार बछडे और ग्वालबालोंको अघासुरके मुखरूप मृत्युसे रक्षा कर, उनको नदीके किनारे पर लाकर यह कहा।।४।।

अघासुरके वदनरूप मृत्युसे ही ग्वालबालकोंका रक्षणकर और उनको यमुनाजीके किनारे पर लाकर भगवानने जो कहना है वह कहा है।।४।।

श्रीभगवानुवाच

अहोतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम् ।।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ।।५।।

भगवान् कहते हैं कि अहो! हे मित्रों! यह तट अपने क्रीडाकी सम्पत्ति और अतिरमणीय है यहां की बालु कोमल तथा स्वच्छ है. प्रफुल्लित कमलवाले सरोवरकी सुगन्धके लोभसे प्राप्त भौंरे और पक्षियोंके जलमें होते हुए शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे शोभायमान वृक्ष चारों ओर व्याप्त हो रहे हैं।।५।।

अहो! यह तट अतिशय सुन्दर है. इसलिए अपनेको यहां भोजन करना चाहिए. ग्वालोकों वयस्य विशेषण देकर उनमें अपना स्नेह प्रकट किया है. हमको क्रीडाके लिए जो सम्पत्ति चाहिये वह भी यहां स्वच्छ व कोमल बालु है इसलिए यहां भोजन व क्रीडा दोनों कर सकते हैं. इस किनारेमें और भी गुण हैं. 'सर' शब्दसे यहां बताया है कि इसमें उत्पन्न कमल बहुत परस्पर घने हुए हैं, अतः प्रफुल्लित कमलयुक्त सरोवरसे आती हुई सुगन्धिसे वश किये हुए भ्रमर और पक्षियोंकी ध्वनिसे निकली हुई प्रतिध्वनिसे सुशोभित वृक्षोंसे वह तट व्याप्त है. उन वृक्षोंसे फल और पुष्प किनारे पर गिर रहे हैं।।५।।

यहां ही भोजन करना चाहिए जिसका कारण निम्न श्लोकमें करते हैं.

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।।
वत्साः समीपेपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ।।६।।

अपनेको यहां भोजन करना चाहिए क्योंकि दिन चढ़ गया है, भूख भी सता रही है. बछड़ें यहां ही जल पीकर समीप ही धीरे-धीरे घास चरते रहेंगे।।६।।

दिन बहुत चढ़ गया है देरी हो गई है और भूखसे सब पीड़ित हैं. अतः बछडे समीपमें जल पीकर धीरे-धीरे घास चरते रहें।।६।।

इस प्रकार भगवानके कहने पर बालकोंने यों ही किया.

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुह्य शाड्वले ।।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ।।७।।

आपने जो कहा वह सत्य है, हम वैसा ही करते हैं, यों ग्वाल कहकर बछड़ोंको जल पिलाकर, हरी घासवाले प्रदेशमें चरनेके लिए उन्हें छोडकर अपने छींके खोलकर भगवानके साथ आनन्दसे भोजन करने लगे।।७।।

बालकोंने बछड़ोंको जल पिलाकर जहां उत्तम घास था ऐसी भूमि पर पहुंचाके आप छीकें खोलकर भगवानके साथ भोजन करने लगे।।७।।

वे भोजन करनेके लिए किस प्रकार बैठे वह नीचेके श्लोकमें कहते हैं.

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैः रम्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।।
सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्च्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ।।८।।

वनमें भगवान् श्रीकृष्ण चारों ओर बहुत सी पंक्तियोंके मण्डल बना बनाकर सम्मुख मुख कर, साथ बैठे हुए प्रफुल्लित दृष्टिवाले ग्वालबाल कमलकी कर्णिकाके पत्तोंके समान शोभायमान लगते थे।।८।।

ग्वालबाल बाड़की तरह श्रीकृष्णके चारों ओर गोलाकार बहुत पंक्तियां बनाकर एक दूसरेके पीछे इस प्रकार बैठे जैसे सब भगवानके सन्मुख रहें जिससे ग्वालबालके नेत्र प्रफुल्लित हो गये थे. सब ग्वाले साथ ही बनमें बैठ गये, जैसे कोई दूसरा लौकिक उनको देख न सके. जैसे कमलके चारों ओर कर्णिकाके पत्र शोभा देते हैं वैसे ही वे विशेष शोभायमान थे।।८।।

निम्न श्लोकमें भोजनके पात्रोंका वर्णन करते हैं.

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ।।९।।

कितने ही बालकोंने पुष्पों(बडे-बडे कमलों)के, किसीने फूलकी पंखुरियोंके, किन्हीं बालकोंने पत्तोंके, अंकुरोंके, फलोंके, छीकोंके, पेडकी छालोंके और पत्थरोंके बर्तन बनाकर भोजन किया।।९।।

पुष्पादिकोंका विस्तार कर (भोजनके पात्रके समान बनाकर) उनको भोजन पात्रके स्थान पर समझ उनके ऊपर भात रखकर भोजन करने लगे।।९।।

बालक लौकिक थे इसलिए उनके भोजन करनेका प्रकार नीचे श्लोकमें वर्णन करते हैं.

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजहुः सहेश्वराः ।।१०।।

सब अपने भिन्न-भिन्न भोजन करनेके पदार्थोका स्वाद दिखाते हुए हँसते हुए और हँसाते हुए भगवानके साथ भोजन करते थे।।१०।।

प्रत्येक ग्वाल बालक अपने-अपने भात आदि भोज्य पदार्थोंका स्वाद अन्योंको दिखाते थे. सबके पृथक्-पृथक् भोज्य पदार्थ थे उनके विशेष प्रकार लड्डू आदिके स्वादका वर्णन करते हुए स्वयं हंसते तथा दूसरोंको हंसाते हुए श्रीकृष्णचन्द्रके साथ भोजन करने लगे. इस प्रकारके आनन्दका कारण ईश्वरके साथ ग्वालोंका भोजन करना था. भोजन किस प्रकार परोसते थे वह भी बताते हैं कि सब जो कुछ लाये थे उसको इकट्ठा कर प्रथम आगेका हिस्सा भगवानको अर्पण करते थे जिससे वह भोज्य भगवानकी कृपासे अक्षय हो जाता था. अतः वे ग्वाल बिना संकोचके पूर्ण तृप्तिसे भोजन करने लगे।।१०।।

ग्वाल बालकोंके साथ स्वयं भगवान् भी भोजन करने लगे. ध्यानार्थ उस समयके रूपका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे

वामे पाणौ मसृण कवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।।

तिष्ठन् मध्ये स्वपरि सुहृदो हासयन् नर्मभिः

स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः ।।११।।

भोजनके समय, श्रीकृष्णने बंसी कमरकी फेंटमें खोस ली, सींग और बेंतको बगलमें दबा रखा था, वाम हस्तमें घृत मिला हुआ, दहीं भातका कौर और अंगुलियोंके मध्यमें भाग्य फल लेकर कर्णिकाके समान यज्ञ भोक्ता भगवान् सबके सन्मुख विराजते थे और अपने हास्य वचनोंसे सब सुहृदगणोंको हँसाते थे एवं स्वर्गस्थ तथा लोकस्थ देवोंके देखते हुए भोजन करते थे।।११।।

भोजन करनेके समयमें श्रीकृष्णने मल्लयुद्ध करनेवालोंके समान अपना पीताम्बर कटि पर बान्ध रखा था, हाथमें जो वेणु आदि थे उनमें वेणुको कमरकी फेंटमें खोंस रखी थी. सींग और छड़ीको काखमें दबाये हुए थे, वाम हस्तमें चिकने पदार्थ (घृत दधि सहित चांवल)का कोर लिये हुए दही और ओदनके साथ खाने योग्य जम्बीर आदि फलोंको अंगुलियोके बीचमें धारण करके बालकोंके बीचमें स्थित, अपने चारों ओर फैले हुए मित्र बालकोंको अपने असाधारण हास्य वचनोंसे स्वर्ग और लोकमें स्थित देवोंके सामने सर्व यज्ञ भोक्ता भगवानने सन्तुष्ट होकर भोजन किया. यज्ञ भोक्ताकी यह लीला बालकोंकी क्रीडाके समान है।।११।।

इस प्रकार भोजन करते समय कुछ अद्भुत घटना हुई उसका वर्णन नीचे श्लोकमें करते हैं.

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।।

वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ।।१२।।

हे राजन् ! ग्वालोंका इस प्रकार भोजन करने और श्रीकृष्णचन्द्रमें तल्लीन होने पर, बछडे तृणके लोभसे वनके अन्दर दूर चले गए।।१२।।

बछड़ोंके पालक ग्वालबाल भोजन करनेमें श्रीकृष्णमें तल्लीन होनेके कारण अपनी देहादिकी सुधि भूल गये. इतनेमें बछड़े अपने आप ही बनमें घासके लोभसे दूर निकल गये।।१२।।

तान् दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।।

मित्राण्याशान् मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ।।१३।।

उनको भयभीत देखकर, जगतकी मृत्यु जिससे डरती है, उस श्रीकृष्णने कहा कि हे मित्रों! भोजन छोडकर उठो मत, मैं बछडोंको यहां ले आऊंगा।।१३।।

उसके अनन्तर डरे हुए बालकोंको देखकर भय रहित भगवान् श्रीकृष्ण, (जिनसे कि मृत्यु जिससे सारा जगत् डरता है, वह डरती है और उनके ही डरसे वायु अपना कार्य पूर्ण रीतिसे करती है) कहते हैं कि हे मित्रों ! भोजन करना बन्द मत करो मैं अभी बछड़ोंको ले आऊंगा।।१३।।

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान्।।
विचिन्वन् भगवान् कृष्णः स पाणिकवलो ययौ।।१४।।

इस प्रकार कहकर, कौर अभी हाथमें ही था. उसको लिए हुए, भगवान् अपने बछडोंको पर्वतोंकी गुफाओं, कुञ्जों तथा अन्य भयानक स्थलोंमें ढूंढने लगे।।१४।।

यों कहकर भगवान् वहाँसे चले गये. पहले अपने बछड़ोंको ढूंढते हुए आगे बढे. उस समय आपके हाथमें कौर था, उसका त्याग न कर, हाथमें उसे लिये हुए ही पहाड एवं उनकी गुफाओंमें कुञ्ज तथा भयानक स्थलोंमें सर्वत्र गये।।१४।।

बछडे तो समीप ही मिलने चाहिए फिर इतनी दूर क्यों गए? इसका कारण था कि ब्रह्माजी बछडोंको चुरा ले गए थे. जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

श्रीशुक उवाच

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं,
मञ्जुमहित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान्।।
नीत्वान्यत्र कुरुद्वहान्तरदधात् खेवस्थितो यः पुरा,
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम्।।१५

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, हे कुरू कुलदीप ! इस अवसरमें वे ब्रह्माजी जो आकाशमें स्थित होकर बाल-रूपधारी भगवान् कृष्णके किये हुए अघासुरका मोक्ष देखकर विस्मित हुए थे. वे पुनः भगवानका विशेष पराक्रम देखनेकी इच्छासे यहाँसे बालकोंका और वहाँसे बछडोंका हरणकर अन्य स्थान पर ले जाके उनको छिपा दिया और स्वयं तिरोहित हो गए।।१५।।

जिनका जन्म भगवानकी नाभिरूप कमलसे हुआ है, उनने उस समय आकर माया (अपनी इच्छा)से बालकरूप धारण किये हुए भगवानकी सुन्दर महिमाको अघासुर वधसे जिसकी सायुज्य मुक्ति हुई थी, उसको आकाशमें स्थित होकर देखी थी, जिससे विस्मित हुए थे. फिर भी दूसरी आश्चर्यमय मनोहर लीलाके दर्शनकी इच्छासे यहां आये और आकर अरण्यमेंसे बछड़ोंको और यमुना तटसे ग्वाल-बालकोंको लेकर दूसरे स्थान पर रखकर, आप अन्तरध्यान हो गये. राजाको 'कुरुद्वह' विशेषण इसलिए दिया है कि जैसे राजा कुरु स्वयं विश्वासवाले थे वैसे ही आप भी विश्वास रखो. अघासुरकी भगवान् द्वारा हुए वधसे मुक्ति हुई, इसमें आश्चर्य क्यों करना चाहिये इस शंकाके निवारणार्थ श्लोकमें 'प्रभवतः' शब्द कहा है. उत्कृष्ट रीतिसे जगतका जिससे जन्म होता है उसको 'प्रभव' अर्थात् भगवान् कहते हैं. इसलिए उससे तो उत्पत्ति होनी चाहिये जैसे मेरी हुई है, वह न होकर मुक्ति क्यों हुई? यह देखकर ब्रह्माको आश्चर्य हुआ कि जो उत्पन्न करनेवाला है उसने नाश कैसे किया यदि वैसा है तो मेरी भी मुक्ति होनी चाहिए।।१५।।

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेपि च वत्सपान्।।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः।।१६।।

जब श्रीकृष्ण बछडोंको न देख अर्थात् जब बछडे भगवानको नहीं मिलने पर व लौट कर यमुना तट पर आए तो वहां ग्वालोंको भी नहीं देखा तब आप उन दोनोंको वनमें चारों तरफ ढूँढने लगे।।१६।।

इसके अनन्तर, भगवान् बछड़ोंको न देखकर अर्थात् प्राप्त कर वनसे लौटकर आये, तो यहां तट पर ग्वालोंको भी न देखकर समझे कि ये ग्वाले स्वयं बछड़ोंको ढूँढने गये हैं. तब भगवान् इन दोनों (बछड़ों और ग्वालों)को वनमें चारों तरफ ढूँढने लगे।।१६।।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित्।।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह।।१७।।

सर्वज्ञ श्रीकृष्णने बनमें कहीं भी बछडे और ग्वालोंकों न देख झट समझ लिया कि यह सब कृत्य ब्रह्माके हैं।।१७।।

उसके पीछे वनके भीतर कहीं भी बछड़ों और ग्वालोंको न देखकर विचार किया कि वे कहां चले गये? कृष्णने जो विश्वको जाननेवाले अर्थात्

सर्वज्ञ हैं, उन्होंने झट समझ लिया कि यह कार्य ब्रह्माका है. 'ह'का अर्थ आश्चर्य है इससे यह जताया कि भगवानको आश्चर्य इसलिए हुआ, कि जो मेरे स्वरूपको जानता है और मुझसे पैदा हुआ है, उसने यह कार्य किया है जो उसको नहीं करना चाहिये था अतः आश्चर्य है।।१७।।

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातणां च कस्य च ।।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ।।१८।।

इसके अनन्तर विश्वकर्ता भगवान् कृष्ण ब्रह्माको और ग्वालोंकी माताओंको प्रसन्न करनेके लिए आप ही सर्व वत्स और ग्वाल रूप बन गए।।१८।।

उसके पीछे भगवानने विचारा कि जो मैं बछड़ोंको ले आऊँगा तो ब्रह्मा, अपने परिश्रमको व्यर्थ समझ दुःख पायेगा अतः ब्रह्मा प्रसन्न हो इसलिए बछड़ोंको नहीं ले आये, और बालकोंको तथा बछड़ोंको घर न ले चलूंगा तो बछड़ोंकी माताएं तथा ग्वालोंकी माताएं दुःखी होंगी. अतः इन दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये भगवानने वत्स और ग्वालोंके समान रूप धारण किये क्योंकि आप विश्वको बनानेवाले हैं अतः उनको इस स्वल्प कार्यमें कोई परिश्रम नहीं हुआ. बछड़े और बालक जो बनाये उनके काल, कर्म और स्वभाव तो थे नहीं फिर वे कैसे बनाये? इस शंकाको मिटानेकेलिये कृष्णका विशेषण (गुण दिखानेवाला) शब्द 'ईश्वर' दिया है. ईश्वरका अर्थ है कि जिसमें सब प्रकारके कार्य करने, न करने और अन्यथा करनेकी शक्ति हो. अतः कृष्णने काल, कर्म और स्वभावका विचार न कर वे स्वयं बाल और वत्सरूप बन गये. इसलिए वे बाल वत्स लौकिक काल, कर्म और स्वभावसे बने हुए पांच भौतिक व मायिक नहीं थे।।१८।।

यह सृष्टि ग्वाल-बाल और बछडे आत्म-सृष्टि ही थे, अर्थात् भगवान् ही ग्वाल और बछडे बन गए. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

यावद्वत्सकवत्सपाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद्विभूषाम्बरम् ।।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ।।१९।।

जितने बालक वत्स जैसे उनके छोटे शरीर जैसे उनके छोटे-छोटे हाथ पाँव आदि अंग, जितने उनके पास सींग, छड़ी, वेणु, पत्ते और छींके आदि थे,

जैसे उनके गहने-कपडे थे जैसा उनका स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्था, और जैसे उनके विहारादिक थे उसी प्रमाणसे 'सब जगत् विष्णु मय है' ऐसी जो प्रसिद्ध वाणी है, इसी वाणीके अनुसार यथार्थ रूपसे सर्व स्वरूप भगवान् शोभित हुए।।१९।।

ग्वालबाल और बछड़ोंकी जितनी संख्या थी उतने ही भगवान् स्वयं हो गये. उनके जैसे छोटे शरीर थे आपने भी वैसे छोटे रूपोंको ग्रहण किया था. 'यावत्' शब्दका यही भाव है कि उनमें किसी प्रकारकी घटती बढ़ती नहीं की थी. उनके जितने हाथ, अंगुलियां आदि थे आप भी वैसे ही और उतने ही बन गये. उनके पास जितनी छडियें, सींग, वेणु, पत्ते और छींके थे आप भी उतने ही बन गये. जितने और जैसे गहने और कपड़े थे वैसे ही आप हो गये. जैसा उनका स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्था तथा जैसे विहारादिक थे, उसी प्रमाण बनकर भगवान् शोभित हुए. कृष्ण इस प्रकार कैसे हुए इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें कृष्णका विशेषण 'सर्व स्वरूप' दिया है अर्थात् सब रूप कृष्णके हैं. कृष्ण जब चाहें तब वह रूप ग्रहण कर सकते हैं. एकमें सर्वके भाव कैसे होंगे उसका उत्तर श्लोकमें 'सर्व विष्णुमयं' पदसे दिया है इसका यह तात्पर्य है कि सकल जगत् विष्णुरूप है. इस प्रकारकी जो वाणी (वेदवाणी) प्रसिद्ध सुनी जाती है. तदनुसार जैसे आत्मसृष्टि आधिदैविकी सृष्टि प्रकट होती है उसी प्रकार यह सृष्टि भी हुई है, यों समझना चाहिए।।१९।।

इस प्रकार भगवानने सर्वरूप बनकर उसका जिस तरह उपयोग किया है उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

स्वयमात्मात्मगोवत्सान् परिवार्यात्मवत्सपैः ।।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ।।२०।।

आप ही निज रूप ग्वालोंसे, निज रूप बछडोंको घेरकर आत्मरूप विहारोंसे क्रीडा करते सर्वात्मा भगवान् व्रजमें पधारे।।२०।।

आप ही भगवान् अपने ही रूपवाले बछड़ोंको तथा अपने ही रूप ग्वाल-बालोंसे उनके बछड़ोंको चारों तरफसे घेरकर, उनके साथ आत्म-रूप विहारोंसे खेलते हुए धर्मी और धर्म-भावको प्राप्त कर वे सर्वात्मा व्रजमें पधारे।।२०।।

तत्तद्वत्सान् पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।।

तत्तदात्माऽभवद् राजंस्तत्तत् सद्म प्रविष्टवान् ।।२१।।

हे राजन्! उन-उन बछडोंको पृथक्-पृथक् लेकर उन-उन गोष्ठोंमें प्रविष्ट कराके वे बालरूप भगवान् उन घरोंमें प्रविष्ट हुए।।२१।।

उसके पीछे उन-उन बछड़ोंको पहलेकी तरह ही, जिस राहसे जो जहां जाते थे उतनी दूर ही जाकर वहां-वहांसे अलग-अलग उनको लाकर व्रजको ले चले. व्रजमें आकर अपने-अपने गोष्ठोंमें उनको स्थापित किये, वे ही वहां स्थित होनेके लिये भगवान् वत्स और बालरूप हुए थे. अतः बन्धनादि भावको प्राप्त होनेकेलिये गोष्ठोंमें एवं निवासादिक करनेके लिये गृहोंमें प्रविष्ट हुए।।२१।।

इस प्रकार उनके कार्यका वर्णन कर निम्न दो श्लोकोंमें कहते हैं कि गोपियोंका उनमें पहलेकी तरह ही प्रेम था.

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्वृताः ।।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ।।२२।।

मुरलीका शब्द सुनते ही त्वरासे उठी, उनकी माताओंने उनको अपने पुत्र समझ अपने हाथोंसे उठाकर आलिंगन कर अत्यन्त प्रसन्न और आनन्दमय हो गई, उस आनन्द स्नेहके कारण टपकते हुए अपने स्तन्यको, जो अमृतके समान मधुर और आसवके समान मादक था वह पिलाने लगीं।।२२।।

वेणुकी ध्वनि सुनते ही माताएँ वेगसे उठ खड़ी हो गई. बैठे हुए बालकोंको भी हाथोंसे उठाकर आलिंगन किया जिससे आनन्द मग्न हो गई. देहका स्वभाव भी वैसा हो गया, जैसा देहके अधिष्ठाताने बनाया था. इस प्रकार अत्यन्त स्नेहसे जो शरीर (स्तन)से उत्पन्न पय टपकने लगा था, वह अमृतरूप और मादक हो गया. वैसा पय परब्रह्मको पुत्र समझ कर पिलाने लगीं. वास्तविक रीतेसे देखा जाय तो बालक तो बड़े थे उन्होंने माताका स्तन्यपान तो छोड़ दिया था[१]।।२२।।

१.इससे वात्सल्यभावकी पराकाष्ठा दिखाई गई - अनुवादक.

अनन्तर माताओंने बाहिरकी भी सेवा की, जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें है.

ततो नृपोन्मर्दन-मज्ज-लेपनालङ्कार-रक्षा-तिलकाशनादिभिः ।।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन् सायं गतो यामयमेन माधवः ।।२३।।

हे नृप! माधव भगवान् कालको अपने नियममें रखकर शामको घर

पधारते तब अपने चरित्रोंसे आनन्द देते हुए भगवानका माताओंने मर्दन, स्नान लेपन, अलंकार, रक्षा, तिलक और भोजन आदिसे लालन किया।।२३।।

प्रथम माताओंने बालकोंका तेलसे मिले हुए पिष्ट द्रव्योंसे मर्दन किया. अनन्तर स्नान, गन्ध आदि पदार्थोंसे लेपन, आभूषण पहनाकर अलंकृत किया एवं रक्षा और तिलक किये, अन्तमें भोजन कराके कहानियां कहते हुए शयनादि कराया. उन सबसे माताओं द्वारा लालन किये हुए बालक पूर्वके समान चरित्रोंसे विशेष हर्ष देने लगे. ये कार्य प्रतिदिन कार्यमें व्यावृत होनेसे प्रातःकालमें नहीं कर सकती थीं, अतः सायंकालमें बनसे लौटते थे तब होता था. यहां शंका होती है कि शामको लौटनेके पीछे इस प्रकार लालनादि करनेमें तो समय बहुत लगेगा, सूर्य तो अस्त हुआ होगा रात्रि हो जाती होगी. इसके प्रत्युत्तरमें श्लोकमें 'याम यमेन' शब्द दिया है जिसका भावार्थ है, कालको नियममें रखकर शामको आते थे. क्योंकि वे जानते थे कि माताओंको इतना कार्य करना है. इसलिए सूर्यकी गति रुक जाती थी. जब माताएं यह कार्य कर लेती थीं तब सूर्य अस्त हो जाता था. इस प्रकार कैसे हो सकता है? इसके उत्तरमें भगवानका विशेषण 'माधव' दिया है, जिसका भाव यह है कि कृष्ण लक्ष्मीका पति है. और काल भी नियामक है. अतः कालके द्वारा उसके कार्यमें किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं हो सकता है।।२३।।

इस प्रकार माताओंकी वृत्तिका वर्णन कर अब गौओंके वत्सोंके प्रति वृत्तिका वर्णन करते हैं.

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान्।।
स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन् मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः।।२४।।

तत्पश्चात् गौ शीघ्र गोष्ठमें आकर हुँकार शब्दोंसे बछडोंको बुलाने लगी, जब वे पास आ गए तब अपने-अपने बछडोंको चाटती हुई थनोंमेंसे स्रवित दूध पिलाने लगी।।२४।।

गौओंने जो अपने-अपने बछड़ोंको देखा तो उनके अन्तःकरणमें भी बछड़ोंके लिये वात्सल्य प्रेम उत्पन्न हुआ. प्रेम उत्पन्न होनेके अनन्तर वे भी शीघ्र गोष्ठमें आ गई और अपने हुँकारोंकी ध्वनियोंसे बछड़ोंको बुलाने लगीं वे आकर मिले. फिर मिले हुए उन अपने स्थूल अपने बछड़ोंको स्नेहसे बार-बार चाटती हुई दूध पिलाने लगीं. यदि बछड़ोंको दूध पिला दिया तो दोहन क्रिया पीछे कैसे

होगी? यह शंका नहीं करना चाहिये क्योंकि जो दूध बछड़ोंको पिलाने लगीं वह दूध स्नेहके कारण थनोंसे जो टपक रहा था वह पिलाया, न कि जो भीतर थनोंमें दूध था वह तो भीतर ही पड़ा था. जिससे दोहन क्रिया बिना संकोच हो सकती थी।।२४।।

इस प्रकार वत्स और बालकोंकी पहले जैसी स्थिति कही, अब इस श्लोकमें विशेष स्थितिका वर्णन करते हैं.

गो–गोपीनां मातृतास्मिन् सर्वः स्नेहर्द्धिकां विना।।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना।।२५।।

गौ और गोपियोंका मातृभाव तो इसमें पहले जैसा ही रहा, किन्तु अब आगेसे प्रेम विशेष होने लगा. गौ और गोपियोंमें भगवानका बालभाव तो वैसा ही रहा, किन्तु इस समय भगवानका बालभाव रूप धर्म मायासे प्रकट किया हुआ है. मायाको छोडकर तो स्वरूपसे बालभाव तो पूर्वके समान ही है।।२५।।

गौओंका तथा गोपियोंका सेवा आदि करनेका सर्व मातृभाव तो इस नये पुत्रमें पूर्वके समान ही था. किन्तु अब स्नेह विशेष उत्पन्न हुआ है. हरि अपनेको गोपियोंका 'मैं बालक हूँ' यह पूर्वके समान समझते थे. किन्तु यह धर्म इस समय भगवानने अपनेमें मायासे उत्पन्न किया है अर्थात् मायाके बिना अर्थात् मायाका त्याग करने पर स्वरूपतः वास्तविक रीतिसे बालभाव पूर्वकी तरह ही है।।२५।।

इस प्रकार आरम्भमें स्नेहकी अधिकता होना कहकर अब इस श्लोकमें स्नेहकी वृद्धि बताते हैं.

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम्।।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्।।२६।।[१]

व्रजवासियोंका पहले यशोदानन्दन श्रीकृष्णमें अपने पुत्रोंसे भी अधिक जैसा असीम प्रेम था वैसा स्नेह इस समय एक वर्ष पर्यन्त अपने पुत्रोंमें बढा।।२६।।

अपने–अपने पुत्रोंमें स्नेहरूप बेल शीघ्र ही प्रतिदिन धीरे–धीरे बढ़ने लगी. धीरे–धीरे कहनेका आशय यह है कि वह बढ़ते हुए प्रेमकी विलक्षणता कोई समज न सके. प्रेम बिना सीमाके बढ़ता ही गया. जैसे कृष्णमें पहले निःसीम प्रेम नित्य बढ़ता ही जाता था. वैसे ही इन अपने–अपने पुत्रोंमें स्नेह बढ़ने लगा।।२६।।

१. व्याख्यामें 'कृष्ण' शब्द दो बार लिया गया है जिसका आशय है कि एक स्वयं कृष्ण और अब सर्व बाल भी कृष्णके रूप थे. अत: बालक कृष्णरूप होनेसे उनमें भी व्रजवासियोंका नि:सीम प्रेम प्रतिदिन वर्ष पर्यन्त बढा. –अनुवादक.

इस प्रकार भगवानका नवीन चरित्र वर्णन कर निम्न श्लोकमें उस चरित्रकी कथाका उपसंहार करते हैं.

इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ।।
पालयन् वत्सपो वत्सं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ।।२७।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण वत्स पालक होकर, वत्स और पालकके बहानेसे अपने ही स्वरूपको आप ही पालन करते हुए एक वर्ष पर्यन्त वन और गोष्ठोंमें खेलने लगे।।२७।।

श्लोकमें एक ही 'आत्मन्' शब्द तीन विभक्तियों 'आत्मा, आत्मना और आत्मानं'में आया है. उनका अर्थ बताते हैं कि 'आत्मा' श्रीकृष्ण, 'आत्मना' वत्सरूपसे, 'आत्मानं' वत्सरूपको अर्थात् वास्तविक रीतिसे वत्सरूप और ग्वालरूप भी आप आत्मा (श्रीकृष्ण) ही बने थे. ये सब रूप दिखावे मात्रके थे, इसे कहनेका आशय यह है कि आप श्रीकृष्ण ही ग्वाले बनकर अपने ही रूप वत्सोंका पालन करते हुए वन और गोष्ठमें क्रीड़ा करने लगे।।२७।।

श्रीकृष्णने ग्वाल और वत्सोंका रूप धारण किया है इसका ज्ञान अब तक बलरामजीको भी नहीं था, अतः उनको जतानेके लिए निम्न श्लोकसे उपाख्यान प्रारम्भ करते हैं.

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ।।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ।।२८।।

एक वर्ष पूर्ण होनेमें शेष पाँच–छ रात्रि थी, तब श्रीकृष्ण बलरामजीको साथमें लेकर बछडोंको चरानेके लिए वनमें पधारे।।२८।।

किसी समय जब भगवानकी इच्छा हुई तब बलरामजीको साथ ले बछड़ोंको चराने जहां घना जंगल था, जहां गौऐं घास चरती थी वहां बनमें पधारे. ब्रह्मा बाल और बछड़ोंको ले गया और आप बाल वत्सरूप बन गये इस लीलाको पाँच–छः रात्रि कम एक वर्ष पूर्ण होने आया था. श्लोकमें 'त्रियामा' पदका भाव यह है कि तीन प्रहर कहनेसे रात्रियां छोटी थीं यह बताया है. श्लोकमें 'अज' पदका भाव यह है कि इस समय बछड़ोंकी रक्षा करनेवाले ग्वाले माताके गर्भसे

उत्पन्न ग्वाले नहीं हैं किन्तु 'अज' हैं अर्थात् जिनका जन्म नहीं केवल वह आप भगवान् ही ग्वालरूप हैं।।२८।।

इसके अनन्तर जो कुछ हुआ वह इस श्लोकमें वर्णन करते हैं.

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ।।२९।।

गोवर्धन पर्वतके शिखर पर घास चरती हुई गौओंने दूरसे व्रजके समीप चरते हुए अपने बछडोंको देखा।।२९।।

गौओंने दूर-दूर चरते हुए बछड़ोंको व्रजके समीपवाले अरण्यमें स्थित देखा. उस समय स्वयं गौ गोवर्धन पर्वतके शिखर पर घास चर रही थीं।।२९।।

यद्यपि गौओंको घास अत्यन्त प्रिय था तो भी उसको छोडकर बछडोंके स्नेहवश हो बछडोंके पास आई इस श्लोकमें उसका वर्णन है.

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोस्मृतात्मा स गोव्रजोत्यात्मपदुर्गमार्गः ।।
द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुङ्कृतैरास्रुपया जवेन ।।३०।।

देखते ही सबकी सब उनके स्नेहवश हो अपनी देहकी सुध भूल गई. उनके थनोंमेंसे दूध टपकने लगा. ग्वाल और विषम मार्गका रंचक भी ध्यान न रखकर ऐसी दौडी कि मानो दो ही पांवोंसे चल रही हों और उनकी गर्दने डीलसे मिल गई थी, सिर और पूँछको ऊँचा कर बडे वेगसे हुंकार शब्द करती हुई अपने-अपने बछडोंके पास आ पहुँची।।३०।।

श्लोकमें कहे हुए 'अथ' शब्दका भाव बताते हैं कि गौएं अपने बछड़ोंको पहले भी देखती थीं किन्तु अबका देखना अन्य प्रकारका है इसलिए 'अथ' शब्द 'आरम्भमें' के अर्थमें दिया गया है. अर्थात् इस प्रकार देखनेसे नया विशेष प्रेम उत्पन्न होनेसे गौओंने विशेष प्रकारकी क्रिया की. जैसे कि अबकी बार देखते ही उनमें ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ जो उनके वशमें हो गई, जिससे अपने देहादिको भी भूल गई. सब गौओंने अपने गोपोंका तथा कांटेवाले मार्ग और कठिन मार्गका भी ध्यान नहीं किया और शीघ्र ही उनका अतिक्रमण करती हुई दो पैरोंसे उछलती कूदती दौड़ती हुई जा रही थीं. उस समय उनकी ग्रीवाएँ हुड्डोंमें मिली हुई सी दीखनेमें आती थीं तथा उनकी पूछें लम्बी और ऊंची हो रही थीं, इसी तरह जाते समय हुंकार करती हुई और अपने थनोंसे दूधको टपकाती हुई बछड़ोंके पास आ गई।।३०।।

समेत्य गावोऽधोवत्सान् वत्सवत्योप्यपाययन् ।।

गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ।।३१।।

बछडोंवाली इन गौओंने गोवर्धनसे नीचे आकर जिन बछडोंने दूध पीना भी छोड दिया था उनके अंगोंको इस तरह चाटती हुई मानों उनको निगल जाएगी, उनको दूध पिलाने लगी।।३१।।

अनन्तर नीचे आकर बछड़ोंसे मिली यद्यपि उन्होंने दूध पीना छोड़ भी दिया था और गौओंके दूसरे छोटे बछड़ें भी थे तो भी उनको दूध पिलाने लगीं. दूध पिलाते समय स्नेह प्रकट करती हुई बछड़ोंको इस प्रकार चाटती थीं मानो उनको निगल रही हैं. ऐसा करनेमें इनका कोई दोष नहीं था क्योंकि जो दूध इनके थनोंमें भरा हुआ था वह पिलाया।।३१।।

इस प्रकार गौओंके स्नेहको अधिकताका वर्णन कर अब निम्न तीन श्लोकोंसे बालकों पर गोपोंके प्रेमकी विशेषताका वर्णन करते हैं.

गोपास्तद्रोधनायासमौढ्यलज्जोरुमन्युना ।।

दुर्गाध्वकृच्छ्रतोभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ।।३२।।

धेनुओंके रोकनेका प्रयास व्यर्थ होनेसे गोप पहले 'किंकर्त्तव्यमूढ' (क्या करना चाहिए इसका निर्णय नहीं कर सके) हो गए और लज्जित हुए जिससे क्रोधसे भरे हुए ग्वाल विषम मार्गमें क्लेश पाकर भी नीचे आए वहां गौओंके बछडोंके साथ अपने पुत्रोंको भी देखा।।३२।।

पहले गोप, गौओंको रोकनेका प्रयास निष्फल होनेसे, 'किंकर्तव्यमूढ़' बने जिससे लज्जित हुए. निष्फलता, मूढ़ता और लज्जित होना इन तीन प्रकारके दोषोंसे गोप बहुत क्रुद्ध हुए. उस क्रोधके कारण पर्वतीय मार्गके क्लेशकी चिन्ता न कर उनको सहन कर भी जहां नीचे गौएं थी वहां आकर बछड़ोंके साथ मिले हुए अपने पुत्रोंको देखा।।३२।।

दुःख, क्रोध, लज्जा, मूढता और परिश्रम इन पांच दोषवाले भी हुए तथा वस्तु (दूध)का नाश[१] भी देखा किन्तु अनन्तर पुत्रोंके दर्शनसे ये सब दुःखादि एवं वस्तु नाशको भूल गए इसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

तद्वीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।।

उदूह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्ध्नि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ।।३३।।

उनको देखते ही वे गोप प्रेम रससे भरे अन्तःकरणवाले हो गए और

अनुराग विशेष होनेसे उनका क्रोध शान्त हो गया, अतः अपने पुत्रोंको हाथोंसे उठाकर छातीसे लगाया तथा उनके मस्तक सूंघनेसे परमानन्दको प्राप्त हुए।।३३।।

गोपोंके अपने पुत्रोंको देखनेसे जो प्रेम उत्पन्न हुआ उसके रससे उनके अन्तःकरण भर गये पहिलेसे ही अनुराग होनेसे अब क्रोध रहित हो गये, तब अपने बालकोंको हाथोंसे ऊंचा उठाकर छातीसे लगाकर उनके मस्तकोंको सूंघकर परमानन्दको प्राप्त हुए।।३३।।

१.गौओंने दूध बछडोंको पिला दिया था.

इस प्रकार प्रेम मग्न होनेके कारण वहाँसे जानेकी भी इच्छा शक्ति गोपोंमें न हुई यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ।।३४।।

अनन्तर बालकोंके आलिंगनसे परम आह्लादित बडे गोप धीरे-धीरे अत्यन्त कठिनतासे वहांसे (उन बालकोंके पाससे) गए किन्तु उन (बालकोंके) स्मरणसे उनके आँखोंमें आंसू भर आए थे।।३४।।

बूढे गोप भी बच्चोंके आलिंगन करनेसे अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए. दुःखसे ही धीरे-धीरे वहाँसे रवाना होने लगे. बालकोंकी स्मृतिसे उनके नेत्र जलसे पूर्ण हो गये।।३४।।

यह प्रकार देखकर बलदेवजीको शंका हुई उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धिं वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ।।३५।।

जिनने स्तनसे दूध पीना छोड दिया है ऐसे बच्चों पर भी क्षण क्षणमें होती व्रजके प्रेमकी वृद्धि देखकर, उसके कारणको न जाननेसे बलरामजी विचारमें पड गए।।३५।।

व्रजकी अर्थात् व्रजवासी गोप, गौ आदिकी प्रेमकी वृद्धि देखकर, जिन्होंने स्तनसे दूध पीना छोड़ दिया है, उन बच्चोंको भी प्रतिक्षण दूध पिलानेकी लालसा देख इसका कारण न समझ बलरामजी विचारमे पड़ गये।।३५।।

निम्न श्लोकमें बलदेवजीके विचारका वर्णन करते हैं.

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेखिलात्मनि ।।

व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ।।३६।।

सबकी आत्मा भगवान् वासुदेवके स्थित होते हुए भी यह अपूर्व प्रेम मेरे सहित व्रजका बालकोंमें बढ रहा हैं, यह अचम्भेके समान क्या है।।३६।।

गौओं और गोपोंका अपने सन्तति पर इस प्रकारका भाव होना, क्या यह लोक, युक्ति और प्रमाणसे विरुद्ध है? इस कारणसे ही यह अद्भुत होना चाहिए. वह भी नहीं हो सकता है. सबकी आत्मा भगवान् वासुदेवके सान्निध्यसे इन बालकोंमें यह प्रेम बढ़ रहा है वा कोई दूसरा कारण है? यह सन्देह है. केवल व्रजका हो सो नहीं, किन्तु मेरा भी इन बालकोंमें जो आगे कभी नहीं हुआ वैसा प्रेम बढ़ रहा है. इससे यह जो कुछ हो रहा है अद्भुत जैसा, यह सम्बन्ध है।।३६।।

निम्न श्लोकमें विचार करते हैं कि यह कोई माया होगी.

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेपि विमोहिनी ।।३७।।

क्या यह माया देवताओंकी है? या मनुष्योंकी है? अथवा दैत्योंकी है? यह माया कैसी है? कहांसे आई है? दूसरोंकी तो नहीं हो सकती है, क्योंकि इसमें मैं भी मोहित हो गया हूँ इसलिए बहुधा यह माया मेरे स्वामीकी ही होनी चाहिए।।३७।।

यह कौनसी माया है? कहाँसे आई है? मायाके स्वरूप वर्णन करते हुए सम्बन्धियोंके भेदसे उसके स्वरूपके भेदोंको कहते हैं कि, यह माया देवोंसे सम्बन्धवाली दैवी माया है? वा मनुष्योंसे सम्बन्धवाली मानवीय माया है अथवा असुरोंसे सम्बन्धवाली आसुरी माया है. ये तीन भेद पूर्वपक्षसे कहे हैं. अब इसके उत्तर पक्षमें कहते हैं कि मैं समझता हूँ कि यह माया उपरोक्त सम्बन्धवाली माया नहीं है किन्तु प्रायः मेरे स्वामीकी यह माया होनी चाहिए. क्योंकि यह माया मेरे अन्तःकरणमें भी मोह उत्पन्न कर रही है, मेरे स्वामीकी मायाके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारकी माया मुझे मोहित नहीं करती है. अतः निश्चित है कि यह माया मेरे स्वामीकी है।।३७।।

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान् सवयसानपि ।।
सर्वानचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ।।३८।।

इस तरह सोच विचार कर बलरामजीने ज्ञान-दृष्टिसे देखा तो सब बछडे और अपने मित्र गोपबालक उनको श्रीकृष्ण रूपसे दर्शन देने लगे।।३८।।

इस प्रकार विचार कर बलरामजीने निदिध्यासनसे अपने अतिरिक्त सकल वयस्य तथा बछड़ोंको श्रीकृष्णरूप देखा अर्थात् सब रूप श्रीकृष्णके हैं ऐसा निश्चयसे जाना कि ये सब रूप श्रीकृष्णके हैं।।३८।।

जब इस प्रकार देखा तब मनमें कुछ संशय हुआ उस संशय निवारणके लिए निम्न श्लोकमें भगवानसे पूछने लगे.

नैते सुरेशा ऋषयो न वैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात् कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोवैत् ।।३९।।

बलरामजीने जब इस प्रकार देखा तब भगवानसे पूछने लगे, हे ईश ! ये इन्द्र नहीं है, और ये बछडे ऋषि नहीं हैं. आश्रय पृथक् पृथक् होने पर भी ये सब आप (आपके रूप) ही हैं अतः जो कुछ है वह स्पष्ट वेदसे बताइए. भगवानके बताने पर बलरामजीने सब समझा।।३९।।

हे प्रभु! पहले तो हम जानते थे कि ये बछड़ोंके पालक इन्द्रादिक देव थे और ये बछड़े वेदज्ञ ऋषि थे. अब तो ये न इन्द्रादिक देव हैं और न वेदज्ञ ऋषि हैं. किन्तु आप ही इस रूपसे प्रकाशित हो रहे हैं.

ब्रह्मवाद सिद्धान्तके अनुसार यह सत्य है यों कहो तो कहते हैं कि अभेद आश्रयमें तो सब भगवान् ही हैं. इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है, किन्तु भेद आश्रय (सब अलग अलगरूप) होते हुए भी वह (भगवान्) ही एक है. यह आश्चर्य है. अतः इस विषयमें वेद वचनोंका अभाव है. अर्थात् वेद भिन्न-भिन्न आश्रय होते हुए भी सब भगवद्रूप हैं, ऐसा नहीं कहते हैं तो आप इसको वेदके वचनोंसे समझाओ कि भेद होते हुए भी सब भगवद्रूप कैसे हो सकते हैं? तब भगवानने बलरामजीको सारा चरित्र कह सुनाया. तब बलरामजीने इसको समझा।।३९।।

इस प्रकार बलदेवजीको समझानेके अनन्तर आए हुए ब्रह्माजीको भी समझाया. इसका वर्णन नीचे श्लोकमें करते हैं.

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ।।
पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ।।४०।।

यहां तो इस प्रकार क्रीडा करते हुए एक वर्ष बीत गया पर ब्रह्माजीका तो एक त्रुटि(चुटकी बजाने जितना समय) जितना ही काल हुआ था इतने ही कालमें ब्रह्माजीने लौटकर आ के जो देखा तो जैसे आगे खेलते थे वैसे ही अपनी कलासे

भगवान् ग्वालबाल और बछडोंसे खेल रहे हैं।।४०।।

ये ब्रह्माजी स्वतः उत्पन्न होनेसे जन्म–रहित अर्थात् अजन्मा हैं यदि अजन्मा न होते तो इस अपराधके करनेसे नष्ट हो जाते. किन्तु नष्ट न होकर शीघ्र लौटकर आये और आकर पूर्ववत् अपनी कलासे ग्वालबाल तथा बछड़ोंके साथ वर्ष पर्यन्त क्रीडा करते हुए हरिको देखा. ब्रह्मा इतने समयके अनन्तर देखनेको क्यों आये? इस शंकाको मिटानेके लिये श्लोकमें 'त्रुटि' शब्द देकर यह बताया है कि ब्रह्माकी दृष्टिमें वा उसकी गणनामें तो अब एक 'त्रुटि'[१] समय ही बीता है. अतः ब्रह्माजीसे अपने किये हुए कार्यकी सफलता वा निष्फलता देखनेकेलिये शीघ्र ही आ गये हैं. ब्रह्माजी तो शीघ्र ही आ गये किन्तु भूलोककी गणनासे एक वर्षके अनन्तर आये।।४०।।

१.यहां तृतीय स्कन्धमें 'त्रुटि' कालकी गणना नहीं ली गई है – (श्रीसुबोधिनीजी)

अब दो श्लोकोंसे आए हुए ब्रह्माजीके विचारोंका वर्णन करते हैं.

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि।।
मायामये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः।।४१।।

गोकुलमें जितने भी बालक, बछडों सहित थे उन सबको मैंने मायामय लोकमें सुलाया है. अभी तक भी वे उठे नहीं है।।४१।।

गोकुलमें जितने भी बालक और बछड़े थे वे सब यहांसे लेकर मायामय लोकमें उनको स्थापित किया. वे आज तक सो रहे हैं उठे नहीं हैं।।४१।।

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे।।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम्।।४२।।

मेरी मायासे मोहितोंसे इतर ये यहां कैसे आए? स्वतः उत्पन्न हुए वा दुसरे कहांसे आए? वर्ष भर उतने ही (बालक और बछडे) विष्णुके साथ खेल रहे हैं।।४२।।

वे जो यहां देखनेमें आते हैं, ये यहां ही उत्पन्न हुए दिखते हैं वहाँसे आये ऐसा तो बन नहीं सकता है यदि यहां उत्पन्न नहीं हुए तो ये कहांके हैं. मैं जो ले गया था उनमें और ये जो दिख रहे हैं इनमें विलक्षणता देखनेमें आती है. अतः मेरी मायासे मोहित हुए हैं उनसे ये दूसरे हैं. अचम्भा है उतने ही 'वहाँ ही, वैसे ही रूपवाले विष्णुके साथ वर्ष भरसे क्रीडा करते हुए ये कहां' के हैं।।४२।।

इस विषयमें ब्रह्माजीकी बुद्धि अनिश्चित हो गई है एक विचार आया कि

क्या मैं जिन (बालक और बछडों)को ले गया हूँ वे भगवानने अपनी मायासे बनाए थे अथवा जो असल सत्य थे उनको मैं ले गया अथवा ये मायासे बनाए हुए हैं वा ये सच्चे हैं इस प्रकार युक्तियोंसे विचार करते हुए ब्रह्माजी कुछ भी निर्णय न कर सके. उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एवमेतेषु सुचिरं ध्यात्वा सर्वात्मनात्मभूः ।।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ।।४३।।

इस प्रकार बहुत समय तक विचार करते हुए भी सबके सम्बन्धी स्वयंभू ब्रह्माजी नहीं जान सके कि इनमें सत्य कौनसे हैं और मायासे बने असत्य कौन से हैं।।४३।।

इन दो प्रकारके बालकों और बछड़ोंमें कौनसे सत्य और कौनसे झूठे हैं यह बहुत ध्यान विचार करते हुए भी स्वयं ब्रह्मा किसी युक्तिसे जाननेमें भी असमर्थ हुए।।४३।।

जब ब्रह्माजी भी नहीं जान सके तब क्या हुआ इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।।
स्वयैव माययाजोपि स्वयमेव विमोहितः ।।४४।।

इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वको मोहित करनेवाले और किसीसे भी मोहित न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे मोहित करने चले थे, परन्तु स्वयं ब्रह्माजी अपनी मायासे आप ही मोहित हो गए।।४४।।

विष्णु (श्रीकृष्ण)को मोहित करनेमें प्रवृत्त ब्रह्माजी स्वयं मोहित हो गये ऐसा क्यों हुआ? उसमें कारण बताते हैं कि विष्णुको कोई भी मोहित नहीं कर सकता है किन्तु आप सकल विश्वको मोहित कर सकते हैं. यहां भगवानने ब्रह्माजीको मोहित नहीं किया, तो भी ब्रह्माजी अजन्मा होते हुए भी अपनी ही मायासे स्वयं मोहित हो गये।।४४।।

ब्रह्माजीका मोहित होना योग्य ही था. यह निम्न श्लोकमें बताते हैं.

तम्यां तमोवन् नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ।।४५।।

जैसे अंधेरी रात्रिमें नीहारके अन्धकारका और दिनमें जुगुनूके प्रकाशका पता नहीं चलता है वैसे ही बडे पर साधारण पुरुष अपनी माया महापुरुष पर

चलाना चाहें तो उनकी वह माया बडोंकी कुछ भी हानि नहीं कर सकती है. प्रत्युत बडोंकी माया उनका और उनकी मायाका नाश करती है।।४५।।

लोगोंको प्रातः कुहरेका अन्धकार भी मोहित कर देता है कि अभी तक रात्रि है किन्तु वही कुहरा अन्धेरी रात्रिमें जो अन्धकार करे, तो वह अन्धकार देखनेमें नहीं आता है, व्यर्थ है. लोग तो अन्धेरी रात्रिमें यों ही पदार्थोंको नहीं देख सकते हैं. इस प्रकार महामायी भगवानमें दूसरेकी मायाको स्थान ही नहीं मिलता है. तब वह वहां क्या कार्य कर सकेगी अर्थात् कुछ नहीं. इसी तरह दोनों ब्रह्मा और कृष्णकी मोह उत्पन्न करनेवाली मायाका धर्म (मोहित करना) समान होते हुए भी ब्रह्माकी मायाकी निरर्थकता बताकर, अब भगवानके आगे ब्रह्मा भी किसी गिनतीमें नहीं हैं अतः उनका भी अप्रयोजकत्व सिद्ध करनेकेलिये श्लोकमें 'खद्योतार्चिरिवाहनि' शब्द दिये हैं. जैसे जुगुनू दिनको आप ही प्रकाश नहीं दे सकता है तो घटादिकोंको कैसे प्रकाशित करेगा सूर्यको प्रकाशित करनेकी आशा तो दूर रही. इसी प्रकार जब भगवानके आगे ब्रह्माजी स्वयं कुछ नहीं कर सकते तो उनकी माया क्या करेगी. अतः महान् परमाया अथवा ईशपना डालनेवाले दूसरे (छोटे) पुरुषकी माया और ईशपने (ऐश्वर्यको) उस बड़ेकी माया नाश कर देती है।।४५।।

ब्रह्माजी जब इस प्रकार चिन्तातुर हुए तब भगवानने ब्रह्माजीको अपना स्वरूप दिखाया वह नीचेके श्लोकमें कहते हैं.

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ।।४६।।

इतनेमें ब्रह्माजीके देखते हुए उसी समय बछडे और उनके पालक (ग्वाल–बालक) मेघ जैसे श्याम वर्णवाले और पीतवस्त्र धारण किये हुए देखनेमें आए।।४६।।

ब्रह्माजी विचार ही कर रहे थे तो उसी क्षणमें ब्रह्माजीके देखते ही देखते सब बछड़े और पालक मेघ जैसे श्याम वर्णवाले और सब पीतवस्त्र धारण किये हुए थे. यों ब्रह्माजीको दिखने लगे।।४६।।

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ।।४७।।

'चतुर्भुज' हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये हुए

मुकुटवाले, कुण्डल, हार और वनमाला पहने हुए, (ब्रह्माजीने देखें)।।४७।।

वैकुण्ठमें जिन-जिन धर्मको प्रकटनार्थ जैसी मूर्ति (स्वरूप) हैं वैसे ये हैं जैसे कि चार भुजावाले और हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए सबने किरीट (मुकुट) धारण कर रखे थे. कानोंमें कुण्डल आभूषण पहिने थे, मोतियोंकी मालाओंसे तथा बन मालाओंसे सुशोभित थे. (ऐसे ब्रह्माजीको दिखाई देने लगे)।।४७।।

ये उपरोक्त चार भुजाएँ और मुकुटादि आभूषण सायुज्य मुक्तोंको भी होते हैं, किन्तु श्रीवत्स आदि असाधारण आभूषण उनको नहीं होते हैं वे भी इनको थे, उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुककङ्कणपाणयः ।।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ।।४८।।

श्रीवत्स, भुजाओंमें भुजबन्द, रत्नमय आभुषण तथा हाथोंमें शंखके समान तीन धारावाले कंकण, नुपुर, कटक, कटिमेखला और अंगुठियोंसे सुशोभित (देखनेमें आए)।।४८।।

श्रीवत्स (दक्षिण और आवर्त (गोल चक्करवाली) रोमकी रेखा) भुजबन्द, भुजाओंके रत्न, अथवा भुजाएँ ही रत्नों जैसी थीं, शंखके समान तीन धारावाले कंकण, प्रत्येकके हाथमें ये आभूषण थे, चरणोंके आभूषण नूपुरोंसे, हाथोंके आभूषण कड़ोंसे और कटिमेखला तथा अंगूठियोंसे शोभायमान हो रहे थे (ऐसे देखनेमें आये)।।४८।।

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ।।४९।।

अति पुण्यवान पुरुषों द्वारा अर्पण की हुई कोमल तुलसीकी नवीन मालाओंसे पांवसे शिर तक परिपूर्ण भरे हुए (दिखाई दिए)।।४९।।

तुलसीकी नवीन मालाओंसे चरणसे मस्तक तक अर्थात् नखसे लेकर चोटी तक भरे हुए, (देखनेमें आये) वे मालाएं कोमल तुलसीकी बनाई हुई थीं. सकल अंगोमें पृथक्-पृथक् अर्पण की हुई थीं. समर्पण करनेवाले अत्यन्त पुण्यात्मा हैं।।४९।।

उनमें भगवानके असाधारण भावका निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं.

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।।

स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ।।५०।।

चन्द्रिकाके समान स्वच्छ मन्द हास्योंसे अपने भक्तोंके मनोरथोंका मानो सतोगुणसे पालन करते हैं और अरुण जैसे कटाक्ष सहित विशेष ईक्षणोंसे मानों रजोगुणसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको उत्पन्न करते हुए (दिखाई देने लगे)।।५०।।

चन्द्रिकाके समान स्वच्छ मन्दहासोंसे और अरुण जैसे कटाक्षोंके ईक्षणोंसे भक्तोंके पुरुषार्थोंकी रचना और पालन करने लगे. इसको हेतु देकर सिद्ध करनेके लिये दृष्टान्त देते हैं, जैसे रजोगुणसे उत्पत्ति होती है तथा सतोगुणसे पालन होता है वैसे ही यहां मन्दहास स्वच्छ होनेसे सतोगुणके समान है. अतः इनसे पालन किया तथा कटाक्ष लाल होनेसे रजोगुणके समान है इनसे रचना उत्पत्ति की है।।५०।।

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ।।५१।।

ब्रह्माजीसे लेकर स्तम्बपर्यन्त, सब स्थावर और जंगम मूर्तिमान होकर, नृत्य और गायन आदि अनेक प्रकारकी पूजाओंसे उनकी भिन्न भिन्न उपासना कर रहे थे (ऐसे देखनेमें आए)।।५१।।

ब्रह्माजीसे लेके तृणोंकी झाड़ी आदि सब जड़ और चेतन अपने-अपने आधिदैविक मूर्तिमान् स्वरूपोंसे उनकी पृथक्-पृथक् उपासना कर रहे थे. पृथक्-पृथक् उपासनाका कारण यह है कि जैसा जिसका अधिकार था उसी अधिकार अनुसार नृत्य गीत आदि विविध प्रकारोंसे पृथक् पृथक् सेवा की।।५१।।

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ।।५२।।

अणिमा आदि आठ सिद्धियों, माया आदि विभूतियों और महत्तत्व आदि चौबीस तत्त्व इनसे वेष्टित थे।।५२।।

अणिमा आदि आठ ऐश्वर्योंसे सेवित अर्थात् अणिमादिकोंके माहात्म्यरूपसे सेवित, अजा (योगमाया) आदि विभूतियोंसे सेवित, अजाका स्वरूप बताते हैं कि जो स्वयं उत्पन्न न हो, किन्तु उत्पन्न होनेका केवल भाव दिखाती हो और दूसरोंको उत्पन्न करती हो उसको 'अजा' कहते हैं. लक्ष्मी आदि शक्तिमें यह अजा शक्ति मुख्य है. इन अजादि शक्तिओंसे प्रत्येक पृथक्-पृथक्

उपासित हो रहे थे, एवं चौबीस तत्त्वोंके अभिमानी देवता भी प्रत्येककी पृथक्-पृथक् उपासना कर रहे थे. (ऐसा देखनेमें आता था)।।५२।।

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ।।५३।।

काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुणादिक पदार्थ मूर्तिमान होकर प्रत्येककी सेवा करते थे. इन सबकी महिमा भगवानकी महिमाके सामने नष्ट हो गई।।५३।।

काल आदि देवगण भी अभिमानी देव हैं. सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन गुण कहे और आदि शब्दसे सम्पूर्ण नाम सृष्टिका वर्ग तथा आसन्य आदि प्राण कहे हैं. श्लोकमें आये हुए 'स्वमहिध्वस्तमहिभिः' पदके दो अर्थ करते हैं : इन अभिमानी देवगणोंने अपनी महिमासे दूसरोंकी महिमा नाश कर दी है अथवा भगवानके माहात्म्यसे जिनकी (कालादिकोंकी) महिमा नष्ट हो गई है. वे सब कालादिक मूर्तिमान (आधिदैविक रूपवाले) हैं. उनसे भी जिनकी पृथक्-पृथक् उपासना हो रही है (ऐसे दीखे)।।५३।।

इस प्रकार धर्मोका वर्णन कर अब स्वरूपका वर्णन करते हैं.

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ।।५४।।

ये सब (बछडे और ग्वाल बालक) सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त, आनन्द मात्र एक रस मूर्तिवाले, आत्मज्ञान रूप नेत्रवाले, महात्मा लोग भी जिनके माहात्म्यको नहीं जान सकते हैं (ऐसे देखनेमें आए)।।५४।।

ये सब सत्य, ज्ञान, आनन्दमात्र, एक रसवाले मूर्तिमान थे. 'अनन्त' शब्दसे बताया है कि इनमें दोषोंका अभाव है तथा ये दूसरों (लौकिकों)से दूसरे प्रकारके (अलौकिक) थे और 'आनन्द' शब्दसे यह बताया है कि किसी भी रूपमें दोष नहीं है, यह सर्व रूपोंमें निर्दोषता भी अवश्य कहनी चाहिए. रस स्वरूपमें भेद तब होता है जब उसमें विजातीय पदार्थ (रस रहित पदार्थ)का मिलन होता है. यहां किसीका भी मेल नहीं है उसकी स्पष्टता करते हुए कहते हैं कि उपनिषद् प्रोक्त ज्ञानदृष्टिवाले भी जिनकी महिमाको नहीं जान सकते हैं (ऐसे वे दीख रहे थे)।।५४।।

इस प्रकार सब ही भगवत्स्वरूप हैं ऐसा वर्णन कर अब ब्रह्माजीको भी

वैसे दर्शन हुए उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एवं सकृद् ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ।।५५।।

इस प्रकार ब्रह्माजीने एक बार सबको परब्रह्ममय देखा, जिस पर ब्रह्मके प्रकाशसे यह सब जगत् प्रकाशित होता है।।५५।।

ब्रह्माजीने भी सबको इस प्रकार परब्रह्मरूप देखा. परब्रह्म एक ही है यह प्रसिद्ध है, एक होते हुए भी उनके अनेक रूप हैं. ब्रह्माजी एक थे, एकने इन सबको किस प्रकार देखा? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भगवानके प्रकाशसे यह सर्व जड़-चेतन प्रकाशित हो रहा है. अतः भगवानकी इच्छासे ही ब्रह्माजीको वह रूप प्रकाशित हुआ जिससे वह सर्वज्ञ हुए और उनने देखा तथा समझा।।५५।।

ततोतिकुतुकोद्वृत्त्य स्तिमितैकादशेन्द्रियः ।।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ।।५६।।

उनके तेजस ब्रह्मकी एकादश ही इन्द्रियां जड हो गई. तब ब्रह्माजी दृष्टिको फिराकर चुपचाप खडे हो गए जैसे नगरके अधिष्ठात्री देवीके पास पुतली शान्त होकर खडी रहती है।।५६।।

इसके अनन्तर क्रिया करनेमें असमर्थ हुई एकादश इन्दियोंवाले ब्रह्माजीने अति सन्तोषसे दृष्टिको बदल दिया. अति सन्तोषके कारण भगवानकी स्तुति भी नहीं कर सके. स्तुति न कर सके इसका दूसरा कारण यह था कि ब्रह्माजी भगवानके तेजसे शक्तिहीन हो गये थे. अतः ब्रह्माजी कुछ भी कह नहीं सके और शान्त रहे. कैसे शान्त रहे इसका दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे नगरकी अधिष्ठात्री देवीके पास पुतली केवल खड़ी रहती है. नगरकी अधिष्ठात्री देवीका तो सब नगरवासी पूजन करते हैं किन्तु वह पुतली पासमें केवल खड़ी रहती है उसकी कोई पूजा नहीं करता है. केवल समान देशमें स्थिति करनेसे कोई भी पूजाके योग्य नहीं बनता है. अतः सबने इन ब्रह्माजीको देखा किन्तु देखने पर भी इन ब्रह्माजीकी उपेक्षा कर दी थी. इससे ब्रह्माजीका तेज हीन होना उचित ही जचता है।।५६।।

इस प्रकार जब यह लीला देखकर ब्रह्माजीका तेज नष्ट हो गया कारण कि उनका किया हुआ कार्य निष्फल हो गया था, तब भगवानने अपने उन रूपोंको तिरोहित कर लिया. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

इतीरेशेतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।।
अनीशेपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोजाजवनिकाम् ।।५७।।

इस प्रकार अतर्क्य, (जो तर्क विचारमें न आ सके) स्वप्रकाश, प्रकृतिसे पर और ब्रह्मसे भिन्न वस्तुओंका निषेध करते हुए उपनिषद् जिनके स्वरूपका ज्ञान कराते हैं वैसे असाधारण महिमावाले स्वरूपमें यह क्या? ऐसे ब्रह्माजी मोहित हो गए और उनकी दर्शन करनेकी शक्ति भी जब चली गई तब भगवानने माया रूप पडदा डाल दिया।।५७।।

इस प्रकार जब ब्रह्माजी मोहको प्राप्त हुए और देख भी न सके तथा दुःखी हुए. ब्रह्माजीकी यह दशा जानकर भगवानने इस लीलाको मायाके पड़देसे ढ़क दिया अर्थात् जैसे उन (ब्रह्माजी)को भगवद्रूपके दर्शन न हो सके. पहले ब्रह्माजीको बछड़े और बालक भगवद्रूप देखनेमें इसलिए आये थे जो भगवानने मायाका पड़दा हटा दिया था. बछड़े और बालक कल्पित नहीं थे किन्तु वास्तविक ब्रह्म-स्वरूप थे. अब माया फैलानेसे वे ब्रह्मरूप नहीं देखनेमें आये, यह योग्य ही है.

ब्रह्माजीको मोह हुआ और देख भी न सके इसका यह कारण है कि भगवानका माहात्म्य ऐसा है जिससे उनको कोई नहीं जान सकता है. इतना ही नहीं, किन्तु उसकी महिमा कितनी है? इसका तर्क भी कोई नहीं कर सकता है. अतः वे कैसे देखे जा सकते हैं अथवा जाने जा सकते हैं.

भगवानकी ऐसी महिमा किस कारणसे है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'स्वप्रमितिकः' है. भगवान् ही अपनेको जान सकते हैं कि मैं कैसा हूँ मेरी महिमा कितनी एवं कैसी है अर्थात् भगवान् 'स्व संवेद्य' अपनेसे ही जानने योग्य हैं. उनको अन्य कोई नहीं जान सकता है. दूसरा उनको क्यों नहीं जान सकता है. दो हेतु देते हैं:

१.'अजातः' जिसका जन्म नहीं अर्थात् जो अनादि है. अन्य सब जन्मे हुए हैं 'आदि' वाले हैं, आप सबसे पहले है. अतः आपको कोई नहीं जान सकता है.

२.'परत्र' वे प्रकृतिसे परे हैं. अन्य सब प्रकृतिके भीतर है इसलिए प्राकृत

अप्राकृतको नहीं जान सकते हैं. क्योंकि जहां (प्रकृतिसे परे) भगवान् हैं वहां अन्य (प्राकृत) नहीं है. इत्यादिसे भगवानका माहात्म्य स्व संवेद्य ही है.

भगवत्माहात्म्य सुनकर तो जाना जा सकता है? नहीं. इसके लिये श्लोकमें 'अतन्निरसन मुखब्रह्मकमितौ' पद दिया है अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपका उपनिषद् भी साक्षात् वर्णन नहीं करते हैं किन्तु ब्रह्म भिन्न जो वस्तु दृष्टिमें आती है उनका निषेध करते हुए ही ब्रह्मके स्वरूपका ज्ञान कराते हैं ब्रह्म स्वरूप ऐसा ही है यों उपनिषद् भी कहते हैं कारण कि ब्रह्म स्वरूपको साक्षात् बतानेके लिये किसी प्रकारका कोई भी संकेत नहीं है. वैदिक व्यवहारमें भी जब यह बहिर्मुख जीव ब्रह्ममें प्रवेश[१] करता है तब बहिर्मुखताको निकालकर (मैं दैहादि हूँ, इसका त्याग कर) उसमें प्रवेश[२] योग्य होता है. प्रवेशानन्तर[३] ब्रह्म भावको प्राप्त होता है अर्थात् अक्षर स्वरूप हो जाता है, भगवानका माहात्म्य वही जान सकता है. अतः प्रथम अधिकार (जब तक अविद्या ग्रसित है) में श्रुति 'इति न इति न' यह नहीं यह नहीं इस प्रकार उपदेश करती है. इससे श्रुतियां भी जानकर ब्रह्मस्वरूप नहीं कहती हैं. अतः ब्रह्माजी भगवानके स्वरूपका दर्शन न कर सके और मोहको प्राप्त हुए तथा दुःखी हुए, यह कहना योग्य ही था .

१. अपनेमें आनन्दांशको प्रकट करता है –अनुवादक.

२. आनन्दांश प्रकट करनेके–अनुवादक.

३. आनन्दांशकी अभिव्यक्ति (प्राकट्य)के अनन्तर–अनुवादक.

भगवानने मायाका पडदा डाल दिया तब ब्रह्माजी मूर्छित होकर गिर गए कुछ समयके अनन्तर उठे. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ।।५८।।

तदनन्तर मरकर पीछे उठे हों ऐसी ब्रह्माजीने बाह्य दृष्टिको प्राप्त कर बडी कठिनतासे आँखे खोल अपनेको और जगतको देखा।।५८।।

कितनेक समयके अनन्तर ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्माजी उठे. लोकके देखनेकेलिये ही उठे न कि भगवानके दर्शनकेलिये. अतः उनका उठना व्यर्थ था. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे मरा हुआ किसी कारणसे जीवित हो[१] उठता है वैसे ये भी उठे अथवा पहले मरे (मूर्छित हुए) पीछे उठे. अत्यन्त कष्टसे नेत्र खोलकर इस जगतको ही देखने लगे।।५८।।

१. मरा हुआ जीवित होनेके अनन्तर भी संसारमें आसक्त होता है भगवद् भजन नहीं करता है अत: उसका जीवित होना जैसे व्यर्थ है वैसे ही ब्रह्माजीका उठना भी व्यर्थ था– अनुवादक.

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरः स्थितम् ।।
वृन्दावनं जनाजीव्यं द्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ।।५९।।

उसी समय चारों ओर दृष्टि डाल कर देखा तो सामने विद्यमान चारों तरफ प्रिय पदार्थोसे भरा हुआ और मनुष्योंकी जीविकाके साधनरूप वृक्षोंसे व्याप्त वृन्दावन देखनेमें आया।।५९।।

इसके अनन्तर उस क्षणमें ही चारों ओर देखते हुए ब्रह्माजीने दिशाएँ देखीं. पश्चात् सामने स्थित वृन्दावनको देखा. उसके अनन्तर उस वनमें जीवनके लिए आये हुए लोगोंको देखा. लोग जीवनके लिए वृन्दावनमें क्यों आये? इसके उत्तरमें वृन्दावनकी विशेषता बतलाते हैं कि यह वन वृक्षोंसे व्याप्त है शून्य अरण्य नहीं है तथा समभूमिवाला है जिससे सब प्रकारसे प्रिय है।।५९।।

इसके पीछे ब्रह्माजीने वनके रहनेवाले पशुओंको भी देखा जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः ।।
मित्राणीवाजितावासगतरुट्तर्षकादिकम् ।।६०।।

वहां परस्पर स्वाभाविक गाढ वैरवाले मनुष्य एवं सिंहादिक भी आपसमें मित्रोंके समान रहते थे. कारण कि वहां भगवान् निवास करते थे जिससे उस वन एवं उनके निवासियोंमेंसे क्रोध लोभ आदि निकल गए थे।।६०।।

स्वाभाविक दुष्ट वैरवाले होते हुए भी घोड़े, भैंसे आदि और मनुष्य तथा पशुगण भी साथ ही रहते थे. वे सब परस्पर मित्रोंके समान रहते थे. उसका कारण यह था कि जिसको किसी(काम क्रोधादि)ने भी नहीं जीता है ऐसे भगवान् वहां विराजते थे जिससे वहाँसे द्वेष, तृष्णा तथा दूसरे काम आदि दोष भाग गये थे इससे वह वन तथा वनवासी निर्वैर होकर प्रेमसे हिलमिल कर रहते थे।।६०।।

ब्रह्माजीने उस वनमें भगवानको भी पहलेके समान देखे. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ।।६१।।

वहां ग्वालवंशको बालक भावका नाटक करते हुए ब्रह्माजीने जैसे पहले देखा था वैसे ही अब हाथमें ग्रास लिए हुए श्रीकृष्णको देखा. जो द्वैत भाव रहित, पर, अनन्त तथा अगाध ज्ञानवान होते हुए भी बछडों और मित्रोंको पूर्वकी तरह चारों ओर ढूंढते थे।।६१।।

जो वास्तविक अद्वितीय ब्रह्म हैं, केवल गोपवंशमें बाल भावका जिसने नाट्य किया है और जो 'पर' (कालादिकोंका नियन्ता) है तथा अनन्त एवं अगाध बोध है वैसे बालकृष्णको पूर्ववत् ब्रह्माजीने देखा. श्लोकमें 'उद्वहत्'[१] और 'विचिन्वत्' ये परस्पर सम्बन्धवाले दो पद ब्रह्माजीके विशेषणोंके रूपमें लिये गये हैं, जिनका अर्थ 'विचिन्वत्' बछड़ोंको ढूंढते हुए और 'उद्वहत्' ग्रासवाले हस्तको धारण करते हुए श्रीकृष्णको ब्रह्माजीने देखा, जैसे एक वर्ष पहले भगवानको बछड़ोंको ढूंढते तथा हाथमें ग्रास लिये हुए देखा था अब भी वैसे ही देखा।।६१।।

१. 'उद्वहत्' यह पद श्लोकमें 'पशुपवंशशिशुत्व नाट्य' पदमें मिला हुआ आया है. उसका अर्थ ऊपर किया गया है. आचार्यश्रीने इसको पृथक् कर यह अर्थ भी बताया है –अनुवादक.

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवानिपात्य ।।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ।।६२।।

इस प्रकारके भगवानके दर्शन कर, शीघ्र अपने वाहन हंससे उतर कर, कनक दण्डके समान अपने शरीरसे साष्टांग प्रणाम कर, चारों मुकुटोंकी कोटिसे(अग्र भाग) चरण युगलको छू कर, आनन्दाश्रुओंके जलसे अभिषेक किया।।६२।।

पश्चात् भगवानको देखकर, शीघ्र ही अपने विमान (हंसरूप वाहन)से उतर कर, भूमि पर आके पृथ्वीके ऊपर अपने शरीरको स्वर्गके दण्डके समान सम्पूर्ण गिराकर, उलटे होके चारों मुकुटोंकी कोटिसे भगवानके चरणोंका स्पर्श कर, पुनः वाणीसे भी प्रणाम कर, प्रेमके आंसुओंसे भगवानके चरण युगलका अभिषेक किया।।६२।।

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ।।६३।।

जैसे जैसे प्रथम देखी हुई महिमाको बार–बार स्मरण करते थे वैसे–वैसे ही बार–बार उठकर बहुत देर तक भगवानके चरणोंमें पडते थे।।६३।।

वहाँसे भी बार-बार उठकर कृष्णके चरणोंमें पड़कर स्तब्ध हो जाते थे कारण कि भगवानकी देखी हुई पूर्वकी महिमा ज्यों-ज्यों याद आती थी त्यों-त्यों बार-बार चरणोंमें पड़कर ब्रह्माजी स्तब्ध हो जाते थे।।६३।।

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैडतेलया ।।६४।।

फिर धीरेसे उठ, आँखे पोंछ, भगवानको देखकर गर्दन नीची कर हाथ जोड़, विनय सहित सावधान ब्रह्माजी कांपते कांपते गद्गद् वाणीसे स्तुति करने लगे।।६४।।

इसके अनन्तर मूर्छाको छोड़कर धीरे-धीरे उठकर, निर्मल नेत्रोंसे मुकुन्द भगवानके दर्शन कर नीची गर्दन कर विनय-पूर्वक हाथ जोड़ सावधान होके कांपते हुए ब्रह्माजी गद्गद् वाणीसे स्तुति करने लगे।।६४।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके दशमस्कन्धमृ प्रक्षिप्त तीन अध्यायृमृसे प्रक्षिप्त द्वितीय अध्यायका (स्कन्धानुसार अध्याय १३) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १४

(प्रक्षिप्त तृतीय अध्याय)

ब्रह्मा द्वारा भगवान्‌की स्तुति

स्तुतिर्ब्रह्मप्रसादश्च वत्सानां पुनरागतिः ।।
स्नेहोपपत्तिः श्रवणे फलं चेति निरूप्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ : इस अध्यायमें पाँच विषयोंका निरूपण है: १. ब्रह्माने भगवानकी स्तुति की है, २.प्रसन्नता, ३.भगवान् बछडोंको ले आए, ४.भगवानमें स्नेह होना, ५.इस कथाके श्रवणसे प्राप्त फलका निरूपण.

प्रारम्भमें व्याकुल हुए ब्रह्माने जैसा रूप देखा उसका वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं.

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ।।१।।

ब्रह्माजी कहने लगे कि हे स्तुति करने योग्य! मेघश्याम वर्ण वाले बिजलीके समान चमकीले पीताम्बरधारी, गुंजाके कर्णभूषण और मयूर पिच्छोंके मुकुटसे शोभायमान, वन मालाओंसे विभूषित, ग्रास, बेंत, सींग और वंशीके चिह्नोसे सुशोभित शरीरवाले तथा कोमल चरणोंवाले गोपालके पुत्र आपकी स्तुति करता हूँ।।१।।

मैं आप की स्तुति करता हूँ, कारण कि आपकी सब स्तुति करते हैं, आप स्तुति करने योग्य हो अतः मुझे भी स्तुति करनी चाहिए. स्तुति करनेकी क्या आवश्यकता है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि मूर्ख भी प्रयोजनके बिना कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करता है तो मैं बिना प्रयोजनके कैसे स्तुति करूंगा. प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि 'ते' तेरे लिये ही स्तुति करता हूँ कारण कि आप (जो इन नेत्रोंसे दिख रहे हो वह) ही फलरूप हो, न कि मैं फलरूप हूँ. ब्रह्मकी प्राप्ति तो तप ज्ञानादिसे होती है स्तुति करनेसे क्या लाभ? इस शंकाके निवारणके लिये कहते हैं कि 'अभ्रवपुषे' मैं उस स्वरूपकी स्तुति करता हूँ जो आपका स्वरूप घनश्याम है. हम लोगोंकेलिये जिसका केवल शब्दसे इंगित वर्णन किया जाता है वह फलरूप नहीं है किन्तु यह ही फलरूप है जो प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहे हैं और जो इन प्राकृत नेत्रोंसे

ही दृश्य हो रहे हैं, तथा प्राकृत अलंकार पहिने हुए और इसी अवस्थामें स्थित हैं– इसको बतानेकेलिये दूसरे विशेषण देते हैं. अभ्र(आकाश)के समान नील (मेघश्याम), बिजलीके समान पीले वस्त्रवाले, गुञ्जाफलके आभूषण पहने हुए मोर पिच्छसे शोभित मुखवाले, वनमालाओंसे विभूषित, दहिसे मिश्रित भातके ग्रासको हाथमें लिये हुए जठर पर लपेटे वस्त्रमें वंशी धारण किये, इतने पदार्थोंसे जिनकी शोभा हो रही है और कोमल चरणवाले, नन्दनन्दन उनका जैसा ही लौकिक व्यवहार देखनेमें आता है, वैसे विषयवाले भगवान् ही हमारे फलरूप हैं।।१।।

१.श्लोकमें 'नौमि' पद 'णु' स्तुतिवाचक धातुका रूप है.

लौकिके प्राकृते भावे यस्य भावः स भक्तिमान्।।
हीनभावं तं विदित्वा योऽन्यथा वेद सोधमः।।का.१।।
यद् गृह्णाति यथैवायं रोधयत्यत्र लौकिके।।
तत् प्रमाणमिहास्माकं नान्यद् भिन्नाधिकारतः।।का.२।।

कारिकार्थ : लौकिक और प्राकृत भाववाले स्वरूपमें जिस मनुष्य (भक्त)का प्रेम है वह ही भक्तिवाला है. और जो इस प्राकृत भाववाले स्वरूपको हीन समझता है वह पुरुष अधम है.

भगवान् लोकमें जिस प्रकारके स्वरूपको गहण करते हैं एवं जैसा भी जनाते हैं, वही स्वरूप हमारे भक्ति मार्गमें प्रमाण है. अन्य प्रकारका रूप दूसरों (जो भक्ति मार्गके अधिकारी नहीं है उन)के लिए प्रमाण है.

आचार्यश्री दोनों कारिकाओंसे यह शिक्षा देते हैं कि भगवान् स्व इच्छासे जो भी रूप धारणकर भक्तोंको दर्शन देते हैं वह स्वरूप लौकिक प्राकृतवत् हैं तो भी हमारे (भक्तोंके) वह ही फलरूप परमतत्त्व[१] है. जो इस स्वरूपको नीची श्रेणीका मानते हैं वे अधम हैं.

१.जैसे गोपियोंने कहा है कि 'अक्षण्वतां फलमिदं' इन्द्रियवानोंका ही यही फल है कारण कि भक्तको वह स्वरूप तथा उसके आभूषणादि आनन्दरूप ही दीखते हैं. और अभक्तको प्राकृत व मायिक, अतः वे अधम हैं–अनुवादक.

इस दृश्यरूपको ही फलरूप कैसे कहते हो? यह तो केवल दिखावा (मायिक) है अतः श्रुति प्रमाण सिद्ध स्वरूपको फलरूप समझ उसकी प्रार्थना करो. इस शंकाको मिटानेके लिए निम्न श्लोक कहते हैं.

अस्यैव देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य तनुभूतमयस्य कोऽपि ।।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण साक्षात् तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ।।२।।

हे देव ! मुझ पर अनुग्रह करनेवाली, स्वइच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाली यह आपकी मूर्तिकी जो पञ्चभूतोंसे बनी हुई नहीं है उसको कोई भी विचारयुक्त मनसे जान नहीं सकता है तो आपके साक्षात् स्वतः पुरुषार्थ रूप स्वअनुभूति स्वरूपकी महिमाको कौन जान सकेगा ? ।।२।।

यह प्रत्यक्ष देखनेमें आनेवाला स्वरूप भी हमारे लिये महान् फल है. जिसके स्वरूप और प्रभाव जाननेमें आवे वह स्वरूप ही फल, अभिलषित तथा प्यारा होता है. हम लोगोंको तो इसके भी प्रभाव और स्वरूप समझमें नहीं आते हैं अतः इसकी भी फलरूपसे धृष्टता कर ही प्रार्थना करते हैं. श्लोकमें 'हे देव' शब्दसे बताया गया है कि यह स्वरूप ही उपासना करने योग्य है. इस वपु(शरीर)की महिमा विचारयुक्त मनसे भी मैं 'ब्रह्मा' भी नहीं जान सकता हूँ. 'किसी अनन्तर चक्षुधारी धीरने प्रत्यगात्माको देखा' इस पक्षको यहां स्वीकार नहीं करते हैं. जो कि यह स्वरूप मेरे पर अनुग्रहवाला है अर्थात् मेरी प्रार्थनासे मुझ पर कृपा कर यह स्वरूप धारण किया है. मेरे कहनेसे गोकुलमें पधारे, अब भी मुझ पर कृपा कर प्रकटे हैं अतः यह रूप ब्रह्माके (मेरे) लिये ही है. तो इसका माहात्म्य ब्रह्मा क्यों नहीं जान सकते हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह अवतार 'स्वेच्छामय' है. अपनी इच्छावाला है, इच्छामें तो कोई अपराध करे तो भी उसके ऊपर कृपा की जा सकती है, वहां कोई भी नियम लागू नहीं हो सकता है. अतः मेरे पर अनुग्रह ही करेगा ऐसा नियम नहीं है. इस पर काल कर्मादिकोंका भी नियामकत्व नहीं है उनके नियामकत्व न होनेसे जाना जाता है कि भगवानकी इच्छा ब्रह्माके अनुकूल है, इससे अनुग्रह ही करेंगे यह कल्पना की जा सकती है. ऐसा क्यों कहते हो कि कालादिके आधीन यह स्वरूप नहीं है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि कालादिके आधीन वह होता है जो पञ्चभूतोंसे बना हुआ शरीर हो. यह पाँच भूतोंसे बना हुआ नहीं है, किन्तु स्वेच्छामय है. अतः कोई भी एवं मैं भी जहां इस रूपकी महिमा नहीं जान सकते हैं तो साक्षात् अशेष पुरुषार्थरूप, सच्चिदानन्द स्वरूपकी महिमाको कौन जान सकेगा. यद्यपि वह भी यही है तो भी प्रतीति न होनेसे उसको पृथक् फलरूपसे वर्णन किया गया है।।२।।

यदि ब्रह्मके स्वरूपका ज्ञान होना अशक्य है तो उसकेलिए प्रयत्न क्यों

करते हैं? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोक द्वारा करते हैं.

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये
प्रायशोजित जितोप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।३।।

हे अजित ! ज्ञान प्राप्तिकेलिए परिश्रमका त्यागकर, जो लोग सत्पुरुषोंके मुखसे गाई हुई आपकी कीर्ति कानमें आते ही शरीर, वाणी तथा मनसे नमन करते हुए जीते हैं उनने आपके स्थान (तीर्थ, मन्दिर आदि)में स्थित ही आप अजितको प्रायः जीत लिया है अर्थात् अपने वशमें कर लिया है।।३।।

ज्ञान दो प्रकारका है. १.भगवानके स्वरूपका ज्ञान, २.अपने (जीव) स्वरूपका ज्ञान. इन दोनोमें अपने स्वरूपका ज्ञान भी भक्तिसे प्राप्त होता है. भगवानके स्वरूपका ज्ञान तो किसीको भी नहीं होता है. कारण कि भगवानके दर्शनसे वा उनके स्वरूपका वर्णन श्रवण करने मात्रसे उसका पूरा ज्ञान नहीं होता है. भक्तिसे भी तत्त्व हृदयमें आ जाता है, उससे प्रवेश उपयोगी जितना ज्ञान अपेक्षित है उतना ज्ञान हो जाता है, अतः ज्ञानकेलिये परिश्रम करना छोड़कर देशके दोष विघ्नकारक न हों इसलिए आपके द्वारिका आदि स्थानोंमें स्थित अथवा जहां कहीं भी स्थित सत्पुरुषोंके द्वारा कही गई भगवानकी कथा जब अपने कानमें आती है तब शरीर, वाणी और मनसे आपको ही प्रणाम करते हुए जो लोग जीवित रहते हैं वे पहलेसे ही प्रसिद्ध हैं. बहुत क्या कहें? उन्होंने अजित आपको भी जित लीया हैं. यह एक ही सरल मार्ग सबकेलिये पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाला प्रसिद्ध है. आरम्भमें ही आपके स्थानमें रहनेवालोंको भोजन आदिका कष्ट नहीं होता है यह स्वतः सिद्ध है. सत्पुरुष सर्वत्र भगवदाज्ञासे परिभ्रमण करते हैं उनका यही कर्तव्य है. भगवानके गुणगान करनेमें वे अगुए ही होते हैं. उसमें भी कथा जानकर ही कहनी वैसा नियम वहां नहीं है. केवल भगवानसे सम्बन्धित कथा ही होनी चाहिए. युक्ति-युक्त वा अनुपपन्न हो उसका विचार नहीं करना चाहिए. वह विना प्रयास कानमें आ जाती है किन्तु वह काया, वाणी और मनसे नमन योग्य है. उस वार्ताको शरीर, मन तथा वाणीमें इस प्रकार स्थान देना जैसे उसमें दुर्भावना उत्पन्न न होने पावे. उसके विरुद्ध विचार न करने चाहिये इतना ही कृत्य है. यहां (भक्ति मार्गमें) जीवन ही साधन है न कि कर्म करने आदि साधन है.

श्लोकमें आये हुए 'प्रायशः'का भाव बताते हैं कि वे (भक्ति पथिक) यदि अन्य भाव न लावें अथवा कालादिक प्रतिबन्धक हैं केवल जीवित रहकर श्रवणसे क्या होगा? इस प्रकारके भाव न लावें तो यही (जीवन) एक सरल साधन सर्व सिद्धि कारक है. अतः इस प्रकार (जीवित रहकर भगवद्गुण श्रवणसे) होनेवालोंका मोक्ष होगा. मेरा तो प्रथम श्लोकमें कहे हुए भगवानके स्वरूपसे ही मोक्ष होगा. इस प्रकार स्वतन्त्र (प्रत्यक्ष दर्शनके) पक्षका निरूपण किया है।।३।।

१. जीवनको साधन कहनेका आशय यह है कि भगवद्गुण श्रवण जीवनमें हो सकते हैं– अनुवादक

जो लोग आत्म–ज्ञान प्राप्तिकेलिए प्रयत्न करते हैं और उससे पुरुषार्थ सिद्ध करनेकेलिए प्रयास करते हैं वे भ्रान्त हैं, यह निम्न श्लोकमें दृष्टान्त देकर समझाते हैं.

श्रेयः सुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ।।४।।

हे विभो! कल्याणके प्रवाहको प्रकट करनेवाली आपकी भक्तिको छोडकर, जो लोग केवल आत्मबोधकी प्राप्तिकेलिए क्लेश करते हैं उनको केवल यह क्लेश ही फलरूपमें प्राप्त होता है जैसे भूसा कूटनेवालेको दुःखके अतिरिक्त कोई लाभ नहीं है ।।४।।

जिससे कल्याणके झरने बह रहे हैं ऐसी चिन्तामणिरूपसे आत्म–ज्ञानकी प्राप्ति होती है उसको त्यागकर केवल यही चाहते हैं कि स्वरूपका ज्ञान ही हो इस प्रकार जो लोग प्रयत्न करते हैं उनका यह प्रयत्न केवल क्लेशकारक ही होता है. क्लेशके अतिरिक्त कुछ भी फल नहीं मिलता है. उस प्रयत्नसे मुख्य फल नहीं होगा किन्तु गौण फल तो मिलेगा? इस शंका निवारणार्थ कहते हैं कि दूसरा प्रासंगिक फल भी नहीं होता है. तपस्यादि प्रयत्न करनेसे दूसरे फलकी सिद्धि क्यों नहीं होगी? अथवा अन्तःकरणकी शुद्धि तो होगी? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे भूसा कूटनेसे किसी प्रकारका फल तो नहीं मिलता है किन्तु वह भूसा ही नष्ट हो जाता है. वैसे ही सत्त्वमूर्तिकी भक्तिका स्वीकार किये बिना तथा सत्त्वगुणका अभाव रहनेसे, अन्तःकरणकी शुद्धि वा ज्ञानादिककी प्राप्ति नहीं होती है. मूर्खतासे उसमें प्रवृत्त हुए लोग दुःखी ही होते हैं. इसमें किसी प्रकारका वाद नहीं अर्थात् यह निश्चय ही है।।४।।

इस मार्गमें आए हुए बहुतोंको फल प्राप्ति हुई है. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ।।५।।

हे भूमन् ! हे अच्युत ! इस लोकमें पहले बहुतसे योगीजन अपनी चेष्टा और कर्मोको आपमें अर्पण कर, उन अर्पित कर्मोसे प्राप्त, कथा श्रवणसे उत्पन्न भक्ति द्वारा ही, आत्मज्ञानको प्राप्त कर अनायाससे आपकी परागतिको प्राप्त हुए हैं।।५।।

हे भूमन् ! इस (भक्ति) मार्गमें बहुत संख्यावाले योगीजन जिन्होंने योगसे भक्तिके माहात्म्यको जान लिया है इस कारणसे ही अपनी चेष्टाएँ एवं सर्व कर्म अर्पण कर दिये हैं उससे अथवा आपकी सेवारूप कर्मसे प्राप्त भक्ति द्वारा ही आत्मस्वरूपको जानकर हे अच्युत जिस प्रकारसे आप जाते हो उसी गतिको वे प्राप्त हुए हैं. अनन्तर आपके अनुयायियोंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती है. अनायाससे ही परम अलौकिक गतिको प्राप्त होते हैं अतः आत्मज्ञानकी अपेक्षासे भी यही मार्ग उचित है।।५।।

इस तरह लौकिक प्रकारका समर्थन कर तथा वैदिक प्रकारकी व्यवस्था (शास्त्रकी मर्यादा)से निरूपण कर एवं पुराणोंमें कहे हुए प्रकारसे भी यह बताया कि यह स्वरूप ही उपासना करने योग्य है. अन्तर्यामी रूप उपास्य नहीं है. यों कहनेकेलिए भी इस (श्रीकृष्ण स्वरूप)के माहात्म्यका वर्णन करनेके पहले सरल रीतिसे अन्तर्यामी रूपका निरूपण निम्न श्लोकमें करते हैं.

अथाऽपि भूमन् महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ।।६।।

हे भूमन् ! यों तो आपके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंका ज्ञान होना कठिन है तो भी आपके निर्गुण स्वरूपकी महिमा तो विकार रहित आत्मानुभव युक्त अन्तःकरणसे ही अहंरूप ज्ञानियोंको अनन्य भावसे अनुभवमें आती है परन्तु दूसरे प्रकारसे नहीं।।६।।

हे सर्वत्र व्यापक ! गुण रहित आपकी महिमाका शुद्ध ज्ञान ज्ञानियोंको अन्तःकरण ही कराता है. 'अन्तःकरण' शब्द श्लोकमें तृतीया विभक्तिमें 'अमलान्तरात्मभिः' आया है, साधारण रीतिसे तृतीया विभक्ति 'करण' कारकमें

आती है किन्तु यहां वह हेतुमें दी गई है अर्थात् महिमाको जाननेमें ज्ञानियोंका शुद्ध अन्तःकरण कारण है. 'महिमा' ज्ञानका विषय है अर्थात् 'महिमा' जाननेके योग्य है. अतः जाननेकेलिये जैसे कर्ता योग्य होता है वैसे ही कर्म भी योग्य होना चाहिए. इसको यों समझना चाहिये कि जैसे 'महिमा' स्वयं जान नहीं सकती है, किन्तु उसको जाननेवाला शुद्ध अन्तःकरण उसका योग्य कर्ता है. वैसे ही गांव भी जड़ होनेसे वहां भी जा नहीं सकता है अतः 'ग्रामो गन्तुमर्हति' वाक्यका अर्थ होगा, मनुष्य गांवको जाता है तब कर्मकी योग्यता सिद्ध हो जायेगी, आशय समझमें आ जायेगा. जैसे निर्मल दर्पणमें विना प्रयासके मुख स्वयं प्रकाशित होता है वैसे ही अमल अन्तःकरणमें महिमा स्वतः प्रकाशित हो जाती है. शुद्ध अन्तःकरण सत्त्वरूप होनेसे महिमाका ग्रहण कर लेता है, शुद्ध अन्तःकरण महिमाके ग्रहण नहीं करनेमें किसी प्रकारका कोई कारण नहीं है. यदि कोई कहे कि शुद्ध सतोगुणरूप अन्तःकरण विकारवाली वस्तुको ग्रहण नहीं करता है तो इस शंकाके मिटानेकेलिये श्लोकमें 'अविक्रियात्' शब्द दिया है कि उसमें (महिमामें) किसी प्रकारका विकार नहीं है. शुद्धचित्त आत्मगामी होनेसे आत्मामें स्थिर पदार्थको ही ग्रहण करता है. महिमा आत्मामें ही स्थित है, इस कारणसे भी महिमा ग्रहण करनेके योग्य है. इसको सिद्ध करनेकेलिये श्लोकमें 'स्वानुभवात्' पद दिया है. आत्माके अनुभवसे ही महिमाका अनुभव होता है. यदि 'स्व' शब्दका अर्थ 'महिमा' लिया जाय तो भी महिमाका अन्तःकरणमें अनुभव होनेसे आत्माका भी अनुभव हो जाता है. जो निर्गुणकी ऐसी महिमा न होवे तो अन्तःकरणमें ज्ञान ही न हो सके. इस कारणसे आत्माका ग्रहण करते हुए वह अनुभव अपने उत्पन्नकर्ताका ज्ञान कराता है अथवा आत्माकी यह महिमा अनुभवरूप ही है. आत्मा ही अनुभवरूप है. आत्मा अनुभवरूप होनेसे आप ही अपनेको प्रकाश करता है और जब अन्तःकरण शुद्ध होकर ब्रह्मरूप हो जाता है तब रूपवाले पदार्थोंको वह ब्रह्मरूप अन्तःकरण ग्रहण नहीं करता है किन्तु महिमा तो ब्रह्मरूप ही है. ब्रह्मसे पृथक् महिमाका कोई रूप नहीं अतः उसको ब्रह्मरूप अन्तःकरण जान सकता है. इसलिए श्लोकमें 'अनन्य बोध्यात्मतया' पद आया है, जिसका भावार्थ यह है कि 'महिमा'का स्वरूप दूसरेसे (अन्तःकरणसे) जाना जा सकता है क्योंकि इसका स्वरूप आत्मरूपसे प्रकाशित होते हुए भी भिन्न प्रतीत होता है उसका कारण है कि ये अन्तःकरणके धर्म ही बताये गये हैं. तात्पर्य

यह है कि सर्व प्रकारके विकारोंका त्याग कर, प्रपञ्चके विषयोंको ग्रहण करनेवाली वासना रहित होके ज्ञानरूप हुआ, स्वतः प्रकाशमान् स्वरूप अन्तःकरण भगवानकी महिमाको ग्रहण करता है।।६।।

निम्न श्लोकमें बताते हैं कि आपके सगुण स्वरूपकी महिमाको कोई भी नहीं जान सकता है.

गुणात्मनस्तेपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेस्य ।।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ।।७।।

जगतके हितार्थ, सगुण स्वरूपसे प्रादुर्भूत आपके गुणोंकी गणना कौन करनेमें समर्थ है? जो अति निपुण पुरुष विशेष समय लगाकर पृथ्वीके रजःकण, आकाशके हिमकण और नक्षत्र आदिके किरणोंके परमाणु भी गिन सके वे भी आपके गुणोंको नहीं गिन सकते हैं।।७।।

सर्व गुणरूप भगवान् ही प्रकट हुए हैं. वे गुण अनन्त हैं, उनकी गणना करनेमें कोई भी शक्तिमान नहीं है. कारण कि सर्व जगतके हितार्थ अवतार धारण किये हैं. बहुत मिलकर भी गुणोंकी गणना नहीं कर सकते हैं. विशेष सामर्थ्यवाले पुरुष भी बहुत समयसे भूमिके रजःकण गिनते हैं. पचास करोड़ समूहोंकी गणनामें एक दूसरे समूहके समान वह (रजःकण समूह) भी कदाचित् गिना जा सके, आकाशके हिमकण और नक्षत्र आदिके किरणोंके परमाणु कदाचित् गिननेमें भी आ जावें क्योंकि वे तामस (भूमिके रजःकण), राजस (हिमकण) और सात्त्विक (नक्षत्रादि) सर्वहितार्थ प्रवृत्त होनेके कारण परिमित हैं अतः वे गिने जा सकते हैं, किन्तु भगवानके गुण अपरिमित हैं इससे वे गिनेनेमें नहीं आ सकते हैं।।७।।

आपके गुण असीम हैं अतः गुणोंके ज्ञानका आग्रह छोडकर जो सगुणोपासक हमारे कहे हुए प्रकारसे यदि प्रवृत्ति करते हैं तो कृतार्थ होते हैं. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तत् तेऽनुकम्पां प्रसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन् नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ।।८।।

इसलिए आपकी कृपाकी राह देखता हुआ, अपने कर्मफल भोगता हुआ, मन–वाणी और शरीरसे आपको प्रणाम करता हुआ, जीवन धारण करता है वह मुक्ति पदका दायभागी(हिस्सेदार) होता है।।८।।

इस कारणसे आपकी कृपाकी राह देखता रहता है, कि कब कृपादृष्टि

होगी ? तब तक अपने किये हुए कर्मानुसार प्रारब्ध भोगोंको भोगता हुआ हृदय ही मन है. वाणी, मन और शरीरसे आपको प्रणाम करता हुआ जो जीवन यापन करता है वही मुक्तिमें इस प्रकार भागीदार होता है, जैसे पिताके द्रव्यमें जीवित पुत्र होता है।।८।।

इस प्रकारका भगवद्रूप ही उपासनाके योग्य है, यों कहकर अब निम्न श्लोकमें ब्रह्माजी अपने अपराधकी क्षमा याचना करते हैं.

पश्येश मेनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ।।९।।

हे ईश्वर ! मेरी दुर्जनता तो देखिए कि आप जो आदि और अन्त रहित हो तथा मायावियोंको भी मोहित करनेवाले तथा सबसे 'पर' आत्मा हो, उन पर अपनी माया फैलाकर आपके ऐश्वर्यको देखनेकी इच्छा की. जैसे अग्निके आगे उसकी किरण क्या चीज है ? कुछ नहीं. वैसे ही आपके सामने मैं क्या हूँ ? कुछ नहीं हूँ।।९।।

हे ईश! मेरी दुष्टताको देखो. अपनी दुष्टता बताते हैं कि आप जो अनन्त[१] तथा आद्य[२] हो, अन्दर बाहर सर्वत्र नियामकरूप 'पर' आत्मा हो और मायावियों को भी मोहित करनेवाले[३] हो उन पर अपनी माया फैलाकर आपका वैभव देखनेकी इच्छा की. इस प्रकार कहनेसे ब्रह्माने यह बताया कि मैंने यह कार्य आपका ऐश्वर्य देखनेकेलिये किया है, अतः मैं निरपराधी हूँ. किन्तु तो भी ऐसा करना भी मेरेलिये उचित नहीं था. उचित न होनेमें दृष्टान्त देकर कारण बताते हैं कि मैं छोटा कौन? जैसे अग्निके कणको अग्निके प्रकाशको देखनेकी इच्छा करना योग्य नहीं है. वैसे ही मुझे भी ऐसा करना योग्य नहीं था।।९।।

१.जिसका अन्त कहां और कब होगा जिसका पता न हो.
२.जिसका आदि कब है अर्थात् कब उत्पन्न हुआ जिसका भी पता न हो.
३.यह विशेषण इस प्रकरणमें उपयोगी है. अर्थात् जो मैं ब्रह्मा मायावी हूँ उसको भी आपने मोहित कर दिया है. इसलिए श्रीसुबोधिनीजीमें यहां आचार्यश्रीने 'प्राकृतोपयोगी विशेषणमेतत्' पंक्ति दी है.

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।।
अजावलेपान्धतमोन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ।।१०।।

हे अच्युत ! इसलिए आप मेरे पर दया करो. मैं तो रजोगुणसे हूँ, उत्पन्न,

अनजान हूं. इस कारणसे मैं अपनेको आपसे पृथक्, अजन्मा, जगत्कर्ता, ईश्वर समझता हूं ऐसे मदके गाढ अन्धकारसे अन्धदृष्टि हो गया हूं. परन्तु आपको यों समझना चाहिए कि यह मेरा दास है, दास समझकर क्षमा ही करनी चाहिए।।१०।।

मैंने जो कुछ किया है वह अनुचित ही है तो भी आप क्षमा करो. क्योंकि आप 'अच्युत' हो. दुष्ट किसी प्रकारका भी आपके प्रति अनुचित करे तो भी आपकी कोई क्षति नहीं होती है. मेरा यह स्वाभाविक दोष है क्योंकि रजोगुणसे पैदा हुआ हूं. रजोगुणीको अभिमान होता ही है. रजोगुणके साथ आपके माहात्म्यका अज्ञान मिल जानेसे मस्तिष्कमें यह गर्व आ गया कि मैं पृथक् ही ईश हूं. केवल इतना ही नहीं किन्तु दूसरा भी अभिमानका कारण यह हुआ कि मैं 'अजन्मा' हूँ किसीसे भी उत्पन्न नहीं हुआ हूं. इस गाढ गर्वसे मैं चक्षुहीन हो गया, देख नहीं सका कि मैं कौन हूँ. वास्तविकमें तो मैं अज(बकरा) हूँ. अतः क्षमा करे. आप जानते ही हैं कि ब्रह्माका इतना महत्त्व मेरे कारण ही है. मुझसे ही यह (ब्रह्मा) सनाथ है. यदि मैं क्षमा न करूंगा तो ब्रह्मा अनाथ जैसा हो जायेगा, अतः मुझे अनाथ न बताते हुए क्षमा करें मैं दास हूँ अतः क्षमाके योग्य हूँ।।१०।।

इस प्रकार ब्रह्माजी अपने आधिभौतिक स्वरूपका तिरस्कार कर अब निम्न श्लोकमें आधिदैविक रूपका भी तिरस्कार करते हैं.

क्वाहं तमो महदहङ्खचराग्निवार्भू संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ।।११।।

प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वीसे वेष्टित ब्रह्माण्ड रूप घटमें सप्तवितस्ति(बारह अंगुलीका नाप) प्रमाण शरीरवाला मैं कहाँ ? और इस प्रकारसे अनेक ब्रह्माण्डरूप जिनके रोमकूप झरोखोंमें फिरा करते हैं वैसे आपकी महिमा कहाँ ?।।११।।

प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन आठ आवरणोंसे वेष्टित ब्रह्माण्डरूप घड़ेमें 'सप्तवितस्ति' प्रमाण शरीरवाला मैं हूँ, यह नाप मस्तकको छोड़कर शेष शरीरका है और इस प्रकारसे असंख्य ब्रह्माण्डरूप परमाणुओं, जिनके रोम कूपरूप झरोखोंमें इस प्रकार फिरा करते हैं जैसे झरोखोंमें सूर्य किरणोंके त्रसरेणु फिरा करते हैं. वैसे महान् आपका महत्त्व कहाँ? और मैं कहां? इस प्रकार अपने स्वरूपका वर्णन कर यह बता दिया कि

आपकी परीक्षा करनेकी मुझमें योग्यता नहीं।।११।।

१.झरोखोंसे आनेवाले सूर्यकी किरणोंके रज:कणको त्रसरेणु कहते हैं. उसका तीसवां भाग 'परमाणु' होता है.

ब्रह्मा अपने आध्यात्मिक स्वरूप द्वारा अपराधकी क्षमा याचना निम्न श्लोकसे करते हैं.

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ।।१२।।

हे अधोक्षज ! गर्भमें स्थित बालकका पादोंको उछालना क्या माताका अपराध गिना जाता है? भाव और अभाव (स्थूल-सूक्ष्म वा कार्य-कारण) नामसे भूषित हुआ यह सर्व जगत् आपके उदरसे कुछ भी बाहिर है ? नहीं है।।१२।।

गर्भमें स्थित बालकका पादोंको उछालना क्या माताके अपराधकेलिये होता है? पैरोंका उछालना अपराध नहीं गिना जाता है.[१] यदि कहो कि यह दृष्टान्त विषम[२] है तो उसके उत्तरमें दूसरा अर्थ श्लोक कहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् जो भाव (स्थूल) और अभाव (सूक्ष्म) नामसे भूषित(प्रसिद्ध) है क्या वह आपके उदरसे बाहिर है क्या? सब (जगत्) निश्चयसे आपके उदरमें है. मैं भी सबमें आ जानेसे आपके उदरमें ही हूँ इसलिए आपको यह मेरा अपराध न समझना चाहिए. इस प्रकारसे ब्रह्माने जो अपराध क्षमा करानेकी प्रार्थना की है वह साधारण पक्ष है।।१२।।

१. अपराध इसलिए नहीं गिना जाता है कि वह बालकका सहज धर्म है, यों समझ माता उसको अपराध नहीं समझती है. उस दुःखको सहन कर मातृ-धर्मका पालन करती है -अनुवादक.

२.आप ब्रह्मा ईश हो और वह छोटा बालक उसके साथ आपकी बराबरी नहीं हो सकती है. इसलिए आपका दिया यह दृष्टान्त विषम है -अनुवादक.

अब निम्न श्लोकमें विशेष प्रकारसे अपना पुत्रपन और भगवानका पितापन बताते हैं.

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ।।
विनिर्गतोजस्त्वितिवाङ् न वै मृषा किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ।।१३।।

हे ईश्वर ! प्रलय समयमें एकत्रित हुए समुद्रोंके जलमें नारायणके उदरके

नाभि नालमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है. यह कहना निश्चयसे झूठा नहीं है. क्या मैं आपसे पैदा नहीं हुआ हूँ।।१३।।

तीनों जगतके प्रलय समयमें जो समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं उस इकट्ठे हुए प्रलय जलमें नारायणकी नाभि कमलसे ब्रह्मा प्रकट हुआ है यह वाणी बिलकुल झूठी नहीं है क्योंकि उपाख्यान भी सत्य अर्थका प्रतिपादन करते हैं. इसीसे हे ईश्वर ! क्या मैं आपसे पैदा नहीं हुआ हूँ? निश्चयसे उत्पन्न हुआ ही हूँ।।१३।।

यदि कहो कि 'मैं नारायण नहीं हूँ' तो निम्न श्लोकमें सिद्ध करते हैं कि आप ही नारायण हो.

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्मास्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ।।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात् तच्चापि सत्यं न तवैव माया ।।१४।।

क्या आप नारायण नहीं हो? सर्व प्राणियोंके आत्मा तथा अधीश्वर हो और अखिल लोकके साक्षी हो. नरसे उत्पन्न जिसका आश्रय स्थान है वह नारायण आपका अंग है, वह भी सत्य नहीं है किन्तु आपकी ही माया है।।१४।।

तो क्या आप नारायण नहीं हो? ऐसा नहीं है आप नारायण ही हो. क्योंकि आपके नारायणत्वको सिद्ध करनेवाले अनेक कारण हैं. वे बताते हैं.

(१) सकल देहधारियोंकी आत्मा हो.

(२) 'नार' शब्दका अर्थ जीव समूह है उसमें निवास करते हो. आत्मा सर्वभूतोंमें रहती है जैसा कि गीतामें आपने ही कहा है कि हे गुड़ाकेश ! हे अर्जुन ! मैं जो आत्मा हूँ वह सर्व भूतोंके अन्तःकरणमें रहता हूँ.

(३) 'नारं' को अयते जो प्रेरणा करता है वह नारायण है.

(४) 'नार' शब्दका अर्थ यह भी होता है कि 'नर'(पुरुष)से उत्पन्न तत्त्व 'नार' है उनका अधीश्वर साक्षात् नारायण है. ज्ञानी इस प्रकार जानते हैं.

(५) 'नारंको' 'अयते' जो जानता है इस अर्थसे भी आप नारायण हो क्योंकि अखिल लोकके साक्षीहो. यदि कहो कि आपके ये अर्थ यथार्थ नहीं हैं नारायण का अर्थ तो 'जल' है जिसे नार कहते हैं, ये जल नरके पुत्र हैं, वे जल पहले उसके निवास-स्थान थे इस कारणसे यह नारायण है. इस वास्ते नरसे उत्पन्न जल जिसका घर है वह नारायण है. मैं तो नारायण नहीं हूँ इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'नारायणोऽङ्ग' वह नारायण आपका ही अंग है. क्योंकि पुरुष है. श्रुति कहती है कि निश्चयसे प्रसिद्ध है कि पुरुष नारायण है उसने कामना की. विष्णुके

पुरुष नामसे तीन रूप प्रसिद्ध हैं. प्रथम रूप महत्तत्त्वको उत्पन्न करनेवाला है. द्वितीय ब्रह्माण्डमें स्थित. तृतीय सर्वभूतोंमें वास करनेवाला इनको जान लेने पर मुक्त होता है इस वाक्यसे नारायण आपका अंग (अवतार) है और नारायण शब्दकी वास्तविक व्युत्पत्ति इस प्रकार हो नहीं सकती है. कारण कि जलमें निवास तो केवल दिखावे मात्र है. जो वस्तु है ही नहीं उससे शब्द उत्पन्न नहीं होता है यों न होवे तो चांदीके दानके बदलेमें शुक्ति दी जावे वैसा नहीं होता है. इससे 'नारायण' शब्दका यह यौगिक अर्थ सिद्ध नहीं होता है. उसको स्पष्ट करते हैं कि वह भी सत्यरूप नहीं है. जल आपका निवास–स्थान है यह सत्य नहीं है क्योंकि यह सब आपकी माया ही है।।१४।।

१.आप प्रेरक हो इसके नारायण हो – अनुवादक.

४.आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः, अयनं तस्य ताःपूर्वं तेन नारायणः स्मृतः.

वह निवास–स्थान जल मायिक था उसकी सिद्धिके लिए निम्न श्लोकमें तर्क(दलील) देते हैं.

तत् चेद् जलस्थं तव सत् जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ।।१५।।

हे भगवन्! यदि आपकी वह जगदाश्रय रूपमूर्ति जलमें ही स्थित होती तो मैंने उस समय[१] क्यों न देखी? अथवा हृदयमें क्यों न देखनेमें आई? और फिर तत्क्षण क्यों न देखनेमें आई? ।।१५।।

वह तनु यदि सत्य हो और जलके ऊपर विराजमान होता तो मैंने उस समय क्यों न देखा? जो स्थूल पदार्थ परिच्छिन्न योग्य स्थल पर होता है वह देखनेमें आ जाता है, जैसे घड़ा देखनेमें आता है उस समय मैंने नहीं देखा इससे जाना जाता हैं कि वह (शरीर) जल पर नहीं है, यदि कहें कि शरीर तो था किन्तु आप उसके दर्शन करनेके योग्य अधिकारी नहीं थे इसलिए नहीं देखा. इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि यदि मैं अयोग्य था तो उसी समय मैंने हृदयमें आपका दर्शन क्यों किया? हृदयमें तो जल नहीं है, अतः नारायण शब्दका तात्पर्य जलमें स्थिति दिखानेका नहीं है और फिर तत्क्षण क्यों नहीं देखनेमें आये? जबकि मैं उस नारायणका पुत्र हूँ तो मुझे क्यों दर्शन नहीं दिये? पिता और पुत्र दोनों आपसमें प्रत्यक्ष दिखते हैं. उन दोनोंमें परस्पर देखनेकी अयोग्यता नहीं होती है. अतः वास्तविक नारायण तो आप ही हैं न कि वह है. नारायण शब्दकी व्युत्पत्ति

वास्तविक यह है कि 'नारं अयते प्रविशति यं इति नारायणः' सर्व जीव समूह जिसमें प्रविष्ट होकर रहता है वह जगदाधार नारायण है. जगतका आधार आश्रय आप ही हो ,न कि वह (जलमें स्थितरूप) नारायण है।।१५।।

१. कमल नालमें बैठ अन्वेषण करते समय.

उसके उदरमें स्थित होकर मैंने जगत् रचना की होती तो वह मेरी कृति व्यर्थ हो जाती क्योंकि उसके उदरमें जगत् सहज नहीं है जगत् तो इस आपके स्वरूपमें ही है. इसका निरूपण इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य ।।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ।।१६।।

हे मायानाशक! इस ही अवतारमें अपने बाहिर प्रकट इस समग्र जगतको, अपनी माताको, अपने उदरमें दिखला कर यह सिद्ध कर दिखाया है कि यह प्रपञ्च मायिक नहीं है।।१६।।

हे माया निवारक! हे मायाको मिटानेवाले! इस विशेषणसे यह बताया कि भगवानके साथ मायाका सम्बन्ध मात्र नहीं है. बाहर प्रकट इस समग्र प्रपञ्चको अपने उदरमें माताको दिखाकर प्रपञ्च मायिक नहीं है यह (१०-८-४० के उत्तरार्धानुसार) प्रमाणित कर दिखाया है. इससे सत्य प्रपञ्चके आप ही आधार होनेसे आप ही नारायण हो।।१६।।

वही पुरुष नारायण है जो विश्वका आधार है उसमें ही विश्व दिखता है. इस कारणसे प्रपञ्चके मध्यमें स्थित मैं सूक्ष्म नारायण नहीं हो सकता हूँ इस शंका निवारणार्थ निम्न श्लोक कहते है.

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।।
तत् त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ।।१७।।

जिस नारायणकी कोखमें आत्मा सहित यह सर्व प्रपञ्च जिस प्रकार भासता है उसी प्रकार वह सर्व प्रपञ्च आपमें भी भास रहा है. क्या यह मायाके बिना दिखता है? ।।१७।।

जिस नारायणके उदरमें आत्मा सहित सर्व प्रपञ्च जिस प्रकार भासता है वैसे ही आपमें भी यहां ही भास रहा है. अतः उसमें कुछ भी विशेषता न होनेसे आप भी नारायण हो. यदि आप कहो कि मुझमें तो भेद, परिच्छेद और अन्यथा प्रतीति देखनेमें आती है तो मैं नारायण कैसे हो सकूंगा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि

यह सब अन्यथा प्रतीति मायाके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है. माया ही अन्यथा प्रतीति करा रही है ,वास्तवमें तो पुरुष पक्षसे भी आप नारायण ही हो।।१७।।

नारायण, पुरुषोत्तम, सब कुछ वही है अन्य कोई भी नारायण हो नहीं सकता है ऐसी शंकाका निवारण करनेके लिए निम्न श्लोक कहते हैं.

अद्यैव त्वदृतेस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित–
मेकोसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।।
तावन्तोऽपि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता–
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ।।१८।।

आपके बिना अन्य समस्त जगतका रूप मायिक रूप है. क्या यह आपने मुझे नहीं दिखाया? प्रथम तो आप एक ही थे, पश्चात् ग्वालबाल और वत्सरूप हो गए. पुनः वे सब रूप चतुर्भुज बन गए. अनन्तर देखा तो मेरे सहित सब तत्त्व और वत्सोंकी सेवा कर रहे हैं. इसके पश्चात् देखो तो उतने ही ब्रह्माण्ड रूप बन गए. इसलिए परिच्छेद रहित अद्वैत ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है. अर्थात् आप उस परब्रह्मसे पृथक् नहीं हो, जो अवशेष रहता है वह आप ही हो।।१८।।

आज ही आपने मुझे यह दिखा दिया कि मेरे बिना अन्य सर्व प्रपञ्चका पृथक् अस्तित्व नहीं है. जो पृथकता दिखती है वह मायापना है. जो जगतको भगवानके अतिरिक्त अन्य भिन्न पदार्थ मानते हैं वे आज ही भ्रान्त हैं ऐसा आज ही आपने मुझे समझा दिया. मैंने समझ लिया कि जो कुछ है वह आप ही हो. किस प्रकार आप हो वह प्रतिपादन करते हैं. आप एक हैं. पहले जब मैं बछड़े और बालकोंको चुरा ले गया तब आप एक ही थे. उसके अनन्तर वह एक ही आप व्रजके सम्बन्धी मित्र, बालक और वत्सरूप बन गये. पश्चात् फिर आप ब्रह्माण्डरूप हो गये. क्षणानन्तर वे सब चतुर्भुज स्वरूपसे दर्शन देने लगे. दर्शनके पश्चात् देखा तो ब्रह्माण्डमें रहे हुए मेरे सहित सब उन चतुर्भुज स्वरूपोंकी सेवा कर रहे हैं. इतने जगत् आप ही हो गये. अतः विचार करने पर यह समझमें आया कि जगत् आदि पृथक् कुछ नहीं है, एक अद्वितीय ब्रह्म ही शेष है. इससे निश्चय है कि आप ही नारायण हो. इस श्लोकमें ब्रह्माने इस बातका समर्थन किया कि नारायण श्रीकृष्णके बिना दूसरा नहीं है।।१८।।

अभीसे आप स्वामी, मैं सेवक हूं. इससे स्वामीको सेवकका अपराध एक बार सहन करना चाहिए. यों कहनेके लिए इस श्लोकसे दश श्लोकोंमें सर्व

वस्तुओंका तत्त्व कहते हैं.

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भाति वितत्य मायाम् ।।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोन्त इव त्रिनेत्रः ।।१९।।

आपके स्वरूपको न जाननेवालोंको जैसे सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा है, स्थिति-कर्ता विष्णु है एवं संहार-कर्ता यह शंकर है ऐसा भासता है वैसे अनात्म देहादिकोंमें भी मायाके विस्तारसे आत्मरूप भासता है।।१९।।

जो जन आपकी महिमाको नहीं जानते हैं, वे अब जो कहा जायेगा, उसको 'तत्त्व' समझते हैं. ऐसा जानने पर भी उस तत्त्वसे उनका निस्तार नहीं होगा. कारण कि वह (तत्त्व) भ्रमके कारण तत्त्व समझा जाता है. उनको भविष्यमें निरीश्वर सांख्यादि मतोंके कल्पित तत्त्वोंके ज्ञानसे किसी प्रकारकी सिद्धि न होगी. सिद्धि तो तब होगी जब आपके चरण कमलके अनुग्रहका कण उनको प्राप्त होगा, जिससे मुख्य तत्त्वकी प्राप्ति होती है[१].

उनको (जो भगवानकी महिमाको नहीं जानते हैं एवं मुख्य तत्त्वको न जानकर भ्रमसे अतत्त्वको 'तत्त्व' मानते हैं. जो पहले भ्रम होता है उसको कहते हैं. जो वस्तु आत्मा नहीं है उसको अनात्मा कहा जाता है, जैसे कि देहादिक अनात्मा है किन्तु देहादि भी इन्द्रियोंके कारण आत्मारूपसे भासमान होते हैं. अनात्मरूप देह, इन्द्रियादिकोंमें कर्तापन तथा करणपन कैसे भासता है? मायाके फैलावसे अनात्ममें आत्मबुद्धि हो जाती है. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं, जैसे सृष्टि कार्यमें मैं (ब्रह्मा) कर्ता माना जाता हूँ, वास्तविक तो ब्रह्मा कर्ता नहीं है क्योंकि ब्रह्मा तो देह हैं. भगवानका कर्तापन तो भगवानका है. जगतके पालनमें पालनकर्ता गुणावतार 'विष्णु'को कहते हैं, किन्तु वह भी देह है. यद्यपि विष्णु आपके समान चतुर्भूज है तो भी वास्तविक पालनकर्ता वह नहीं है किन्तु भगवान् ही है, इसी प्रकार यह महादेव भी (श्लोकमें 'ऐष' (यह) शब्द कहकर यह बताया है कि जब ब्रह्मा यों स्तुति कर रहे थे उस समय महादेवजी भी पधार गये थे) प्रलयकर्ता नहीं है. इसमें व्यास सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' प्रमाण देते हैं कि व्यासजीने इस सूत्रमें सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता, एक ही परब्रह्म स्वरूपको माना जाता है. अतः जैसे हम (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर)में उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके कर्तापनकी कल्पना मात्र है, इसी प्रकार देह आत्मा है, इन्द्रियां करणरूप भी आत्मा है (यह भी कल्पना मात्र है) किन्तु देह और इन्द्रियां दोनोंको आत्मा न

माने तो 'मैं देखता हूँ' इस प्रकार (इन्द्रिय और आत्मा दोनोंमें) एक प्रकारका रहा हुआ अनुभव नहीं हो सकता. तात्पर्य यह है कि इन्द्रियां ज्ञानके करण है इसलिए वे देख सकती है तो भी 'मैं देखता हूँ' इस प्रकारका अनुभव आत्माको होता है. यह इसलिए होता है कि इन्द्रियोंको भी आत्मा माना गया है।।१९।।

१.यहां तक जो कहा गया है वह दश श्लोकोंमें कहे हुए तत्त्वका तात्पर्य है.

जो इस प्रकार भ्रम होता है तो निस्तार कैसे होगा? इस शंकाके निवारणकेलिए निम्न श्लोक कहते हैं.

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेजनस्य ।।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ।।२०।।

हे ईश ! हे प्रभो ! हे सृजन कर्ता ! अजन्मा आपके, देवताओं, पक्षियों और जलचर जन्तुओंमें जन्म होते हैं वे दुष्टोंका दुर्मद नाश करने तथा सत्पुरुषोंका अनुग्रह करनेके लिए होते हैं।।२०।।

भ्रान्तोंको अपने स्वरूप तथा तत्त्वके परिज्ञान करानेकेलिये ही अजन्मा होते हुए भी सर्वरूपोंसे अपने वामनरूपसे ऋषियोंमें, रामरूपमें, मनुष्योंमें, वराहरूपसे पशुओंमें, मत्स्य तथा कूर्मरूपसे जल जन्तुओंमें जन्म लिये हैं. यदि आप इस प्रकार जन्म न लेते तो आपका तत्त्व कौन जान सकते थे और कौन आपके स्वरूपादिका उपदेश दे सकते थे, अतः आपका जन्म सत्पुरुषोंके दुर्मदको नाश करनेकेलिये तथा सत्पुरुषों पर अनुग्रहार्थ है. दुष्टोंके निग्रहसे होनेवाले उपद्रव तथा उनके आवेशसे होनेवाला बुद्धिका नाश दोनों दूर हो जाते हैं।।२०।।

उन (अवतारोंके धारण)के अतिरिक्त भी वेदादिसे तत्त्वका परिज्ञान क्यों न कर लेते हैं ? इस प्रकारकी शंकाका निवारण निम्न श्लोकमें करते हैं.

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मञ् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।।
क्वाहो कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ।।२१।।

हे भूमन् ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! आप जो योगमायाको फैलाकर क्रीडाएँ करते हो, आपकी उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जान सकता है ? कि कहाँ, किस प्रकारसे, कितनी और कब होती है।।२१।।

आप तथा आपकी लीलाएँ ही तत्त्व हैं इसको कौन जान सकता है? वेद स्वयं तो मूकके समान अपना अर्थ नहीं बताता है, उसकी व्याख्या करनेवालेका भी अभाव है. श्लोकमें 'कृष्ण'केलिये दिये हुए 'भूमन्' आदि

विशेषणोंका भाव बताते हैं कि:

१. हे भूमन् ! आप सर्व व्यापक हो अतः अल्पज्ञ जीव जिसकी स्थिति एक देशमें है, वह आपको कैसे जान सकेगा? अर्थात् जीव भी आपको तथा आपकी लीलाको नहीं जान सकता है.

२. हे भगवन् ! ऐश्वर्यादि षड्गुण आपमें हैं, जीवमें कोई भाग नहीं है वह ईशादि गुणोंसे रहित है अतः आपको कैसे जानेगा. मूर्ख विद्वानके तत्त्वको नहीं जान सकते हैं. जो ईश नहीं है वे ईश्वरके तत्त्वको नहीं जान सकते हैं. जो वैराग्यवान् नहीं है वे वैराग्यवालोंके तत्त्वको नहीं जान सकते हैं.

३. हे परात्मन् ! पर आत्माका तत्त्व, आत्मा (जीव) नहीं जान सकता है.

४. हे योगेश्वर! योगेश्वर स्वच्छन्द गतिवाले होते हैं अर्थात् मुक्त बन्धन होते हैं जहां इच्छा हो वहां जावें, जो चाहें सो करें ऐसे योगेश्वरको बन्धनमें पड़ा हुआ (जीव) कैसे जान सकेगा? अर्थात् नहीं जानेगा. और वह लीला कहां व कैसे होती है ? 'अहो' शब्दसे कहते हैं कि लीलाएँ आश्चर्यमय हैं, जैसे कि मत्स्य आदि रूपोंमें ज्ञानका प्रकाश, जो उन रूपोंमें होना असम्भव हैं? कारण कि लीलारूप समुद्रमें शय्या आदि पदार्थ किसीकी भी वृद्धिमें नहीं आ सकते हैं. लीलाके कितने प्रकार होते हैं और वे कब होते हैं उनको कोई नहीं जान सकता है. क्यों नहीं जाने जाते हैं उसमें कारण बताते हैं कि, आप जेा-जो क्रीड़ा जब- जब करते हो और जहां-जहां जैसे करते हो, तब अपनी योगमायाका विस्तार कर करते हो, जिससे कोई नहीं समझ सकता है. यदि योगमायाको न फैलाकर क्रीड़ा करो तो लोक समझ भी सके. इस कारणसे आपके स्वरूपको आप ही जानते हो. अतः दूसरोंको तत्त्वका उपदेश करनेकेलिये ही आपके अवतार है।।२१।।

उपरोक्त श्लोकके अनुसार आप देहादिकोंमें जो हम लोगोंका आत्मभाव है, उसको दूर करते हो यों कह कर, अब प्रपञ्चमें, प्रपञ्चका मिथ्यापन तथा भिन्न होते हुए भी सत्यपन, इस प्रकारके भ्रमको भी आप मिटाते हो यह निम्न श्लोक द्वारा कहते हैं.

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति।।२२।।

इसलिए, यह असत् स्वरूप, स्वप्न सदृश, बुद्धिरहित और अत्यन्त दुःखदायी जगत् आपकी मायासे उत्पन्न होने पर भी नित्य आनन्द और ज्ञान

स्वरूप अनन्त आपमें सत् सदृश भासमान होता है।।२२।।

यह समग्र जगत् असत् स्वरूप है, कारण कि दुष्ट बहिर्मुखोंके समान सन्मार्गमें प्रतिबन्धक है. जैसे दुष्ट सन्मार्गसे प्रेमको हटाकर, असन्मार्गमें ममता कराते हैं वैसे ही प्रपञ्च भी पुत्रादिकोंमें ममता उत्पन्न कराके भगवानसे विमुख कराता है. स्वरूपसे भी प्रपञ्च अनित्य है, जो वह उदय और अस्त होता रहता है. इसका अनित्यपन, स्वप्न, सदृशता बताकर सिद्ध किया है और बुद्धि अस्त हो जानेसे ज्ञानमें भी प्रतिबन्धक है. अत्यन्त दुःखसे भी विशेष दुःखरूप होनेसे क्लेशरूप है. इस प्रकारका प्रपञ्च है तो भी आपसे सम्बन्ध होनेसे सत् जैसा भासता है. आपके कारण (सम्बन्ध)से जैसे नारद आदि सत् हैं वैसे घट आदि भी सत् भासते हैं क्योंकि घट आदि भी आपकी सेवामें आनेसे उनका भी सम्बन्ध आपसे हो जाता है. नित्य सुखरूप, ज्ञान स्वरूप और अनन्त स्वरूप आप हो. आप नित्य हो अतः आपके सम्बन्धसे प्रपञ्चकी अनित्यता नष्ट जैसी हो जाती है. आप सुखरूप हो अतः आपके सम्बन्धसे प्रपञ्चका दुःखपन भी नष्ट हो जाता है. आपके ज्ञान स्वरूपके सम्बनधसे प्रपञ्चकी बुद्धिका उदय सा हो जाता है. आपके अनन्त स्वरूपके सम्बन्धसे प्रपञ्च भी नित्यके समान भासमान होता है. भ्रमसे भी उत्पन्न देहमें आत्माकी बुद्धि (देह आत्मा है ऐसी समझ) भगवत्सेवाके उपयोगमें आनेसे सत्य प्रतीत होती है. अतः समग्र जगत् आपसे सम्बन्ध होनेसे उत्तम है (सत् है) सम्बन्ध न होनेसे निकृष्ट है अर्थात् असत् है. इस प्रकार जगतका तत्त्व है।।२२।।

निम्न श्लोकमें भगवत्तत्त्व समझाते हैं.

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयञ्ज्योतिरनन्त आद्यः ।।
नित्योक्षरोजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोद्वयो मुक्त उपाधितो ऋृतः ।।२३।।

आप एक, आत्मा, पुरुष, सत्य, स्वयं प्रकाश, अनन्त, आद्य, नित्य, अक्षर, नित्य सुखरूप, अविद्या रहित, पूर्ण, अद्वितीय, उपाधि रहित और अलौकिक हो।।२३।।

प्रथम आदिमें आप एक ही सजातीय, विजातीय और स्वगत इन तीन प्रकारके भेदोंसे रहित थे.

इसके अनन्तर आपने जीवनरूप, अन्तर्यामीरूप और विभूतिरूप तीन स्वरूप धारण किये.

पश्चात् आप पुराण पुरुष हुए अर्थात् 'पुरुषोत्तम' कहलाए अथवा ब्रह्मवाद (वेदान्त)में आप एक हो. योगमार्गमें आपको 'आत्मा' कहते हैं. सांख्य मतमें आप 'पुरुष' नामसे प्रसिद्ध हो. वैष्णव मतमें आपको 'पुराण' कहते हैं. और पाशुपत मतमें 'सत्य' कहे जाते हो अथवा सद् और त्यद् इस भेदसे आप 'सत्य' रूप वा जगत् हो.

इस प्रकार पांचों प्रकारोंकी आप स्वयं ज्योति हो अर्थात् स्वतः प्रकाशक होनेसे जड़ नहीं हो.

आप अनन्त होनेके कारण अन्त रहित हो, आपकी कोई अन्तिम अवधि नहीं हैं. आप आद्य होनेसे आपके आदिकी कोई अवधि नहीं है.

आप नित्य एक समान हो, समुद्र और चन्द्रमाके सदृश आपमें क्षय वृद्धि नहीं हैं.

इस प्रकार प्रपञ्चरूपपनेमें प्रतीत होनेवाले चारों दोषोंका निवारण कर 'अक्षर' नामसे भगवानके दूसरेरूपोंका वर्णन करते हैं.

'अक्षर' नामसे शब्द ब्रह्मरूप आप हो अथवा प्रकृति और पुरुषके कारणरूप हो. इससे आप ज्ञानका विषय हो अर्थात् आपका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए.

ज्ञानसे प्राप्तव्य मोक्षका रूप आप हो इसलिए ही नित्य सुखरूप हो.

नित्य सुखरूपमें भी जो दोष होते हैं उनको निवारणकेलिये आप 'निरञ्जन' अर्थात् अविद्या रहित हो. नित्य सुखरूप 'सुषुप्ति' में भी अविद्या रहती है वह आपमें नहीं है. प्रत्येक पदार्थकी सीमा होती हैं. आपकी किसी प्रकारकी कोई भी सीमा नहीं है; इसको बतानेकेलिये आपको 'पूर्ण' कहा गया है.

कम और अधिकपन आपमें नहीं है इसलिए आपको 'अद्वय' कहा है.

आपका ब्रह्मानन्दरूप सुख किसी भी उपाधिके बिना भोगा(प्राप्त किया) जाता है. इसलिए कहा है कि आप उपाधिसे मुक्त हो अर्थात् आपके सुख भोगमें किसी प्रकारकी उपाधि नहीं है. ब्रह्मातिरिक्त अन्य पदार्थोंसे जो सुख भोग जाता है वह उपाधिसे प्राप्त होता है. जैसे स्त्रीका सुख पुरुषसे ही भोगा जाता है और पुरुषका सुख स्त्रीसे ही भोगा जाता है. इसलिए वह सुख उपाधिसे प्राप्त होता है.

आप स्वरूपसे भी 'अलौकिक' हो इसलिए आपका ज्ञान श्रुतियोंसे होता है. लौकिक प्रमाणोंसे ज्ञात नहीं होता है यदि ऐसा न हो तो ऊपर कहा हुआ

आपका रूप न हो.

इन उपरोक्त सोलह विशेषणोंसे आपकी देहसे विलक्षणता भी सिद्ध हो गई है. जैसे कहा है कि 'षोड़श कलोऽयंपुरुषः' यह पुरुष सोलह कलाओंवाला[१] है. देह तो बाल्य, कौमार आदि अवस्था भेदसे भिन्न-भिन्न रूपवाली होनेसे एक रस नहीं अतः अनेक हैं व्यापक तथा आत्मा भी नहीं है. इन सब बातोंको स्वतः समझ लेना अथवा उपरोक्त षोडश विशेषणोंसे आप पञ्च महाभूत और एकादश इन्द्रियोंसे पृथक् एवं विलक्षण हो अथवा सोलह विशेषणोंसे यह सिद्ध किया है कि षोडश कलावाले नारायण आप हो।।२३।।

१.देहमें इन षोड़श कलाओंमें से कोई कला नहीं है - अनुवादक.

भगवानके स्वरूपका वर्णन किया, अब नीचे कही जाएगी जो परिपाटी, तदनुसार जो उस स्वरूपकी उपासना करते हैं, वे भ्रान्त हैं. यह निम्न पाँच श्लोकोंमें कहते हैं.

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ।।२४।।

समस्त जीवोंके आत्मरूप आपको जो लोग गुरुरूप सूर्य द्वारा प्राप्त उपनिषद् रूप सुन्दर नेत्रोंसे अपना ही रूप समझते हैं वे इस संसाररूप असत् समुद्रसे मानो तर जाते हैं।।२४।।

इस प्रकारके (षोडश कलावाले) समग्र जीवोंके आत्म (देह-वास स्थान) रूप तथा जीवरूप आपको अपना ही आत्मा समझते हैं अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ, यों जो लोग समझते हैं. (वे मानों संसार समुद्रको पार कर गए हैं ऐसा जाना जाता है) जैसे सूर्य अन्धकार मिटाकर नेत्रको देखनेका साधन ज्ञान (प्रकाश) देता है जिससे वह वस्तुको देख सकता है. वैसे ही गुरुरूप सूर्य ज्ञानार्थ उपनिषद् रूप नेत्र साधनके ढंगके देते हैं. जो लोग 'मैं ही परब्रह्म हूँ' इस प्रकार समझते हैं, वे संसाररूप झूटे समुद्रको मानो पार करते हैं. 'सर्व ब्रह्म' सब ब्रह्म हैं, इस प्रकारके ज्ञान होनेसे सब प्रकारसे तरण होता है. केवल अपनेको ही ब्रह्म समझने से जो संसार अनृत है वह केवल अपने मोहसे उत्पन्न 'अहं और मम' रूप समुद्र ही पार किया हुआ प्रतीति मात्र देखनेमें आता है. वास्तविक वह भी पूर्ण रीतिसे तरा नहीं गया है; क्योंकि दोषका आधार निवृत्त नहीं हुआ है. अन्तरका दोष ही निवृत्त हुआ है. देह इन्द्रियोंके विषयोंका विद्यमान दोष हैं. उन दोषोंके नाश हुए बिना

'अहं-मम' रूप अनृत समुद्र तरा हुआ भी न तरे हुएके समान ही है।।२४।।

उस (मैं ही ब्रह्म हूँ) ज्ञानसे सब (देह, इन्द्रिय, विषय दोषों)का नाश होकर मोक्ष क्यों नहीं होता है? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकसे करते हैं.

आत्मानमेवात्मतया विजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ।।२५।।

जो लोग अपनेको ही आत्म (ब्रह्म)रूप समझते हैं, वे मानते हैं कि जैसे रज्जुमें सर्पकी, अज्ञानसे उत्पत्ति और ज्ञानसे नाश होता है वैसे ही भ्रमसे कल्पित यह जगत् अज्ञानसे उत्पन्न होता है और ज्ञानसे लय हो जाता हैं (शेष, मैं तो सर्वदा मुक्त ब्रह्म रूप ही हूँ)।।२५।।

वे लोग अपनेको ही ब्रह्म मानते हैं इससे ही वे मानते हैं, कि जो कुछ प्रपञ्च आकारसे परिणत(माया हुआ) है वह 'मैं हूँ' भ्रमसे कल्पना की गई है. ज्ञानसे वह कलिप्त ही बार-बार लय होता है, परन्तु जो प्रयत्न(ज्ञान-क्रिया)से साध्य होता है वह लय नहीं होता है. जैसे कि रज्जुमें भ्रमसे ही सर्पके देहकी उत्पत्ति और नाश होता है अर्थात् पहले भ्रमसे रज्जुको सर्प समझा जाता है पुनः ज्ञान होने पर समझा जाता है कि सर्प नहीं है इस प्रकार सर्पका न होना (नाश) भी भ्रम ही है; क्योंकि सर्प था ही नहीं तो उसका नाश कैसे? इसलिए यह सर्व(सर्पका होना और नाश) भ्रम मात्र है. शेष रज्जुमें तो किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता है. इस दृष्टान्तसे यह समझना चाहिए कि अपनी भ्रमित बुद्धिसे कल्पित पदार्थका ही नाश होता है, दूसरे किसी भगवानके बनाये हुए जगत् और अपने बनाये हुए पदार्थका नाश नहीं होता है. भ्रम होने पर रज्जु सर्प नहीं बन जाती है और ज्ञान होने पर रज्जुका नाश भी नहीं होता है. उत्पत्ति और नाश तो केवल भ्रमसे कल्पित सर्प देहका ही होता है. इस प्रकार 'अहं-मम' अभिमान जो अज्ञानरूप भ्रमसे हुआ है वह नाश होता है, दूसरा (जगत् आदि) कुछ भी नाश नहीं होता है।।२५।।

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ।।२६।।

संसारमें बद्ध होना और संसारसे मुक्त होना ये दोनों अन्य कुछ नहीं है केवल अज्ञान ही है अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ अथवा मुक्त हूँ, यों समझना अज्ञान ही है. सत्यवाणी (उपनिषद्)से प्राप्त सत्य ज्ञानका स्वरूप ही मोक्ष है उसका अज्ञान ही

बन्धन है. कारण विचार करने पर समझमें आ जाता है कि दिन और रात्रि जो सूर्यके द्वारा होती है वही सत्य है।।२६।।

यदि विचारा जाये तो 'मैं ब्रह्म हूँ' यों माननेवालोंका 'अहं-मम' यह अभिमान भी वास्तविक रीतिसे नष्ट नहीं होता है. क्योंकि 'मैं मुक्त हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारका उनका ज्ञान भी आत्माके अज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ है. जैसे बन्ध अज्ञानका कार्य है वैसे 'मैं ब्रह्म हूँ' यों समझना भी अज्ञानका कार्य है. दोनोंका कारण (अज्ञान) समान होनेसे उनका ज्ञान तथा मोक्ष भी अज्ञानके ही कार्य है.

जैसे स्वप्नमें कोई पुरुष समझता है कि मैं उठकर भोजन कर रहा हूँ वास्तविक रीतिसे वह उठा ही नहीं है, भोजन करना तो दूर रहा, क्योंकि उसका स्वप्न मिटा नहीं है. वैसे ही भगवानकी अविद्या शक्ति भी अब तक उनकी मिटी नहीं है, इससे उनका परमार्थरूपसे मोक्षका होना भी सम्भव नहीं है. कारण कि मोक्ष तो सत्यज्ञानरूप है, अज्ञानसे उत्पन्न ज्ञान मोक्षका रूप नहीं है. भगवानकी ज्ञान शक्तिसे ही मोक्ष होता है. यह एकादश स्कन्धमें कहेंगे, और भगवानमें सायुज्य ही मोक्ष है. यह मोक्ष नित्य चिदानन्दरूप है. वहां जब अज्ञानसे उत्पन्न प्रपञ्च तथा ज्ञान दोनोंका अभाव है तब जीव अपने अज्ञानकृत ज्ञानसे उसमें कैसे प्रविष्ट हो सकेगा? अर्थात् उस चिदानन्दरूपको कैसे अपनेमें प्रकट कर सकेगा? यह 'केवल' विशेषण देकर समझाया है और ब्रह्म तो 'पर' अर्थात् नियामक है अतः नियामककी आज्ञाके बिना सेवक उसके पास नहीं जा सकता है. अतः जीव स्वरूपको, जो ब्रह्म मानकर अपनेको मुक्त समझते हैं उनका मोक्ष नहीं होता है. इसको दृष्टान्त द्वारा हेतु देकर सिद्ध करते हैं. जैसे जब सूर्य उदय होनेका विचार करता है और उदय होता है तब दिन होता है. एवं जब अस्त होनेका विचारकर अस्त होता है तब रात्रि होती है न कि मनुष्य अपनी बुद्धिसे दिन वा रात्रि कर सकता है. किसीके चक्षु बन्द करनेसे रात्रि नहीं होती है और न आंख खोलनेसे दिन होता है. दिन रात्रि तो सूर्यके द्वारा ही होते हैं केवल खण्ड अद्वैतवादी भ्रान्त ही हैं।।२६।।

और जो अपने आत्मरूप ब्रह्मका विचार करनेवाले सर्व संग त्यागकर देशान्तरमें जाकर आत्मा प्राप्त करने योग्य है, ऐसा मानते हैं वे अतिभ्रान्त हैं यह इस निम्न श्लोकमें कहते हैं.

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोज्ञजनताज्ञता ।।२७।।

आत्म स्वरूप आप(कृष्ण)को पृथक् समझ और भगवद्रूपको आत्मा मानकर उनको बाहिर प्राप्त करने योग्य समझते हैं. अहो ! अज्ञानियोंको कितना अज्ञान है।।२७।।

आप सबकी आत्मा हो और सर्वरूप हो ऐसे आपको पृथक् समझकर, अपनेको मैं सर्व नहीं हूं किन्तु विलक्षण हूँ ऐसा मानकर वे भगवद्रूपको ही ज्ञानसे प्रकाशित होनेवाला आत्मा भगवानका विभूतिरूप भगवानसे स्फुरित होनेवाले व्यापकत्व आदि धर्मवाले सांख्य आदि स्मृतिओंसे सिद्ध आत्माको मानते हैं. वह (आत्मा) तो कभी भी जीव[१] रूप नहीं होता है जैसे घड़ा पर्वत नहीं होता है. अतः बाहिर जाकर सन्न्यास लेके परमात्माको ढूंढना चाहिये इस प्रकारकी अज्ञानियोंके भ्रमकी परम्परा आश्चर्य कारक है, किसी प्रकार ये प्रमाणका भी विचार न कर भ्रान्त हो जाते हैं यह अचम्भा है. इस प्रकार खण्ड भाववाले अद्वैतवादियोंका 'जब ही निश्चयसे जो जीव इस परमात्मामें थोड़ा भी भेदभाव करता है उसको भय होता है' इस प्रकार श्रुतिमें कहा हुआ भय बताकर कहते हैं कि जो फिर यहां ही अन्तःकरणमें भगवानका चिन्तन करते हैं अन्यका परित्याग कर अन्तर्यामिकी भावना करते हैं वे कृतार्थ होते हैं।।२७।।

१.जीव कभी भी इस (अविद्याग्रस्त) रूपमें वह आत्मा नहीं हो सकता है जैसे घड़ा घड़ेके रूपमें हो तो पर्वत नहीं कहा जा सकता है – अनुवादक.

एकमें चित्तकी स्थिरता होनेसे दूसरेको भी प्राप्ति हो सकती है. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत् त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमयन्ति सन्तः ।।२८।।

हे अनन्त ! जिन साधनोंसे भगवानका चिन्तन(प्राप्ति) नहीं हो सकता है उनको छोडे तब ही सत्पुरुष अपने हृदयाकाशमें स्थित आपको वहां ही ढूंढनेसे पा सकते हैं. जैसे झूठा सर्प समीप न हो तो भी जब तक उस झूठे सर्पके भ्रमको त्यागा नहीं जाता है तब तक समीप स्थित सत्य रज्जुका स्वरूप जाननेमें नहीं आता है।।२८।।

हे अनन्त! आपको अनन्त इसलिए कहा जाता है कि आप देश, काल एवं किसी वस्तु के परिच्छेदसे रहित होनेसे अन्तरहित हो अर्थात् सबमें आप विराजमान हो. आप भीतर रहनेवाले हृदयाकाशमें भी रहते हो अतः जो सत्पुरुष हैं

वे आपको उस(हृदयाकाश)में ही ढूंढते हैं. किस प्रकार ढूंढते हैं? वह प्रकार बताते हैं कि जिन साधनोंसे भगवानका चिन्तन नहीं हो सकता है, प्रथम उन विरुद्ध साधनोंका परित्याग करते हैं एवं भ्रमका भी त्यागकर पश्चात् हृदयाकाशमें चिन्तन करते हैं. इसका दृष्टान्त देकर समझाते हैं. 'अन्तर' शब्दके बहुत अर्थ हैं किन्तु यहां 'अन्तर' शब्दका अर्थ 'अपरित्याग'(त्याग किये या छोडे बिना) है. भ्रमसे समझमें आए हुए विषयका परित्याग किए बिना सत्य वस्तुका ज्ञान नहीं होता है. जैसे भ्रमसे उत्पन्न सर्प झूठा होते हुए भी रज्जुके बदलेमें सर्प समझा जाता है. उस भ्रमको जब तक मिटाया नहीं जाएगा तब तक रज्जुका सच्चा स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता है. इसलिए मूल भ्रमसे प्राप्त देहमें आत्मभावको तथा मोहमें डालनेवाले शास्त्रोंके भावोंको छोड कर हृदयमें विद्यमान भगवानकी ही भावना करनी चाहिए अर्थात् उनका ही चिन्तन आदि करना चाहिए. 'सन्तः' शब्द दूसरी बार भी श्लोकमें इसलिए दिया है कि वे(सन्त) इसी प्रकार (हृदयाकाशमें) भगवान्की भावना करते हैं।।२८।।

यद्यपि अन्तःकरणमें इस प्रकार भगवानकी भावना करनी योग्य है तो भी जब तक भक्तिमार्ग और भक्तिमार्गके शास्त्रोंसे भगवानके माहात्म्यका ज्ञान पूर्णतया प्राप्त नहीं किया जाता है तब तक केवल अन्तःकरणमें भावना करनेसे भगवानका प्रादुर्भाव नहीं होता है और प्रपञ्च भी नाश नहीं होता है. यह निम्न श्लोकसे कहते हैं.

अथाऽपि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ।।२९।।

हे देव ! यद्यपि अन्तःकरणसे भावना करनी योग्य है तथापि जब आपके चरणारविन्द युगलकी स्वल्प भी कृपा प्राप्त हो जाए तब आपकी महिमाका तत्त्वज्ञान होता है. आपकी कृपा बिना बहुत काल तक चिन्तन करता रहे तो भी आपकी महिमाके तत्त्वको कोई नहीं जान सकता है।।२९।।

हे देव! आपके युगल चरणारविन्दकी लेशमात्र कृपासे अनुगृहीत जीव ही भगवानकी महिमाके तत्त्वको जान सकता है. उसके बिना अन्य कोई बहुत समय तक चिन्तन करता रहे तो भी नहीं जान सकता है।।२९।।

अब निम्न श्लोकमें ब्रह्माजी प्रार्थना करते हैं कि भगवानकी भक्ति करना आवश्यक कर्तव्य है और वह भक्तिमार्ग सरल भी है अतः भक्ति मार्गके अनुसार

भगवानकी ही सेवा करनी चाहिए, दूसरेकी किसीकी नहीं करनी चाहिए. यही शास्त्रोंका तात्पर्य है. इसलिए मेरा जन्म भगवानके भक्तोंमें हो.

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवोऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ।।३०।।

हे नाथ ! यहां अथवा दूसरे स्थलमें पशु-पक्षियोंमें भी मेरा जन्म तब भाग्यशाली होगा जब आपके सेवकोंमें मैं भी एक सेवक होकर आपके चरणारविन्दकी सेवा करूँगा।।३०।।

हे नाथ! यह सम्बोधन (अर्थात् नाथ कहकर पुकारना भक्तिमार्गकी प्रणाली है) भक्तिमार्गके अनुसार है. मेरा जन्म विशेष भाग्यशाली हो. यहां गोकुलमें अथवा दूसरे स्थान पर हो. बहुत क्या कहूँ? मेरा साधारण प्राणियों (पशु-पक्षियों)में भी उसी प्रकारका जन्म हो जैसे मैं भी आपके सेवकोंमें एक सेवक होकर आपके चरणकमलकी सेवा करूँ. यदि आपके सेवकोंमें जन्म न होगा तो आपकी सेवा न हो सकेगी. क्योंकि विजातियों (अभक्तों)के साथ भगवानका भजन भक्त नहीं कर सकते हैं।।३०।।

इस प्रकार ब्रह्माजी प्रार्थना कर गोकुलवासियोंके भाग्यका अभिनन्दन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेद्यापि न चालमध्वराः ।।३१।।

अहो ! व्रजकी गौएं और गोपियां बडी भाग्यशाली हैं क्योंकि जिनको तृप्त करनेके लिए यज्ञ भी आज तक सामर्थ्यवाले नहीं हुए हैं, उनने स्वयं बछडों और पुत्रोंका रूप धारण कर जिनका दुग्ध रूप अमृत बहुत ही प्रेम पूर्वक पान किया।।३१।।

व्रजमें रहनेवाली गौएँ तथा स्त्रियां धन्य हैं. कारण कि आपने उनका स्तन्य रूपी अमृत अत्यन्त सन्तोषके साथ पिया. किस प्रकार पिया वह बताते हैं कि आप विभु 'सर्व समर्थ' हो अतः आपने बछड़ों तथा पुत्रोंका रूप धारणकर गौ और गोपियोंका दूध पीया. मैंने दूध पीया इससे वे धन्य क्यों हुई? इसलिए श्लोकके चौथे पदमें कहते हैं कि ये विशेष भाग्यशाली इसीलिए हुई हैं, कि आज तक भी यज्ञोंने आपको वैसा तृप्त नहीं किया है जैसा कि दूध पिलाकर इन्होंने तृप्त किया है।।३१।।

भगवानने केवल इतना ही नहीं किया, किन्तु इससे भी विशेष करते हैं. वह निम्न श्लोकमें बताते हैं.

अहोभाग्यम् अहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।।
यन् मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ।।३२।।

नन्दजी गोपों और व्रजवासियोंके बडे भाग्य हैं–बडे भाग्य है. क्योंकि परमानन्द, पूर्ण सनातन, साक्षात् परब्रह्म जिनके मित्र हैं।।३२।।

पूर्वकाण्डमें कहे हुए यज्ञादि कर्म करनेसे जो फल मिलता है वह भगवानने स्तन पान करके दे दिया अतः इनको यज्ञ आदि करनेकी आवश्यकता न रही. इस प्रकार पूर्वकाण्डकी निष्फलता बताई. अब इनके मित्र बने जिससे उत्तरकाण्ड(ज्ञानकाण्ड)की भी निष्फलता सिद्ध की. कारण कि यों तो ब्रह्म सर्वकेलिये समान हैं किन्तु यहां आप मित्र बनकर कर्ता हुए, शत्रुओंका नाश किया और चारों ओरसे रक्षक बने एवं अहित आदिको मिटानेवाले होकर विषम भी बने. अतः ब्रह्माजी दो बार धन्य! धन्य ! कहकर उनके भाग्यकी सराहना करते हैं अथवा क्रमशः प्रत्येकके नन्द, गोप और अन्य व्रजमें रहनेवालोंके भाग्यका अभिनन्दन करते हैं. वे अभिनन्दन करनेके योग्य हैं यह स्पष्ट देखनेमें आता है. भगवानने शत्रु नाशकर दुःखोंको मिटाया और रक्षक बने इन उपकारोंसे नन्दादि व्रजवासी वास्तवमें कृतार्थ नहीं हुए, किन्तु जो नित्य और असीम आनन्दरूप फल है वह स्वयं पूर्ण परमानन्द सनातनरूप फलात्मा अपने स्वरूपका उनको अनुभव कराते हैं जिससे वे भाग्यशाली और कृतार्थ हुए हैं।।३२।।

इस प्रकार ब्रह्माने ३० श्लोकमें भगवानको यह प्रार्थना की कि मेरा आधिभौतिक जन्म भक्तका हो और ३१वें तथा ३२वें श्लोकमें व्रज भूमिस्थ भगवद्भक्तोंको धन्य–धन्य कहकर उनकी श्लाघा की तथा भगवानकी स्तुति भी की. अब ब्रह्माजी इस निम्न श्लोकमें अपने ही आध्यात्मिक स्वरूपका स्वयं अभिनन्दन कर प्रभुकी स्तुति करते हैं.

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ।।३३।।

हे अच्युत ! इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा तो अपूर्व है ही, परन्तु शंकर आदि एकादश हम भी महाभाग्यशाली हैं क्योंकि इन व्रजवासियोंके इन्द्रिय रूप पात्रोंसे आपके चरणारविन्दके मकरन्द रूप मधुर आसवका बार–बार पान

करते हैं।।३३।।

श्लोकमें 'तु' शब्द पूर्वसे भी गोकुलस्थोंका अधिक भाग्य हैं, यह बतानेकेलिये दिया है. इन (गोकुलवासियों)के भाग्यकी महिमा जो पूर्वमें कही गई है, उसको तो रहने दो अर्थात् वह अन्य समयमें फिर कभी कहेंगे उससे पूर्व यह ही निरूपण करेंगे. यह जो अब निरूपण किया जायेगा उसमें इन व्रजवासियोंका पूर्व (हम)से भी १३ गुणा[१] विशेष भाग्य है यह कहा जायेगा. हम इन गोकुलवासियोंके इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देव ११ हैं.

१.कानकी दिशाएं, २.त्वचाकी वायु, ३.आँखका सूर्य, ४.जिह्वाका वरुण, ५.नासिकाका अश्विनी कुमार, ६.वाणीका अग्नि, ७.हस्तका इन्द्र, ८.पादका उपेन्द्र, ९.उपस्थका ब्रह्मा, १०.वायुका मित्र, ११.मनका चन्द्रमा है. कितने ही कहते हैं कि अन्तःकरण चतुष्टयके भिन्न-भिन्न देवता हैं, यों माननेसे चौदह वा तेरह होते हैं. सब देवोंको अपना रूप ही समझकर ब्रह्माजी कहते हैं कि 'हम' बड़े भाग्यशाली हैं यों कहकर 'बत' शब्दसे हर्ष प्रकट करते हैं. और कहते हैं कि यदि ये गोकुलवासी उत्पन्न न होते तो हमारा अधिष्ठातापन व्यर्थ हो जाता. इनके जन्मसे हमारा अधिष्ठातापन सफल हुआ है, कारण कि महादेवादि सहित हमने भी इनके इन्द्रियरूप पात्रों द्वारा बार-बार आपके चरणारविन्दके मकरन्दरूप मधुर आसव, जो मिष्ट तथा देहादिका विस्मारक है उसका पान किया है. रोमाञ्च और स्वेद होना ये दोनों ही वायु-मित्रके कार्य हैं, दूसरोंका कार्य स्पष्ट ही है. जैसे पुरुषोंके लिङ्ग इन्द्रियके देवका उपयोग, बाल एवं बालिका उत्पन्न करनेमें होता है. दो मित्र देवोंके अतिरिक्त शेष शंकर प्रभृति देव भाग्यशाली हैं।।३३।।

१.हम एक-एक इन्द्रियके अधिष्ठाता होनेसे एक ही इन्द्रियसे आपके चरणारविन्द मकरन्दके मधुर आसवका पान करते हैं. व्रजवासी तेरह इन्द्रियोंसे पान करनेके कारण महाभाग्यशाली हैं.

इस प्रकार गोकुलवासियोंके भाग्यकी प्रशंसा कर, अब निम्न श्लोकमें वृन्दावन अथवा बृहद्वन आदि वनोंमें जिन्होंने वृक्ष, लता, गुल्म और कीट आदि रूपसे जन्म लिया है उनका अभिनन्दन करते हैं.

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम् ।।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवाननन्तस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ।।३४।।

यहां वनमें अथवा गोकुलमें किसी प्रकारका भी जन्म हो तो बडा भाग्य

हैं. क्योंकि यहां गोकुलवासियोंके चरणरजका अभिषेक सदा ही होता रहेगा जिन गोकुलवासियोंका सम्पूर्ण जीवन भगवान् अनन्त ही हैं. आज तक भी जिनके पदकी रजको श्रुतियां ढूँढ रही हैं।।३४।।

इस वृन्दावन वा गोकुलमें उपयोगमें आनेवाला किसी प्रकारका भी देह जिसको प्राप्त हो तो वह अधिक भाग्यशाली है, कारण कि उस देह पर भगवानके चरणारविन्दकी रजका और जिस किसी भगवद्भक्त गोकुलवासियोंके चरणारविन्दकी रजका अभिषेक होता रहेगा. वहां उत्पन्न हुए गोकुलवासियोंका 'सम्पूर्ण सर्व प्रकारका लौकिक-पारलौकिक स्वार्थयुक्त परोपकारयुक्त' जीवन धन भगवान् अनन्त ही हैं. 'अनन्त' विशेषणसे यह बताया कि यहां ब्रह्मवाद प्रकार नहीं है, किन्तु विशेष प्रकारसे चरणारविन्दकी रजका ही माहात्म्य वर्णन है. जैसा कि आज तक भी जिस भगवानके चरणारविन्दकी रजको श्रुतियां ढूंढ रही हैं. श्रुति ही भगवानके चरणारविन्दके ढूंढनेमें तत्पर संलग्न है. भगवानके चरणारविन्दको 'ब्रह्म[१] प्रच्छं प्रतिष्ठा,' 'तद्[२] विष्णो परमं पदम्' इत्यादि प्रमाणोंसे ब्रह्मरूप समझकर उनकी प्रशंसा करते हैं. यदि केवल रजकी प्राप्तिसे ही वे कृतार्थ हो जाती तो फिर प्रयोजन न होनेसे, भगवानको जाननेका प्रयत्न न करती।।३४।।

१. ब्रह्म (अक्षर ब्रह्म) अनन्त विष्णुका पुच्छ (अन्तिम भाग) और निवासस्थान है.
२.ब्रह्म (अक्षर ब्रह्म) विष्णुका परम पद है.

उनका यह (भगवानके चरणोंकी रज) ही फल नहीं है, कारण कि वे सेवा भी कर रही हैं अतः वह फल जो सेवासे प्राप्त होता है उसका अभिनन्दन क्यों नहीं करते हो ? इस शंकाको मिटानेके लिए निम्न श्लोकमें कहते हैं कि उस फलको मैं नहीं जानता हूँ.

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति नश्चेतो।
विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति।।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता।
ये धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते।।३५।।

हे देव ! आप इन व्रजवासियोंको कौनसा फल देओगे इसका विचार करते हुए मेरा चित्त सब स्थानोंमें ढूंढते हुए भी यही देखता है कि आपके बिना अन्य कोई उत्तम फल है ही नहीं, जो आप इनको दो. इससे मैं मोहित हो रहा हूँ. हे देव ! पूतना केवल सत्स्त्री (यशोदाजी)का वेश धारणकर आपके पास आई

उसको भी आपने कुल (बकासुर-अघासुर दोनों भ्राताओं) सहित मुक्ति दी तो जिन्होंने घर, धन, मित्र, प्रिय पदार्थ, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण आदि सब आपकेलिए ही रखे हैं उनको कौनसा फल दोगे।।३५।।

हे देव! इन व्रजवासियोंकी सेवासे साध्य जो देव आप हो वह आप इन सेवा करनेवालोंको कौनसा फल दोगे ? इसकेलिये हमारा चित्त कहीं भी समग्र ब्रह्माण्डमें जाते हुए क्या आपके अतिरिक्त दूसरा कोई फल है ? इसमें मोहित होता है. कारण कि आप ही समग्र विश्वके परमानन्दरूप फल हो. आपके बिना दूसरा कोई भी कैसे फल बनेगा. यदि आप कहो कि मैं अपनेको ही दे दूँगा. इस पर ब्रह्माजी कहते हैं कि केवल यशोदाजीके वेशको धारण करनेसे पूतनाने भी कुल (दोनों भ्राताओं)के साथ आपको प्राप्त किया, अर्थात् आपने अपनेको पूतनाको प्राप्त कराया. 'देव' सम्बोधन पूज्य भाव दिखानेकेलिये किया गया है जो (वृजवासी) फिर आपकेलिये ही घर, धन, मित्र, प्रिय पदार्थ, देह, पुत्र प्राण, इन्द्रियां और अन्तःकरण आदि यह सर्व रख रहे हैं उनको आप क्या दोगे ? ।।३५।।

इस निम्न श्लोकमें ब्रह्माजी कहते हैं कि यदि यह शंका होती हो कि भगवानने पूतनाको मारकर मोक्ष दिया किन्तु इनको तो जीते जी ही इनका संसार नाशकर जीवन मुक्ति फल देंगे ऐसा भी नहीं है.

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।।
तावन् मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ।।३६।।

हे कृष्ण ! रागादिक तब तक चोरका काम करते हैं घर तब तक कारागृह है, मोह भी तब तक पैरोंकी बेडी है जब तक मनुष्य आपके (सेवक) नहीं हुए हैं।।३६।।

हे कृष्ण! जब तक मनुष्य आपके सेवक नहीं हुए हैं तब तक गृहादिकोंमें रागादिक विवेक धैयादिकोंके चोर बने रहते हैं और तब तक ही घर भी कारागृह है और पुत्रादिकोंका मोह पैरोंकी बेड़ी है. सेवकोंके तो ये उपरोक्त रागादिक पुत्र और गृह आदि सब सात्त्विक हो जाते हैं जिससे वे सेवाके उपयोगमें ही आते हैं. इसलिए शास्त्रोंकी आज्ञासे भी ये पदार्थ सेवकोंको अभिलषित है अर्थात् चाहिये, क्योंकि इनके बिना सेवा नहीं हो सकती है।।३६।।

यह उपरोक्त कहना सत्य है किन्तु उनका उपयोग कृत्रिम स्वरूपमें न कर साक्षात् स्वरूपमें होना चाहिए. इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकमें करते हैं.

प्रपञ्चं निष्प्रपंचोऽपि विडम्बयसि भूतले ।।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ।।३७।।

हे प्रभो ! शरणागत जीवोंमें आनन्द सन्दोह फैलानेके लिए आप निष्प्रपञ्च हो तो भी पृथ्वी पर प्रपंचके समान अनुकरण करते हो।।३७।।

आप निष्प्रपञ्च होकर भी प्रपञ्चके समान चेष्टा करते हो. इस प्रकार चेष्टा क्यों करते हो? उसका कारण यह है कि आपको जगतमें शरणागत जनोंके आनन्द समूहको बढाना है. आप अलौकिक-निष्प्रपञ्च हो अतः आपके कृत्रिम प्रपञ्ची रूपसे आनन्द कैसे बढ़ेगा? इस शंकाके मिटानेकेलिये श्लोकमें 'प्रभु' शब्द विशेषण देकर समझाया है कि आप सर्व समर्थ होनेसे किसी भी रूपसे अपनी इच्छानुसार आनन्द बढ़ानेमें सर्वथा समर्थ हो इसलिए प्रपञ्चवत् अनुकरण करके भी आनन्द समूहको बढ़ा सकते हो।।३७।।

ज्ञानसे भी आनन्द बढ सकता है तो फिर भगवान् प्रपञ्चका अनुसरण क्यों करते हैं इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकसे करते हैं.

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ।।३८।।

हे प्रभो ! आपको जो जानते हैं वे भले ही जाने, मैं अधिक क्या कहूँ मेरे मन, वचन और शरीरसे आपकी महिमा नहीं जाननेमें आती है।।३८।।

जो जाननेवाले होते हैं वे भले ही जाने. वास्तविक ज्ञान भी केवल स्वप्नसे जगानेके समान नहीं है. अतः वे जो कहते हैं कि हमने जान लिया वे भ्रान्त हैं. यदि यों है तो उस मतके दोष प्रकट कहने चाहिए. इसके उत्तरमें ब्रह्माजी कहते हैं कि बहुत कहनेसे क्या लाभ है? थोड़ेसे ही वह मत दूषित हो जाता है, जैसे कि मुझसे कोई महान् नहीं है, क्योंकि मैं वेदगर्भ हूँ अर्थात् मेरे भीतर वेद रहते हैं यों कहनेका तात्पर्य यह है, कि वेदमें जो ज्ञानका वर्णन है वह सब मैं जानता हूँ, ऐसा भी मैं, अपने मन, शरीर तथा वाणीसे भी आपकी महिमाको समझ नहीं सकता हूँ. मेरी देहकी कृतिसे आपका परिच्छेद नहीं हो सकता है. यदि कहा जाय कि जैसे ब्रह्माजी सब बताते है वैसे ही भगवानकी महिमाका भी वर्णन कर सकेंगे, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि मेरे मन और वाणीको भी आपकी महिमा जाननेकी सामर्थ्य नहीं है।।३८।।

इस प्रकार ब्रह्माजी स्तुति कर, बालकोंको ले आनेके लिए जानेकी

प्रार्थना करते हैं.

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्ववित् ।।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम् ।।३९।।

हे कृष्ण ! मुझे जानेकी आज्ञा दो. आप सब जानते हो, क्योंकि सर्वज्ञ हो. आप ही जगतके स्वामी हो. आपका ही यह जगत् है. जिसे सम्हालनेकेलिए मुझे आपने ही दिया है।।३९।।

हे कृष्ण! मुझे जानेकी आज्ञा दो. ब्रह्माने भगवानको 'कृष्ण' नाम देकर अपना प्रेम प्रकट किया है. जानेकी आज्ञाके विषयमें अथवा मेरे अपराधके विषयमें मैं कुछ नहीं कहूँगा, क्योंकि सब कुछ आप सर्वज्ञ होनेसे जानते ही हो. मैं वहां (ब्रह्म लोकमें बालकोंको लानेकेलिये) जाकर स्वतन्त्र होकर बैठ जाऊँगा इस प्रकारकी शंका भी नहीं करनी, कारण कि सकल जगतोंके स्वामी आप ही हो. अतः केवल अधिकारी होकर लोककी स्थित्यर्थ वहां कार्य करूं इसलिए मुझे जानेकी आज्ञा दो. यह जगत् आपका ही है, आपने ही मुझे सम्हालनेकेलिये दिया है. इसलिए मुझे वहां जानेकी आज्ञा देना उचित ही है।।३९।।

जाते हुए ब्रह्माजी श्रीकृष्णको प्रणाम करते हैं उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

हे कृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ।।४०।।

हे श्रीकृष्ण! यादवोंके कुल रूप कमलका विकास करनेवाले! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्रकी वृद्धि करनेवाले! पाखण्ड धर्मरूप अन्धकारके संहारकर्ता! पृथ्वीमें स्थित राक्षसोंके द्रोही! सूर्यादिक सर्वसे पूज्य भगवन्! आपको कल्प पर्यन्त मेरा नमस्कार है।।४०।।

आप सूर्यरूप हो कारण कि आप यादवोंके कुलरूप कमलका विकास करनेवाले हो. आप चन्द्रमारूप भी हो कारण कि पृथ्वी, देव, ब्राह्मण और पशु ये ही समुद्र हैं इनकी वृद्धि करते हो. पाखण्ड धर्मरूप अन्धकारको नाश करते हो. अतः आप अग्निरूप भी हो. पृथ्वी पर प्रकट हुए राक्षसोंका द्रोह करते हो इससे आपके अवतार लेनेके कारणका ज्ञान हो जाता है. ऐसे आपको कल्पपर्यन्त मेरा नमस्कार है. नमस्कार करनेमें कारण बताते हैं कि सूर्यसे लेकर सब देवोंके आप पूज्य हो, अतः मेरा भी आपको नमस्कार करना उचित है।।४०।।

इस निम्न श्लोकमें ब्रह्माजी स्तुतिके अनन्तर आज्ञा ले प्रणामादि करके पधार गए इसका वर्णन है.

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।।

नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ।।४१।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्माजी भूमा(व्यापक) स्वरूपकी स्तुति कर तीन परिक्रमा देकर और चरणोंमें प्रणाम कर अपने लोकको गए।।४१।।

जिसने प्रथम अनन्त कोटि ब्रह्माण्डरूपसे दर्शन दिया था, उस भूमा स्वरूप आत्मा (श्रीकृष्ण स्वरूप)को तीन परिक्रमा देकर पुनः अपने प्रिय भगवानके चरणोंमें प्रणाम कर ब्रह्माजी अपने अभीष्ट धामको गए.।।४१।।

ब्रह्माजीके जानेके अनन्तर जो भगवानने किया उनका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।।

वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ।।४२।।

भगवानने ब्रह्माजीको जानेकी आज्ञा दी, उनके जानेके अनन्तर पूर्ववत् स्थित मित्रोंवाले तट पर भगवान् बछडोंको ले आए।।४२।।

ब्रह्माजी भगवानकी आज्ञा प्राप्त कर जब तक अपने घर जाके बालक और बछड़ोंको ले आवें तब तक भगवान् स्वयं जिस तट पर पहले बछड़े खडे होकर चरते थे, बालक भी बैठकर भोजन आदि करते थे, उस अपने तट पर जहां पहलेकी तरह बालकोंको तट पर बिठाकर, पीछे बछड़ोंको भी लानेकेलिये मानो गये हैं ऐसे बछड़ोंको भी वहां तट ले आए।।४२।।

भगवान् बछडोंको ले आए उस समय बालकोंने भगवानको कैसे पहचाना जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ।।

कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेर्भकाः ।।४३।।

यद्यपि अपने प्राणनाथ भगवानके बिना एक वर्ष बीत गया था तो भी भगवानकी मायासे मोहित उन बालकोंने उस समयको अर्ध क्षणके समान समझा।।४३।।

जहां अपने प्राणपति भगवानके बिना अल्प समय भी महान् होना चाहिये

था वहां पूर्ण एक वर्ष बीत गया तो भी बालकोंने भगवानकी मायासे मोहित हो जानेके कारण उस समयको आधी क्षण समझा था. यह माया भगवानकी थी, ब्रह्माकी नहीं थी।।४३।।

इतने लम्बे वर्ष भरके कालको एक क्षण कैसे समझा. इतना विस्मरण कैसे हुआ? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकमें करते हैं.

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।।
यन् मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ।।४४।।

जिस भगवानकी मायासे मोहित यह सकल जगत् अपने आत्माको ही भूल गए हैं उस मायासे मोहित चित्तवाले यहां क्या-क्या नहीं भूल सकते हैं? अर्थात् सब कुछ भूल सकते हैं।।४४।।

मायासे मोहित चित्तवाले क्या-क्या नहीं भूल सकते हैं? जबकि जिस कारणसे सकल जगत् मोहित होके सदा ही अपनी आत्माको ही भूल गया है।।४४।।

ऊचुस्स्वसुहृदं कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।।
नैकोप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ।।४५।।

बालकोंने अपने मित्र श्रीकृष्णको कहा कि आप बहुत शीघ्र आ गए हमने अब तक एक भी ग्रास नहीं खाया है. यहां आओ अच्छी तरह भोजन करो।।४५।।

इस कारणसे ही अपने मित्र श्रीकृष्णको कहने लगे कि आप बहुत शीघ्र पधारे हो, शीघ्र पधार गये हो. इसकी पुष्टिमें कहते हैं कि देखो आपके जानेके पीछे हमने एक भी ग्रास नहीं खाया है अर्थात् वह ग्रास हाथमें ही है. इस प्रकार कहकर भगवानमें अपना प्रेम प्रकट किया था. इससे अब आप यहां आओ हमारे बीचमें पहलेके समान बैठो और प्रेम पूर्वक भोजन करो।।४५।।

भगवानने, जैसे मित्रोंने कहा वैसे ही किया. ये निम्न श्लोकमें कहते हैं.

ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ।।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद् व्रजम् ।।४६।।

फिर भगवान् हास्य करते हुए बालकोंके साथ भोजनकर अजगरका चर्म दिखलाते हुए वनमें व्रजको पधारे।।४६।।

बालकोंके साथ भोजन कर अघासुरका चर्म बालकोंको दिखाते हुए

वनमें से व्रजको पधारे।।४६।।

व्रजमें आते हुए भगवानका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।।
वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ।।४७।।

जिनकी ग्वालबाल पवित्र कीर्ति गा रहे हैं, जिनकी दृष्टि गोपीजनोंके नेत्रोंकेलिए उत्सव रूप हैं, मोर पिच्छ, पुष्प, वनकी धातु, गेरू आदिकोंसे, विशेष रीतिसे, चित्रित अंगवाले हैं. गौओंके बछडोकों बांधनेवाली रज्जु, वंशी, पत्र और सींगकी ध्वनिसे आनन्दवाले हैं, बछडोंको शब्दों द्वारा पुचकारते अथवा आगे चलाते हैं, वैसे भगवान् व्रजमें प्रविष्ट हुए।।४७।।

प्रोद्दाम गायोंको दोहनेके समय बान्धनेमें आनेवाली रस्सी अथवा इससे भी बड़ी रस्सी बछड़ोंको आगे चलानेकेलिये अस्पष्ट शब्द उच्चारण करते हुए बालक जिनकी कीर्ति गा रहे हैं वैसे गोपीओंके नेत्रोंकेलिये आनन्दरूप दृष्टिवाले भगवान् व्रजमें प्रविष्ट हुए।।४७।।

बालकोंने व्रजमें अघासुरके वधकी कथा कही जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें कहते हैं.

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ।।४८।।

आज इन यशोदा और नन्दनन्दनने अजगरको मारा और इस अजगरसे हमारी रक्षा की।।४८।।

व्रजमें आकर कितनेक बालकोंने कहा कि आज यशोदानन्दनने और कितनेक बालकोंने कहा कि नन्दनन्दनने आज सर्पको मारा तथा उस सर्पसे हम लोगोंकी रक्षा की ।।४८।।

इस प्रकार भ्रान्तोंके मोहकी निवृत्तिके लिए सब प्रकारका सिद्धान्त कहकर अब स्नेहका वास्तविक आश्रय कौन है ? इसके निर्णय करनेकेलिए दूसरा प्रकरण प्रारम्भ करते हैं. स्नेह अपनी आत्मामें ही होता है वह आत्मा कौन ? भगवान् अथवा जीव ? स्नेहका स्वाभाविक पात्र तो भगवान् ही हैं. जीवमें स्नेह तो इसलिए होता है कि जीव उस भगवानका सम्बन्धी वा अंश है. यदि कहो कि जीव भी आत्मा है वह ही प्रेमका पात्र है तो भगवानमें गाढ प्रेम कैसे हुआ ? इस संशयकी निवृत्तिके लिए राजा परीक्षितजी निम्न श्लोकमें प्रश्न करते हैं.

राजोवाच

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।।

योऽभूतपूर्वः स्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ।।४९।।

राजा कहते हैं, हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंका अपने औरस पुत्रोंमें जैसा पहले प्रेम नहीं था इतना अभूतपूर्व प्रेम पराए पुत्र श्रीकृष्णमें कैसे हुआ वह कहो।।४९।।

जीवका प्रथम देहसे सम्बन्ध हुआ, पीछे देहसे उत्पन्न पुत्रादिमें हुआ, पश्चात् नन्दमें, उसके अनन्तर नन्दके पुत्रमें यह क्रम है. अन्यसे उत्पन्नमें अपने प्राणोंसे भी अधिक जो प्रेम वह कैसे हुआ. अपने उत्पन्न बालकोंमें भी इतना पहले प्रेम नहीं था. अतः इस विषयमें क्या सिद्धान्त है वह बताओ।।४९।।

इसके उत्तरमें कहते हैं कि स्नेह भगवानमें ही होता है यह सिद्धान्त है. निम्न श्लोकसे नौ श्लोकोंमें इस सिद्धान्तको प्रदिपादन करते हैं.

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ।।

इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ।।५०।।

श्रीशुकदेवजीने कहा कि महाराज ! सब प्राणियोंको मुख्य अपनी आत्मा(देह) ही प्रिय है. सन्तान और धन आदि दूसरे पदार्थोंमें जो प्रेम है सो देहकी वल्लभता(प्रियता)के कारण ही है।।५०।।

लोकमें तो सबके प्रेमका विषय देह ही है. दूसरे और धन आदिसे प्रेम तो उस देहमें प्रेम होनेके कारण होता है. यह सिद्धान्त योग्य ही है. यदि यों नहीं होवे, तो दूसरे बालकोंमें वा दूसरी देहोंमें प्रेम होना चाहिए।।५०।।

इसमें भी भेद है वह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।।

न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ।।५१।।

हे राजेन्द्र ! देहधारियोंको जैसा स्नेह अपनी-अपनी देहोंमें होता है वैसा ममताके आस्पद(पात्र) पुत्र, धन और गृह आदिमें नहीं होता है।।५१।।

देह मैं हूँ इस प्रकारके ज्ञानसे देहाभिमानी बने हुए लोगोंमें, अपनी देहमें जैसा प्रेम होता है वैसा प्रेम जिन पुत्र, धन, गृहमें ममता रहती है उनमें नहीं होता है. कारण कि ममतावालोंसे अहंमें विशेष आसक्ति होती है।।५१।।

इस उपरोक्त श्लोकमें देहमें प्रेम होता है यह कहा. किन्तु वह प्रेम

वास्तविक किसमें है, इसका निर्णय नहीं हुआ क्योंकि यदि कहो कि देहमें हुआ तो क्या देह आत्मासे पृथक् है? यदि कहो कि आत्मा में तो क्या आत्मा देहसे पृथक् है? किसी भी पामरने देह-आत्मा पृथक् देखी नहीं है तो प्रेम किसमें हुआ? यदि कहो देहमें हुआ तो उसका हेतु कहो. इस पर निम्न श्लोक कहते हैं.

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ।।५२।।

हे राज सत्तम ! जो पुरुष देहको ही आत्मा मानते हैं उनको भी जैसे देह प्यारी है वैसे देहके पीछे लगे हुए पुत्र, धन आदि प्यारे नहीं होते हैं।।५२।।

यद्यपि पामरोंके मतमें भी देहसे आत्मा पृथक् है तो भी उनके देहको ही आत्मा मानना स्वीकार कर कहा जाता है कि देहको आत्मा माननेवालोंको भी जैसी देह अति प्यारी है, वैसे पुत्रादिक नहीं है. राजाको 'राजन्य सत्तम' सम्बोधन शुकदेवजीने राजामें अपने स्नेहको प्रकट करनेकेलिये दिया है।।५२।।

देहोऽपि ममताभाक् चेत् तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः ।।
यज् जीर्यत्यपि देहेस्मिञ् जीविताशा बलीयसी ।।५३।।

यदि देह भी ममताका स्थान हो जाए तो यह देह आत्माके समान प्रिय नहीं रहती, क्योंकि जब देह बहुत जीर्ण हो जाती है मरनेका भी निश्चय हो जाता है तो भी जीनेकी बलवती आशा रहती है।।५३।।

जीवके स्वल्प भी विवेक जब आ जाता है तब वह समझने लगता है कि मैं देह नहीं हूँ किन्तु देह मेरी है. इस विवेकसे जीवको पहले मैं देह हूँ, इस प्रकारके ज्ञानसे जो देहमें प्रेम होता था वह अब नहीं होता है, क्योंकि उसको ज्ञान हो गया है कि मैं देह नहीं हूँ और प्राण ही आत्मा है. इस प्रकार जब मानता है, तब प्राणके समान देह प्रिय नहीं रहती है. देह जीर्ण होती है तो भी जीनेकी आशा बलवती ही रहती है कारण कि देहसे प्राण (आत्मा) प्यारे होते हैं।।५३।।

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।।
तदर्थमेव सकलं जगदेतत् चराचरम् ।।५४।।

इससे सिद्ध होता है कि सब प्राणियोंको अपनी आत्मा ही अतिप्रिय है. यह समस्त जड और चेतन जगत् उसकेलिए ही है।।५४।।

इससे (उपरोक्त कहे हुए ज्ञानसे) निश्चय है कि आत्मा(भगवान्)[१] प्रिय है, इसमें किसी प्रकारका विवाद नहीं है उसकेलिये ही दूसरे सब हैं।।५४।।

१.सबकी आत्मा भगवान् है. जीव सबकी आत्मा नहीं है अतः अपनी आत्मा कहनेका तात्पर्य है कि जीवकी जो आत्मा है वह प्रिय है.

भगवानकेलिये ही सब हैं का तात्पर्य है कि भगवानके क्रीडार्थ और सेवार्थ सकल पदार्थ है न कि जीवकेलिये अतः जीवको सब पदार्थोंका भगवानकी सेवामें उपयोग करना चाहिए– अनुवादक.

इस निम्न श्लोकमें स्पष्ट करते हैं कि वह आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही है.

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ।।५५।।

इस श्रीकृष्णको तुम सब आत्माओंकी आत्मा समझो वह भी जगतके कल्याणार्थ यहां देहीके समान मायासे भासते हैं।।५५।।

यह श्रीकृष्ण सकल आत्माओं की आत्मा है. इसमें ही जीवोंका सहज प्रेम होता है क्योंकि प्रेम भगवानका ही स्वाभाविक धर्म है. भगवानके उस स्वाभाविक धर्म (प्रेम)का अंश दूसरोंमें (उनके अंशोंमें, जीवोंमें) पीछे उत्पन्न होता है. इस विषयको हमने मैत्रेयी ब्राह्मणमें 'वाक्यान्वयात्' इस सूत्रसे स्पष्ट सिद्ध किया है. दूसरे कार्यो वा अंशोंमें जो धर्म देखनेमें आते हैं, वे भगवानके ही धर्म हैं. कृष्णको आप सबकी आत्मा कैसे कहते हो? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकके उत्तरार्धमें कहते हैं कि केवल जगतकी रक्षा करनेकेलिये मायासे मनुष्यके समान प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः वे ब्रह्म ही है।।५५।।

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थाष्णु चरिष्णु च ।।
भगवद्रूपमपरं नान्यद् वस्त्विह किञ्चन ।।५६।।

वस्तुतः सर्व जगतके कारण श्रीकृष्ण ही हैं. इस प्रकारके ज्ञानियोंको सब चर और अचर जगत् भगवानका अपररूप दीखता है क्योंकि कोई भी वस्तु भगवानसे भिन्न नहीं है।।५६।।

श्रीकृष्णके स्वरूपको वास्तविक रीतिसे जाननेवालोंको सब ही स्थावर और जंगम भगवानका ही रूप दीखता है, क्योंकि उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं. भगवानका ऐसा रूप कैसे है? इसके उत्तरमें श्लोकमें कहते हैं कि 'अपरं' कृष्णका एक रूप 'पर' है और दूसरा 'अपर' है. 'पर' रूप तो अलौकिक आनन्दमय है और यह 'अपर' तिरोहितानन्द स्वरूप है. अतः महान् पुरुषोंकी प्रतीतिसे भी श्रीकृष्ण भगवान् हैं. 'यस्मिन् विदिते सर्वमिदं विदितं भवति'

(जिसको जाननेसे सबका ज्ञान हो जाता है) यह श्रुति भी तभी ही चरितार्थवाली होती है।।५६।।

सर्व 'भगवान्' हैं इसमें केवल महापुरुषोंकी दृष्टि ही प्रमाण नहीं है किन्तु युक्ति भी इसको सिद्ध करती है यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

सर्वेषामेव भावानां भावार्थो भवति स्थितः ।।

तस्याऽपि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम् ।।५७।।

सर्व पदार्थो(कार्यो)का कारण होता है तब सब कार्योके कारणोंका कारण आपमें स्थित है अर्थात् मूल कारण आप श्रीकृष्ण भगवान् हो. उस (भगवान् श्रीकृष्ण)से पृथक् कोई वस्तु नहीं है. जो पृथक् है तो बताओ।।५७।।

सर्व पदार्थोंका अबाधित अर्थ उसके कारणमें स्थित होता है. कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता है. उस कारणका भी कारण तत्त्व भगवान् ही है. भगवानसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है, है तो बताओ।।५७।।

स्नेह भी धर्म है. वह जगतके समान पहले उत्पन्न हुआ है. इसलिए वह प्रेम भगवानमें ही होना चाहिए. इस प्रकार प्रसंगसे उसको कारण कहा. सर्व पुरुषार्थरूप होनेसे उसमें स्वतः स्नेह होता है – यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत् पदं पुण्ययशो मुरारेः ।।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ।।५८।।

भगवानके पुण्य यशवाले चरणका जिनने आश्रय लिया है और चरण कँवल रूप नौका ही जिनका परम पद है उनकेलिए यह संसार–समुद्र बछडेके खुरके समान है एवं वही पद (उद्यम) है. विपत्तियोंका स्थान (बार–बार जन्म लेना) उनके लिए पद नहीं है।।५८।।

जो मुर दैत्यके शत्रुके चरणोंके आश्रित हैं जो चरण पुण्य कीर्तिवाले हैं, चरणकमलकी नौका है वह नौका स्वभावसे महत् पद(स्थान, आश्रय) है उन चरणाश्रितोंकेलिये संसार–समुद्र पार करना 'वत्सपद'को उल्लंघन करनेके समान सरल है. वही उनका परम पद है. विपत्तियोंका पद (पुनर्जन्म लेना) उनका पद(उद्यम) नहीं है।।५८।।

निम्न श्लोकसे विषयका उपसंहार करते हैं.

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोहमिह त्वया ।।

यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ।।५९।।

भगवानने कौमार अवस्थामें जो चरित्र किया वह बालकोंने पौगण्ड अवस्थामें कहा. इस विषयमें जो तुमने पूछा था वह सब मैंने तुमको कह दिया।।५९।।

कौमार अवस्थामें हरिने जो किया वह पौगण्ड़ अवस्थामें कहा. इस प्रकारके जो प्रश्न प्रक्षिप्त (पहले अध्यायके ४१ वें व ४२ वें श्लोकमें किये) थे उन सबका तुमको उत्तर दिया. उस विषयमें जो अयोग्यता समझी जाती थी यह समग्र प्रकरण कहकर उसका निवारण किया।।५९।।

इन तीन अध्यायोंके श्रवण और कीर्तनके फलका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाड्वलजेमनं च ।।
व्यक्तेतरं रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ।।६०।।

भगवानने मित्रोंके साथ जो चरित्र(क्रीडा) किए, अघासुरको मारा, हरियाली भूमि पर भोजन किया, प्रकट रूपसे अन्य स्वरूपका दर्शन, ब्रह्माजीकी करी हुई स्तुति आदि सर्व चरित्रोंको श्रवण और कीर्तन करनेवाले पुरुषके सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं।।६०।।

आदिमें अर्थात् पहले मुरारिका बालकोंके साथ किया हुआ रमण चरित्र पश्चात् अघासुरका वध, हरियाली भूमि पर भोजन करना, 'च' शब्दसे वत्सोंको चुराना और भगवानके इस प्रकट रूपसे अन्यरूप जो अदृश्य अलौकिक हैं उनका दर्शन ब्रह्माजीने जो विशेष स्तुति की है इन सर्व विषयोंको सुननेवाला और कीर्तन करनेवाला भी सर्व पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है।।६०।।[१]

१. टिप्पणी–इसके अनन्तरका 'एवं विहारैः कौमारैः' यह श्लोक एकादश अध्यायमें आया हुआ है अतः इसको पुनः आचार्यश्रीने यहां नहीं लिया है और न पुनः उसके अर्थकी आवश्यकता है – अनुवादक.

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके दशमस्कन्धमृ प्रक्षिप्त तीन अध्यायृमृसे प्रक्षिप्त तृतीय अध्यायका (स्कन्धानुसार अध्याय १४) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

श्रीभागवत सुबोधिनी

दशम स्कन्ध

तामस 'प्रमेय' अवान्तर प्रकरण

*अध्याय १२/१५

धेनुकासुरका उद्धार; ग्वालबाल्की कालिय नागके विषसे रक्षा

यशोदानन्दयोरेवं निरोधः सुनिरूपितः।
गोपालानां निरोधोऽत्र सस्त्रीकाणां निरूप्यते ।।का.१।।

कारिकार्थः इस प्रकार (तामस-प्रमाण उपकरणमें) यशोदा और नन्दजी का निरोध अच्छे प्रकारसे निरूपणकर, इस (प्रमेय-प्रकरण)में स्त्रियों सहित गोपोंके निरोधका निरूपण करते हैं:

तामस प्रमाण अवान्तर प्रकरणमें यशोदा तथा नन्दजी के निरोधका मुख्य रूपसे पूर्णतया वर्णन किया हुआ है. गौण रूपसे प्रसंग आनेपर एवं गोपियोंका भी निरोध किया है. अब इस तामस प्रमेय प्रकरणके १२ से १८ तकके सातों अध्यायोंमें मुख्यरूपसे गोप और उनकी स्त्रियोंका निरोध वर्णन किया गया है ।।१।।

मध्यमोऽयं समस्तानां निरोधः परिकीर्त्यते।
पञ्चधैवानुभावोऽत्र दुष्टनिग्रहरूपवान्।।का.२।।

कारिकार्थः यहां (प्रमेय प्रकरणमें) सबके जिस निरोधका वर्णन किया जाता है वह निरोध मध्यम निरोध है. दुष्टोंका निग्रह रूप प्रभाव पांच प्रकारका ही यहां निरूपण करते हैं.

'गोप' शब्दसे यहां भगवान्के मित्र समझने चाहिए और 'गोपकी स्त्रियां' शब्दसे गोपियां समझनी चाहिए. इनके जिस निरोधका यहां वर्णन किया गया है वह मध्यम निरोध है, क्योंकि प्रमाण उपप्रकरणमें किए हुए निरोधसे यह विशेष है और इससे भी विशेष निरोध साधन उपप्रकरणमें किया जाएगा, अतः इसे मध्यम निरोध कहते हैं. इस उपप्रकरणके(१२से १६) ५ अध्यायोंमें भगवान्का दुष्ट

*** प्रक्षिप्त तीन अध्याय्को छोडकर श्रीसुबोधिनी अनुसार अध्याय १२/प्रचलित क्रमानुसार अध्याय १५**

निग्रह करनेसे पांच प्रकारका प्रभाव कहनेमें आया है.

पांच अध्यायोंमें जिन पांच दुष्टोंका भगवान्ने निग्रह किया है, उनके यह नाम हैं : १. धेनुकासुर, २.कालीयनाग, ३.पहली दावाग्नि, ४. प्रलम्बासुर और ५.दूसरी दावाग्नि. ये पांचों अविद्याके पांच पर्व रूप हैं. जैसा कि

१.धेनुकासुर देहाध्यासका रूप है जिससे मनुष्यको यह भ्रान्ति होती है कि ''देह ही मैं हूं''.

२.कालीयसर्प इन्द्रियाध्यासका रूप है जिससे मनुष्य समझता है कि ''मैं इन्द्रिय रूप हूं''.

३. प्रथम दावाग्नि प्राणाध्यासरूप है जिससे प्राणको ही अपना रूप माना जाता है

४. प्रलम्बासुर अन्तःकरणाध्यासरूप है जिससे ''अन्तःकरण ही मैं हूं'' ऐसा निश्चय हो जाता है.

५. द्वितीय दावाग्नि स्वरूप विस्मृति रूप है जिससे मनुष्य अपने आत्मरूपको भूल जाता है.

इस प्रकार इन पांच दुष्टोंके जालमें फंसे हुओंको छुडानेकेलिए इन पांचोंको भगवान्ने निग्रहकर गोप–गोपियोंका निरोध किया है जिससे इस उप–प्रकरणमें भगवान्का प्रभाव निरूपण हुआ है. कृष्णोपनिषद्में 'लोभादिकों'को दैत्य कहा गया है तदनुसार यहां भी अविद्याके पांच पर्वोंने धेनुकासुरादि रूप धारण किए हैं उनका नाश कर भगवान्ने अविद्याको नष्ट किया है. यही भगवान्का प्रभाव है।।२।।

आध्यात्मिकीम् अविद्यां वै दूरीकर्तुं तथाकृतिः।
तदर्थं क्रमतोऽध्याया उभयेषां तथा द्वयम्।।का.२।।
स्नेहाधिक्यसुसिद्ध्यर्थं स्नेहान्तो मध्यमः स्मृतः।
प्रथमं द्वादशेऽध्याये देहाध्यासो हि धेनुकः।।का.३।।

कारिकार्थः आध्यात्मिकी अविद्याको दूर करनेकेलिए ही भगवान्की ऐसी कृति है. इसलिए क्रम पूर्वक पांच अध्याय कहे गए हैं. शेष दो अध्याय दोनों (गोप और उनकी स्त्रियों)के अधिक स्नेहकी सिद्धिकेलिए कहे हैं, मध्यम निरोधका फल स्नेह है. प्रथम (द्वादश) अध्यायमें धेनुकको देहाध्यास कहा गया है।।३–४।।

अविद्या आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक होनेसे तीन प्रकारकी

है. स्थूल शरीरमें जिससे अध्यास होता है वह अविद्या आधिभौतिक है. उस आधिभौतिक अविद्याका रूप पूतना थी जिसका नाश प्रमाण उप-प्रकरणमें भगवान्ने किया है. जिससे स्थूल देहाध्यास रूप अविद्या व्रजवासियोंकी नष्ट हुई. अब इस प्रमेय उप-प्रकरणमें भगवान् सूक्ष्म(लिंग) शरीराध्यास रूप आध्यात्मिक अविद्याका नाश करेंगे. यह अविद्या तब नष्ट होगी जब इसके देहाध्यासादि पांच पर्वरूप धेनुकासुरादि पांच दुष्टोंका नाश होगा. भगवान्ने इस प्रकरणके एक-एक अध्यायमें एक-एक दैत्यका नाश किया है, इस प्रकार १२से १६ तकके पांच अध्यायोंमें पांचोंका नाशकर भगवान्ने व्रजवासियोंकी आध्यात्मिक अविद्या नाशकी है. १७वें और १८वें इन दो अध्यायोंमें भगवान्के मित्र गोप और उनकी स्त्रियोंके निरोधका वर्णन है. इन दोनोंका निरोध अन्य व्रजवासियोंसे पृथक् निरूपण करनेका कारण यह है कि इन दोनोंमे उन (व्रजवासियों)से भगवान्में स्नेह विशेष था. जिस निरोधका फल [१]स्नेह (आसक्ति) है वह निरोध मध्यम कहा जाता है. इस उप-प्रकरणमें 'स्नेह' शब्दका तात्पर्य आसक्तिसे है. कारण कि तामस प्रमाण उप-प्रकरणमेंकी हुई लीलाओंसे व्रजवासियोंका भगवान्में स्नेह हो जानेसे उनको प्रमेय (भगवान्)की प्राप्ति हो गई, जिससे इस उप-प्रकरणमें भगवान्ने साधनोंकी अपेक्षा न रखकर अपने प्रमेय बलसे इनका मध्यम निरोध सिद्ध किया है.

१. निरोध चार प्रकारका है १.स्नेह, २.आसक्ति, ३.व्यसन और ४.फल.
प्रमाण उप-प्रकरणमें स्नेहात्मक निरोधका वर्णन है. अ. ५से ११ तक
प्रमेय उप-प्रकरणमें आसक्तिरूप निरोधका वर्णन है.अ. १२से १८ तक
साधन उप-प्रकरणमें व्यसनरूप निरोधका वर्णन है. अ. १९से २५ तक
और फल उप-प्रकरणमें फल रूप निरोधका वर्णन है. अ. २६से ३२ तक

आचार्यश्रीने तत्त्वदीप निबन्धके भागवतार्थ प्रकरणके दशम स्कन्धकी कारिका ५९वीं, ६०वींमें निरोध ४ प्रकारके कहे हैं.

द्वादश अध्यायमें बताया है कि धेनुक दैत्य देहाध्यास है. ५वें से ८वें श्लोकों तक लीलाके सम्बन्धी सर्व वस्तुओंका ज्ञान भगवान्ने व्रजवासियोंको कराया. तदनन्तर ९वें से १८वें श्लोकों तक दश रस पूर्ण लीलाओंके अनुभव कराए. इस प्रकारके अनुभवमें इन लोगोंका भगवान्में भाव जागृत हुआ, जिससे उनको देह आदिका विस्मरण भी हो गया. यह भाव स्वल्प समयकेलिए नहीं जगा था किन्तु सदैवकेलिए उत्पन्न हो गया था. वह कभी भी कम न हो इसलिए भगवान्ने दश विध रसवाली लीला रूप धेनुक देहाध्यासको पहले नष्ट किया.

जिन लोगोंका आग्रह है कि अविद्या देहाध्यास कराती है उनको श्रीविट्ठलेश्वर प्रभुचरण 'दुर्जन परितोष न्याय'से कहते हैं कि आप धेनुकको ही अविद्यारूप समझो. आपके मतानुसार अविद्या देहमें अध्यास कराके लौकिकमें प्रवृत्ति और भगवद् भजनमें विघ्न डालती हैं, वही कार्य धेनुक कराता है जैसे गोप वनमें जाकर भगवद् भजन करना चाहते थे उस समय धेनुक उसमें विघ्न करता था अतः धेनुक देहाध्यास रूप है यह निश्चित सिद्धान्त है।।३-४।।

तद्वधो ज्ञानपूर्वो हि फलावधि निरूप्यते।
कालीय इन्द्रियाण्याहुर्विषयास्तद्विषं मतम्।।का.५।।

कारिकार्थ : ज्ञानपूर्वक फलकी प्राप्ति होने तक उसके वधका निरूपण किया गया है. मनुष्यकी इन्द्रियां कालीय सर्पके विषके समान हैं।।५।।

जबतक ज्ञानपूर्वक फलकी प्राप्ति हुई तबतक धेनुकके वधका निरूपण होनेसे सिद्ध है कि धेनुक देहाध्यास था. जैसे तत्त्वज्ञानसे देहाध्यासका नाश होता है. यह तत्त्वज्ञान तब होता है जब आत्मामें पूर्ण प्रेम उत्पन्न हो. वैसे ही गोपोंको भगवान्की लीलारसका अनुभव होनेसे उस रसके विशेष पान करनेकी तीव्र इच्छा हुई जिससे उन्होंने धेनुकके वनमें भगवान्की भक्ति करनेकेलिए वहां जानेकी भगवान्को प्रार्थनाकी. वहां जाकर विशेष रसका अनुभव किया, जिससे तत्त्वज्ञान की तरह यहां भी गोपोंका देहाध्यास नष्ट हो गया अर्थात् धेनुकका नाश हुआ.

ये सर्व वृक्षादि पदार्थ लीला सम्बन्धी हैं और लीला दश रसोंवाली है, इसका अनुभव और इस प्रकारका ज्ञान गोपोंको हुआ तदनन्तर धेनुकका (देहाध्यास) नाश हुआ.

धेनुकके नाशसे जो उत्तम फल प्राप्त होता है वह गोपोंको भी प्राप्त हुआ. जैसे कि धेनुकके मरनेपर वे निर्भय हुए और निडर होकर वनके फल खाने लगे. देहाध्यास नष्ट होते ही विष युक्त यमुना जल पान करनेसे प्राण त्याग किया तब भगवान्ने अपनी अमृतमयी दृष्टिकी वर्षासे उनको जीवनदान देकर अलौकिक देहकी प्राप्ति करा दी।।५।।

ततः सर्वविनाशः स्यादित्यन्ते मरणाभिधा।
ततश्चेद् जीविताः सर्वे पुनर्देहान्तरस्थितिः।।का.६।।

कारिकार्थः उससे(विषसे) सर्वका नाश होता है इसलिए अन्तमें मरण कहा है. मरणान्तर जीनेपर दूसरे देहकी प्राप्ति समझनी चाहिए।।६।।

जैसे सर्पके विषसे मरण होता है वैसे ही विषय रूप विषसे जीर्णशीर्ण इन्द्रियोंसे मृत्यु होती है. अतः इन्द्रियां कालीय सर्पके समान हैं और विषय विष जैसे हैं.

आध्यात्मिक अविद्याको नाश करनेकेलिए धेनुकादिका भगवान्ने प्रथम निग्रह किया है. लिंग शरीरमें जो अध्यास होता है वह आध्यात्मिक अविद्यासे होता है. जब तक आध्यात्मिक अविद्या नष्ट नहीं होगी तब तक प्राकृत लिंग शरीरका भी नाश न होगा. भगवान्को इनके प्राकृत लिंग शरीरका नाश करना है. अतः ये कालीयके विषसे युक्त यमुनाजीका जल पीते हैं जिससे मृत्युको प्राप्त होते हैं. उनका प्राकृत लिंग शरीर नष्ट हो जाता है. भगवान् अपनी अमृतमयी दृष्टि वृष्टिसे उनको अलौकिक देहका दान करते हैं. वह अलौकिक देह लीलोपयोगी होती है. यह देह प्रारब्ध कर्मसे उत्पन्न नहीं हुई है कारण कि लिंग शरीरके नाशसे उनके प्रारब्ध कर्म भी नष्ट हो गए थे.

लीलाके उपयोगी भक्तोंका जीवन अलौकिक ही होता है. जैसे लीलामें स्थित वृक्षादिकोंका अलौकिक स्वरूप भगवान्ने बलदेवजीको दिखाया वैसे ही गोपोंका स्वरूप भी अपनी कृतिसे दिखानेकेलिए प्रथम उनमें लौकिक भावकी स्थापनाकी थी. उनका देहाध्यास नाशकर उनको अलौकिक देहका दान किया. वास्तवमें तो लीलाके जीवोंमें प्राकृतता कभी भी नहीं होती है उनमें सदैव भगवद्भाव ही बना रहता है.

कारिकार्थ व्याख्या सहित सम्पूर्ण.

ज्ञानका निरूपण करते हुए प्रथम भगवान्ने १. देशकी शुद्धि २. वनमें प्रवेश और ३. वनमें क्रीडा करनेका मन किया. इसका वर्णन क्रम पूर्वक तीन श्लोकोंसे करते हैं. ज्ञान सात्त्विक होनेसे सात्त्विक स्थानपर ही उत्पन्न होता है. वन सात्त्विक है अतः वहां ही ज्ञान होगा वहां उद्वेग भी न होगा, इसलिए वहां भिन्न प्रकारसे[१] प्रवेश और क्रीडा करनेका मन किया[२]. इस उपप्रकरणमें मध्यम लीलाके प्रारम्भमें देशशुद्धिकी आवश्यकता है कारण कि वृन्दावनमें दैत्योंका बाहुल्य है अतः प्रथम श्लोकमें देशकी शुद्धिका वर्णन है.

१.११वें अध्यायमें भी वन लीला कही है. वह गांवके सम्बन्धवाली होनेसे वैसी नहीं थी जैसी यह है. अतः यहां पृथक् प्रकारसे प्रवेश किया. 'लेख'

२.धेनुकका वध ज्ञान पूर्वक करना है, इसलिए ज्ञानका निरूपण आवश्यक है. किन्तु

यहां वन प्रवेश आदिका वर्णन प्रथम इसलिए किया है कि ज्ञान सात्त्विक स्थानमें उद्‌भव होता है. वन सात्त्विक स्थान है वहां ज्ञानका वर्णन उद्वेग बिना होगा. 'प्रकाश'

श्रीशुकः उवाच

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि फिर पौगण्ड आयुको प्राप्त हुए, वे दोनों भ्राता, व्रजमें पशुपालोंके मान्य हुए. सखाओंके साथ गौओंको चराते हुए अपने चरणारविन्दोंसे वृन्दावनको विशेष पवित्र करते थे.

छठ्ठे वर्ष पर्यन्तकी आयु 'पौगण्ड' कही जाती है. 'पौगण्ड' शब्दका भावार्थ यह है कि उस आयुमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली कालाभिमानी देवता इस कालमें भगवान्‌की सेवा करनेकेलिये आये हैं. प्रथम भगवान्‌में दोषोंका अभाव[१] है, इसका निरूपण करना चाहिये. इसलिये प्रमाण उपप्रकरणमें पांच वर्ष भगवान्‌की आयुके कालका वर्णन पहले ही किया गया है. इसके अनन्तर दोनों भ्राताओंने तारुण्यके सदृश पौगण्डवय धारणकी और पशुपालोंके मान्य हुए अथवा पशुओं (गौओं)के पालन करनेके योग्य हो गये. यह (गौचारण) चरित्र साधारण चरित्र होनेके कारण दोनोंका चरित्र साथमें वर्णन किया है. सख्य पर्यन्त आये हुए गोपबालक सखाओंके साथ गौओंको चराने लगे. इन गोपबालकोंसे उनका गौ पालन धर्म कराने लगे, यदि वे उस धर्मका पालन न करें तो उनके चित्तोंमें विक्षेप पैदा हो जाये, जिससे वैकुण्ठमें ले जानेका लक्षणवाला आत्मसमर्पण उनका सिद्ध नहीं हो सकता[२] इससे ये दोनों, सखाओंकी गौओंको चराते हुए अपने पदारविन्दोंसे वृन्दावनको पुण्यरूप करने लगे. पहले यह वृन्दावन भूमि सम होनेसे, केवल यज्ञ भूमि थी. अब पुण्य स्थानरूप चरणारिवन्दोंके स्पर्शसे पुण्यरूप भी हो गई. इस लोक और परलोकके धर्मके साधन और कामनाके अनुरूप फल देनेवाले साधनको 'पुण्य' कहा जाता है. यह वृन्दावन भी पुण्यरूप होनेसे निःसाधनोंका स्वयं ही भगवान्‌की प्राप्तिका साधन हो गया है. इतना ही नहीं किन्तु लीला विशिष्ट होनेसे स्वतः फलरूप हैं. यही वृन्दावनमें विशेषता समझनी चाहिये और जिसको इच्छा न हो, तो भी उसको भगवत् प्राप्ति कराता है अतः यह वृन्दावन पुण्योंसे भी विशेष उत्तम है ।।१।।

१.श्रीविट्ठलेश्वर प्रभुचरण, 'टिप्पणी' में इसका स्पष्ट विवेचन करते हुए कहते हैं कि, प्रभुमें दोष लेश भी नहीं हैं, क्योंकि जैसे प्राणियोंके देहमें देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण और जीव ये पांच पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवान्में भी प्रतीत होते हैं जिससे पुरुषकी तरह भगवान् भी दोषवाले हैं. इन पांचोंका अभाव सिद्ध हो जाये तो दोषाभाव हो, अन्यथा दोष सिद्ध है ही. इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्में देह आदि पांचोंका अभाव 'प्रमाण' उप-प्रकरणमें सिद्ध हो गया है. भगवान्में जैसे इन दोषोंका अभाव सिद्ध है, वैसे ही भगवान्के भक्तोंमें ये दोष नहीं हैं. यदि भक्तोंमें दोष होते तो भगवान् उनको अपना सखा न बनाते. वह सखापन लीला द्वारा वहां कहा गया है, और जैसा श्रीकृष्णका प्राकट्य उत्सव मनाया गया हो वैसा ही जीवका नहीं मनाया जाता है. इसके सिवाय पूतनाका नाश और मुक्ति दानका कार्य जीव नहीं कर सकता है. अतः श्रीकृष्ण भगवान् हैं जीव नहीं हैं. अपनी बुराई करनेवालेकेलिये ब्रह्मादिकोंको दुर्लभ पुरुषार्थके हेतुवाला कृपायुक्त अन्तःकरण भगवान्के सिवाय दूसरेका नहीं हो सकता है. जहां भी कृपा आदि श्रेष्ठता देखनेमें आती है, वहां स्वार्थका उल्लङ्घन नहीं होता है. यहां तो स्वार्थका उल्लङ्घन करते हुए भी कृपाकी गई है. पूतनाके विष युक्त स्तन्य सम्बन्ध होनेपर प्राणोंकी रक्षा हो नहीं सकती थी किन्तु यहां उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ. अतः भगवान्में न अन्तःकरण दोष हैं और न प्राण दोष हैं. इसलिये ही भगवान्को 'दुर्जर वीर्य' कहा जाता है अर्थात् जिसकी वीर्य शक्ति कभी कम न हो. प्राण रक्षार्थ माताके स्तनकी इच्छावाले छोटे बालकपनेकी दशामें पूतनाके स्तन्य पान किये, कोमल पादांगुलियोंके स्पर्शसे शकट भञ्जन किया, तृणावर्तका गला ग्रहण किया, बकासुरके मुखमें प्रवेश किया आदि कार्य, अवस्था विरुद्ध करनेपर भी कुछ (मृत्यु आदि) न हुआ जिससे आपमें प्राणोंका अभाव सिद्ध है. अपने मुखारविन्दमें विश्वके दर्शनसे और ऊखलसे बन्धन समय रज्जुका छोटा होना दिखाता है कि आपमें देह इन्द्रियादि नहीं हैं. ''या पृथिव्यां तिष्ठन्'' इत्यादि श्रुति प्रोक्त धर्मवाले भगवान्में देह इन्द्रियादि हो नहीं सकते हैं. यह भी विचार करना चाहिये कि एक ही देहमें लघुत्व एवं गुरुत्व एक ही कालमें नहीं होता है, जिससे रज्जुमें अन्य रज्जु मिलानेपर भी कम ही कम होती गई. इससे भगवान्में देहादिकोंके अभावसे उनका अध्यास भी नहीं था. और उपरोक्त कहे हुए गुणोंसे आप (भगवान्)का निर्दोष पूर्ण विग्रहरूपसे सिद्ध ही हैं.

२.'टिप्पणी'में श्रीविट्ठलेश्वर प्रभुचरण आज्ञा करते हैं कि प्रभुके सख्यको प्राप्त बालकोंको, प्रभु जैसे कर्त्तव्य ही करने चाहिये परन्तु ये तो वर्णधर्म पालन करते हैं वह योग्य नहीं हैं ऐसी शंका नहीं करनी, क्योंकि भगवान्ने उन (बालकों)में 'स्वाभाविक'

धर्मोंके स्थापन करनेके साथ सख्यका भी दान किया है. अतः इसमें विशेषता ही है, हानि कुछ भी नहीं है. यदि भगवान् इस प्रकार न करते, तो विष पानके व्याजसे मृत्यु कराकर स्वाभाविक धर्मोंका नाश तथा अलौकिक देहकी प्राप्तिकी लीला भगवान्ने न की होती. इस प्रकारसे सख्यका फल प्राप्त हो, तब तक भगवान् उनसे गोरक्षाका कार्य कराते हैं. सख्य फल प्राप्त होनेपर प्रभु कर्त्तव्य करना ही उनका स्वधर्म है. यदि वे उनको न करें और स्वाभाविक धर्मोंसे चित्त इधर-उधर भटकने लग जाये तो गोप भगवान्के माहात्म्य ग्रहणमें असमर्थ हो जावें और मनमें भगवान्के लोकके देखनेकी उत्कण्ठा भी पैदा न होवे, तो उसके दर्शन भी न हों. कारण कि समर्पण करनेपर भी यदि भगवान् उसको स्वीकार न करें तो समर्पण सिद्ध नहीं होता है. जब भगवान् अपनाते हुए अङ्गीकार करते हैं तब सिद्धि होती है. यहां तो भगवान् उनकेलिये अपने गृहको प्रकट करनेसे उनमें अपनापन मानते हैं ऐसा जाना जाता है. उनकेलिये वैकुण्ठ प्रकट करना ही आत्मसमर्पणरूप है. यह साधनरूप होनेसे, साधन उप-प्रकरणमें इसका निरूपण है. फलरूपका तो फल उप-प्रकरणमें निरूपण होगा. साधनरूप नौ प्रकारकी भक्तिके अनन्तर फलरूप नवविध भक्तिका भी निरूपण होगा.

तदनन्तर भगवान्के वृन्दावनमें विशेष प्रकारसे प्रवेशका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद् विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ।।२।।

आपके यशका गान करते हुए ग्वालबालोंसे वेष्टित, बंसी बजाते हुए भगवान् गौओंको आगे कर, विहार करनेकी इच्छासे, पशुओंके हितकारी पुष्पोंसे समृद्ध वनमें बलरामजीके साथ पधारे।।२।।

भगवान्के वनमें प्रवेशका वर्णन पहले श्लोकमें सामान्य रीतिसे किया था, अब इस श्लोकमें विशेष प्रकारसे है. लक्ष्मी पति भगवान्ने लक्ष्मी[१] के साथ क्रीड़ा करनेकेलिये वेणु बजाते हुए वनमें प्रवेश किया. वेणुके बजानेका कारण यह है, कि इस क्रीड़ामें शब्द[२] ब्रह्म (वेद)की भी सम्मति है. वेणुके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्वरूप(मोक्ष)के आनन्द और विषयों (स्वर्ग)के आनन्द वेणुके नादके आनन्दके आगे तुच्छ हैं. 'वेणु' शब्दमें व+ई+अणु तीन शब्द मिले हैं 'व' का अर्थ 'स्वरूपानन्द' (मोक्ष) है, 'ई'का अर्थ 'विषयानन्द' (स्वर्गका आनन्द) है, ये दोनों 'अणु' तुच्छ हैं. अतः वेणुसे ये तुच्छ होनेके कारण वंशीकी ध्वनिसे दोनों सुखोंकी विस्मृति हो जाती है, जिससे वंशी ध्वनि सुनते ही मुक्त

और स्वर्गस्थ (विषयानन्द) जीव इस आनन्दके स्वाद लेनेकेलिये दौड़ते हुए आते हैं. आध्यात्मिक भक्त और आधिदैविक भक्त वेणुनादके श्रवणसे उद्‌बुद्ध हो जाते हैं. इससे वेणु बजाते ही भगवान् आधिदैविक गोपोंसे वेष्टित हो जाते हैं. ये गोप आधिदैविक होनेसे निरन्तर भगवान्‌के यशका गान करते रहते थे. सामर्थ्य (विघ्नोंको दूर करने)केलिये बलदेवजीको साथ लिया था. कारण कि बलदेवजी बलात्मा हैं. क्रियामें पशुओंके उपयोगकी आवश्यकता होनेसे पशुओंको अगाडीकर प्रथम उन (पशुओं)को क्रियाशक्तिसे (वनमें प्रवेश करनेसे वा करानेसे) शुद्ध करनेकेलिये वनमें प्रवेश किया. यह स्थान (वन) पशुओंका [३]हितकारी है. इसे भगवान्‌ने पहले ही ऐसा बना दिया था. विहारकी इच्छासे प्रवेश किया. विहार करनेसे क्रिया पूर्ण होती है और रजोगुणसे विहार होता है. इस स्थानमें रजोगुणकी विशेषता है, क्योंकि यह वन रजोगुणका विकास करनेवाले पुष्पोंका स्थान है वनकी लीला सत्त्वगुण प्रधान [४]रजोगुणवाली है ।।२।।

१.टिप्पणीमें श्रीमद्‌विट्ठलेश्वर प्रभुचरण आज्ञा करते हैं कि यहां 'लक्ष्मी' शब्दका प्रयोग व्रज सीमन्तिनियोंकेलिये किया है.

२.वनमें प्रवेशका कारण स्वच्छन्द लीला है. स्वच्छन्द लीलामें मर्यादा नहीं रहती है तो उसमें वेदका विरोध होगा? इस शंकाके मिटानेकेलिये उत्तम ब्रह्मरूप वेणु बजाकर वेदकी सम्मति प्रकटकी है. 'वेणु' शब्दका अर्थ सुबोधिनीमें यह किया है कि स्वरूपानन्द और विषयानन्दका सुख वेणु नादके सुखके आगे तुच्छ है. जब लीलामें प्रवृत्त करानेवाले वेणुके नादके आगे स्वरूपानन्द और विषयानन्द तुच्छ है तो लीलाके आगे वे तुच्छ हों तो कौन सा आश्चर्य है.

३.वृन्दावनके तृणादि दोष रहित हैं यह आगे कहा जायेगा. अतः उनके सम्बन्धसे गौ भी शुद्ध होगी इसीलिये वनको पशुओंका हितकारी कहा है.

४.श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण टिप्पणीमें कहते हैं कि जैसे लौकिकमें रस बढानेवाली रीति रस शास्त्रमें वर्णनकी गई है, वैसे ही अलौकिकमें भी वही प्रकार रस बढानेका है इसलिये यहां 'रजोगुण' शब्दसे केवल बढानेवाली सामग्री कही है.

'प्रकाशकार' इसको विशेष स्पष्टकर रजोगुण कहनेसे उत्पन्न शंकाका निवारण करते हैं. यह रजोगुण भगवद्धर्मरूप है अतः इससे उत्पन्न ११ वृत्तियां भी लौकिक नहीं किन्तु अलौकिक हैं. जैसे भगवान् अलौकिक रसरूप हैं वैसे उनके धर्म भी अलौकिक रसरूप होनेसे यहां रजोगुणसे उत्पन्न सर्व सामग्री भगवद् रस रूप है.

प्रवेशके पश्चात् भगवान्‌ने वहां वृन्दावन और गोवर्धनके निकट

रहनेवाली अलौकिक देवताओं (वृजकी सुन्दर उत्तम स्त्रियों)से रमण करनेका मन (इच्छा) किया. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ।।३।।

सुन्दर मधुर शब्द करते हुए भ्रमर, मृग तथा पक्षियोंसे व्याप्त और महत्पुरुषोंके समान स्वच्छ जलसे भरे सरोवरोंमेंसे आती हुई कमलोंकी सुगन्धिसे युक्त पवनको देखकर भगवान्ने क्रीडा करनेकेलिए मन किया।।३।।

भ्रमर, मृग तथा पक्षियोंके मधुर ध्वनिसे भरपूर वनको देखकर भगवान्ने रमण करनेकेलिये मन किया जिस भूमिपर तीन प्रकारके मधुर शब्द होते हों, वह भूमि दोष रहित अर्थात् शुद्ध है. वनमें तृण, पुष्प और फल ये तीन वस्तुयें होती हैं. तृणादिकोंके सम्बन्धी[१] दोष रहित हैं तो वे तृणादिक भी निर्दोष ही हैं. शुद्ध तृणादिकोंके भक्षण करनेसे उनका शब्द मधुर ही रहा है. भ्रमरादिकोंकी ध्वनि स्वतः सिद्ध मधुर होती है, पुनः उसकी मधुरता कहनेका कोई अर्थ नहीं था. इस शंका निवारणकेलिये कहते हैं कि उनकी मधुर ध्वनि कहनेका तात्पर्य यह है कि यह मधुरता लोक प्रसिद्ध मधुरतासे विशेष भिन्न प्रकारकी है. कारण कि यह ध्वनि इनकी तब निकली जब इनको भगवान्ने वंशी (भगवत्स्वरूप)के नादके अनुभवसे आनन्द उत्पन्न हुआ. उस आनन्दसे उत्पन्न यह मधुर ध्वनि अलौकिक रसमयी थी, इसलिए इसका कहना आवश्यक तथा सार्थक ही है और मधुर ध्वनि भ्रमर तथा पक्षियोंकी होती है किन्तु मृगोंकी नहीं होती है. यहां मृगोंकी मधुर ध्वनि कही है इससे यह स्पष्ट एवं निश्चित सिद्ध होता है कि यह मधुर ध्वनि सामान्य लौकिक नहीं थी किन्तु वंशीके नाद श्रवणसे उत्पन्न आनन्दके कारण हुई है, नहीं तो 'मृग' शब्द नहीं देते. पशुओंकी ध्वनिसे रस जागृत नहीं होता है तो उनकी मधुर ध्वनि (रस जागृत करनेवाली) कहना अयोग्य हो जाता. जहां हम रहते हैं वहां ही हमारे प्यारे भी रहते हैं इसको बतानेकेलिये उनकी मधुर ध्वनि थी, ऐसा भी समझना चाहिये.

१.तृण भक्षक मृग, पुष्प रस पान करनेवाले भ्रमर, फल भक्षक पक्षी.

वन केवल निर्दोष नहीं था, किन्तु गुणोंसे भी पूर्ण था. इसको सिद्ध करनेकेलिये श्लोकमें दृष्टान्त देकर समझाया है कि जैसे महान् पुरुषोंका मन उदार निर्दोष एवं गुणवान् हैं वैसे ही जल निर्दोष गुणवान् होता है. उस जलवाले सरोवरसे होकर आनेवाले वायुसे युक्त वन है. अतः गुणोंसे भी पूर्ण है. अरण्यमें

जो पशु रहते हैं उनका देवता अन्तरिक्ष है. उनमें वायु गौ और अरण्य दोनोंकी अधिपति देवता है. वह जब सर्वथा दोष रहित और गुणवान् हो तब ही लीला सिद्ध हो सकती है, क्योंकि लीला करते समय जो श्रम होता है, उसको वायु मिटाती है. इसलिये वायुकी अपेक्षा होती है यह लोक सिद्ध है. निर्दोष वृन्दावनमें जो प्रवेश करता है उसके भी सामान्य रीतिसे सर्व दोष निवृत्त हो जाते हैं. अतः वायुके भी आगन्तुक दोष आदि रहे नहीं किन्तु शीतलता, धीमापन और सुगन्धि गुण ही रह गये. इस कारणसे वायु आधिदैविक है. महापुरुषोंका मन निर्दोष और पूर्ण गुणोंवाला होता है अतः वह मन दूसरोंकी निर्दोषता तथा पूर्णगुणता दिखानेमें उदाहरण दिया जाता है इसलिये महापुरुषोंके मनकी सर्वत्र ख्याति होती है किन्तु वृन्दावनमें जो सर है वह महापुरुषोंके मनके समान होते हुए भी उससे विशेष ख्यातिवाला है क्योंकि भगवल्लीलाके उपयोगमें आता है.

इस प्रकारके जलवाला सरोवर लय और विक्षेपसे रहित होनेके कारण शान्त तथा भरपूर था. इससे शीतलता एवं धीमापन बताया. सत्पुरुष न कहकर, महत्पुरुष कहा इसका भावार्थ यह है कि सरोवरमें भी महानता है, जिससे इस लीला मध्यपाती भक्तोंसे अतिरिक्तोंको इसकी जानकारी नहीं है. वायुमें दोनों प्रकारके (दिनमें विकसित और रात्रिमें विकसित) कमलों तथा अन्य पुष्पोंकी सुगन्धि थी. ऐसे वायुसे सेवित वह वन था. रमण अपनी समानतावालेमें होता है. वृन्दावनमें भ्रमरादिकोंके तीन गुण और वायुके तीन गुण थे, जिससे वृन्दावन षड्गुणवाला हुआ तब भगवान्के षड्गुणोंके साथ वहां रमणकेलिये प्रवृत्त हुआ ।।३।।

कदाचित् किसीके मनमें ऐसी शंकाका प्रादुर्भाव हो जावे कि भगवान् अप्राकृत होकर भी प्राकृत पदार्थोंसे रति करते हैं ? इस शंकाको मिटानेकेलिए निम्न श्लोकमें वृक्ष, भ्रमर, मृग, पक्षी और भूमिके स्वरूप बताते हैं. जिस भूमिपर वृक्षादि होते हैं उसको वन कहते हैं और उस वनमें रहनेवाले यदि स्वरूपसे दोषवाले हों तो उस वनका त्याग करना उचित है, इसलिए उनके दोषोंका अभाव और गुणोंका वर्णन करना चाहिए. उनके निर्दोषत्व और गुणोंको भगवान् ही जानते हैं. और केवल बलरामजीको जताते हैं. क्योंकि भगवान् ही अपने स्वरूपको जानते हैं, वृन्दावन भगवत्स्वरूप होनेसे उसके और वहां रहनेवालोंके स्वरूपको आप जानकर ही उनसे प्रेम करते हैं, न कि प्राकृत पदार्थोंसे प्रेम करते हैं. यह भगवान् यहां प्रत्यक्ष लीला करेंगे उसमें कोई विघ्न आवे तो बलभद्रजी

उसका निवारण कर दें इसलिए बलभद्रजीको भी उसका स्वरूप बता देते हैं.

स तत्र तत्रारुणापल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ।।४।।

वहा-वहां अरुण पल्लवोंकी शोभावाले, फल-फूलके विशेष भारसे जिन वृक्षोंकी शाखाएं अपने अग्रभागसे चरण स्पर्श कर रही हैं, उनको देखकर आनन्दसे मानों मुस्कुराते हुए भगवान्ने अपने बडे भाई बलरामजीको कहा।।४।।

यदि वनमें स्थित वृक्ष आदि अपने भाव (आधिदैविक स्वरूप)को प्रकट न करें अथवा मौन धारण कर रहे होते तो भगवान् उनका स्वरूप बलरामजीको प्रकटकर न बताते, किन्तु वे अपनी नम्रता प्रकट करने लगे. कैसे नम्रता प्रकटकर दिखाई उसका वर्णन करते हैं कि पल्लवरूप अंगुलियों द्वारा हस्तोंसे भगवान्को नमस्कार करते हैं. फल-फूलोंके भारसे नम्र शाखाओंके अग्रभागसे भगवान्के चरणोंको छूते हुए नमस्कार करते हैं, तथा फल और फूल भगवान्को अर्पणकर अपना भाव प्रकट करने लगे कि हम प्राकृत नहीं हैं किन्तु अप्राकृत हैं. इस प्रकारकी नम्रतासे उद्भूत (निरोधको प्राप्त हुए) वृक्षोंको देखकर भगवान्को आनन्द हुआ तब भगवान्के मुखपर मुस्कुराहट छा गई जिससे निश्चय हुआ कि भगवान् प्रसन्न हुए हैं. बलदेवजीको वृक्षादिकोंके इस स्वरूपका ज्ञान नहीं था अतः उनको वृक्षोंकी यह क्रिया देखकर आश्चर्य हुआ. बलदेवजी देवके स्वरूप हैं, उनको भी इनके स्वरूपका ज्ञान न हुआ तो दूसरोंको न हो तो क्या आश्चर्य है? इसलिये उन बलभद्रजीको जो आवेशी हैं, आश्चर्य युक्त देखकर भगवान्ने सोचा कि इन (बलभद्रजी) को वृन्दावनके स्वरूपका तथा उनके स्वरूप (आवेश वाले स्वरूप)का ज्ञान कराना चाहिये, यदि नहीं कराया गया तो बलदेवजी देवताओंका चिन्तन नहीं करेंगे तो वृक्षोंमें देवताओंका आवेश न होगा. (जैसे बलरामजीमें भगवान्का आवेश है वैसे ही वृक्षोंमें देवताओंका आवेश है).

(भगवान्को वृक्षोंकी इस क्रियासे आश्चर्य नहीं हुआ इसलिये मानो मन्द-मन्द हंसते हुए बलरामजीको इनका स्वरूप कहने लगे.)

५वें से ८वें श्लोकों तक वृक्षादि बलरामजीका ही आदर करते हैं, भगवान्का नहीं. इसका कारण यह है कि बलरामजी बड़े भाई हैं अतः बड़े भाईका आदर करना योग्य ही है.

जब बलरामजी बड़े हैं तो छोटे भाईने बड़े भाईको वृक्षादिकोंके

स्वरूपका ज्ञान कराया यह योग्य नहीं था. इस शंकाके निवारणकेलिये श्लोकमें श्रीकृष्णको 'आदि पुरुष' अर्थात् पुरुषोत्तम विशेषण देकर बताया कि श्रीकृष्ण सबके आदि हैं, अतः 'आदि पुरुष' होनेसे सबको उपदेश कर सकते हैं ।।४।।

वनस्पति वैष्णव हैं अतः प्रथम उनके स्वरूपका वर्णन करते हैं:

श्रीभगवान् उवाच

अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ।।५।।

श्रीभगवान्ने कहा कि अहो! हे उत्तमदेव! जिस (तम)से इनको वृक्ष जन्म मिला है उसके नाश होनेकेलिए अपनी शिखाओंसे फल-फूलरूप पूजनके पदार्थ लेकर देवपूज्य आपके चरणारविन्दमें प्रणाम करते हैं।।५।।

'अहो' शब्दसे भगवान् आश्चर्य जता रहे हैं कि ये वृक्ष भगवान्, बलराम और गोपोंके स्वरूपोंमें जो अवान्तर भेद हैं उसको जानते हैं. अतः हे देवोंमें श्रेष्ठ! ये वृक्ष देवपूज्य आपके चरणकमलको अपनी शाखाओंके अग्र भागसे प्रणाम करते हैं. 'ये वृक्ष' कहनेका तात्पर्य है कि उस समय भगवान् बलरामको वृक्षोंको दिखाते हुए कहते हैं कि देखो ये वृक्ष जड़ (प्राकृत) नहीं हैं किन्तु अप्राकृत (आधिदैविक) हैं, इस कारणसे ये देव हैं किन्तु आपके चरणकमल उत्तमदेव भी पूजते हैं क्योंकि आप सङ्कर्षण हो, देवोंके कार्य सिद्ध करते हो इसलिये देवताओंने पृथ्वीके भार उतारनेकेलिये आपको प्रार्थना की थी. इससे जैसे देवताओंके खेदको मिटाते हो वैसे वृक्षोंके तमको भी मिटाना चाहिये. आपकी प्रवृत्ति दुःखोंको दूर करनेकी ही है. वृक्ष, जो आपको नमन करते हैं उसका कारण यह है कि उनका जन्म 'तम'(तमोगुण)से हुआ है उस तमको आप ही मिटानेवाले हो. क्योंकि सजातीयसे ही सजातीयका निराकरण होता है (जैसे विष ही विषको नाश करता है) वृक्षोंमें तमोगुण है आप आधिदैविक तमके नियामक हो. भगवान्ने वृक्ष मुझे प्रणाम करते हैं ऐसा न कहा, उसका कारण यह है कि आधिदैविक तमोगुणके नियामक सङ्कर्षण (बलभद्र) हैं. मूलभूत (देहके प्राप्तिका कारण) तमोगुण, कर्म, सेवा वा ज्ञानसे नहीं मिटता है किन्तु तमके देवतासे मिटता है. उसके देव आप हो, इस मर्यादाकी रक्षाकेलिये ये वृक्ष, वृक्षरूपसे नमस्कार करते हैं कि आप दया करो. शेष अन्य[१] कार्य भगवान् ही करेंगे. उसकेलिये (रसका अनुभव करानेकेलिये) तो भगवान्ने यह लीलाकी है. भगवान् बलरामको अन्य प्रकारसे प्रणामके कारण

बताते हैं. (१)भगवान् कहते हैं कि हे बलभद्र! आपने इनको वृक्षोंमें इसलिये जन्म दिया है कि ये वृक्ष दूसरोंका अज्ञान मिटावें. दूसरोंका अज्ञान कैसे मिटाते हैं? वह बताते हैं कि यदि किसीको यह पता न हो कि वनमें भगवान् किस जगहपर विराजमान हैं तो ये वृक्ष उस अनजानको बता देते हैं कि भगवान् कदम्ब, प्रियाल अथवा पनसके नीचे क्रीड़ा कर रहे हैं. जिससे उसका अज्ञान मिट जाता है और वह वहां जाकर भगवान्के दर्शन कर सकता है. उसका अज्ञान वृक्षोंसे ही मिटा. ऐसी अज्ञान निवृत्त करानेकी शक्ति वृक्षोंको आपने दी है. इसलिये वृक्ष आपको प्रणाम करते हैं (२)हमारे तमको आपने नष्ट किया है जिससे हमको यह ज्ञान हो जाता है कि भगवान् हमारे नीचे क्रीड़ा कर रहे हैं, अन्य देशके वृक्षोंकी तरह हममें मौढ्य नहीं है. इस उपकार स्मरणसे आपको प्रणाम करते हैं. (३)हमको आप अपना समझते हो अर्थात् ये वृक्ष मेरे हैं मैंने ही इनको वृक्षका जन्म दिया है इस कारणसे आपको प्रणाम करते हैं. जब वृन्दावनमें केवल उत्पत्तिसे भगवान् अपना समझते हैं तो वहांके वृक्ष तो वृन्दावन रूप ही हैं, उनको भगवान् अपना मानें तो इसमें लेश मात्र भी शंका नहीं रहती है. कारण कि भगवान् आगे कहेंगे कि 'अपना कोई नगर वा देश नहीं है' सदैव वनमें रहनेवाले हैं. इससे गोष्ठ 'मेरे ही शरणवाला है' इत्यादि शब्दोंसे भगवान्ने वृन्दावन धर्मी एवं उसमें उत्पन्न हुए (पदार्थ धर्मरूप) को अपना माना है.

यहां 'तमः' पद सत्त्व, रज और तम तीनों गुणोंका उपलक्षक है. बलभद्र किस प्रकार तमोगुण दूर करते हैं वह कहा नहीं है. अतः आप केवल अपने सम्बन्धसे ही जैसे सबोंके गुणोंको दूर करते हो वैसे हमारा तम भी दूर करो, इस प्रकार वृक्षोंने आपको प्रार्थनाकी है. मेरेमें निष्ठ तो गुणातीत है।।५।।

१.लेखकार अन्य कार्यका भाव कहते हैं कि 'रसका अनुभव कराना'.

इस प्रकार वृक्षोंकी प्रार्थना कहकर अब इस निम्न श्लोकमें भ्रमरोंकी प्रार्थनाका वर्णन करते हैं:

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ।।६।।

हे आदि पुरुष ! सर्व लोगोंके तीर्थरूप आपकी कीर्तिका गान करते ये भ्रमर अनुपद आपकी सेवा करते हैं. इसलिए ये आपके मुख्य सेवक भ्रमर मुनिगण हैं. हे अनघ ! आप गुप्त रूपसे वनमें विराजते हो तो भी ये अपने आत्मरूप और देवरूप आपको छोडते नहीं हैं।।६।।

लौकिक दृष्टिसे ये भ्रमर गुञ्जार ही करते हैं तो भी वास्तविक रीतिसे विचारा जावे तो आपका यश गा रहे हैं. यद्यपि भ्रमर तामस हैं किन्तु वृक्षोंसे कुछ श्रेष्ठ हैं. वे फल और पुष्प युक्त थे जिससे फल-पुष्प जो पूजाके पदार्थ हैं, उनको लाकर विनियोग करते हुए आपको कायासे प्रणाम करते हैं. ये (भ्रमर) तो राजस[१] भी होनेसे फल-पुष्पोंके अभावके कारण वाणीसे ही सेवा करते हैं.

ये आपके यशके गानार्थ अर्थात् कीर्तन द्वारा सेवा करनेकेलिये आपके साथ चलते हैं न कि आपके मुखारविन्दकी गन्ध लेनेकेलिये चलते हैं. उन (भ्रमरों)को आपसे प्रार्थना करनेकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि ये आपसे कुछ भी लेनेकी इच्छावाले नहीं हैं, कारण कि सकल लोगोंको पवित्र करनेवाला आपका यश गा रहे हैं उससे ही वे आनन्द मग्न वा आनन्दमय हो रहे हैं. आपका यश सब जगह सर्व लोगोंको पवित्र करता है. तब यशोगान करनेवालोंको पवित्र करेगा इसमें किसी प्रकारकी शंका अथवा वाद नहीं है किन्तु निश्चय ही है. यशोगान करनेवाले भी प्रभुके सेवक हैं. प्रभु कब कृपा करेंगे इसकी परवाह न कर प्रभुके साथ चलते-चलते समग्र मार्गमें यशोगान करते रहते हैं.

ये भ्रमर हीन योनिमें होनेसे यशको कैसे जानते होंगे? इस शंकाके निवारणार्थ कहते हैं कि ये भ्रमरोंके रूपमें आपके मुख्य सेवक मुनि हैं.

यदि ये (भ्रमर) ब्रह्मवेत्ता और भक्त हैं तो नीच योनिको क्यों प्राप्त हुए? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि वनमें भी गूढ अपने देवको नहीं छोड़ते हैं. आप अपने सङ्कर्षण देवरूपको छिपाकर मनुष्यरूपसे दर्शन देते हो, अतः आपके मुख्य भक्त मुनिगणोंने भी अपने मुनिरूपको छिपाकर भ्रमररूप धारण किया है. आपके सेवकोंमें मुख्य सेवक होनेसे आप जिस मार्गसे चल रहे हो वे भी उस मार्गसे साथ-साथ चलते हुए यशोगानसे आपकी सेवाकर आनन्द मग्न होते हैं.

जब मैं मनुष्यरूपमें हूं तो भी मेरा भजन क्यों करते हैं? क्यों नहीं प्रकटरूपवाले महादेवादि देवोंका भजन करते हैं? इस शंकाका निवारण करते हुए कहते हैं कि आप सर्वथा निर्दोष आत्मा और दैव हो. निर्दोषको छोड़ना अशक्य है. उसमें भी फिर वह निर्दोष अपनी केवल आत्मा नहीं किन्तु पुनः देव भी हैं. ऐसी अवस्थामें आपको छोड़ना उन (मुनिरूप भ्रमरों) केलिये असम्भव है.

भ्रमर तामस है अतः उसके सेव्य तामस महादेवादि ही हैं. इसके उत्तरमें कहते हैं कि यद्यपि तामस गुणके कारण महादेवादि तामस देव भ्रमरोंके सम्बन्धी हैं

तो भी वे भूतगणोंसे आवृत्त होनेसे उनकी सेवा हो नहीं सकती है. ब्रह्मादिक हम भ्रमरोंके सम्बन्धी नहीं है महादेवादिके सिवाय अन्य देव तामस नहीं हैं अतः और कोई गति न देख आप गूढ हो तो हम आपका भजन करते हैं.

'गूढ' शब्दका अन्य प्रकारसे भाव बताते कहते हैं कि आपका वनमें गूढ रीतिसे इसलिये भजन करते हैं कि हम आपका भजन कर रहे हैं इसका किसीको पता न पड़े. हम प्रकट भजन करें तो अन्य कोई जान जाये और इससे भगवान् अप्रसन्न हो जाये इसलिये भ्रमर इस प्रकार गुप्त रीतिसे आपका भजन कर रहे हैं. अतः आपको उनपर अनुग्रह करना चाहिये ।।६।।

१.प्रकाशकारने यहां खुलासा दिया है कि पहले तामस कहा और अब राजस कह रहे थे यहां विशेष नहीं समझना चाहिये क्योंकि पहले भी तामसको तामस-राजस मानकर कहा था.

मृग और पक्षियोंकी विज्ञप्तिका निम्नश्लोकमें वर्णन करते हैं:

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ।।७।।

हे स्तुत्य! आपके समीप ये मयूर नृत्य करते हैं, हरिणियां आनन्दमयी दृष्टिसे गोपियोंके समान आपके प्रति प्रेम प्रकट करती हैं, कोयले मधुर शब्दोंसे आपकी सेवा करती हैं अतः ये वनवासी धन्य हैं क्योंकि इनके पास जो कुछ है वह घरमें पधारे हुए आपको अर्पण करते हैं सत्पुरुषोंका यही स्वभाव होता है।।७।।

हे स्तुति करने योग्य! ये मयूर आपको पधारे हुए देखकर नृत्य करते हैं. दूसरे जब आपकी स्तुति कर रहे हैं तब ये आपका गुणगान सुनकर आनन्द युक्त हो नाचते हैं. स्वामीके आगमनपर प्रफुल्लित होकर जो नाचता है वह बड़ा भक्त है. उसको स्वामीका आगमन ही प्रिय जिससे हरिणियां भी दृष्टिसे आपके प्रति प्रेम प्रकट करती हैं. जिस प्रकार भी आपको आनन्दित किया जाये ऐसी क्रिया करती हैं, वे (हरिणियां) भी आपको प्रेमसे देखती हैं और आपको अपनी चितवनसे गोपियोंका स्मरण कराकर गोपियांके समान आपमें आनन्द उत्पन्न कराती हैं. जैसे गोपियां अपने स्वरूपसे सुख उत्पन्न करानेवाली हैं वैसे ही उन गोपियोंकी याद दिलानेवाली भी सुख जनिका हैं. नाट्य और काव्य शास्त्रोंमें ऐसा निरूपण है कि कोयलें भी स्तुतिरूप गानोंसे आनन्दित करती हैं, उनके मधुर शब्दोंसे महान् हर्ष होता है. ये वनवासी गृहस्थोंके समान धन्य श्लाघ्य हैं क्योंकि

यही सत्पुरुषोंका स्वभाव है ।।७।।

आगते परमस्तोषः प्रियार्थस्योपनायनम् ।
वाक्यैः स्तुतिश्च परमा महत्येतावदेव हि ।।का.१।।
तृणानि भूमिरुदकं सामान्ये गृहमागते ।।

जब अपने घरमें महान् पुरुष पधारें तब प्रथम परम प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिए, तदन्तर जो पदार्थ उनको प्रिय हो वे लाकर उनको अर्पण करने और वचनोंसे उनके गुणगान करने चाहिए. यदि कोई साधारण व्यक्ति घरमें आवे तो उसका भी आसन, पृथ्वी और जलसे आदर सम्मान करना गृहस्थका धर्म है.

इस श्लोकमें वृन्दावन भूमिके तथा अन्य पदार्थोंकी स्तुति करते हैं:

धन्येयम् अद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ।।८।।

आज यह पृथ्वी, घास और लताएं तथा वृक्षवेलि आपके चरणस्पर्श होनेसे धन्य हुए हैं. नदी और पर्वत आपके नखस्पर्शसे धन्य हुए, पक्षी और पशु आपकी कृपा भरी दृष्टिसे धन्य हुए तथा गोपियां लक्ष्मी जिसकी इच्छा कर रही हैं उस वक्षस्थलसे आलिंगन कर धन्य हुई हैं।।८।।

(वृन्दावनकी) यह भूमि, घास, पृथ्वीपर पड़ी हुई लताएं और पेड़ोंपर चढी हुई लताएं भी आपके चरणस्पर्श होनेसे धन्य हुईं, नखोंसे छुई हुई पर्वत एवं नदियां भी धन्य हुईं और खग मृग भी दया दृष्टिके लाभसे धन्य हुए दयायुक्त अवलोकनसे तथा दुर्लभ आपके आलिङ्गनसे गोपियां भी धन्य हुईं. यह आलिङ्गन क्यों दुर्लभ है? यह आलिङ्गन इसलिये दुर्लभ है कि लक्ष्मी भी इस आलिङ्गनकी कितने दिनोंसे इच्छा कर रही हैं किन्तु उसे भी प्राप्त नहीं हुआ है. भूमि आदि आपको कुछ भी प्रार्थना नहीं करती है कारण कि आपने उनको किसी न किसी प्रकारसे प्रसन्न किया ही है.

जिस देवताका आवेश अपनेमें होनेवाला हो उसकी भावना करनेसे वह देव शीघ्र उसमें प्रविष्ट होता है. यदि इस प्रकारकी भावना न की जाये और वह देवता उसमें प्रविष्ट न हो तो, दोनों (वृन्दावनस्थ पशु-पक्षी और बलभद्र)का भी अनिष्ट हो जाये ऐसी सम्भावना है. यदि वृन्दावनमें स्थित पशु-पक्षी आदि केवल सङ्कर्षण (भगवान्के आवेश रहित)का भजन करें तो अन्य देवताके भजन करनेके कारण उनका नाश हो और भगवान्की भोग्य सामग्रीको स्वीकारनेके

कारण सङ्कर्षणका और यदि ये वनस्थ पशु–पक्षी भजन न करें तो सभी देवोंमें श्रेष्ठ बलरामके अभजन करनेसे अतिक्रम होगा और सङ्कर्षणके अपमानसे बलभद्रको क्रोध भी हो सकता है अतः भगवानने नित्य अपने आवेशकी सिद्धि बलभद्रमें हो इसलिये बलभद्रको यह सर्व बोध कराया है ।।८।।

इस प्रकार वृन्दावनके स्वरूपका निरूपण कर यहां स्थिति करनेवालों (वृक्ष, पशु, पक्षी आदि)का स्वरूप एवं बलभद्रको आवेशी स्वरूपका ज्ञान कराया अर्थात् आपमें मेरा आवेश है तदनन्तर ऐसे वृन्दावनमें भगवान् क्रीडा करने लगे इसका वर्णन नीचेके दश श्लोकोंसे करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमान् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ।
रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ।।९।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि इस प्रकारकी शोभावाले वृन्दावनमें प्रसन्नचित्त श्रीकृष्णचन्द्र ग्वालबालोंको साथ लेकर, पर्वतके समीपवाली नदियोंके तटोंपर गौओंको चराते हुए क्रीडा करने लगे।।९।।

छट्ठे वर्षसे नव वर्ष पर्यन्त, चार वर्षकी आयुको पौगण्ड अवस्था कहते हैं. इस कालको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला माना गया है अतः क्रमसे प्रथम चार पुरुषार्थ प्रतिपादन किये गये हैं.

ब्रह्मानन्दसे भजनानन्दकी उत्कृष्टता दिखानेकेलिये और (भगवान्के) दश रसोंका अनुभव दश प्रकारसे होता है, इसलिये आप दश रसोंको प्रकट करते हुए क्रीड़ा करते हैं. इस (९वें) श्लोकमें प्रथम पुरुषार्थ धर्माचरण करते हुए क्रीड़ा करने लगे इसका वर्णन करते हैं:

उपर्युक्त प्रकारसे वर्णित श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्ण पशुओंको चराते हुए रमण करने लगे. इस रमणका सम्बन्ध इस श्लोकसे १९ श्लोक तक है. इन दश श्लोकोंमें चार पुरुषार्थ और दश रसोंका वर्णनकर अन्तिम १९वें श्लोकमें इनका उपसंहार[१] किया गया है.

भगवान्ने जब वृन्दावनके पृथक्–पृथक् अभिमानी देवताओंसे रमण प्रारम्भ किया तब लक्ष्मीजी स्वतः स्वयं पधारीं. लक्ष्मीजीके साथ स्पष्ट रमण नहीं कहा गया है तो भी उनके साथ रमण सिद्ध ही है. इससे ही अनुभव[१] उद्दीपन विभाव[२] व्यभिचारिभाव[३] वर्णन किये हुए हैं यों जानना चाहिये. आलम्बन विभाव

तो स्वयं लक्ष्मी हैं ही.

नायक (श्रीकृष्ण)की उत्तमताका वर्णन करनेको 'कृष्ण' पदका प्रयोग किया. 'कृष्ण' में 'कृष्' का अर्थ सत् है और 'ण'का आनन्द है अर्थात् नायक-कृष्ण तो सद्-आनन्द हैं, पुरुषोत्तम हैं. रमणमें करणसाधन है मन. मनमें भी कोई दोष नहीं है प्रत्युत् गुण है यह दिखलानेकेलिये नायकको 'प्रीतमनाः' कहा जा रहा है. (नायक कृष्णका) वह मन दोष रहित और सन्तोषवाला था. पशु चारणरूप धर्म तथा रमण दोनोंको पूर्णतया करनेकेलिये भगवान्ने पशुओंको पर्वतोंसे सम्बन्धवाली नदियोंके किनारोंपर चराना योग्य समझा. एक तो वहां पशुओंके चरनेकेलिये हरी घास मिलेगी और रमणकेलिये सुन्दर स्थान होनेसे रमणमें मन स्थिर रहेगा और वहांसे गौ भी अन्यत्र जा नहीं सकेगी अतः गौओंको चराते हुए रमण भी होगा इसके सिवाय अपने साथ अनुचर भी हैं वे भी गौओंको चराते हुए उनकी रखवाली करते रहेंगे तो मेरा मन केवल गौचारणरूप धर्ममें निरुद्ध नहीं होगा जिससे रमणमें किसी प्रकारकी रुकावट न होगी दोनों कार्य सुचारुरूपसे सिद्ध होंगे ।।९।।

१. 'ये रसान् अनुभावयन्ति ते अनुभावाः' जो रसोंको अनुभवके योग्य बनावे उनको 'अनुभाव' कहते हैं.

२. 'ये रसान् उद्दीपयन्ति ये बाह्याः ते उद्दीपन विभावाः' जो भाव हृदयमें उत्पन्न हुए हों उनको उत्तेजित करें उनको उद्दीपन विभाव कहते हैं.

३. 'ये इतस्ततः सञ्चरन्ति रसेषु अनेक रस व्याप्या भवन्ति ते व्यभिचारिभावाः' जो एक रसमें स्थिर न रहकर अनेक रसोंमें फिरते रहें ऐसे भाव व्यभिचारी भाव हैं.

उपरोक्त(९वें) श्लोकमें गौचारणरूप धर्म प्रकटकर जो लीलाकी उसका वर्णन किया, अब इस (१०-वें) श्लोकमें अर्थ रूप धर्मको प्रकट करनेके लिए जो क्रीडा करेंगे उसका वर्णन करते हैं:

क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ।
उपगीयमानचरितः सखिसङ्कर्षणान्वितः ।।१०।।

जिनके चरित्रोंका भक्त गान कर रहे हैं और जिनके साथ सखा और सङ्कर्षणजी भी हैं, ऐसे भगवान् मदान्ध भ्रमरोंके गानेपर आप भी गान करते थे।।१०।।

मदसे अन्धे भ्रमरोंके गानेपर कभी भगवान् भी गाते हैं. आपके भक्त भी आपके चरित्र गा रहे हैं. मित्र और सङ्कर्षण जी भी आपके साथ थे.

''**यदा खलु वै पुरुषः श्रियम् अश्नुते वीणास्मै वाद्यते**'' यह श्रुति कहती है कि पुरुष जब 'श्री' का भोग करता है तब उसके पास वीणा बजती है. इस श्रुतिके अनुसार जब भगवान् 'श्री'[१] का भोग कर रहे हैं तब भ्रमर वीणाके रूपमें गा रहे हैं और आप भी गान करते हैं. यदि आप गान न करें तो रसमें विशेषता उत्पन्न न होवे. चारों तरफ आपकी ही स्तुति, भ्रमर और भक्तगण कर रहे हैं आपके साथ आपका परिकर भी है.

भगवान्के साथ अपने सम्बन्धवाला और कुलसे सम्बन्ध रखनेवाला दोनों प्रकारका परिकर था. दोनों प्रकारका परिकर साथमें इसलिये रखा था कि शास्त्रोंमें कहा है कि ''बन्धुभिर्या न भज्यते'' जो भी (पदार्थ) बान्धवोंके साथ भोगी नहीं जाती है वह 'श्री' नहीं है तदर्थ बान्धवोंको साथमें रखना आवश्यक है.

समीपमें गान करना अथवा भगवान्की स्तुति करना यह भी अर्थ भोग ही है. भ्रमरोंको मुनि कहा गया है तो उन्होंने भगवान्के सामने गानेकी धृष्टता क्योंकी? ऐसी शंकाके निवारणकेलिये ही भ्रमरोंको मदान्ध कहा गया है. भ्रमरोंका मद अहङ्कार रूप नहीं था, किन्तु भगवान्की सान्निध्यताके आनन्दका मद था अथवा उन्होंने जो वृन्दावनके भगवच्चरण समर्पित पुष्पोंका जो भक्ति रसरूप मकरन्द था उसका पान किया था जिससे उनको उन्माद था. इस उन्मादके कारण वे भगवान्के सामने गान कर रहे थे, इसलिये उनमें धृष्टता दोष नहीं है.

जो भगवान्के भक्त अनुव्रती हैं सब सखा तथा सङ्कर्षणजी इस प्रकारके हैं. अतः इनको भी अपने समान ही अर्थ भोग कराना योग्य समझ भगवान्ने उनका भी पूर्ण रीतिसे भोग सम्पादन किया. ९वें श्लोकके ''एवं वृन्दावने श्रीमान् कृष्णः प्रीतमनाः'' ये पांच पद इस श्लोक और आनेवाले श्लोकोंसे भी सम्बन्धित हैं ।।१०।।

१.प्रकाशकार 'श्री'का भाव स्पष्ट करते हुए आज्ञा करते हैं कि 'माताजीके भेजे हुए पदार्थोंका भोग करते थे अथवा वनमें उत्पन्न फलादिकोंका भोग करते थे.

इस प्रकार 'अर्थ' लीला कहकर कामलीलाका वर्णन करते हैं:

क्वचिच्च कलहंसानाम् अनुकूजति कूजितम्।
अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ।।११।।

(इस प्रकारके वृन्दावनमें प्रसन्न चित्तवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण) कभी कलहंसोंके समान कूजन करते हैं, कभी नृत्य करते हुए मयूरको अपने चारों तरफ

सुन्दर नृत्योंसे हास्य पात्र बनाते हैं।।११।।

कलहंस जिस प्रकार कूजन करते हैं उसी प्रकार आप (श्रीकृष्ण) भी कूजन करते हैं. काम लीलामें दो कर्त्तव्य हैं. रसको प्रकट करनेकेलिये कूजन करना और रस[१] लेनेकेलिये बन्ध.

जब मयूरी मयूरके निकट आती है तब उसको देखकर मयूर काम मत्त होता है जिससे मयूर अपने गात्रोंको विस्तारता[२] है. गात्रोंके फुलानेसे उसके सर्व गात्रोंमें रहा हुआ रस इकट्ठा होकर नेत्रों द्वारा बाहिर निकलता है उसको मयूरी मुख द्वारा पान करती है. इस प्रकारका रेत ऊपरके भागसे ज्ञानके साधन नेत्रों द्वारा बाहिर निकलनेसे वह अप्राकृत रेत है. इससे भिन्न सब रेत जो काम क्रीड़ासे उत्पन्न होते हैं वे प्राकृत रस हैं.

मयूरका रेत अप्राकृत होनेसे वहांका गर्भधारणादि कार्य विचित्र प्रकारसे ही होता है.

शब्दकी उत्पत्ति मनसे होती है, प्रथम मनमें विचार होता है तदनन्तर यह विचार शब्दरूपसे मुख द्वारा बाहिर आता है. रस(दूध) अरस (जल)को पृथक् करनेवाला हंस जिसका आश्रय केवल मानस है उसका कूजन भी वैसा (अप्राकृत) होता है. कारण कि हंस अन्य सर्वसे विलक्षण है यह सूचित करनेकेलिये हंसको 'कलहंस' कहा है अर्थात् हंस कलाओंका हंस है. इसलिये ही यह पानीमें मिले हुए दूधको पृथक् कर सकता है[३]. अनेक बातोंका एकरूपमें प्रतिपादन निष्णात व्यक्ति ही कर सकता है. भगवान् कूजनमें प्रवीण हैं क्योंकि आप एक ही कूजनमें प्रकट करनेकेलिये आप हंसके अप्राकृत कूजन जैसा कूजन भी करते हैं. भगवान् मयूरके सब प्रकारके नृत्योंके समय नृत्य करते हैं. जब मयूर मयूरीके साथ रससे नृत्य करता है अथवा मेघ आदिको देखकर नृत्य करता है वा स्वभावके कारण नृत्य करता है तब भगवान् रसाभास और भावाभासके निरूपण केलिये नृत्य करते हैं. यदि भगवान् नृत्य न करें तो रसाभास और भावाभासके कारण मयूरके नृत्यसे रस पुष्ट नहीं होता फिर कभी तो मयूरोंकी हसी करानेकेलिए नृत्य करते हैं कि जिसको देखकर बालक इसका नृत्य अच्छा नहीं इसने बराबर नाच नहीं किया आदि शब्द कहते हुए मोरोंपर हंसते थे. भगवान् ऐसे नृत्य नहीं करते इसलिये 'पुनः क्वचित्' फिर कभी शब्द कहे हैं ।।११।।

१.लेखकार कूजन करनेसे जो रस प्रकट होता है.

२.प्रकाशकार मयूरका गात्रोंको फुलाना ही 'बन्ध' है.

३.लेखककार उसमें जो आलिङ्गन होता है उसको बन्ध कहा जाता है.

इस १२वें श्लोकमें मोक्ष लीला कहते हैं:

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ।।१२।।

(इस प्रकारके श्रीवृन्दावनमें प्रसन्न मनवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण) मेघके समान गम्भीर और गौ तथा गोपालोंके मनको हरण करनेवाली वाणीसे दूर गए हुए पशुओंको कभी प्रेमसे प्रत्येकका नाम लेकर बुलाते थे.

भगवान् दूर गये हुए पशुओंको वाणीसे प्रत्येकका नाम लेकर कभी बुलाते हैं. भगवान्के साथ सायुज्य और [१]मुक्ति भगवान्के देनेसे ही प्राप्त होती है. सकल शास्त्रोंमें कहे हुए श्रवणादि साधन भगवान्से सम्बन्ध कराते हैं. इस प्रकार जब जीवका भगवान्के साथ सम्बन्ध होता है तब भगवान् भी वैसे धर्मोंका पालन करते हैं[२]. जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है यह सिद्धान्त[३] है.

१.प्रकाशकार सायुज्य और मुक्तिके अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि पुष्टिमार्गके अनुसार सायुज्यका अर्थ सखा भाव है अर्थात् भगवान्के साथ प्रथम मिलाप और मुक्तिका अर्थ दुःखका अभाव है. अन्य मतोंके अनुसार सायुज्यका अर्थ 'भगवान्'से मिल जाना है और मुक्तिका अर्थ अपने स्वरूपमें स्थित है. भगवान् (अधिकारानुसार) दोनों मार्गों द्वारा मोक्ष देते हैं मोक्षदाता जनार्दन भगवान् हैं वह जब देते हैं तब मोक्ष मिलता है.

२.''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' गीतामें भगवान्ने कहा है कि जो जैसे मुझको भजते हैं मैं भी उनको उसी तरह भजता हूं. गीताके इस वचनके अनुसार जीव जैसे साधनकर भगवान्को सन्तुष्ट करता है भगवान् भी वे साधन ग्रहणकर जीवकी मनःकामना पूर्ण करते हैं अनुवादक.

३.शकां जब भगवान् मोक्ष देवें तो प्राप्त होता है नहीं तो नहीं होता है यदि ऐसा है तो शास्त्रोंकी क्या आवश्यकता है इस शंकाका निवारण प्रकाशकार श्रीपुरुषोत्तमजी इस प्रकार करते हैं कि शास्त्रोंमें कहे हुए साधनोंसे जब जीवका मन भगवत्परायण हो, ध्यान मग्न हो जाता है उसका सर्वत्र सम्बन्ध छूटकर केवल भगवान्से ही सम्बन्ध हो जाता है. साधनों द्वारा जब जीव इस कोटिपर पहुंचता है तब भगवान् जीवके किए हुए साधनोंसे प्रसन्न होकर उसका फल देनेका विचार करते हैं. उसको उसके अधिकार और साधनानुसार फल देते हैं जैसे भीष्मने जब शर-शय्यापर भगवान्से एकतान मन

कर भगवान्में ध्यान लगाया तब भगवान् वहां भीष्मको दर्शन देकर मुक्त करनेकेलिए भीष्मके पास स्वयं पधारे इससे सिद्ध हुआ कि शास्त्रोंमे कहे हुए साधन भगवान्में मन एकाग्र करानेकेलिए हैं अतः शास्त्र निरर्थक नहीं हैं.

प्रचेताओंने भगवान्की स्तुति करते हुए कहा है कि ''यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्या भद्रन्धन येनोपशान्तिर्भूतानां'' हे अभद्रको दूर करनेवाले! दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वामियोंको इतना ही करना चाहिये कि समयपर चित्तमें अपने प्राणियोंको स्मरण करें, जिससे उनको शान्ति प्राप्त होवे (प्रचेताओंके इन वचनोंमें भी यही सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है) अतः भक्त भगवान्का नाम स्मरण और कीर्तन इसलिये करते हैं कि भगवान् भी हमारा नाम ग्रहण करें अर्थात् हमको यादकर अपने पास बुला लेवें.

वे पशु जब दूर चले जाते हैं तब भगवान् कृपाकर अवसर देख जैसे उन सबका ताप मिट जावे वैसी वाणीसे उन पशुओंके नाम लेते हैं. दूर गये हुए पशुओंके नाम लेनेका कारण यह है कि जैसे साक्षात्कार किये हुए जिस भगवान्का नाम वे नहीं लेते हैं वैसे ही भगवान् भी उनका नाम न लेकर दूरस्थोंका ही नाम लेकर अपने पास बुलाते हैं. पशुओंको तो अपनी बुद्धि नहीं है. भगवान्के बुलानेके सिवाय उनकेलिये मुक्त होनेका कोई भी उपाय नहीं है.

भगवान् वैसे प्रेमसे उनका नाम लेकर उनको बुलाते हैं जैसे नामोंके सुनते ही उनके विषयोंका नाश हो जाता है. यों तो विषय प्रत्यक्ष होनेसे सबल है और शब्द (नाम) परोक्षताके कारण निर्बल है, किन्तु उस शब्दके साथ प्रेम पीयूष होनेसे प्रत्यक्ष विषयोंसे परोक्ष नाम सबल हो गये जिससे पशु तत्क्षण विषयोंका त्याग कर सके.

भगवान् केवल प्रेमसे नाम लेवें, किन्तु वह वाणी अलौकिक न होवे तो अलौकिक फलकी प्राप्ति न होवे इसलिये भगवान्ने प्रेमयुक्त अलौकिक वाणीसे नाम लिये. वह वाणी अलौकिक है, इसकी सिद्धि इससे होती है कि उसको सुनकर गौ और गोपोंके मन आनन्द मग्न हो गये. गौ और गोपालोंके मनोंको साक्षात् वाणी ही मधुर तथा आनन्ददायी होती है कारण कि 'गोप' गुरु जैसे हैं और 'गौ' अधिकारी जीव जैसे हैं.

गोप और गौओंको प्रथम भगवान्की वाणी मनकी प्रसन्नता करनेवाली और आनन्द देनेवाली हुई. मन आनन्द युक्त प्रसन्न हो तब ही वह फलका पूर्ण

अनुभव कर सकता है. किसीको भी मुक्ति देनी हो तो भगवान् प्रथम इस प्रकारकी लीला करते हैं. अर्थात् जिसको मुक्ति देनी हो प्रथम उसके मनको प्रसन्न (विषयके दुःखोंसे छुड़ाते हैं) और आनन्द युक्त करते हैं.

यदि भगवान् प्रत्येकका नाम न लेकर केवल वाणीसे बुलाते तो यों भी हो सकता है कि वे पशु समझने लगे कि न जाने किसको बुला रहे हैं, इसलिये कदाचित् वे नहीं भी आवें. तथा भगवान्ने भी सोचा कि साधनोंके भेदसे सबका अधिकार समान नहीं है अतः अधिकारानुसार प्रत्येकका नाम लेकर सबको पृथक् ही बुलाना योग्य है इसलिये मूलमें 'नाम' शब्द बहुवचनमें दिया है.

एक तो ये पशु जीव होनेसे बुद्धि हीन हैं और दूसरा भगवान्से दूर चले गये हैं. अतः जो दयालु सर्वोद्धार प्रयत्नात्मा प्रभु स्वयं उनको मुक्त न करते तो वे अमुक्त ही रह जाते ।।१२।।

इस प्रकार चारों पुरुषार्थोंकी लीलाका वर्णन कर अब दश रसोंके प्रकारकी लीला कहते हुए श्लोकमें छः प्रकारके रसोंकी लीलाको कहते हैं (पश्चात् शेष ४ रसोंकी लीला आगेके श्लोकोंमें वर्णन करेंगे).

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद् व्याघ्र–सिंहयोः ।।१३।।

(ऐसे वृन्दावनमें प्रसन्न मनवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण) चकोर, क्रौञ्च, चक्राह्व, भारद्वाज और मयूरोंके समान ध्वनि करते थे तथा बाघ और सिंहसे डरे हुए प्राणियों जैसी ध्वनि करते थे.

यह प्रसिद्ध है कि चकोर पक्षी अङ्गार खाता है जिससे उसके शरीरमें ताप होता है उस तापकी निवृत्तिकेलिये वह पृथ्वीपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी किरणोंका उपभोग वैसे करता है जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे चन्द्रमाकी किरणोंका भोग करता है, यह उसका (चकोरका) भोग अलौकिक भोग है, कारण कि चकोरके सिवाय अन्य कोई भी प्राणी पृथ्वीपर पडी हुई चन्द्रमाकी किरणोंका भोग नहीं कर सकता है. यदि चकोर इस प्रकार चन्द्रमाकी किरणोंका भोग न करे तो चकोरमें शीतलतादि गुण न होवे. चन्द्रमाकी किरण पुरुषरूप है इस पुरुषरूप किरणका भोग चकोर कैसे करता है? इस शंकाकी निवृत्ति आचार्यश्री दृष्टान्त देकर कहते हैं कि वास्तवमें स्त्रियां ही पुरुषोंका भोग करती हैं न कि पुरुष स्त्रियोंका भोग करते हैं, क्योंकि भोगका तात्पर्य है जो वस्तु भोगमें आवे उस वस्तुमें जो सार (शक्ति

तत्त्व) हो उसको भोगकर्त्ता अपनेमें ले लेवें तो विचार करनेसे यह बात समझमें आ जाती है कि पुरुषोंमें जो शक्ति तत्त्व साररूप वीर्य है उसको स्त्रियां अपनेमें खींच लेती हैं अतः पुरुष ही भोग्य है स्त्रियां भोक्ता हैं. इतना ही नहीं, किन्तु पुरुषका भोगकर उसको अपने आधीन बना लेती हैं. इसलिये चकोर पुरुषरूप किरणोंको कैसे भोगता है? पुरुष भोग्य नहीं है, स्त्री भोग्य है यह शंका निर्मूल है. पुरुष स्त्रियोंका भोग करते हैं यह केवल लोक प्रतीति मात्र है.

भगवान् लोकवत् रसका अनुभव वा स्त्रियोंकी दासता नहीं करते हैं. ऐसा बतानेकेलिये शृङ्गार रसके पक्षमें भगवान्का चकोर पक्षीके समान वाणीके व्यापारका वर्णन है. इससे यह बताते हैं कि जैसे चकोर पक्षीका भोग अलौकिक है वैसे ही भगवान्के भोगादि अलौकिक प्रकारके हैं लोकवत् नहीं हैं.

भगवान् वीर रसवाले क्रौञ्च पक्षीके समान ध्वनि कर बताते हैं कि मेरा वीर रस अलौकिक है.

भगवान् करुणा रसवाले चकवा पक्षीके समान ध्वनिकर अपनेमें करुणा रसका अस्तित्व प्रकट करते हैं. इस पक्षीके चक्राह्व नामसे ज्ञात होता है कि इसने भंवरमें पड़े हुए प्राणीके समान बहुत विरहादि दुःख भोगे हैं, इसलिये इसमें करुणरसका आविर्भाव निश्चयसे है.

रसोंमें चौथा रस 'अद्भुत' रस है अतः यहां भारद्वाज पक्षीका नाम चतुर्थ श्रेणीमें दिया है. भारद्वाज ब्राह्मण हैं. इस पक्षीका नाम भारद्वाज इसलिये पड़ा कि भारद्वाजका जन्म [१]अद्भुत प्रकारसे हुआ था, इस पक्षीमें भी अद्भुत रस है अतः इस समानताके कारण ही इस पक्षीको भारद्वाज पक्षी कहते हैं. भगवान् भी अपनेमें अद्भुत रसकी विद्यमानता दिखानेकेलिये भारद्वाज पक्षी जैसी ध्वनि करते हैं.

१.भरद्वाज ऋषिके पुत्र भारद्वाजका जन्म इस अद्भुत प्रकारसे हुआ है कि, भरद्वाज ऋषिका वीर्य 'घृताचि' अप्सराको देख स्खलित हो गया. उसको भरद्वाजने एक द्रोण (पात्र) में रखा उससे भारद्वाज उत्पन्न हुआ, इसलिये इसको द्रोणाचार्य कहते हैं.

पांचवां 'रस' हास्य है वह मयूर पक्षीमें है इसका प्रतिपादन पहले ही (इस अध्यायके एकादश श्लोककी सुबोधिनीजीमें) किया गया है. इस हास्य रसका अस्तित्व अपनेमें बतानेकेलिये भगवान्ने मयूर जैसी केका ध्वनिकर दिखाई है. ये पांच रस साथमें इसलिये बताये हैं कि परस्पर अत्यन्त विरुद्ध नहीं है. भयानक रस सर्व रसोंका उपमर्दक है अतः उसका पृथक् वर्णन किया है.

मूल श्लोकमें दिये हुए 'स्म' शब्दका भाव प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि भयानक (रस)के आविर्भाव करनेमें यह प्रमाण प्रसिद्ध है कि व्याघ्र और सिंहसे डरे हुए प्राणी ऐसी आवाज करते हैं कि जिससे सुननेवालोंमें भय (भयानक रस) उत्पन्न होता है. यहां भगवान् भी प्राणियोंके बीचमें व्याघ्र और सिंहसे डरे हुएके समान ध्वनिका उच्चारण करते हैं.

मुख्य भय दो प्रकारके हैं, १.एक भयसे स्वरूपका नाश होता है, २.दूसरे भयसे अभिमानादि धर्म नाश होते हैं.

व्याघ्रके भयसे स्वरूपका नाश होता है, सिंहके भयसे अभिमानादि धर्मोंका नाश हो जाता है.

भय केवल दो प्रकारके ही नहीं है, किन्तु बहुत प्रकारके हैं. जैसा कि जो प्राणी असमर्थ हैं वे तो कल्पना मात्रसे भयभीत होकर शान्त रहते हैं यह भयकी पराकाष्ठा है जैसे खरगोश आदि असमर्थ प्राणी शान्त ही रहते हैं. इनकी यह अवस्था सत्त्व सम्बन्धवाली है. जो प्राणी समर्थ हैं उनको तो जब भय उपस्थित होता है तभी भय होता है. (वे अपनी सामर्थ्यसे भयका निवारण करते हैं) रसका अभिनय केवल क्रियासे वाणी द्वारा सुन्दर होता है. इसलिये वही निरूपण किया गया है ।।१३।।

इस चौदहवें श्लोकमें बीभत्स रसकी लीलाका वर्णन करते हैं:

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम्।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ।।१४।।

(ऐसे वृन्दावनमें प्रसन्न मनवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण) क्रीडासे हुई थकावटके कारण गोपके उत्संगको तकिया बनाकर आर्य (बलरामजी) पौढे थे तब अंगमर्दन आदिसे उनकी थकावट दूर करते थे।।१४।।

श्रीकृष्ण स्वयं अपने ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके परिश्रमको दूर करनेकेलिये पादादि सकल अङ्गोंको मसलते थे और 'आदि' शब्दसे अन्य कार्य जैसे शय्याका बिछाना, उस पर बिस्तरा लगा देना भी करते थे. यह कार्य हीनसे भी हीन था और उसको करनेवाले उत्तमसे भी उत्तम श्रीकृष्णजी थे. उत्तम पुरुष यदि हीन कार्य करें तो उसको देखकर देखनेवाले प्रेमियोंके हृदयमें बीभत्स रस उत्पन्न होता है. उन प्रेमियोंको ही यह कार्य अत्यन्त अनुचित प्रतीत होता है. केवल प्रेमियोंको बीभत्स रस उत्पन्न होता है अन्योंको क्यों नहीं होता है? इसको

आचार्यश्री दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे पिशाचोंको मांस खाने जैसे हीन कार्यको देखकर बीभत्स रसका भान नहीं होता है, किन्तु सत्पुरुषोंको ही मांसादि भक्षण जैसे कार्यको देख वा सुनकर भी हृदयमें बीभत्स भाव जगता है वैसे ही भगवान्के इस हीन कार्यको देखकर भक्तोंको ही बीभत्स रस प्रकट होता है.

ये सर्व रस भगवान्के भजनमें उस अधिकारके निरूपण करनेवाले हैं. सर्व रसोंमेंसे किसी भी रसमें जिसका प्रेम पूर्ण होता है तो उसको भगवत्सायुज्यकी प्राप्ति होती है अतः यहांसे सर्व रस भगवान्में वर्णन किये गये हैं.

भगवान् बलभद्रके पादादि अङ्गोंके मसलनेका कार्य इसीलिये करते थे कि बलभद्रजी भगवान्के साथ मल्ल आदि क्रीड़ा करके थक गये थे. बलिष्ठके साथकी हुई मल्ल क्रीड़ा विशेष थकावट कराती है. वह क्रीड़ा प्रथम अङ्गोंमें पीड़ा करती है यह पीड़ा आदि भगवान्के विशेष बलके कारण हुई है इसका प्रतीकार (यह पीड़ा किस प्रकार मिटेगी) भगवान्के सिवाय कोई अन्य नहीं जानता है. विशेष थकावटके कारण ही व्याकुलता उत्पन्न हुई थी उसको मिटानेकेलिये किसी गोपके गोदको तकिया बनाकर आराम कर रहे थे. बलरामजी इस विकलताके कारण ही अपने स्वामीके किये हुए उपचारको भी सहन कर रहे थे (यदि विशेष विकलता होती तो भी स्वामीके उपचारको भी सहन नहीं करते अर्थात् उनको करने ही नहीं देते). भगवान् स्वामी थे तो स्वामी होकर उन्होंने सेवककी हीन सेवा क्यों की? इसके उत्तरमें आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान्ने बड़े भाईके नाते ऐसा किया था वह योग्य ही था ।।१४।।

इस श्लोकमें रौद्र रसका वर्णन करते हैं:

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ।।१५।।

(ऐसे वृन्दावनमें प्रसन्न मनवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण और बलराम) कहीं नृत्य करते, कहीं गाते, कहीं आपसमें युद्ध करते और कहीं तो बडप्पन दिखाते, गोपालोंको हाथोंसे पकड कर हंसते थे और उनकी प्रशंसा करते थे.

जैसे मल्लोंको वीररस क्रोध उत्पन्न कराता है वैसे रौद्ररस भी क्रोध उत्पन्न कराता है, किन्तु भगवान्में रौद्ररससे इस प्रकारका क्रोध उत्पन्न नहीं होता है. रौद्ररससे दूसरों (गोपों)में उत्पन्न क्रोधका भगवान् वर्णन मात्र करते हैं कि जिससे वह (क्रोध) भगवान्को हुआ है ऐसे समझा जाता है. इस प्रकार यह

भगवान्की रौद्ररससे युक्त लीला है.

कायवाङ्मनोभिर्यद्युक्तमयुक्तं पीडकं च तत् ।
चतुर्विधा मल्ललीला स्तूयते हरिणा मुदा ।।का.१।।

काया, वाणी और मनसे जो योग्य है और वह जो पीडा कारक होनेसे अयोग्य है, इन चार प्रकारके मल्ल युद्धोंकी भगवान् प्रशंसा करते हैं.

यह मल्ललीला साधारण होनेके कारण इस मल्लयुद्धमें दोनों भाई हैं, दूसरी लीलामें बहुत हैं. इस मल्ल युद्धमें दोनों भाईयोंका होना इसलिये आवश्यक था कि यह मल्ल युद्ध अकेलेसे नहीं होता है, इसमें युग्मकी आवश्यकता है. अतः दोनों भाईयोंने मिलकर परस्पर मल्लयुद्ध किया था. चार प्रकारकी मल्ललीलामेंसे नृत्य लीला कायासे होनेके कारण कायाकी लीला है, गान वाणीसे किया जाता है अतः गान वाणीकी लीला है, अपनी-अपनी प्रशंसाकी फूलझड़ी उड़ानेका कार्य मनसे किया जानेके कारण यह मानसी लीला है और परस्पर युद्ध करनेका कार्य पीड़ारूप होनेसे शारीरिक जैसा है. इस प्रकार परस्पर क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण और बलराम किन्हीं गोपोंकी हंसी करते थे और किन्हीं गोपोंकी प्रशंसा करते थे और गोपोंके हाथोंको पकड़कर उनको जताते थे कि कोई भी क्रीड़ामें किसीका पक्षपात न करें. हंसी करना और प्रशंसा करना भी एक प्रकारकी लोक प्रसिद्ध क्रीड़ा है और जो इस प्रकारकी क्रीड़ा करना जानता है, वह मुख्य क्रीड़क समझा जाता है. श्रीकृष्ण और बलराम हंसनेसे अपना सन्तोष प्रकटकर अनन्तर प्रशंसा करते थे ।।१५।।

इस श्लोकमें शान्तरसका वर्णन करते हैं:

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्षितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ।।१६।।

(ऐसे वृन्दावनमें प्रसन्न मनवाले लक्ष्मी युक्त श्रीकृष्ण) बाहुयुद्धके श्रमको जीतनेवाले (वे श्रीकृष्ण) कभी वृक्षोंके मूलोंमें नवीन कोमल पत्तोंकी शय्याओंपर गोपोंके उत्संगोंको तकिए बनाकर शयन करते हैं।।१६।।

भगवान् बाहु युद्धसे उत्पन्न श्रमको जीतकर शयन कर रहे हैं अतः शान्त जैसे हैं, शान्त होनेसे यह भगवान्की लीला शान्तरस प्रकट करनेवाली है. इस शान्तरसका परिणाम प्रत्येक गोपमें पृथक्-पृथक् प्रकारसे हुआ अतः प्रत्येक गोपने स्पर्धासे भगवान्केलिये वृक्षोंके नीचे शय्याएं पृथक्-पृथक् बिछाईं.

भगवान् भी सब गोपोंको साथ ही आनन्द देनेकेलिये अनेकरूप धारणकर सब शय्याओंपर शयन करने लगे. भगवान्ने वहां शयन क्यों किया? इसका भाव प्रकट करते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि भगवान्ने इसलिये वहां शयन किया कि वृक्षमूल परमहंसरूप हैं और परमहंस वृक्षोंके मूलमें ही रहते हैं अतः इन्द्रियोंसे अदृश्य उन परम ऋषियोंको कृतार्थ करनेकेलिये भगवान् भी वृक्षमूलका आश्रय कर रहे हैं. लोकोंको ऐसी प्रतीति होती है कि भगवान् यहां शय्याओंपर शयन कर रहे हैं वास्तवमें वे शय्याएं योगियोंके अन्तःकरणरूप थीं अर्थात् भगवान् शय्याओं पर शयन नहीं कर रहे थे, किन्तु योगियोंके अन्तःकरणमें स्थिति[१] कर रहे थे. भगवान्ने गोपोंके उत्सङ्गको तकिया बनाकर अपना मुख्य अङ्ग मस्तक उसपर रखा था शेष अप्रधान भोग ऋषियोंके अन्तःकरणमें स्थापन किया था. गोप वैश्य हैं, उनकी उत्पत्ति भगवान्के उरुओंसे हुई हैं अतः गोपोंने अपने धर्मके ख्यापनार्थ भगवान्के प्रधान अङ्ग मस्तकको वहां आश्रय दिया है ।।१६।।

१.लेखकार गोप यों समझते थे कि भगवान् श्रमसे थक गये हैं अतः शय्याओंपर पौढ रहे हैं किन्तु भगवान् तो योगियोंके अन्तःकरणमें बिराजकर उनके मनोरथोंको पूरण कर रहे थे.

इस १७वें श्लोकमें भक्तिरसका वर्णन करते हैं:

पादसंवाहनं चक्रुः केचिदस्य महात्मनः।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ।।१७।।

कितनेक ग्वाल इस महात्मा(श्रीकृष्ण)के पैर दाब रहे हैं, कितनेक निष्पाप पत्ते आदिसे बनाए हुए पंखोंसे हवा कर रहे हैं।।१७।।

कोई इन (भगवान्)के चरण दाबते थे. 'कोई' कहनेका भाव यह है कि पाद दाबनेकी सेवा करनेवाले (भक्त) दुर्लभ होते हैं. 'इन' शब्द कहनेका भाव प्रकट करते हुए कहते हैं कि जो शान्तरसका अभिनय करनेवाले और सर्व प्रकारके रसोंका जो आस्वादन करनेवाले हैं. उससे भी (नवरसोंसे भी) अधिक अन्य (दशवें) रसको भी उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं अतः वे महात्मा हैं. उन महात्मा (भगवान्)के पादोंको दाबना 'दास्य' (भक्ति) है. कर्ममार्गिओंमें यद्यपि कुछ पाप सम्भावना रहती है, किन्तु यहां कर्ममार्गानुसारी भी जिन्होंने भक्तिकी है वे निष्पाप हो गये हैं.

प्राणकी ये सब आसन्य उपासना करनेवाले हैं. आसन्य (प्राण)ने पहले

ही इनको भगवान्का भक्त बना दिया था. अतः इन्होंने प्राणवायुके साम्यवाली क्रियासे अर्थात् पंखोंसे वायु करते हुए भगवान्की सेवाकी. दोनों प्रकारके गोपोंने भगवान्के सान्निध्यसे भक्तिरसकी प्राप्तिकी. यह भगवान्की लीला भक्ति रसवाली है ।।१७।।

इस प्रकार १७वें श्लोकमें रूप प्रपञ्चके अनुसार भक्तिरस लीला कहकर अब १८वें श्लोकमें नाम प्रपञ्चके अनुसार भक्ति रसका वर्णन करते हैं:

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ।।१८।।

हे महाराज! स्नेहसे आर्द्र बुद्धिवाले अन्य (गोप) उन महात्माके मनोहर और उनके अनुरूप चरित्र धीरे-धीरे गा रहे हैं।।१८।।

भगवान्ने निरोधकेलिये जो मनोहर चरित्र किये और भक्तोंके जो सुन्दर चरित्र हैं जो चरित्र भगवान्को प्रिय तथा उचित लगे वैसे चरित्र वे गाने लगे. जो चरित्र भगवान् गुप्त रखना चाहते हैं और जो भक्तोंको भक्ति मार्गके विरुद्ध देखनेमें आवे उन चरित्रोंका गान नहीं किया. यदि उन चरित्रोंको गावें तो भगवान्को वह गान अप्रिय लगे.

'महात्मा' पद देनेका भाव बताते हैं कि भगवान्का माहात्म्य जानकर ही भगवान्के गुणोंका गान करना चाहिये. और भगवान्में सर्व करनेकी शक्ति होनेसे सर्व सम्भव है इसलिये भी 'महात्मा' कहा है.

जिन पदोंमें भगवान्के गुणोंका वर्णन है वे रागानुसार गाये जावें उनको कीर्तन कहते हैं. श्लोकमें 'स्म' शब्दसे प्रमाणित किया गया है कि यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है. अतः वे गोप वैसे ही गाते थे.

हे महाराज! इस सम्बोधनसे श्रीशुकदेवजी बताते हैं कि यह राजलीला है. भगवान्के सान्निध्यसे और अभीष्ट गुणोंसे गोपोंमें भी प्रेम उत्पन्न हुआ. समस्त लीलाओंके अन्तमें उनके प्रेमका प्रकट वर्णन किया गया है. जैसा कि 'स्नेहक्लिन्नधियः' स्नेहसे आर्द्र बुद्धिवाले होनेसे धीरे-धीरे गाने लगे. जैसे आर्द्र वस्त्रसे शुष्क वस्त्रका मेल हो तो वह शुष्क वस्त्र भी आर्द्र हो जाता है. वैसे ही स्नेहसे आर्द्र गोपोंके संसर्गसे गुणगान भी स्नेहार्द्र हो गया, जिसके सुननेसे सुननेवालोंमें भी प्रेम सञ्चार होने लगा. यहां तक ही भगवान्की की हुई लीलाओंका वर्णन है ।।१८।।

इसके (उपरोक्त लीलाओं द्वारा भगवान् पुनः प्रेम उत्पन्न होनेके) अनन्तर जीवोंको सायुज्यकी प्राप्ति होगी किनके साथ लीलाकी जाए? जिनके साथ लीलाकी जाए वे तो रहेंगे नहीं अतः इस श्लोकमें लीलाका उपसंहार करते हैं:

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।।१९।।

लक्ष्मी जिनके पाद पल्लवोंका लालन कर रही हैं और जो इस प्रकारके चरित्रोंसे गोपबालकपनका विडम्बन करते हैं तथा जो ईशके समान चेष्टावाले हैं ऐसे भगवान्ने अपनी मायासे अपनी गति (ईश्वरीय ज्ञान)को छिपाकर ग्रामीणोंके साथ ग्रामीणोंके समान क्रीडाकी।।१९।।

भगवान्की ये ही दश प्रकारकी लीलाएं जहां-तहां कही जाती हैं. आगेके राजस तथा सात्त्विक प्रकरणमें शुकदेवजी राजसी और सात्त्विकी लीला कहेंगे और तामसी लीला गोकुलमें ग्रामीणोंके साथकी है उसका अब वर्णन करते हैं.

जब तमोगुण ज्ञानका विरोधी है जहां ज्ञान है वहां तम रह नहीं सकता है तब ज्ञानरूप भगवान् तामसी लीला करते हैं. यह सम्भवित नहीं लगता है. इस शंकाके निवारणकेलिये श्लोकमें भगवान्को 'निगूढात्मगतिः' विशेषण दिया है जिसका आशय है कि भगवान्ने अपनी ज्ञान लीला तिरोहित कर ली है जिससे भगवान् तामसी लीला कर सकते हैं. भगवान्ने अपनी मायासे दो कार्य किये हैं, एक अपनी ज्ञान लीला तिरोहितकी है और दूसरे अपने चरित्रोंसे गोपबालकपनेका विडम्बन किया है और उसका उपहास किया है. उपहास कैसे किया? वहां कहते हैं कि गोपजन भगवान् नहीं बनते हैं अतः महान् (भगवान्) छोटेका (गोपका) नाम धारणकर उनकी हंसी करते हैं. ये चरित्र अलौकिक हैं, किन्तु अलौकिक चरित्रोंमें विडम्बन नहीं हो सकता है, इसलिये इन चरित्रोंमें भगवान्ने मायाको सहकारिणी बनाया है, जिससे विडम्बन हो सका है और मायाके कारण सब भगवान्को भी सामान्य गोप समझने लगे. विडम्बन तब सिद्ध होता है जब चरित्र बहुत हो तथा पृथक्-पृथक् प्रकारसे किये जावें. अतः भगवान् अपने ज्ञानस्वरूपको छिपाके और गोपानुकरणकर गोपोंपर हंसते हुए रमण करने लगे.

लीलाके आरम्भमें (श्लोक ९में) लक्ष्मीका आगमन और कार्य कहा है

अब उपसंहारमें भी उनकी सेवाका वर्णन करते हैं. लक्ष्मीजी अपने पतिव्रता धर्मको पालन करती हुई क्रीड़ाके अन्तमें अपने पति भगवान्के चरणोंको दबाती हैं. यदि लक्ष्मीजी इस प्रकार पतिकी सेवा नहीं करें तो क्रीड़ाके समय समानताके कारण तिरोहित हुई भक्तिका पुनः आविर्भाव न हो अतः तिरोहित भक्तिके आविर्भावकेलिये लक्ष्मीजीने पाद संवाहनकी सेवाकी है. जिनकी सेवा लक्ष्मीजी कर रही हैं, ऐसे भी भगवान् ग्रामीणोंके साथ ग्राम्यरसके अनुभवकेलिये ग्रामीणोंके समान ही रमण करने लगे. यदि आप ग्रामीण जैसे बनकर रमण न करते और ईश्वर होकर ही रमण करते तो रमणमें रस उत्पन्न नहीं होता कारण कि विजातीयसे रमणमें रस प्रकट नहीं होता है. यद्यपि उस समय भी भगवान्की चेष्टा वैसी ही ईशपनेकी थी, केवल ग्रामीणोंको रसदानार्थ वैसा स्वांग कर "**लोकवत्तु लीलाकैवल्यं**" सूत्रमें कहे हुए न्यायको प्रदर्शित किया है. जैसे राजा लोग शिकारके समय शिकारी जैसा वेशकर शिकार खेलते हैं वैसे ही भगवान्ने भी यह लीलाकी है. इस प्रकार लीला करते हुए भगवान्के भगवत्त्वमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आई है. जैसे राजाके राजापनेमें शिकार करते हुए कोई कमी नहीं आती है ।।१९।।

इस प्रकारके गोपोंके संस्कार करनेकेलिए (अलौकिक भावकी सिद्धिकेलिए) उपरोक्त लीलाकी, अब उनके दोषोंके निराकरणकेलिए धेनुकके वधकी लीलाकी भूमिका प्रारम्भ करते हैं. यह लीला २० (२०से ३९) श्लोकोंसे वर्णन करते हैं:

श्रीदामा नाम गोपालो राम–केशवयोः सखा।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ।।२०।।

राम और केशवके सखा श्रीदामा नामवाले गोपालने और सुबल, स्तोक, कृष्ण तथा स्तोककृष्ण आदि गोपोंने प्रेम पूर्वक यह कहा।।२०।।

श्रीदामागोपाल लक्ष्मीका भ्राता जैसा सम्बन्धी है, इसलिये ही इसका नाम ('श्री' लक्ष्मी 'दामा' रस्सी सम्बन्धवाली जिसकी है) श्रीदामा पडा है. वह गोपाल नन्दजीके वंशमें उत्पन्न हुआ है और राम तथा केशवका सखा है. जिसका तात्पर्य है कि इस श्रीदामागोपालने भगवान्का सख्य प्राप्तकर सख्यभक्ति सिद्ध कर ली है. इस गोपालका तीन प्रकारसे सम्बन्ध हुआ है १.लक्ष्मीजीके सम्बन्धसे सम्बन्धी, २.नन्दवंशमें उत्पन्न गोपाल होनेसे लीला सम्बन्धी और ३.सख्य

भक्तिके कारणसे सम्बन्धी हुआ है. इस गोपालके सिवाय वैसे अन्य सुबल आदि गोपोंकी गिनती करते हैं. १.स्तोक, २.कृष्ण, ३.स्तोककृष्ण. सुबलगोप बलभद्रका अनुयायी था और स्तोककृष्ण श्रीकृष्णका अनुयायी था सुबल और स्तोककृष्ण ये दोनों गोपोंमें मुख्य थे. ये सब गोप मिलकर, प्रेमसे अपने अभिलषित पदार्थकी प्रार्थना करते हैं ।।२०।।

अब प्रार्थना करते हैं:

राम राम महासत्त्व कृष्ण दुष्टनिबर्हण।
इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसङ्कुलम् ।।२१।।

हे महाबलिष्ठ ! हे राम ! हे राम ! हे दुष्टोंके नाश कर्ता कृष्ण ! यहांसे निकट ही ताड वृक्षोंकी पंक्तियोंसे युक्त बडा सुन्दर वन है।।२१।।

उपर्युक्त श्लोकमें सखाओंकी गणना करते हुए प्रथम सुबलका नाम दिया है, सुबल बलरामजीका सम्बन्धी है अतः यहां बलरामजीको हे राम! हे राम! सम्बोधनसे पहिले पुकारा है तथा तालवनमें रहनेवाला धेनुकासुर देहाध्यासका रूप है अतः कायाका दोष है, कायाके दोषको बलरामजीको ही दूर करना है. इस कारणसे भी रामको प्रथम प्रार्थनाकी है. कायाके दोषरूप धेनुकका नाश बलरामजी करेंगे क्योंकि बलरामजी महाबलवान् हैं. महाबलिष्ठ कहकर रामकी स्तुति करना प्रकृत विषयमें उपयोगी है. रामके महाबलिष्ठत्वका परिचय उसके मल्लयुद्ध करनेसे हो गया है. यदि रामके समान यहां श्रीकृष्णको महाबलीका विशेषण देकर उनकी स्तुतिकी जाती तो उससे श्रीकृष्णका महत्त्व नहीं बढता इसलिये कृष्णका विशेषण 'दुष्ट निबर्हण' दुष्टोंका नाशक देकर उनकी स्तुतिकी गई है. इस क्रीड़ा स्थानसे थोड़ी दूर ही अर्थात् निकट ही इस वृन्दावनसे भी सुन्दर तथा बड़ा तालवृक्षोंके पङ्क्तियोंसे पूर्ण वन है ।।२१।।

वृन्दावनसे भी सुन्दर तालवन निकट ही है इसके कहनेका आशय आप लोगोंका क्या है? इस शंकाका उत्तर देते हैं:

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च।
सन्ति किन्त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ।।२२।।

उस वनमें बहुत बडे-बडे फल गिरे हुए हैं, गिर रहे हैं (तथा अन्य पेडोंमें लटक रहे हैं) किन्तु दुष्ट धेनुकने उनको रोक रखा है (जिससे कोई ले नहीं सकता है)।।२२।।

फलोंको लेनेकेलिये फल गिरानेका परिश्रम भी नहीं करना पड़ेगा कारण कि फल गिरे पड़े हैं. गिरे हुए फल शुष्क होनेसे उनमें रस होगा नहीं. यदि उनमें रस न हो तो भी कोई बात नहीं क्योंकि अब भी ताजे फल गिर रहे हैं वे फल कोई ले नहीं गया है यों ही पड़े हैं. तथा पेड़ोंमें भी अब तक बहुत फल हैं वे लेकर खायेंगे किन्तु ले नहीं सकते, धेनुकने उनको रोक रखा है अर्थात् अपने अधिकारमें ले लिया है, किसीको लेने नहीं देता है. यदि वह लेने नहीं देता है तो उससे मांगकर लो, इसपर कहते हैं कि वह धेनुक दुरात्मा है अतः प्रार्थना करनेपर भी नहीं देता है ।।२२।।

अति पराक्रमके कारण उसको कोई प्रार्थना भी नहीं कर सकता है. इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक्।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ।।२३।।

वह असुर बहुत वीर्यवाला है. हे राम ! हे कृष्ण ! उसने गधेका रूप धारण किया है और अपने समान बलवाले ज्ञातिजन तथा अन्य भी बहुत उसके साथमें हैं।।२३।।

धेनुक अतिपराक्रमी होनेसे किसीको भी ध्यानमें नहीं लाता है, जिससे कोई प्रार्थना भी नहीं कर सकता है, यदि कोई नम्र होकर दीनता पूर्वक प्रार्थना करता है तो उसको अपना भक्ष्य(भोजन) बना लेता है क्योंकि यह असुर है. यदि ऐसा है तो हमसे भी अशक्य है? इस शंकाको मिटानेकेलिये पुनः राम! कृष्ण! नाम लेकर बताते हैं कि हे राम! आप महाबली हैं और हे कृष्ण! आप दुष्ट नाशक हो अतः आप इनको जीत सकते हो. अच्छा, हम जीत सकें ऐसा है तो उसको पहचाने कैसे? उसकी पहचान करानेकेलिये कहा है कि उसने गधेका रूप धारण कर लिया है. आप गोप बहुत हो वह एक है अतः आप सब मिलकर उस अकेलेका नाश कर दो. यदि राम और कृष्ण ऐसा कह दें तो उसकेलिये कहते हैं कि वह एक नहीं है, किन्तु उसके साथ उसके समान बलवाले उसके बहुत जाति भाई और अन्य असुर भी बहुत हैं, इसलिये हमसे उसका नाश न हो सकेगा ।।२३।।

तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन्।
न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ।।२४।।

हे शत्रुके नाशक! मनुष्योंको खानेवाले इस दैत्यके भयसे भीत कोई भी मनुष्य वहां नहीं जाता है तथा पशु और पक्षियोंने भी वहां जाना छोड दिया है।।२४।।

इस प्रकार जिस कारणसे उसके वीर्यकी प्रशंसा की उसका कारण वर्णन करते हैं.

वह (धेनुक) मनुष्योंको ही विशेषकर खाता है, इसलिये उस नरभक्षकके भयसे डरे हुए मनुष्य उस वनमें नहीं जाते हैं. यह सुनकर कदाचित् राम–कृष्ण कह दें कि तब तो हमको भी वहां नहीं जाना चाहिये, इसके उत्तरमें कहते हैं कि आप शत्रुओंका नाश करनेवाले हो[१], वह भी शत्रु है अतः उसको मारना आपका कर्त्तव्य है और आप उसको मार सकते हो. यह शत्रुको नाश करनेवाला धर्म सदैव भगवान्में जगा हुआ रहता है. यह भगवान्का धर्म गोपोंके मनमें नित्य स्फुरित रहता है अतः ऐसे दोष (भय)वाले स्थानमें जानेकेलिये भगवान्को प्रार्थना करते हैं. यदि भगवान्के शत्रु नाश करनेकी स्फूर्ति गोपोंके हृदयमें न होती तो वे कदापि प्रार्थना नहीं करते, क्योंकि पहले कहा गया है कि 'प्रेमसे यह कहने लगे' वे इनके वचन ऐसे भयवाले स्थानपर जानेकी प्रार्थना करनेसे विरुद्ध हो जाते परन्तु भगवद्धर्मकी अन्तःकरणमें स्फूर्ति होनेसे विरुद्ध नहीं हैं. और उस वनमें पृथ्वीपर विचरण करनेवाले और अन्तरिक्षमें विचरनेवाले सब जा नहीं सकते हैं अर्थात् उनके जानेके योग्य वह वन नहीं रहा है, इस कारणसे पशुगणोंने तथा पक्षिओंने भी उसमें जाना छोड़ दिया है. इसलिये जो पशुओंके पालक हैं और देवताओंकी पालना करनेवाले हैं उन्हींसे यह मारने योग्य है अर्थात् आप पशुओंके पालक तथा देवताओंके रक्षक हैं अतः आप इनको नाश करो जिससे पशु पक्षी और देवताओंका यह संकट मिट जावे और हम भी फलोंका उपभोग कर सकें ।।२४।।

१.लेखकार यह विशेषण श्रीकृष्णकेलिये है क्योंकि पहले श्रीकृष्णको 'दुष्टनिबर्हण' दुष्ट नाशक कहा है.

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च।
एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ।।२५।।

उपवनमें कभी नहीं खाए ऐसे सुगन्धित फल हैं. उन(फलों)की चारों तरफ फैली हुई सुगन्धि आ रही है।।२५।।

उस वनके फल जो आगे खाये नहीं हैं वे दिव्य (अलौकिक अथवा

स्वर्गीय फलोंके समान) हैं. कितनेक यहां 'भुक्तपूर्वाणि' पाठ लेकर अर्थ करते हैं कि ये फल पहले खाये हुए हैं, यदि उन्होंने खाये न होते तो ये मीठे हैं यों कहकर उनकी कामना कैसे प्रकट करते अतः यद्यपि धेनुक उसकी रक्षा करता है, इसलिये वे खाये नहीं जा सकते हैं, किन्तु चोरीसे खाये जा सकते हैं. वे फल अत्यन्त सुगन्धिवाले हैं. उनकी सुगन्धि तो प्रत्यक्ष सिद्ध है, कारण कि वे चारों तरफ फैली होनेसे सब तरफसे आ रही है ।।२५।।

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम्।
वाञ्छाऽऽसीत् महती राम गम्यतां यदि रोचते ।।२६।।

हे कृष्ण ! हे राम ! सुगन्धिसे हमारे चित्तमें फलोंको खानेका लोभ उत्पन्न हो गया है अतः वे फल हमको दो, क्योंकि उनको खानेकी बहुत इच्छा है. यदि आपका जी चाहे तो आप वहां पधारें।।२६।।

फलोंके मिलनेकी दुर्लभता और उनकी उत्तमताका वर्णनकर, उनको देनेकेलिये भगवान्को प्रार्थना करते हैं कि हे कृष्ण! वे फल हमको दो! कृष्णको क्यों कहा कि आप हमको फल दो उसका कारण बताते हैं कि देनेमें भगवान् ही समर्थ हैं, सबोंपर उनका ही स्वामीपन है. वनसे धेनुकका प्रतिबन्ध हट जावे तो भी पराई वस्तु नहीं ली जा सकती है. अतः भगवान्को देनेकेलिये प्रार्थनाकी है. फलोंके प्राप्तिकी कामनाका कारण यह है कि फलोंकी सगुन्धिने इनका चित्त अपनी तरफ खींच लिया है. यह लोभ अब नहीं हुआ है किन्तु पहले भी विशेष इच्छा थी. फलोंकेलिये राम भी उत्सुक हैं, इसलिये कहते हैं कि हे राम ! आप वनमें पधारो, यों कहते हुए गोपोंके मनमें शंका हुई कि विशेष आग्रह करनेसे रामको क्रोध आ जाये तो इसीलिये फिर कहते हैं कि यदि आप पधारना चाहें तो पधारो (यदि इच्छा न हो तो मत पधारो) ।।२६।।

गोपोंके ये शब्द सुननेके अनन्तर दोनों(राम–कृष्ण) गए इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू।।२७।।

ऐसे मित्रोंके वचन सुनकर मित्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे दोनों भाई हंसकर गोपोंके साथ ताल वनमें पधारे।।२७।।

यद्यपि मित्रोंका हित बिना कहे हुए ही करना चाहिये, किन्तु यहां तो

मित्रोंने प्रार्थना भी की है. अतः सखाओंके हितकेलिये दोनों भाई गये. जो मित्रोंने प्रार्थना नहींकी होती और उनके प्रिय करनेकी इच्छा दोनों भ्राताओंको न होती तो क्लेश विना कर्म करनेवाले भगवान् निरपराधी धेनुकको क्यों मारें? इसलिये भगवान्ने धेनुकको मारा भी नहीं. मित्रोंका हित भी करना है. भगवानने गोपोंका अभिप्राय समझा था कि ये जानेका आग्रह अपने दोषों (देहाध्यास)के निवृत्ति करानेकेलिये कर रहे हैं, इसलिये भगवान् हंसकरके जाने लगे. धेनुकादिकोंका वध सामान्य कार्य है इससे दोनों गये. गोपोंको साथमें इसलिये लिया था कि उनका देहाध्यास नष्ट करना था नहीं तो साथमें ले जानेकी आवश्यकता नहीं थी. यदि यह शंका हो कि धेनुक अति वीर्यवान् है और उसके साथ भी ऐसे बहुत हैं, उनको मारनेकेलिये गोपोंकी आवश्यकता समझकर उनको साथमें लिया तो इस शंकाके मिटानेकेलिये श्लोकमें दोनोंकेलिये 'प्रभु' विशेषण दिया गया है कि वे दोनों उन सबोंके नाश करनेकेलिये 'समर्थ' थे ।।२७।।

वहां जाकर उन्होंने जो किया उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं:

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पयन्।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ।।२८।।

बलरामजी वनमें जाकर हाथीके समान तालके वृक्षोंको बाहुओंसे हिलाते हुए फलोंको गिराने लगे।।२८।।

क्लेश विना (लीला मात्रसे) कर्म करनेवाले भगवान् बाहिर ही खड़े रहे, बलरामजीने तो अन्दर प्रवेशकर बाहुओंसे ताल वृक्षोंको अच्छे प्रकारसे हिलाया जिससे वे पके हुए फल गिरने लगे, पके हुए फल पेड़ोंको हिलानेसे गिरते ही हैं. पृथ्वीपर आगे ही फल गिरे पड़े थे फिर अन्य फलोंको गिरानेकी क्या आवश्यकता थी? क्यों गिराये? गिरानेका कारण बतानेकेलिये मस्त हाथीकी समानताका दृष्टान्त दिया है कि जैसे मदोन्मत्त हाथी केवल अपने बल जनित कण्डूको मिटानेकेलिये वृक्षोंको हिलाता है जिससे काममें न आनेवाले भी सर्वफल गिरते हैं वैसे ही बलरामजीने भी फलोंके गिरानेकी इच्छासे नहीं फल तो अन्य उपायसे भी गिराये जा सकते थे, किन्तु अपने बढ़े हुए बाहुबलकी विशेषता प्रकट करनेकेलिये अपने बाहुओंसे वृक्षोंको कम्पायमान किया ।।२८।।

इसके अनन्तर जो कुछ हुआ उसका वर्णन करते हैं.

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः।

अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ।।२९।।

गिरते हुए फलोंके शब्द सुनकर वह गर्दभ रूप असुर पर्वत सहित पृथ्वीको कम्पायमान करता हुआ दौडकर आया।।२९।।

पशु भी दैवी–असुर भेदसे दो प्रकारके होते हैं, असुरोंसे भी असुर पशु अधम होते हैं. असुर पशुओंमें भी असुर गर्दभ विशेष अधम होता है. इस धेनुकने उस विशेष असुर गर्दभका रूप धारण किया था. फलोंके गिरनेके शब्द सुनकर अपनी विशेष असुरता तथा सामर्थ्य प्रकट करनेकेलिये गोवर्द्धन पर्वत समेत समग्र पृथ्वीबलको कम्पायमान करता हुआ निर्भय होकर दौड़ता वहां आया ।।२९।।

धेनुकने आकर बलभद्रजीको मारा, उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

समेत्य तरसा प्रत्यग् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत् खलः ।।३०।।

बहुत शीघ्र आकर बलरामजीके वक्षःस्थलमें पिछले दोनों पादोंसे लात मारकर रींकता हुआ यह बलवान दैत्य चारों ओर फिरने लगा।।३०।।

बलरामजीके पास निकट आकर मिले बहुत शीघ्र शरीरको फिराकर मुखको दूसरी तरफ और पादोंको बलरामजीकी तरफ किया. उसके अनन्तर (पिछले) दोनों पैरोंको बलरामजीके वक्षःस्थलमें मारकर रिंगने लगा और चारों ओर बलरामजीको मानो लपेटते हुए प्रदक्षिणा करने लगा यों (प्रदक्षिणा) क्यों किया? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह इनका जाति स्वभाव है. शिष्टाचार यह है कि कोई महान् पुरुष फलोंको लेने अपने घरमें आवे तो वह आपही अपने हाथोंसे स्वयं फल ले लेते हैं. ऐसी हालतमें अपने घरमें आये हुएको कोई फलोंको लेनेसे रोकता नहीं है तो इसने (धेनुकासुरने) वैसा अयोग्य कर्म कैसे किया? इसके उत्तरमें कहते हैं कि इसने यह अयोग्य कार्य किया इसका कारण यह है कि यह धेनुकासुर खल है ।।३०।।

बलदेवजीने भी उसके (धेनुकके)स्थान (वन)में उसकी आज्ञाके बिना प्रवेश किया था अतः उसका एक अपराध सहनकर लिया तो भी वह रुका नहीं, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ।
चरणावपरौ राजन् बलाय प्राक्षिपद् रुषा ।।३१।।

हे राजन्! क्रोधाविष्ट शृगाल जैसे इस गर्दभने पुनः लौटकर उल्टे मुंह

खडा हो क्रोधसे पिछले पैर बलदेवजी पर फेंके।।३१।।

क्रोधसे भरा हुआ शृगाल तुल्य यह गर्दभ फिर समीप जाकर उल्टे मुंह खड़ा हो पीछेके पैर बलदेवजी पर फेंकने लगा जब तक पैर मारे तब तक उसमें क्रोध भरा हुआ था, इसलिये श्लोकमें 'रूषा' शब्दका प्रयोग किया हुआ है. (श्रोताको) हे राजन्! यह सम्बोधन स्नेहसे देकर बताया कि यह जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है आपको ठगनेकेलिये नहीं कह रहा हूं ।।३१।।

जब एक बार अपराध सहन करनेपर भी वह रुका नहीं फिर भी उसी तरह अपराध करने लगा तब बलरामजीने उसको मारा जिसका वर्णन करते हैं:

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ।।३२।।

बलरामजी एक हाथसे उसके पिछले पादोंको पकडकर फिराने लगे, फिराते-फिराते उसके प्राण निकल गए तब उसे ताडके वृक्षोंपर फेंक दिया।।३२।।

बलरामजीने उसके पिछले पादोंके अग्रभागको एक ही हाथसे पकड़कर फिराते-फिराते तालके वृक्षके ऊपर फेंका जैसे भगवानने वत्सासुरको ऊपर ही फिराते प्राण हीन कर दिया था वैसे ही बलभद्रजीने भी धेनुकासुरको फिराते हुए उसके प्राण ऊपर ही निकाल दिये थे, इसलिये श्लोकमें 'भ्रामणत्यक्तजीवितम्' कहा है (घुमानेसे जिसके प्राण निकल गये हैं वैसेको) ।।३२।।

पहले तो फल ही गिरते थे अब तो वृक्ष भी स्वयं गिरने लगे इसका वर्णन करते हैं:

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः।
पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ।।३३।।

इस दैत्यके शरीरके पछाडनेसे कम्पायमान पासके ताडको भी कम्पित करता हुआ बडे शिरवाला वह ताडका वृक्ष गिर पडा, उससे दूसरा गिर पडा और उस (दूसरे)से तीसरा गिरा।।३३।।

बलभद्रजीसे अथवा रासभके देहसे चारों ओरसे घायल बड़ा तालका वृक्ष भी ऐसा कम्पित हुआ जो बड़े शिरवाला होते भी स्थिर रहनेमें असमर्थ हो गया, पासवाले वृक्षको कम्पित करता हुआ बीचसे टूट गया, वह पासवाला भी कांपता हुआ अपने पासवालेको कम्पायमान करता हुआ स्वयं टूट पड़ा, वह भी

ऐसे ही टूटा, इसी तरह दूसरा भी तथा सारी पङ्क्ति इसी प्रकार गिर पड़ी ।।३३।।

केवल एक ही पंक्ति गिरा दी हो ऐसा नहीं, किन्तु सब वृक्षोंको कम्पित कर दिया. इस श्लोकमें उसका वर्णन करते हैं:

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ।।३४।।

बलरामजीने लीला ही से फेंके हुए गर्दभके देहसे ताडित वृक्षोंसे जो अन्य वृक्ष ताडित हुए थे वे सब ताल वृक्ष ऐसे कांपने लगे जैसे मानों महावायुसे कम्पायमान किये गए हों।।३४।।

यह बलरामजी साक्षात् बलरूप हैं, इससे उनने लीलासे भी फेंके हुए गर्दभके देहसे जो ताल वृक्ष गिरा उस ताल वृक्षसे चारों तरफसे आहत हुए तालके सब पेड़ महावायुसे जैसे कम्पायमान होवे वैसे कांपने लगे. एक पेड़पर गर्दभके देहकी चोट लगी उस एकके सम्बन्धसे चारों तरफ सब पेड़ क्यों कम्पायमान होने लगे? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि बलरामजीकी क्रिया शक्ति सर्वात्मक होनेसे एक दूसरेमें फैलती हुई शान्त नहीं हुई. इसकी (बलरामजीकी) क्रिया शक्ति जहां भी पहुंची उसके सम्बन्धसे वहां स्थित क्रियाशक्ति भी प्रकट हो जाती थी उसका अन्यत्र स्पर्श होनेसे वहां भी स्थित शक्ति प्रकट हो जाती है, जैसे काष्ठमें अग्नि एक स्थानसे प्रकट हो तो वह स्पर्शसे अन्यत्र भी प्रकट होती रहती है यहां अग्निका दृष्टान्त देकर वायुका दृष्टान्त दिया है, उसका कारण यह है कि अग्नि स्पर्श करती है तो अपने आधार (काष्ठ)को भी नाश कर देती है अतः अग्निका दृष्टान्त न देकर अग्निके समान धर्मवाले वायुका दृष्टान्त दिया है. कारण कि जैसे बलरामजीकी क्रियाशक्ति जहां जाती है वहां गुप्त क्रियाशक्तिको जगाती है वैसे महावायु भी जहां जाता है वहां गुप्तरूपसे स्थित वायुको प्रकट करता है वह भी महान् बनकर दूसरे गुप्तको जगाता है इस प्रकार गुप्त शान्त वायु भी महान् वायुका रूप धारण करती है ।।३४।।

इन बलदेवजीके चरित्रको आश्चर्य जैसा माना जाता है अतः उसका इस श्लोकमें समाधान करते हैं कि:

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ।।३५।।

अनन्त और जगदीश्वर भगवान्के इस कार्य करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है

क्योंकि सकल जगत् उनमें (भगवानमें) ऐसे ओत-प्रोत हैं जैसे तन्तुओंमें पट ओत-प्रोत है।।३५।।

यह कर्म(लीला) बलभद्रजीका किया हुआ नहीं है, किन्तु उनमें आविष्ट भगवत्स्वरूप द्वारा हुआ है. अतः कहते हैं कि भगवान्में इस प्रकार लीला करनेसे कोई आश्चर्य नहीं है और यह अनन्त है अर्थात् सर्वका संहार करनेवाला सङ्कर्षण हैं, उसने ताल वृक्षोंको (भयसे) कम्पायमान किया इसमें क्या आश्चर्य है? कारण कि उसके कालस्वरूपके स्मरणसे समग्र जगत् कांपता है और वह जगदीश्वर होनेसे सकल जगतका नियन्ता है. सब देवादि ईश्वरकी आज्ञासे ही डरकर अपने कार्यमें संलग्न रहते हैं. जैसा कि कहा है कि ''यद्भयाद् वाति वातोऽयं'' जिसके भयसे वायु वाता है.

धेनुकने बलरामजीको प्रथम प्रहार किया तब तक केवल बलरामजी थे. उस प्रहारकी व्यथा मिटानेकेलिये उपाय ढूंढनेपर भगवानका दिया हुआ उपदेश (इस अध्यायके श्लोक ५ से ८ वाला उपदेश) स्मरण करने पर उन बभलद्र स्वरूपमें भगवान्का आवेश आ गया तब इस प्रकार कर सके अर्थात् धेनुकको पकड़कर फिराते हुए ताल पर फेंक दिया जिससे सब पेड़ कम्पित होकर क्रमशः टूटने लगे. यदि यह कार्य भगवान्ने आविष्ट होकर न किया होता, अकेले ही बलदेवजीने किया होता तो पहले जब बाहुओंसे पेड़ोंको हिलाया था तब वृक्ष टूट जाते थे वैसा अब न होनेसे यह सिद्ध होता है कि यह कर्म बलरामजीमें आविष्ट भगवान्के सङ्कर्षण स्वरूपका है, और अहं तथा मम के अभिमानी अधिष्ठाता सङ्कर्षण स्वरूपमें सकल जगत् ऐसे ओत-प्रोत हैं जैसे तन्तुओंमें पट ओत-प्रोत हैं. जैसे वस्त्रमें तन्तुएं दो प्रकारकी होती हैं एक दीर्घ दूसरी तिर्यक् होती हैं. दीर्घ तन्तु ओत होती है तिर्यक् प्रोत होती है वैसे ही समग्र जगत् भगवान्में समवेत तथा ग्रथित होकर ओत-प्रोत है. अतः भगवानने केवल हस्त चलानेसे जब सर्व जगत्का कम्पित होना भी योग्य है अर्थात् हो सकता है तब केवल वृक्षोंकी यह दशा हुई तो इसमें किसी प्रकारके आश्चर्यकी बात नहीं है ।।३५।।

इस प्रकार धेनुकका वध और भगवान्के सामर्थ्यका वर्णनकर इसी प्रसंगमें उसके सब साथियोंका भी हुआ उस वधका वर्णन अब करते हैं:

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ।।३६।।

फिर धेनुकके नाती जिनका बन्धु मर गया है वे सब गधे (श्लोकमें 'क्रोष्ट'शब्द दिया है जिसका अर्थ 'गीदड' होता है, यहां गीदड थे नहीं फिर 'क्रोष्ट' शब्द क्यों दिया? इस शंकाका निवारण श्रीसुबोधिनीमें आचार्यश्रीने यों किया है कि जो गर्दभ गीदडके समान ध्वनि करते हैं उनको भी 'क्रोष्ट' कहते हैं) क्रोधमें आकर राम और कृष्णपर आक्रमण करने लगे।।३६।।

वे(धेनुकके सम्बन्धी) तो बहुत मूर्ख थे जो सम्बन्धी धेनुकके वधसे दुःखी हुए थे इसी कारण क्रोधमें भर गये थे. उन गीदड़ोंने (गीदड़ जैसी ध्वनि करनेवाले गर्दभ थे अतः इनको गीदड़ कहा गया है) राम और कृष्ण पर आक्रमण किया, श्लोकमें 'च' दो बार आया है उसका आशय है कि उन्होंने गोपोंपर भी आक्रमण किया. उस वक्त राम और कृष्ण प्रत्येक गोपके पास उपस्थित थे, जिससे रामकृष्ण पर बहुत स्थानोंपर बहुत बार आक्रमण हुआ ।।३६।।

तदनन्तर भक्तों (गोपों)के रक्षणार्थ कृष्ण तथा रामने उनको मारा, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया।
गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु ।।३७।।

हे नृप ! जो–जो गधे सामने पास आए उनके पिछले पांव पकडकर राम और कृष्णने लीला ही से उनको ताड वृक्षोंपर फेंक दिए।।३७।।

जो–जो आगे आते थे उनको क्रमशः मार देते थे, कृष्णके पास जो आते थे उनको कृष्ण मारते थे और जो रामके पास आते थे उनको राम नाश करते थे. यहां भी 'नृप' सम्बोधन पूर्वके समान दिया है (अर्थात् इस बातको प्रेम पूर्वक समझाया है कि यह कही हुई बातें सत्य हैं.) इनके (धेनुकके सर्व सम्बन्धियोंके) वध करनेमें राम तथा कृष्णको किसी प्रकारका श्रम नहीं हुआ था, इसको बतानेकेलिये कहा है कि 'लीलया' लीलासे उनको मारा था. पिछले पैरोंको पकडनेका भाव यह था कि उनके प्राण अन्तरिक्षमें हि निकालने थे और ताडके पेड़ोंपर फेंककर ताड़के वृक्षोंको नाश करनेका आशय यह था कि ये पेड़ इस दुष्टने पालकर बड़े किये थे अतः ये रहने नहीं चाहिये. राम तथा कृष्ण एक ही स्वरूप हैं इसको समझानेकेलिये 'प्राहिणोत्' यह क्रिया एक वचनमें दी है यदि दो होते तो द्विवचन देते ।।३७।।

इसके अनन्तर जो कुछ हुआ वह इस श्लोकमें कहते हैं:

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ।

रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ।।३८।।

(उस समय) पृथ्वी फलोंके ढेरसे मरे हुए गर्दभोंकी लोथोंसे और ताडके पेडोंकी शाखाओंसे वैसी शोभित होने लगी जैसे बादलोंसे आकाश शोभित होता है।।३८।।

फलोंके समूहोंसे, मरे हुए दैत्योंकी लोथोंसे और ताड़के पेड़ोंसें टूटकर गिरी हुई शाखाओंसे छाया हुआ वह पृथ्वीका तल शोभित होने लगा. इनसे पृथ्वीकी कुछ भी शोभा नष्ट नहीं हुई. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे निर्मल आकाश, सूर्य अथवा चन्द्रमा तथा ताराओंसे जिस प्रकार सुशोभित है उसी प्रकार बादलोंके सम्बन्ध होनेपर भी वह सुशोभित हो जाता है. उसकी शोभामें बादलोंके ओनेसे कोई कमी नहीं आती है कारण कि बादलोंकी तो सारी जनताको अपेक्षा है. ये तीनों ही नीलरङ्गकी अवान्तर जातियां हैं जैसे तालके फल आसमानी रङ्गके होते हैं, रासभ धूसर रङ्गके होते हैं और तालके पेड़की शाखाएं श्याम होती हैं वैसे ही मेघ भी इसी रङ्गके होते हैं ।।३८।।

इन (राम और श्रीकृण)का यह कर्म समस्त जगत्में प्रसिद्ध हुआ इसको जतानेकेलिए यह श्लोक कहते हैं:

तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशम्य विबुधादयः ।

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ।।३९।।

राम तथा कृष्णका यह बडा कर्म देखकर देवादिकोंने पुष्पोंकी वृष्टिकी, बाजे बजाए और स्तुतिकी।।३९।।

उन दोनोंका धेनुक वधरूप महत् कर्म देखकर अथवा जानकर गन्धर्व आदि देवोंने पुष्पोंकी वृष्टिकी बाजे बजाये और स्तुति की. तीन प्रकारके देवोंके ये तीनों कार्य हर्ष प्रदर्शक हैं. जिससे देवताओंने यह बताया कि भगवान्ने धेनुकका वध उनके हितकेलिये किया है ।।३९।।

इस प्रकार सपरिकर धेनुकके वधका निरूपण किया. भगवान्ने अपने हाथसे किसीको तालफल नहीं दिए, किन्तु सबोंने अपनी इच्छासे लेकर फलोंको खाया, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ।

तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ।।४०।।

अनन्तर जिस वनमें धेनुक मारा गया था उस वनमें मनुष्य निर्भय होकर फल खाने लगे और पशु भी डर छोडकर घास चरने लगे।।४०।।

'अथ' शब्द कहकर यह बताया है कि अब यह प्रसङ्ग पृथक् प्रारम्भ होता है. जहां धेनुक मरा वैसे वनमें मनुष्योंको फल लेकर खानेमें किसी प्रकारका अब डर नहीं रहा अतः निडर होके फलोंको लेकर खाने लगे. वहां छाया हो जानेसे घास हरा ही पड़ा रहा था जिससे पशु भी हरा घास प्रेमसे खाने लगे. श्लोकमें आये हुए 'च' शब्दका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि इससे 'च' देनेसे जाना जाता है कि केवल मनुष्य और पशु निडर होकर भोजन करने लगे यों नहीं किन्तु पक्षी भी सुखी हुए वे भी फल खाने और छायामें विचरनेसे आनन्दित हुए ।।४०।।

इस प्रकार वनकी लीला पूर्णकर भगवान् व्रजमें पधारे उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत्।।४१।।

जिनका श्रवण और कीर्तन पुण्य प्रद है, वैसे कमल दल लोचन कृष्ण, गोपोंसे स्तुति कराते हुए बलरामजीके साथ व्रजमें पधारे।।४१।।

भगवान्का व्रजमें पधारना व्रजवासियोंकेलिये महान् आनन्दका कारण है. व्रजवासी तो इतने समयसे भगवान्के [१]विरहके कारण तप्त होनेसे दुःखी हैं. उनका वह दुःख भगवान् कैसे मिटायेंगे, जब दुःखको मिटावें तब भगवान्का आना उनके सुखका कारण बने. इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्के नेत्र कमलके पत्रके समान विशाल हैं. जैसे कमल पत्र तापको बुझाते हैं वैसे ही आप कमल जैसे नेत्रोंकी दृष्टि मात्रसे तापको [२]मिटानेवाले हैं. जब तक विरह तापका कारणभूत आध्यात्मिक(मदादि) पाप विद्यमान है तब तक कार्यरूप विरह ताप कैसे मिटेगा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि आपके श्रवण और कीर्तनसे वे पाप ऐसे मिट जाते हैं जैसे जलका प्रवाह गन्दगीको साफकर बाहर फेंक देता है. भगवान्के गुणोंका अमृत पूर्ण कथारूप प्रवाह श्रवण द्वारा हृदयमें जाता है वहां जाकर जो भी कश्मल होता है उसको खींचकर कीर्तन करते हुए मुख द्वारा बाहिर निकाल देता है. इस प्रकार कितने ही काल पर्यन्त आवृत्ति करनेसे सर्वथा ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है अर्थात् आध्यात्मिक पाप निवृत्त हो जाते हैं जिससे कार्यरूप विरह ताप तो स्वतः ही नष्ट हो जाता है अतः कहा है कि भगवान् 'पुण्य-श्रवण-कीर्तनः[३]' हैं. पुनः शङ्का

होती है तो भगवत्कीर्तिका ज्ञान कैसे होगा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'स्तूयमानोऽनुगैः' भगवान्के अन्तरङ्ग भक्त और गोप सदैव भगवान्की अलौकिक (रहस्य लीला) तथा लौकिक प्रकारसे स्तुति करते ही रहते हैं अतः भगवत्कीर्तिका ज्ञान इस प्रकार सुलभ रीतिसे प्राप्त हो सकता है जिससे नित्य प्रेम करनेसे प्रतिबन्धक आधिदैविक पाप भी नष्ट हो जाते हैं. भक्त और गोपादिक जिसके साथ स्तुति करते आ रहे थे ऐसे भगवान् बलरामजीको आगे कर आप पीछे हो के व्रजमें पधारें, यों करनेका कारण यह है कि धेनुकका वध बलरामजीने किया था अतः पहले भगवान् पीछे बलरामजी इस क्रमसे पृथक्-पृथक् नहीं आये ।।४१।।

१.लेखकार इस श्लोकमें 'विरह' ताप कहा है जिसे दूर करनेका कहा है आनेवाले श्लोकमें दूसरे प्रकारका ताप कहेंगे.

२.लेखकार भगवान् दृष्टिसे संयोग दानका संकेत करते हैं जिससे विरह ताप मिटता है .

३.लेखकार श्रवण और कीर्तनसे पापरूप कश्मल बाहिर निकल जाता है, स्वरूपसे पाप नष्ट नही होता है. निबन्धमें आचार्यश्रीने इस प्रकार कहा है.

व्रजमें पधारते समय जैसा भगवान्ने स्वरूप धारण किया था वैसा वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तं गोरजश्छुरित-कुन्तल-बद्ध-बर्ह-वन्य-प्रसून-रुचिरेक्षण-चारु-हासम् ।
वेणुं क्वणन्तम् अनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ।।४२।।

भगवानके दर्शनकी इच्छावाली दृष्टिसे युक्त गोपियां जिनके केशोंमें गौओंके खुरोंकी रज लग रही है, मोर पिच्छ और वनके पुष्प गुथे हुए हैं हास्य तथा नेत्र सुन्दर हैं और जो मुरली बजा रहे हैं तथा जिनके पीछे - पीछे अनुचर यश गा रहे हैं वैसे भगवान्को चारों ओरसे घेर रही थीं।।४२।।

गोपियां भगवान्को चारों तरफ घेर रहीं थीं. कारण कि भगवान्ने जो पहले चतुर्विध पुरुषार्थ युक्त दश रसवाली लीलाकी थी, वह गोपियोंने नहीं देखी थी, जिससे उनको उसका ताप था, उस तापसे निवृत्तिकेलिये यहां भगवान् चतुर्दश धर्मयुक्त होकर पधारे हैं जिसका यहां निरूपण है.

भगवान्की अलकें गोरजसे व्याप्त थीं, इस विशेषणसे पुरुषार्थ लीलाका प्रतिपादन किया है, जैसे कि 'गौ'से धर्म, रजसे अर्थ, व्याप्तिसे काम और कुन्तलसे मोक्ष बताया है. अलक सदैव पृथक् रहते हैं और सत्य (भगवान्के स्वरूप)के आश्रय करनेवाले होनेसे मोक्षरूप हैं. जिन (जीवों)के धर्म, अर्थ और

काम ये तीन पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं उनको ही मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिये श्लोकमें चारों (गो, रज, धूरित, कुन्तल) का समास किया गया है.

[1]चतुर्विध पुरुषार्थकी लीला दिखाकर, अब दशविध रस सम्बन्धवाली लीला दिखाते हैं. दश रसोंमेंसे प्रथम शृङ्गार रसकी सम्बन्धिनी लीला, 'अलक' 'रज' और 'गौ' इन तीन शब्दोंसे दिखाते हैं. 'अलक' [2]कामरूप है [3]'रज' रजोगुणरूप है और [4]'गौ' अनुभावक है. इनसे पुष्ट शृङ्गार रसका निरूपण हुआ है.

मयूरपिच्छका बन्धन [5]'वीर' तथा [6]'अद्‌भुत' रसोंका बोध कराता है. वनमें उत्पन्न पुष्पोंका सम्बन्ध [7]'भयानक' और [8]हास्य रस उत्पन्न करते हैं. सुन्दर दृष्टि [9]करुणस उत्पन्न करती है. मनोहर हास [10]'रौद्र'रस उत्पन्न करता है. महान् पुरुष जब इसी प्रकारका विशेष वेश धारण करते हैं, जिससे नाटकका अवशिष्ट रस [11]'बीभत्स'रस उत्पन्न होता है. भगवान् वेणु बजाते हुए ब्रह्मानन्द प्रकट करते हुए व्रजमें पधारते हैं तब उससे 'शान्त रस' प्रकट होता है. अन्तरङ्ग भक्त भगवान्‌की कीर्तिका गान करते हैं जिससे [12]'भक्ति' रस प्रकट होता है.

इस प्रकार सर्व रस युक्त भगवान्‌को देखती हुई भी पुनः-पुनः देखनेकी इच्छा युक्त दृष्टिवाली वे गोपियां वहां ही खड़ी रहीं. वहां ही खड़ी क्यों रहीं? उसका कारण प्रकट करते हैं कि जब भगवान्‌को साधारण रीतिसे सबोंके सङ्गमें देखा जाता है तब भगवान् दर्शन तो देते रहते हैं किन्तु अपने सर्व रसोंको प्रकटकर दर्शन नहीं देते हैं. जब भगवान् अकेले होंगे तब एकान्तमें पधारे हुए भगवान्‌का सर्व रस सहित दर्शन करेंगी इस आशासे वे गई नहीं, खड़ी रहीं. इसी कारणसे प्रथम, दर्शन, न कहकर समागम कहा. समागममें जो दर्शन होता है वह दूसरोंके अवशेषमें होता है. इसलिये इसके पृथक् निरूपणकी अपेक्षाकी आवश्यकता नहीं है.

वह कार्य एकका नहीं था इसलिये उन सबोंने मिलकर भगवान्‌को घेर लिया था. आते समय पहले गौ उनके पीछे बलभद्रजी जिनके नेता हैं वैसे गोप थे, इसके अनन्तर जो पीछे गोप भगवान्‌के साथ थे उनको गोपियोंने भगवान्‌से अलग कर दिया. स्वयं सबने भगवान्‌को घेर कर भगवान्‌को बीचमें लेकर सबोंके साथ आने लगीं. वे गोप सबसे पीछे आते रहते थे ।।४२।।

टिप्पणी: **साहित्याशय, टिप्पणी और लेख**

इस लीलामें 'गौ' को धर्म इसलिये कहा गया है कि 'वृष' (सांड-बैल) गौ

जातिका है जिसको भागवतमें 'धर्म' रूप कहा है और 'गौ' धर्मके कारणरूप है. 'रज'को अर्थ कहनेका कारण यह है कि 'अर्थ' धर्मसे प्राप्त होता है अतः 'अर्थ' धर्मका सम्बन्धी है, गौ धर्मरूप है. गौओंके चलनेसे उड़नेवाली रज, गौओंके सम्बन्धवाली है. और 'रज' 'रजोगुणरूप' होनेसे मद उत्पन्न करनेवाली है, अर्थ भी मद कर्ता होता है अतः रजको अर्थ कहा गया है. 'व्याप्ति'को काम कहनेका भाव यह है कि कामनावाला ही सर्वसे सम्बन्ध रखता है, निष्काम किसीसे सम्बन्ध नहीं रखता है. 'व्याप्ति'का तात्पर्य है अन्य पदार्थोंसे मिलकर रहना और अन्य पदार्थोंमें मिल जाना अर्थात् उसको अपना रूप बना देना अतः 'व्याप्ति'को काम कहा है. जैसे भगवान्में कामना उत्पन्न हुई तब इस जगत्को उत्पन्नकर इसमें प्रविष्ट होकर रहे और सर्व रूपोंसे आविर्भूत होकर सर्वमें व्याप्त हो गये, इस दृष्टान्तसे सिद्ध है कि 'व्याप्ति' काम है. 'अलक' मोक्षरूप इस कारणसे कहा कि 'केश' बद्ध और 'अलक' मुक्त रहते हैं. अलक मुक्त होनेसे भक्तजनोंके मन कहीं अन्यत्र चले गये हो तो भी वे मन भी अलककी शोभा देखकर वहां आकर्षित होकर आ जावें, इस प्रकार भगवान् अलकों द्वारा इन भक्तोंको बुलाकर स्वरूपानन्दका दान देते हैं.

इस लीलामें गौ, रजःकण, व्याप्ति और अलकोंके दर्शनसे क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थोंका भक्तोंको अनुभव हुआ.

२.लोकमें यह प्रसिद्ध है कि कोई भी जब रसिकको उत्तम रस भोग करते देखता है, तब उसको भी रस भोग करनेकी चाह होती है. यहां भगवान्के कुन्तल (अलक) आपके श्रीमुखरूप कमलके चारों तरफ भ्रमरवत् सुशोभित हो रहे हैं अतः जो भी इनके दर्शन करते हैं उनके भावोंमें उद्दीपन (वृद्धि) होता है इससे ये कुन्तल कामरूप है. (टिप्पणी)

'कामरूप' अर्थात् कामका निरूपक अथवा कामको जागृत करनेवाला है. (लेख)

३.गौके द्वारा उड़ते हुए रजःकण 'काम' उत्पन्न करते हैं, अतः ये रजः कण, शृङ्गार रसके उद्दीपन होनेसे 'रजोगुण' रूप हैं. (लेख)

४.गौ भगवान्के साथ सदैव रहती है अतः इनको देखनेसे भगवान्का स्मरण होता है जिससे मन दूसरी जगह हो तो वहांसे खींचकर भगवान्के रसका अनुभव कराती है इसलिये गौ अनुभावक (रसका अनुभव करानेवाले) हैं. (टिप्पणी)

५.मयूर पिच्छ उत्साह उत्पन्न कर्ता होनेसे वीररस प्रकट करता है. (प्रकाश)

६.भगवान्ने मोर पिच्छ बान्धा है यह देखकर सबको विस्मय उत्पन्न होता है इसलिये यह 'अद्भुत' रस है. (प्रकाश)

७.दुर्गम स्थानमें उत्पन्न होनेसे वहांसे लाना भयङ्कर है अतः इनको देखनेसे भयानक

रस उत्पन्न होता है. (प्रकाश)

८.ये पुष्प कभी इस प्रकार धरे हुए हों जो देखनेमें अच्छे न लगनेसे 'हास्य' रस उत्पन्न करते हैं.

९.सुन्दर दृष्टिके दर्शनसे मनमें पश्चाताप होता है कि हा हमने इतने समय तक इसके दर्शन ही नहीं किये जिससे 'करुणा'रस हृदयमें उत्पन्न होता है.

१०.मनोहर हाससे किसी अधिकारीको 'रौद्र'रस उत्पन्न होता है.

११.भगवानके इस प्रकारके वेशको देखकर जुगुप्सा(ग्लानि) उत्पन्न होनेसे 'बीभत्सरस' उत्पन्न होता है. (प्रकाश)

१२.भक्तोंके दर्शनसे रूपात्मक् भगवान्की सेवारूप भक्ति रस उत्पन्न होता है. भगवान्के कीर्तिका गान सुननेसे नामात्मक भगवानका सेवारूप भक्तिरस उत्पन्न होता है. (लेख)

गोपीजनोंने जो कुछ कृत्य किया उसका वर्णनकर अब इस श्लोकमें भगवान्के व्रजमें आनेका निरूपण करते हैं:

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽस्मिन ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ।।४३।।

व्रजकी स्त्रियोंने मुकुन्द भगवान्के मुखारविन्दके मधुका अपने नेत्ररूप भ्रमरोंसे पानकर दिनमें हुए विरह तापको दूर किया. गोपियोंने लज्जा, हास तथा विनय सहित कटाक्षोंसे जो सत्कार किया उसको ग्रहण कर आप व्रजमें पधारे ।।४३।।

गोपीजनोंके तीन कार्य इस श्लोकमें कहे हैं, १.लावण्यामृतका पान, २.विरहोत्पन्न तापका मिटाना, ३.भगवानका सत्कार. प्रारम्भमें विरह तापको मिटानेकेलिये जिसमें करुणारूप तरङ्गें उछल रही हैं वैसे गोपीजनवल्लभरूप सरोवरसे लावण्यामृतका पान अवश्य कर्तव्य है. यदि इस लावण्यामृतका पान नहीं किया जायेगा तो विरह ताप नहीं मिटेगा. जब ताप नष्ट होगा तब ही रसका आस्वादन हो सकेगा.

बाहिरका ताप तो भगवान्के साथ मिलन होनेपर मिट गया. भीतरका ताप लावण्यामृत रसका पानकर मिटाया.

जिस रसका पान किया जाये वह रस तापको मिटानेवाला और मिष्ट होता है तो विशेष पीया जा सकता है, किन्तु लौकिक कोई रस वैसा नहीं है. दूध मिष्ट और ताप हारक है, परन्तु तृषादि जनक दोषवाला है इसी प्रकार जल भी

बर्फके समान ज्यादा पीया नहीं जाता है तात्पर्य यह है कि मिष्ट और ताप हारक होते हुए भी परिणाममें सुखदायी न होनेसे उनका पान करना श्रेष्ठ नहीं है. अतः भगवान्का लावण्यामृत रस ही सर्व गुणोंवाला है, इसका वर्णन करते हैं. यह लावण्यामृत रस, ज्ञान, रूप तथा शान्त होनेसे निर्दोष है और अन्तमें मोक्ष देनेवाला भी है. भगवान्का मुखारविन्द भक्त्यात्मक है, अतः भक्ति स्नेहरूप द्रवीभूत तत्व होनेसे उसका पान प्रेमसे विशेष किया जा सकता है.

यह लावण्यामृत रस, मुकुन्दके मुखारविन्दका मधु है. जैसे मधु-मक्षिकाएं सर्व पुष्पोंसे रसको चूसकर ले आती हैं और उस रसको वृक्षके कोटरमें स्थापित करती हैं वह मधु द्रवीभूत है. अन्य जातिका मधु घनीभूत होनेसे पीने योग्य नहीं होता है. वैसे ही यहां ब्रह्मादिक देवरूप मधुमक्षिकाओंने तथा श्रुति मधुमक्षिकाओंने सकल शास्त्रोंके प्रकरणोंमें स्थित परमानन्दरूप मधु (आनन्दरस)को वहांसे लाकर इस स्वरूपमें धरा है, अर्थात् सर्व प्रकरणोंमें प्रतिपादित आनन्द इकट्ठा होकर यहां आकर कृष्ण स्वरूपमें प्रकट स्थित हुआ है. तात्पर्य यह है कि ब्रह्मादि देवताओंकी तथा श्रुतियोंकी प्रार्थनासे भगवान् यहां प्रकट हुए हैं.

उस प्रकट रस स्वरूपके रसका गोपिकाओंने ही उपभोग किया है. जो, उस रसपर ही जीवन धारण करते हैं, वे ही उस रसके स्वरूपको समझते हैं. वे भ्रमर हैं उनके (भ्रमरोंके) देहका निर्वाह करनेवाला कोई अन्य पदार्थ नहीं है इसलिये उनका दूसरे किसीसे सम्बन्ध भी नहीं है. वे दूसरे स्थानोंपर केवल भ्रमण करनेकेलिये जाते हैं. इसी प्रकार गोपिकाओंके नेत्ररूप भ्रमरोंके देहका निर्वाह करनेवाला मुकुन्दके मुखारविन्दका मधुर रस ही है. अतः वे नेत्ररूप भ्रमर अन्यत्र भ्रमण करते हुए भी भगवान्के मुखारविन्दके लावण्यामृत मधुको ही ग्रहण करते रहते हैं. इसलिये कहा है कि गोपिकाओंने नेत्ररूप भ्रमरोंसे, मुकुन्दके मुखारविन्दरूप मधुका पान किया. इस प्रकार कहनेसे यह बताया है कि गोपीजन भी श्रुतियोंके जातिवाली हैं अर्थात् गोपीजन श्रुतियां हैं.

बाहिर स्थित द्रवपदार्थका शरीरके अन्दर प्रवेश कराना पान कहा जाता है. नेत्र स्वतः रसके अभिज्ञ हैं इसको जतानेकेलिये नेत्रको 'भृङ्ग' कहा है. नेत्र भृङ्ग हैं इस कारणसे ही उनकी रस पानमें स्वतः (गोपियोंकी प्रेरणा बिना) प्रवृत्ति होती है. दूसरे किसी वस्तुमें प्रवृत्त नहीं होते हैं. गोपीजन, देवता होनेसे, दूसरे (नेत्रों)से

भी पानकर सकते हैं. अतः इतने समय तक, हमने इस रसका स्वाद नहीं लिया, इस चिन्तासे जो ताप उत्पन्न हुआ है, वह लावण्यामृत रससे जब पूर्ण रीतिसे अन्तःकरण पूर्ण होगा, तब निवृत्त होगा. इसके सिवाय, अन्य जो त्रिविध ताप था, वह तो भगवान्‌के दर्शन मात्रसे मिट गया था, शेष रहा विरहज ताप, वह अब रसपानकर मिटाया है.

गोपिकाओंने विरह ताप क्यों उत्पन्न किया? क्यों नहीं भगवान्‌के सान्निध्यमें सदैव रहती थीं? इस शङ्काको मिटानेकेलिये गोपिकाओंको 'व्रजयोषितः' कहा है. 'व्रज'की स्त्रियां विवेक रहित और पराधीन होनेसे सारा दिन गोपालोंके साथ गोष्ठमें रहती थीं और स्त्री स्वभाव भी अन्यत्र जानेमें बाधक है. इन कारणोंसे सन्निधिमें नहीं रह सकती थीं जिससे विरहताप हुआ.

तदनन्तर इकट्ठी हुई गोपियोंका उनके मध्यमें स्थित भगवान्‌के प्रति जो कर्तव्य है वह कहना अशक्य है अतः संक्षेपमें कहा है कि गोपियोंने भगवान्‌का अच्छा सत्कार किया. भगवान्‌ने उनके किये हुए सत्कारको स्वीकार किया. जो कुछ चारों तरफ समालिङ्गन आदि तथा भगवद्वैभवसे भी जो कुछ भी हो सका वह सब 'सत्कार' शब्दसे कह दिया है. प्रत्येक गोपीने पृथक्-पृथक् जो सत्कार किया उसका अनुभवकर अच्छे प्रकारसे गोपीजनोंको कृतार्थकर, भगवान्‌ने गोष्ठमें प्रवेश किया.

गोपीजनोंने किस प्रकारका सत्कार किया? यदि सत्कार लौकिक भोजनादिसे किया हो तो भगवान्‌का 'गोष्ठ' में पधारना व्यर्थ ही है और लौकिक का भी बाध होता है. अतः जिस प्रकारसे विशिष्ट सत्कार किया, उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिसका स्पष्ट विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता है. किन्तु सूक्ष्ममें कहते हैं कि लज्जा, हास्य और विनय सहित कटाक्षोंके डालनेसे सत्कार किया मुखारविन्दमें ही रस है, उस मुखारविन्दका रस पान जैसा अन्धकार में प्राप्त किया जाता है वैसा वर्णन यहां करना अशक्य होनेसे नहीं किया है.

कटाक्ष मोक्षके भी पृथक्-पृथक् प्रकार होते हैं. जैसा रस अद्‌भुत कराना हो वैसा कटाक्ष मोक्ष होता है. भगवान् किस प्रकारका अभिनय करेंगे इसका विचार करती हुई प्रथम वार ही आई हुई गोपीके मुख्य रसके अङ्गभूत तीन रसोंका वर्णन करते हैं. (१)व्रीड़ा(लज्जा)से रस प्रादुर्भाव होकर जब पुष्ट होता है तब (२)हास्य होता है और अन्तमें (३)विनय होता है. इन तीन प्रकारोंसे वर्तमान, प्रत्येक रस

अनेक प्रकारका है, इस कारणसे यह भगवान्का दिव्य प्रभाव कहा गया है. इसके वर्णन करनेमें लौकिक प्रकारसे किसी प्रकारके औचित्यका भङ्ग न हो अतःसूक्ष्ममें (सत्कृति) शब्द दिया है. भगवान् जगतके पूज्य हैं. प्रत्येक गोपीने अपने अधिकार अनुसार भगवान्का सत्कार किया है. गोष्ठमें आनेके अनन्तर भी सत्कार हो सकता था तो मार्गमें ही सत्कार क्यों किया? उसके उत्तरमें कहते हैं कि यह 'गोष्ठ' है गौओंके बन्धनका स्थान[१] है. वहां इस प्रकारसे गोपियां सत्कार नहीं कर सकती थीं तो भी भगवान्के प्रभावसे जैसा उचित बन सका वैसा घरमें भी किया ।।४३।।

१.गोष्ठमें आनेके अनन्तर सत्कार न करनेका कारण यह भी था कि भगवान् 'रसं दान' संसाररूप घरमें नहीं करते हैं. 'प्रकाश'

गोष्ठमें भी सत्कार हुआ जिनका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तयोर्यशोदा–रोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ।।४४।।

पुत्रों पर प्रेमवाली यशोदा और रोहिणी दोनों पुत्रोंको इच्छानुसार तथा कालानुकूल बडे–बडे आशीवर्चन कहने लगीं।।४४।।

गोष्ठमें पधारनेपर राम तथा कृष्णका जो यह सत्कार हुआ वह सामान्य था, अतः दोनोंका नाम दिया है. जननी अथवा माताओं न कहकर, जो उनके नाम यशोदा और रोहिणी दिये गये उसका तात्पर्य है कि इससे इनकी लोकमें प्रसिद्धि बताई. यहां राम–कृष्ण नाम न देकर यह 'पुत्रयोः' कहनेका आशय यह है कि राम और कृष्णमें इनका लौकिक पुत्र भाव था. भगवान् किसीकी भी कोई वस्तु तब ग्रहण करते हैं जब देखते हैं कि इसको मेरेलिये प्रेम है, यदि प्रेम नहीं हो तो ग्रहण नहीं करते हैं अतः कहा है कि ये यशोदा रोहिणी 'पुत्र वत्सले' पुत्रोंमें प्रेमवालियां थीं. इनमें अपनेलिये प्रेम देखकर, जो कुछ इन्होंने अपनी इच्छानुसार तथा कालानुसार किया उसको भगवान्ने अङ्गीकार किया. जैसा कि सन्ध्या कालमें परोक्षमें ही आशीर्वचन कहने चाहिये इसलिये आशीर्वाद देनेमें कालकी अपेक्षाकी आवश्यकताका वर्णन है. श्रीकृष्ण तथा बलराम ज्यों–ज्यों उनको प्रणाम करने लगे त्यों–त्यों वे अपनी महत्ता दिखानेकेलिये आशीर्वाद देने लगीं ।।४४।।

तदनन्तर गोष्ठमें जो उपचार हुए उनका वर्णन करते हैं:

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ।।४५।।

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ।।४६।।

वहां व्रजमें, स्नान और मर्दनसे मार्गमें हुई थकावट जिनको मिट गई है उन दोनों भ्राताओंने सुन्दर नीवी पहनी और दिव्य पुष्पोंकी मालाएं गलेमें डाल, ललाटपर चन्दन चरच जननीके लाए हुए स्वादिष्ट अन्नका भोजनकर, मातासे लालित (दुलारे) हुए, सुन्दर शय्यापर लेट आनन्दसे पौढे ।।४५-४६।।

श्लोकमें 'मज्जनोन्मर्दनाभिः' पङ्क्तिमें 'मज्जन' और 'उन्मर्दन' दो शब्द हैं. लौकिक व्याकरणके अनुसार 'उन्मर्दन' शब्द प्रथम आना चाहिये, किन्तु यहां मज्जन प्रथम आया है उसका कारण यह है कि यहां वैदिक व्याकरणके नियमको लागू किया है. अथवा प्रथम केवल दो पैरोंको ही स्नान कराके अनन्तर उबटनकर सर्व श्रीअङ्गको स्नान कराया (अथवा मार्गमें आते रजसे श्री अङ्गको स्नान कराया.) अथवा मार्गमें आते रजसे श्री अङ्ग मलीन हुए थे अतः पहले उस मैलको निकालनेकेलिये स्नान कराया पुनः तैल फुलेल आदिसे उबटनकर दूसरी बार स्नान कराया.

इस प्रकारके संस्कार श्रम निवारणकेलिये किये गये थे, किन्तु यह श्रमकी प्रतीति मात्र थी वास्तविक श्रम नहीं था.

तदनन्तर उन्होंने जैसे मल्ल काछनी पहनते हैं, वैसी सुन्दर काछनी पीताम्बरादिसे बनी हुईको धारणकी, दिव्य मालाओं तथा गन्धादि चरच कर सुशोभित हो[१] रोहिणी माताके लाया हुआ[२] दुग्ध अन्नादिका कोमल भोज्य, बलभद्रजीके साथ प्राशन किया. भगवान् बहुत करके बलभद्रजीके साथ ही भोजन करते थे. अनन्तर पितादि सर्व बान्धवोंने उनको दुलार किया अर्थात् लाड़ लड़ाये. इस प्रकारकी क्रियासे भगवानने सबोंपर अनुग्रह प्रकट किया. अब रात्रिचर्याका वर्णन करते हैं कि 'सुन्दर शय्या'पर पौढे. इस प्रकार पृथक् शयन कहकर दिखाया कि मातादिके साथ शास्त्रोंमें शयनका निषेध है. यहां दिनका समग्र कृत्य कहा है, किन्तु रात्रिका कृत्य नहीं कहा है उसका कारण बताते हैं कि व्रजमें धर्मकी विशेष प्रधानता नहीं है, किन्तु धर्मीकी प्रधानता है, इसलिये रात्रिका कृत्य नहीं कहा.

यद्यपि रात्रिका कृत्य स्पष्ट नहीं कहा तो भी व्रजमें 'सुखसे पौढे' केवल धर्मीकी इतनी लीला कहनेसे रात्रिचर्या ज्ञात हो जाती है कि भगवान्ने सम्पूर्ण

व्रजमें स्वप्रियाओंके साथ [३]शयन किया ।।४६।।

१.४५वें श्लोकमें जो संस्कार हुए वे अधिकारी देवोंने गुप्तरूपसे किये हैं अतः इस श्लोकमें माताने किये ऐसा नहीं लिखा है.

२.श्लोकमें 'जननी' शब्द एकवचनमें दिया है इसलिये भोजन लानेवाली माता एक ही थी, वह कौन थी? इस शङ्काका निवारण भी 'जननी' शब्दसे किया गया है. श्रीकृष्णको तो किसीने जना नहीं है, किन्तु रामको रोहिणीने जना है अतः भोजन 'रोहिणी' लाई थी यशोदा नहीं लाई थी.

३.अन्यथा व्रजमें शयन तो बिना कहे भी समझा जा सकता है परन्तु बिना कहे गूढाशयको जानना कठिन था अतः 'व्रजमें शयन किया' यह अलगसे कहना पड़ा.

इस प्रकार भगवान्के आह्निक कृत्यका वर्णनकर अब भगवान्के अभिलषित विषयका कृत्य वर्णन करनेकेलिए कालीय ह्रद पर जानेकी भूमिका इस श्लोकमें कहते हैं:

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ।।४७।।

हे राजन्! इस प्रकार सखाओंसे आवेष्टित वे श्रीकृष्ण, रामके बिना अकेले एक दिन वृन्दावनमें घूमते हुए कालिन्दी पर पधारे।।४७।।

व्रजस्थोंके निरोधार्थ ही, भगवान् वृन्दावनमें घूमते थे. कारण कि आप (भगवान्) सर्व समर्थ (निरोध आदि करनेकेलिये समर्थ) हैं और आप (कृष्ण)केलिये ही गर्गाचार्यजीने कहा है कि इनके द्वारा आप सङ्कटोंको पार करोगे अतः इस वाक्यको सत्य करनेकेलिये आपको प्रवृत्ति करनी उचित है. कभी अथवा किसी स्थानपर जो कार्य आपसे ही हो सकने योग्य समझा उस कार्यकेलिये रामके बिना ही आप अकेले कालिन्दीपर पधारे. वन, पर्वत तथा कालिन्दी दोनोंके पास था किन्तु उष्णकालमें प्रायशः कालिन्दीके पासवाले वनमें ही सखाओंके साथ गौओंको चराते थे. इससे यह बताया कि सखाओंका स्वभाव भी भगवान्के समान था इसलिये भगवान् अपने समान स्वभाववाले सखाओंको छोड़ भी नहीं सके, उनको भी साथ ले कालिन्दीपर पधारे. यदि सखा वैसे न होते तो भगवान् उनको छोड़ अकेले आप ही पधारते ।।४७।।

इस प्रकार मिलकर गए हुए भगवान् गोप और गौओंमेंसे, भगवान् एक स्थान पर खडे हो गए और गोप तथा गौ अन्य क्रमसे जाने लगे. इस प्रकारका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ।।४८।।

अनन्तर ग्रीष्मके आतपसे पीडित तथा तृषासे व्याकुल गौओं और गोपोंने विषसे दूषित यमुनाजीका दुष्ट जल पिया।।४८।।

श्लोकमें 'अथ' शब्द देकर बताते हैं कि अब दूसरे प्रसङ्गका प्रारम्भ होता है. गोपगण भगवान्को वृक्षोंकी छायावाले किसी स्थानपर ठहराकर, आज्ञा लेकर गये कि हम गौओंको पानी पिलाकर तथा स्वयं पानकर आते हैं. भगवान्ने उनको समझाया भी दूर जाकर पानी पीना किन्तु विशेष स्पष्ट यहां ही पीनेका निषेध नहीं किया. वे ग्रीष्मकी गर्मीसे व्याकुल थे अतः वहां ही यमुनाका दुष्ट जल पीने लगे. उसने (यमुनाजीने) यमकी भगिनी होनेसे दुष्टको भी स्थान दिया था. यमुनाके जलमें जो दोष हुआ था वह यमुनाजीका नहीं था किन्तु दूसरेका किया हुआ था. इसलिये कहा है कि यमुनाका जल विषसे अत्यन्त दूषित हुआ है. अत्यन्त दूषित इसलिये कहा है कि उष्णता, स्पर्श आदिसे भी जल बिगडता है किन्तु यह विषसे बिगड़ा है इसकेलिये विशेष बिगड़ाना कहा है ।।४८।।

विषसे दुष्ट जल पीनेसे जो फल मिला उसका वर्णन करते हैं:

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ।।४९।।

हे कुरुद्वह! दैवसे चेतनहीन उन्होंने विषसे युक्त जलका उपस्पर्शन (स्नान–पानादि वा केवल स्पर्श) किया जिससे वे प्राण रहित होकर जलके समीप ही गिर पडे।।४९।।

ज्यों ही उन्होंने जलमें स्नान वा जलका पान अथवा केवल जलका स्पर्श ही किया त्यों ही प्राणरहित होकर जलके समीप आधे जलमें गिर पडे. उनकी अभी आयु तो थी फिर निष्प्राण कैसे हुए? इसके उत्तरमें कहा है कि उनकी आयु इतनी ही थी, विशेष नहीं थी, इसलिये प्रारब्धने इनकी विषयुक्त जलको पीनेकी बुद्धि कर दी. यद्यपि धेनुकके वधसे दोष[1] दूर कर दिये थे तो भी शेष रहे दोषोंकी सन्ततिको भी नाश करना आवश्यक है. दोषोंका नाश दुष्ट कर्मद्वारा ही होता है. अलौकिक पुण्यकर्मसे दिव्य भावकी[2] उत्पत्ति होती है. राजा परीक्षितको 'कुरूद्वह' विशेषण देकर यह बताया है कि आप कुरुवंशमें हो इसलिये आपको इस कथापर विश्वास करना चाहिये।।४९।।

१.धेनुकके वधसे देहका अध्यास मिटाया जिससे पुनः देहकी प्राप्ति नहीं होगी. किन्तु जब तक लिङ्गदेह है तब तक दोषसन्तति (पुनः-पुनः जन्म) मिटेगा नहीं. अतः विषपानद्वारा लिङ्गदेहका नाश कराकर सदैवकेलिये देहप्राप्ति मिटा दी. लेख

२.५०वें श्लोकमें भगवान्के सत्कृत्यसे दिव्य भावरूप फलकी प्राप्तिका वर्णन है. लेख

इस श्लोकमें भगवान्के किये हुए कृत्यका वर्णन करते हैं:

वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ।।५०।।

उनको निश्चयसे इस (मृत-प्राणहीन) दशाको प्राप्त देखकर, योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णने, अमृत वर्षा करनेवाली अपनी दृष्टिसे, जिनके आप नाथ हैं, उन सबको सम्यक् प्रकारसे जीवित किया।।५०।।

यद्यपि भगवान् स्वभावसे भी जानते हैं कि इनको कैसे जीवित किया जा सकता है तो भी लीला करनेके समय कोई भी कार्य आप साधनसे करते हैं. इसको स्पष्ट समझानेकेलिये श्लोकमें भगवानका 'योगेश्वर' विशेषण दिया है. योगसे सर्व पदार्थमात्रका ज्ञान होता है, आप तो उस(सर्व पदार्थका ज्ञान करानेवाले) योगको नियममें रखनेवाले हैं अतः आपमें सर्व प्रकारका ज्ञान पूर्ण है इसमें कोई संशय नहीं है. न केवल योगके नियामक हैं, किन्तु योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं. अर्थात् योगके उपदेश करनेवालोंके भी आप नियामक हैं. कारण कि आप कृष्ण सदानन्दरूप हैं. अतः निरोधकेलिये लाए हुए उनको आपने स्वयं आकर देखा कि ये मूर्छित नहीं हैं किन्तु गत प्राण हैं. केवल देखनेसे उनके देह नवीन बन गये, पुनः अमृतवर्षा करनेवाली दृष्टिसे उन(देहों)को सम्यक् प्रकारसे जीवित किया. सम्यक् प्रकारसे कहनेका तात्पर्य यह है कि उनके जो प्राण मरे थे वे आधिदैविक थे. उन आधिदैविक प्राणोंको अमृतवर्षा करनेवाली दृष्टिसे लाकर उन देहोंपर बरसाये. अर्थात् वे आधिदैविक प्राण उनमें डाले जिससे पुनः विषसम्बन्ध होवे तो भी कोई हानि न हो. ऐसा करनेका कारण यह है कि आप उन(गोपादिकोंके) नाथ हैं।।५०।।

उन (गौ तथा गोपों)का पहलेसे भिन्न प्रकारका और पहले जैसा रूप इस श्लोकमें वर्णन करते हैं:

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ।।५१।।

जिनको पुनः सम्यक् प्रकारसे स्मृति आ गई वैसे वे जलके समीपसे उठकर, परस्पर देखते हुए विस्मय करने लगे।।५१।।

ये वे ही जीव थे अतः इनको पूर्वस्मृति पुनः होने लगी जिससे वे कुछ विचार करने लगे कि हम कौन थे, कहां थे इत्यादि. किन्तु पूर्णतया वह इसको समझ न सके. यह इतनी स्मृति भी आधिदैविक भावको प्राप्त होनेके कारण हुई थी. अतः उठकर जलका समीपवाला स्थान छोडकर दूसरे प्रदेशपर गये. वहां अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए. भगवान्ने उनमें यह विशेषता उत्पन्नकी थी जो उनको नूतन(अलौकिक) देह दी थी, जिससे उनको विस्मय हुआ किन्तु भगवद्भाव निवृत्त होनेके अनन्तर सब परस्पर वैसे देखने लगे जैसे कि एक-दूसरेको जाग्रत करनेपर देखते हैं यह क्या हुआ है?।।५२।।

परस्पर इस प्रकार जाग्रत करनेसे उनको पूर्व वृत्तान्तका ज्ञान हो गया जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

अन्वमंसत तद् राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम्।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ।।५२।।

हे राजन्! विषके पानसे मरे हुओंने अपना पुनः उठकर खडा होना (जीवित होना) भगवान्के अनुग्रह रूप दृष्टिसे हुआ है यों माना।।५२।।

उन्होंने स्वयं यह अनुमान किया कि बहुत करके मरे हुए हम निम्न प्रकारसे जीवित हुए हैं. उन्होंने अनुमान इसलिये किया कि जिस समय भगवान्ने अमृतवृष्टिसे ईक्षण किया उस समय ये तो थे नहीं जो इन्होंने प्रत्यक्ष देखा हो, अतः अनुमानसे ही समझ लिया कि भगवान्की कृपासे अमृतमयी दृष्टिकी वृष्टिसे हम जीवित हुए हैं. यहां 'राजन्' सम्बोधन स्नेहसे किया गया है. इस प्रकार इन्होंने ज्ञानपूर्ण आधिदैविक(अलौकिक) देह प्राप्त की. इससे इनका प्रथम निरोध सिद्ध हुआ ।।५१।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके ऐश्वर्य निरूपक अध्याय १ (स्कन्धानुसार अध्याय १२/१५) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १३

कालिय नाग पर कृपा

तामस प्रकरणके द्वादशाध्यायमें भगवानने पधारकर अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि द्वारा विषयुक्त जल पीनेसे मूर्छित गोपोंको इस प्रकार पूर्ण जीवन दान दिया जिससे पुनः (फिर दूसरी बार) विषका प्रभाव उनकी देहों पर न पडे कारण कि वह देह ज्ञान पूर्ण अलौकिक बन गया था. गोपोंने भी जान लिया था कि यह सब भगवान्की कृपा दृष्टिसे हुआ है इसी भांति उस १२वें अध्यायमें गोपोंका प्रथम निरोध सिद्ध हुआ.

उसके अनन्तर अक्लिष्ट कर्मा भगवान्ने लीला द्वारा जो छः अर्थ सिद्ध किए उनका वर्णन इस १३वें अध्यायमें है जिससे मध्यम निरोध सिद्ध हुआ है.

आचार्यश्री प्रथम इस अध्यायमें की हुई लीलाओंका तात्पर्य कारिकाओं द्वारा बताते हैं :

इन्द्रियाणि समस्तानां मृत्यवः समुदाहृताः ।
त एव विषपूर्णानि कालीयस्य शिरांसि हि ।।का.१।।

शास्त्रोंमें इन्द्रियोंका स्वरूप वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये ही सबोंकी मृत्यु रूप हैं. वे ही कालीय सर्पके विषसे भरे हुए शिर हैं।।१।।

अतस्तदुपमर्दोऽत्र निरूप्यो हि त्रयोदशे ।
सन्तुष्टो भगवांस्तेषु स्वलीलां चेत् करोति हि ।।२।।
भक्तिमार्गानुसारेण निस्तारो नान्यथा भवेत् ।।

इस कारणसे इस अध्यायमें उनके मर्दन (उनके पूर्वके धर्मोंको नष्टकर नवीन धर्म प्रकट करा देने)का वर्णन आया है. सन्तुष्ट भगवान् उनके साथ भक्ति मार्गानुसार स्वयं जब लीला करें तब उनका संसारसे छुटकारा होता है, अन्य प्रकारसे नहीं होता है ।।२।।

तेषां प्रपञ्चः कामिन्यस्ताश्चेत् कृष्णस्य सर्वथा ।।का.३।।
ततोऽञ्जसैवेन्द्रियाणि भवन्त्याज्ञावशे हरेः ।।
तदैव विषयश्चापि हरेर्भवति सर्वथा ।।का.४।।
सर्वोपयोगरहितः पूर्वसम्बन्धहानतः ।।

उनका (इन्द्रियोंका) विस्तार स्त्रियों द्वारा विषय सम्बन्धसे होता है यदि वे स्त्रियां ही भगवान्की आज्ञाकारिणी वन जाएं तो सबका विषय भी भगवान् हो

जाएं, जिससे विषयोंका सम्बन्ध स्त्री आदिसे टूट जाए और किसीके कामकी वे (विषय) न रहें।।३ – ४।।

परीक्ष्वैवेन्द्रियाणां हि निग्रहं कुरुते हरिः ।।का.५।।
परीक्षार्थं ततो देवः कालं प्रेरितवांस्तथा ।।

भगवान परीक्षाके वास्ते ही अपनी इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं अतः देवने कालको वैसी प्रेरणा की है।।

स्वासक्तिश्चापि कर्तव्या निरोधे मध्यमे महान् ।।६।।
यत्नः कर्त्तव्य इत्येव मुग्धभावं चकार ह ।।

भगवान गोपोंकी अपनेमें आसक्ति कराना चाहते हैं, अतः मध्यम निरोधकी सिद्धि करानेमें उनको भगवानको महान यत्न करना है इसलिए ही आपने मुग्धभाव प्रकट किया।।६।।

कथामात्रत्वाभावाय सङ्क्षेपेणाह तां पुरा ।।७।।
अक्लिष्टकर्मा भगवान् ज्ञापयामास लीलया ।।
उद्यमश्चापराधश्च परीक्षाकार्यमेव च ।।८।।
स्तुतिः प्रसाद इत्यत्र षडर्थाः परिकीर्तिताः ।।

यह केवल कथा नहीं है, यह जतानेकेलिए प्रथम इसका संक्षेपमें वर्णन किया. यह भी भगवान्ने लीला करके बता दिया, क्योंकि आप अक्लिष्ट कर्मा (जिनको कर्म करनेमें किसी प्रकारका क्लेश न होता हो.) हैं.

[१]उद्यम, [२]अपराध, [३]परीक्षा, [४]कार्य, [५]स्तुति और [६]प्रसाद ये छः अर्थ इस अध्यायमें कहे गए हैं।।८।।

१.कालीयका दमन. २.कालीयका अपराध. ३.भक्तोंके स्नेहकी परीक्षा. ४.कालीयके दमनका कार्य. ५.नाग पत्नीओंकी, की हुई भगवान्की स्तुति. ६.भगवानकी कृपा.

कारिका, व्याख्या तथा टिप्पणी, लेख, प्रकाश और योजनाका संक्षिप्त भावार्थः

''शतायुः पुरुषः शतेन्द्रियः'' इस वाक्यमें पुरुषकी आयु शतवर्ष बतानेके साथ, उसकी मृत्यु भी सौ बताई गई है. यहां 'इन्द्रिय' शब्द मृत्यु वाचक है. गोपोंको जिस विष पूर्ण इन्द्रियोंसे १२वें अध्यायमें मृत्यु हुई थी वे ही इन्द्रियां कालीयके शिर हैं. कालीयने क्रोधसे उस विषको अपने उच्च शिरोंमें धारणकर रक्खा है, इस कारणसे, नेत्रोंसे विषका वमन करता है. द्वादश अध्यायके अन्तमें भगवानमें अपनी अमृतमयी दृष्टिसे गोपोंको जीवित कर, उनकी देह अलौकिक

बना दी, जिससे विषका रूप विष सहित मृत्यु रूप इन्द्रियां, गोपोंकी देहमें प्रवेश न कर सकीं अतः वे कालीयके शिरोंमें जाके रहीं इसलिए कालीयके शिरोंको गोपोंकी इन्द्रियां कहा गया है.

इन्द्रियोंकी वृत्ति सदा विषयके तरफ होनेसे वह भगवद्विमुख होती हैं. जब तक इन्द्रियां विमुख होती हैं, तब तक उनका भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं होता है, उनका(इन्द्रियोंका) भगवानसे सम्बन्ध होनेकेलिए उपमर्दन करना आवश्यक है. वह दो प्रकारसे होता है, एक ज्ञान मार्गसे अन्य भक्ति मार्गसे. ज्ञान मार्ग द्वारा किये हुए उपमर्दनसे इन्द्रियोंका स्वरूपतः मर्दन होता है, जिससे वे इन्द्रियां भगवद्‌भजनानन्द ले नहीं सकती हैं इससे इन्द्रियोंके उत्पतिकी निरर्थकता हो जाती है. भक्ति मार्ग द्वारा होनेवाले उपमर्दनसे इन्द्रियोंका स्वरूपसे नाश नहीं होता है, किन्तु उनके दोषोंका नाश होता है जिससे वे निर्दोष होकर भगवद्‌भजनानन्दका स्वाद ले सकती हैं और उनके उत्पन्न होनेकी इससे सार्थकता भी होती है यह भक्तिमार्गीय उप-मर्दन तब हुआ, जब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर, भक्तिमार्गीय प्रकारसे, गोपोंके इन्द्रियरूप कालीयके शिरोंपर नृत्य लीला की है, कारण कि भगवान्‌की इच्छा थी, कि गोपोंकी संसारसे मुक्ति हो. इस नृत्य लीला द्वारा भगवान्‌ने गोपोंकी संसारसे निवृत्ति कराई तथा कालीयके दोषोंका नाश किया, तात्पर्य यह है कि संसारसे छुटकारा भक्ति मार्ग द्वारा होता है अन्य प्रकारसे नहीं होता है.

संसार जालमें, विशेष फंसना तब होता है, जब कि इन्द्रियां प्रपञ्चमें (विषय रूप विस्तारको आश्रय देनेवाली स्त्रियोंमें) आसक्त होती हैं. ये स्त्रियां प्रपञ्चके विस्तारकी जडें हैं यदि वे (जड रूप स्त्रियां) ही भगवान्‌की बन जाएं तो इन्द्रियां स्वतः भगवान्‌की आज्ञा पालन करनेवाली हो जाएं, कारण कि, उनके विषयोंका विस्तार (प्रपञ्च) अपने आप बन्द हो जाए.

यहां विषय - विषका विस्तार करनेवाली नाग पत्नीयां थीं, वे भगवान्‌की हो जाएं तो सर्व कार्य सिद्ध हो जाए, इसलिए भगवान्‌ने, यह नृत्य लीलाकी, जिसका परिणाम कालीयके दोषोंके नाश होनेके साथ-साथ यह भी हुआ कि नागपत्नियां भगवान्‌के शरण आकर स्तुति करने लगीं.

भगवान्‌ने अपराधी कालीयका निग्रह किया, यह तो श्रेष्ठ किया किन्तु आपने अपनेको नागकी फणोंसे लपेटकर जो मूर्छित भाव दिखाया और अन्य

उत्पात कराए वे कार्य उनको करानेके योग्य नहीं थे? ऐसी शंकाका उत्तर (५, ५-१/२) कारिकासे देते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान्ने इस प्रकार अपनी इन्द्रियोंका जो निग्रह किया उसका कारण यह है, कि भगवान्ने जो गोपोंका स्नेह रूप निरोध १२वें अध्यायमें सिद्ध किया था, वह गोपोंका स्नेह परिपक्व है वा नहीं इसकी परीक्षा लेनेकेलिए लीलाएं की थीं. प्रेमीकी पीडा देखकर, स्नेहवालेको मृत्युसे भी विशेष दुःख होता है. यदि गोपोंका मुझसे सच्चा स्नेह होगा, तो उनकी भी वैसी ही दशा होगी, इसको देखनेकेलिए, भगवान्ने यह लीलाकी थी. इसी प्रकार आधिदैविक काल, जो स्वयं आप ही हैं. उसकी प्रेरणा द्वारा तीन प्रकारके (आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक) उपद्रव भी परीक्षार्थ ही कराए.

विशेष स्पष्ट करनेकेलिए कहते हैं, कि स्नेहकी परीक्षासे, उनको उत्तीर्ण कर, पश्चात् मध्यम श्रेणीका आसक्ति रूप निरोध सिद्ध करना था, इसलिए भगवान्ने इतना महान् परिश्रम किया है.

यह तो कथा है इससे निरोध कैसे सिद्ध होगा इस शंकाका निवारण करते हुए कहते हैं कि यह केवल कथा नहीं है, प्रथम श्लोकमें, शुकदेवजीने संक्षेपमें इसलिए कहा है, कि भक्ति मार्गका यह सिद्धान्त है, कि श्रोता प्रश्न करे, तब वक्ता उसके प्रश्नका विस्तार पूर्वक, समझाकर, उत्तर देवें. इस सिद्धान्तके अनुसार, श्रीशुकदेवजीने राजाके प्रश्न करनेके अनन्तर, विस्तारसे सब चरित्र वर्णनकर बताएं हैं, जिससे राजाको, समग्र चरित्र करनेका भाव पूर्णतया समझमें आ गया. लीलासे यह भी भगवान्ने दिखा दिया कि मुझे किसी भी कार्य करनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता है.

कारिका व्याख्या सम्पूर्ण

श्रीशुकः उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत्॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे, कि कृष्णा (श्रीयमुनाजी)को कृष्ण, (कालीय) सर्पसे दूषित हुआ देखकर, सर्वसमर्थ श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसकी शुद्धि करनेका विचारकर, उस सर्पको वहांसे निकाल दिया॥१॥

प्रथम श्लोकमें, सङ्क्षेपसे, ही कथा कही गई है. श्लोकमें, श्रीयमुनाजी केलिये 'कृष्णा' शब्द देकर उसका स्वरूप श्याम है, यह बताया है. कालीयको

'कृष्णाहि' कहकर यह सिद्ध किया है कि कालीय सर्प भी काला है, इसी प्रकार भगवान्का नाम भी 'कृष्ण' दिया वे भी काले हैं. तीनोंकी सारूप्यता बतानेका तात्पर्य यह है, कि मर्यादानुसार समानरूपवालोंके दोष समानरूप-वालेको ही मिटाने चाहिये. समानरूपवालोंके दोष, अन्यरूपवालेको नहीं मिटाने चाहिये और इसी प्रकार अन्यरूपवालेमें, यदि दूसरे रूपवालेके दोष आ जावें तो वे नहीं मिटाने चाहिये. अतः यहां श्रीकृष्णचन्द्र जो सर्व करण समर्थ भी हैं. उन्होंने कालीयको अपने समानरूपवाला देख, उसको निर्दोष बनाना योग्य समझा इस कारणसे, कालीयको लीला द्वारा निर्दोष बनाया इसी प्रकार भगवान्ने विचार किया, कि श्रीयमुनाजी भी अपने सदृश श्याम हैं और इनमें जो दोष आये हैं वे भी काले रूपवाले होनेसे, समान बने सर्पसे आये हैं इसीलिये इनके दोष भी निवृत्त करने चाहिये. यमुनाजीकी इसलिये भी शुद्धि करनी चाहिये कि मुझे आगे इनमें रमण करना है सर्पको अपराधोंके कारण मारना योग्य नहीं है, क्योंकि इसने मेरा कालारूप धारण किया है. भगवानने इन्द्रियोंके ईश होनेके कारण, कालीयके इन्द्रिय (मृत्युरूप) शिरपर नृत्य किया, जिससे उसके दोष दूर हो गये एवं अपराधका दण्ड भी मिल गया इसके अनन्तर उसको यमुनाजीसे दूसरे स्थानपर भेजकर यमुनाजीको भी शुद्ध कर दिया. इस लीलासे यह बताया है कि कलियुगमें श्रीकृष्ण ही सर्व प्रकारके दोषोंके मिटानेवाले हैं, अथवा सर्व जीव मात्रके दोषोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं ।।१।।

इतना सुनकर परीक्षित राजाको इस चरित्रको विशेष सुननेकी इच्छा हुई इसलिए नीचेके दो श्लोकोंसे पूछते हैं:

राजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद् भगवानहिम्।
स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद् विप्र कथ्यताम् ।।२।।

राजा परीक्षितने कहा कि हे विप्र ! भगवानने गहरे जलके भीतर रहे हुए सर्पको किस प्रकार पकड कर रक्खा और यह भी बताइए कि यह (सर्प) बहुत लम्बे समयसे यहां क्यों निवास कर रहा था।।२।।

राजा परीक्षितने यों समझा था, कि जैसे मत्स्योंको पकड़नेवाले अङ्कुड़ी (लोहेकी टेडी कंटिया) जिसको रस्सीसे लकड़ीमें बांधकर और आटा लगाके पानीमें डाल देते हैं जिससे मत्स्य आटेके लोभसे उसमें फंस जाते हैं और

इसी प्रकार, किसी साधनसे कालीयका निग्रह किया होगा, किन्तु यह कालीय बड़ी देहवाला और अथाह जलके भीतर रहनेवाला, उसका निग्रह भगवान्ने जिस साधनसे किया, उस साधनको जाननेकी इच्छासे, यह प्रश्न किया, कि कैसे (किस साधनसे) उसका निग्रह किया? यदि परीक्षितको यह पता होता, कि वैसे बड़ेको पकड़नेका लोकमें, यह साधन है, तो राजा प्रश्न ही नहीं करता, किन्तु वैसा बड़ा, कभी लोकमें, न पकड़ा गया देखा और न सुना है, जिससे उसके साधनका ज्ञान हो. यह सर्प तो यहां युगोंसे निवास करता है यदि वैसेके बन्धनका साधन होता, तो इससे पूर्व ही इसको पकड़के निकाल देते क्योंकि इसके विषके प्रभावसे, इतने प्राणी मरते थे. इससे निश्चय है, कि लोकमें ऐसा कोई साधन नहीं है, इसी कारणसे ही, राजाने इस प्रकार प्रश्न किया है. यदि ऐसा साधन लोकमें नहीं है, और इसी कारणसे ही, यह यहां इतना समय रह सका था तो, असम्भवित साधनका प्रश्न करना ही व्यर्थ है. इस शङ्काके निवारणार्थ कहते हैं कि इसको निग्रह करनेवाला सर्व समर्थ भगवान् है. अतः उनके पास साधनोंकी कमी नहीं है. उन्होंने अवश्य कोई साधन काममें लाये होंगे, इसलिये मैं उस साधनको, जाननेकी इच्छावाला हूं. अतः प्रश्न किया है. आप साधारण ज्ञाता नहीं हो किन्तु विप्र हो अर्थात् आपमें वह ज्ञान है, जिससे प्रश्न कर्ताकी शङ्काओंको विशेष प्रकारसे निवृत्तकर उसके मनका सन्तोष कर सकनेमें समर्थ हो. इसलिये कृपया मेरे प्रश्नका उत्तर अवश्य विस्तारपूर्वक कहिये ।।२।।

परीक्षितके मनमें संशय उत्पन्न हुआ, कि मैंने केवल, साधनका प्रश्न किया. यदि वह साधन, जल जन्तुओंके बन्धनके समान होगा तो, शुकदेवजी उसका उत्तर नहीं देंगे. इसलिए निम्न श्लोकमें अन्य प्रकारसे प्रश्न करते हैं कि मनुष्य मात्रको, साधारण रीतिसे भगवान्के चरित्र श्रवण करने ही चाहिए, कारण कि वे उत्तम और अमृत रूप आनन्द देनेवाले हैं इस प्रकार स्तुति करते हुए कहते हैं कि:

ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः।
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन्।।३।।

हे ब्रह्मन्! स्वछन्द विहार करनेवाले, उन भूमा भगवान्के उदार चरित रूप अमृतका सेवन करनेवाला कौन है जो उससे तृप्त हो जाए (पशु धनके सिवाय कोई नहीं है)।।३।।

राजाने प्रश्न करते हुए श्रीशुकदेवजीको (ब्रह्मन्) यह सम्बोधन (विशेषण) इसीलिये दिया है, कि एक तो आप भगवान्के सकल चरित्रोंको जाननेवाले हो और दूसरा गुण आपमें यह है कि आपको प्रश्नकर्ताके प्रश्न करनेसे मनमें क्षोभ नहीं होता है किन्तु प्रसन्नता होती है. श्रोताके प्रश्नोंका उत्तर प्रसन्नता पूर्वक विस्तारसे देते हो जिससे श्रोताकी शङ्काओंका पूर्ण समाधान हो जाता है एवं उसका चित्त प्रसन्न होता है.

भगवान्की लीलाओंका प्रश्न बिना प्रयोजनवाला नहीं है कारण कि, भगवान्की सर्व लीलाएं ऐश्वर्यादि षड्गुण युक्त हैं. तथा वह लीलाकर्ता (भूमा) होनेसे, स्वच्छन्दवर्ती है, अतः विशेष लीलाएं करते हैं उनकी लीला करनेमें, कोई भी रुकावट नहीं कर सकता है तथा उसमें (लीला करनेमें) किसीकी भी परवाह भी नहीं करते हैं. आप 'गोपाल' हैं इसका भाव बताते हैं कि गोपाल होनेसे, आप सदैव लौकिक मनुष्योंकी बुद्धिको, अपनेमें, लीलाओं द्वारा, आसक्त कराने केलिये प्रयत्न करते हैं. 'गोपाल' शब्दका अर्थ है, इन्द्रियोंकी रक्षा करना, वह तब हो सकती है, जब इन्द्रियां विषयकी ओर न जाकर आपमें (भगवान्में) ही लगी रहें. यदि इन्द्रियां विषयकी तरफ गईं तो इन्द्रियोंका नाश हुआ. अतः भगवान् उनकी अर्थात् इन्द्रियोंकी लीलाओं द्वारा अपनेमें आसक्ति कराके विषयोंसे हटाते हुए उनकी रक्षा करते हैं. आप 'उदार' हैं, इसलिये पुरुषार्थोंका दान करते समय पात्र व अपात्रका विचार भी नहीं करते हैं, इससे जाना जाता है, कि सबको पुरुषार्थोंकी अपेक्षा है. जिससे सर्वथा भगवान्के चरित्र कहने तथा सुनने चाहिये. वे चरित्र भगवान्के किये हुए हैं कल्पित नहीं हैं. उनके वे चरित्र अमृतरूप हैं अतः उनसे केवल सर्व दोषोंकी निवृत्ति होती है यों नहीं है किन्तु मृत्यु (जन्म मरणका चक्कर) भी मिट जाता है. कोई भी मनुष्य लोकमें ऐसा नहीं है, जो अमृतके पानसे तृप्त हो जाये ।।३।।

अब दो श्लोकोंसे श्रीशुकदेवजी भगवान्के विशेष सामर्थ्यके ज्ञानकी प्रसिद्धिकेलिए उस ह्रदका स्वरूप बताते हैं जिसमें कालीय निवास करता था:

श्रीशुकः उवाच

कालिन्द्यां कालियस्यासीद् ह्रदः कश्चिद् विषाग्निना ।
श्रप्यमाणपयो यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः ।।४।।

कालिन्दी (श्रीयमुनाजी)में एक कालीय सर्प ह्रद (कुण्ड) था जिसमें

उसके (कालीय सर्पके) विषकी अग्निसे जल उबलता रहता था, आकाश मार्गसे जाते हुए पक्षी उसमें गिर पडते थे।।४।।

इस काले सर्पको 'कालिय' तथा 'कालीय' भी कहते थे. कालीयके सम्बन्धवाला (अर्थात् जिसमें कालीय निवास करता था) एक ह्रद कालिन्दी (श्रीयमुनाजीमें) था. सम्बन्ध आगे कहेंगे. जिस ह्रदमें उसके विषकी अग्निसे जल उबलता रहता था और वह विष सर्वत्र जलमें फैला हुआ था उस विषका दोष आकाश मार्ग तक फैल गया था जिससे आकाश मार्गसे उड़कर जानेवाले पक्षी भी उस विषके दोषसे मूर्च्छित होकर ह्रदमें गिर पड़ते थे ।।४।।

विषका दोष चारों तरफ फैल गया था उसका वर्णन करते हैं :

विप्लुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।
म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ।।५।।

जहरीले जलकी तरंगोंसे उत्पन्न बिन्दुओंवाले वायुके लगते ही जिसके (ह्रदके) तीरपर जाते हुए चर तथा अचर सब प्राणी मर जाते हैं।।५।।

चारों तरफ फैले हुए विषके परिणामका वर्णन करते हुए कहते हैं कि, विषसे पूर्ण सम्बन्धवाले कालिन्दीके जलके तरङ्गोंकी बून्दोंसे मिश्रित वायुके स्पर्शमात्रसे, दोनों किनारोंपर स्थित स्थावर एवं जङ्गम प्राणी अथवा वहां आये हुए भी आते ही मर जाते हैं. प्राणी दो तरहके होते हैं १.जङ्गम, २.स्थावर. जङ्गम तो इधर उधर चलकर आते जाते हैं अतः वे मेंढक आदि आते ही मर जाते हैं, स्थावर कैसे आयेंगे इसको समझाते आचार्यश्री कहते हैं कि वृक्षोंकी शाखाएं ज्यों बढती थीं त्यों इस तरफ आ जाती थीं एवं उनके साथ लताएं भी बढ़कर वहीं आ जाती थीं तथा वहां आते ही नष्ट हो जाती थीं इस प्रकार स्थावर भी आकर नष्ट हो जाते ।।५।।

इस प्रकार फैले हुए जीव हिंसक दोषोंको मिटाना चाहिए इस विचारसे भगवान् उद्यम करने लगे.

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गादास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ।।६।।

उग्र वेगवाला विष ही जिसका पराक्रम है, वैसे उस सर्पको तथा उसके पराक्रमसे दूषित कालिन्दीको देखकर, खलोंका दमन करनेकेलिए अवतार धारण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत उंचे कदम पर चढकर, अपनी कमरका फेंटा

कसके और ताल ठोककर उस विषेले जलवाले ह्रदमें, जिसमें कालियका घर था कूद पडे।।६।।

कालके समान अतिशय वेगवाले कालीयके दोषोंका निराकरण भगवान्के बिना अन्य कोई करनेमें समर्थ नहीं है. इसलिये आप स्वयं वहां जाकर बहुत ऊंचे कदम्बपर चढ़कर, बाहुओंपर ताल ठोक, मल्लयुद्ध करनेके समयके भाव प्रकट करते हुए उस विष युक्त जलमें कूद पड़े. श्लोकमें सर्पकेलिये दो विशेषण दिये हैं १.चण्डवेग, २.विषवीर्य. प्रथम विशेषणसे सर्पका गुण बताया गया है, और दूसरे विशेषणसे यह सूचित किया है कि कालियको उसके इष्ट देवता उपासित होनेसे प्रत्यक्ष हो गया था जिससे उसका पराक्रम, उस विषमें ही समाया हुआ था, इसीसे सर्प भगवान्का भी अतिक्रमण करने लगा है. ''विषं इति सर्पाः'' श्रुति इस श्रुतिमें सर्पोंका स्वरूप ही विष है यह कहा है विषको किसीसे भी लड़ने वा कोई हानि करनेमें हिचक नहीं होती है अतः सर्प भगवान्से भी लड़नेकेलिये तैयार हो गया. विष सर्परूप होकर इनकी (सर्पोंकी) रक्षा करता है अतः निर्भय हो भगवान्का अतिक्रमण करने लगा. इससे यह बताया कि विषमें प्रचण्ड वेगका गुण है. विषके पराक्रमसे (कालीयसे) ही यमुनाजीका जल दूषित हो गया है कालिन्दी स्वतः स्वयं दोषवाली नहीं है किन्तु कालीयके (विषके) सम्बन्धसे उसमें दोष आया है. यह दोष विषके आधिदैविक देवताका है अतः उसका नाश भी आधिदैविक श्रीकृष्ण ही करनेमें समर्थ हैं. अन्य कोई समर्थ नहीं है. इसके अतिरिक्त श्रीकृष्णके प्राकट्यका प्रयोजन खलोंको नियममें लाना है, इस कारणसे भी, कालीयको बन्धनमें लानेकेलिये श्रीकृष्णचन्द्रकी आवश्यकता है, किन्तु उसे मारे बिना उसके दोष नाशकर उसको नियममें चलनेकी शिक्षा देना यही सदानन्द श्रीकृष्णमें विशेषता है. अतः उसको सुनियम्य ही किया. कदम्ब भी वैसा ही (आनन्दमय) है, वह ऊंचा था तथा ऊंचे स्थानपर था. और उसको गरुड़के रहनेकेलिये भगवान्ने उत्पन्न किया था. उसपर बैठकर गरुड़ सर्पकी राह देखता था कि बाहिर निकले तो कालीयको अपना कवल(ग्रास) बना दूं. अन्य पेड़ तो विषके प्रभावसे सूख गये किन्तु यह गरुड़की कृपाके कारण ज्योंका त्यों स्निग्ध खड़ा था. उसको विष बिन्दुओंसे युक्त वायु, ऊपर होनेसे भी शुष्क न कर सका.

भगवान् कुण्डके पास आकर, सम्पूर्ण परिस्थितिको देख, प्रथम उस ऊंचे

कदमपर चढ़ गये. भगवान्ने विचारा कि मुझे आधिदैविकसे लड़ाई करनी है, अतः पूर्ण रीतिसे तैयार होकर चलना चाहिये. बीचमें मर्यादा भङ्ग न हो, इसलिये कमरकी फेंटको कसकर बान्ध लिया तथा समानके साथ लड़ना है यह दिखानेकेलिये पहलवानोंके समान भुजाओंपर ताल ठोकते हुए जोरसे कूदे. इस स्थानकी क्रूरतासे भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान प्रकट किया है ।।६।।

भगवान्के कूदनेसे क्या हुआ ? उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसङ्क्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्युत्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ।।७।।

कालीदहका जल सांपके विषके कारण पहले ही से खौल रहा था. उसकी लहरें लाल पीली कषाय रंगकी और अत्यन्त भयंकर उठ रही थीं. पुरुष श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णके कूद पडनेसे उसका जल और भी उछलने लगा और जल इधर – उधर उछलकर सौ – सौ धनुष तक फैल गया. भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त बलशाली हैं सो ऐसा होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है।।७।।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रके कुण्डमें ऊंचे स्थानसे तथा जोरसे कूदनेसे और सर्पके विषेले श्वास लेनेसे घबराये हुए कुण्डका जल भी उछलने लगा. जिस प्रकार वर्षाका जल वेगसे नीचे ऊंचे स्थानोंमें दौड़ता हुआ जाता है वैसे ही ह्रदका जल वेगसे दौड़ने लगा ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान्के कूदनेसे कुण्ड घबराकर अन्य स्थानमें जा रहा है. विषसे जल कषाय हो गया था और विशेष जलके कारण भयानक तरङ्गोंवाला बनकर [१]दौड़ता जाता था. उस कुण्डका जल ४०० हाथ आगे दौड़कर गया, यों होना आश्चर्य कारक नहीं है, कारण कि भगवान् अनन्त बलवाले होनेसे समस्त जगत्को दौड़ाते हैं वहां ह्रदको दौड़ानेमें कौनसा आश्चर्य है, ह्रदके विषसे कषाय एवं भयानक तरङ्गें सबका नाश करनेवाली हैं क्योंकि कालीय सर्प कालरूप है. यह उपासित देवताका चरित्र है ।।७।।

१.मूल श्लोकमें 'धावत्' पद है आचार्य श्री कहते हैं यहां 'अ' नहीं लिखा है उसका कारणरूप वैदिक है नहीं तो अधावत् चाहिये.

कालीय भगवान्के पास आया जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत् तदमृष्यमाणः ।।८।।

हे अंग श्रेष्ठ हस्तीके समान पराक्रमवाले तथा ह्रदमें विहार करनेवाले

उन भगवान्‌के भुजदण्डोंसे हिलाए हुए जलके शब्दको सुनकर, उस ध्वनिसे अपने घरका अपमान समझ अथवा घरपर आक्रमण हुआ देख, उसको सहन न कर सकनेके कारण सर्प भगवान्‌के पास आ गया।।८।।

भुजारूप दण्डोंके प्रहारसे इधर-उधर (चारों ओर) चक्कर खाते हुए जलकी गम्भीर गर्जनाको सुनकर, उसको न सहता हुआ, ह्रदमें खेलते हुए भगवान्‌के पास कालीय आया. आनेके कारण और आनेसे पहिलेकी स्थिति बताते हुए कहते हैं कि, प्रथम तो भगवान्‌के कूदनेसे आश्चर्यमें पड़ गया अनन्तर, कोई जलमें विहार कर रहा है ऐसे शब्द सुने, और विशेष पुनः शब्द सुना कि कोई जलमें भुजाओंसे प्रहार कर रहा है. जलमें भुजाओंके प्रहारका शब्द इसलिये सुना कि भगवान्‌का यह विहार भी श्रेष्ठ गजके समान था. कारण कि भगवान् श्रेष्ठ हाथियोंके समान पराक्रमसे जलमें विहार करनेवाले हैं. भगवान् सर्वरूप तथा सर्वगुण सम्पन्न हैं अतः उनको सबकी उपमा दी जा सकती है केवल शब्द सुननेसे सांप भगवान्‌के पास नहीं आया किन्तु अपने घरपर आक्रमण हुआ सुन अथवा देखकर, उसको सहन न कर सकनेके कारण आया था. सांप सुननेका और देखनेका दोनों काम आंखोंसे लेता है, अतः जो सुना वह देखा भी. अकेला नहीं आया, किन्तु अपने परिकरोंको भी साथ लेकर आया ।।८।।

आकर जो अपराध किये उनका वर्णन करते हैं:

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ।।९।।

दर्शन करनेके योग्य, सुन्दर कुमार, मेघके समान श्याम, श्रीवत्सका चिह्न धारण किये हुए तथा पीताम्बर ओढे मन्द मुसकान सहित सुन्दर मुखवाले एवं कमलके मध्य भागके समान कोमल चरणवाले भगवान्‌को निर्भय क्रीडा करते हुए देख कालीयने मर्म स्थानोंमें डसते हुए क्रोध पूर्वक अपने शरीरसे भगवान्‌को लपेट लिया।।९।।

कालीयने इस प्रकार जो भगवान्‌का अपराध किया वह अयोग्य कार्य किया यह बतानेकेलिये भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करते हैं.

सात्विक, राजस तथा तामस तीनों गुणोंवाले भगवान्‌का आदर करते हैं, कारण कि वह (भगवान्) दर्शनीय हैं, इसलिये सात्विक आदर करते हैं. सुकुमार हैं, इसलिये राजस आदर करते हैं. मेघके समान श्याम हैं, इसलिये तामस आदर

करते हैं जिससे सर्पने ऐसेका अपराधकर लोकसे विरुद्ध कार्य किया है. इसने केवल लोकसे ही विरुद्ध नहीं किया है, किन्तु यह कार्य परमार्थ दृष्टिसे भी विरुद्ध किया गया है. कैसे? सो वह कहते हैं कि जैसे श्रीवत्स अक्षररूप हैं, इसलिये वह ज्ञेय स्वरूप होनेसे प्रमेय हैं, उसको धारण करनेवालेका अपराध करना प्रमेयसे विरुद्ध कार्य है. भगवान् पीताम्बर धारण करते हैं, भगवान्का पीताम्बर वेदरूप है, वेदको धारण करनेवालेका अपराध करना प्रमाणसे विरुद्ध कार्य है. जिसका मन्द मुसकानवाला मुखारविन्द (प्रेमस्वरूप) हैं उसका अपराध भक्ति मार्गसे विरुद्ध कार्य है. भगवान् खेल रहे थे. खेलते समय रसकी उत्पत्ति होती है उस रसिकका अपराध करना रस शास्त्रसे विरुद्ध कार्य है. जो ऐसे विष युक्त जलमें (जिस जलका इतना प्रकोप है कि आकाश मार्गसे जानेवाले पक्षी गिरकर मर जाते हैं आसपासवाले चर-अचर नष्ट हो जाते हैं) निर्भय होकर खेल रहे हैं उसका अपराध करना नीतिसे भी विरुद्ध कार्य है. जिसके कमल जैसे कोमल चरणोंको समग्र जगत् पूजता है इसका अपराध करना सकल जगत्के विरुद्ध कार्य है. सर्पने मनमें ऐसा विचार किया था कि इनको दंशितकर भुजाओंसे लपेट अपने स्थान पर ले जाऊंगा इसलिये इतना अपराध किया गया है ।।९।।

१.ज्ञान प्राप्त करने योग्य स्वरूप होनेसे दर्शनीय है अर्थात् जिसके दर्शनसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है ज्ञान सतोगुणसे प्राप्त होता है अतः सात्विक आदर करते हैं.

२.सुकुमार, सुन्दरकुमार स्वरूप होनेसे, उसको प्राप्त करनेका लोभ होता है, लोभ रजोगुणीको होता है अतः रजोगुणवाले आदर करते हैं.

३.मेघ श्याम होनेसे आपकी वह श्यामता, कालोंको (तामसगुणवालोंको) अपनी कालास(तमोगुण) मिटानेकेलिए उपयोगी है, अतः तामस गुणवाले आदर करते हैं.)

यों अपराध करनेसे जो हुआ उसका वर्णन करते हैं:

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ।।१०।।

उनको सर्पके शरीरसे वेष्टित और निश्चेष्ट देखकर, उनके प्यारे मित्र गोप अति दुःखी हुए, और भयसे चेतनहीन होकर गिर पडे, क्योंकि उनकी आत्मा, मित्र, धन, स्त्री और भोग सब श्रीकृष्णके ही अर्पण किये हुए थे।।१०।।

गोपोंने भगवान्को सर्पके शरीरसे लपेटा देख यों समझा कि अब भगवान् प्रलय करेंगे अतः शेषशय्यापर पोढ़नेकी तैयारी कर रहे हैं इसलिये आपने

सब चेष्टाएं बन्दकर शान्त स्वरूप धारण कर लिया है, इस लीलाके करनेसे गोप जो भगवान्के प्रिय सखा थे वे अत्यन्त दुःखी हुए, क्योंकि वे आत्म-निवेदित थे जिन्होंने आत्मनिवेदन किया है वे भगवान्से पृथक् रह नहीं सकते हैं. इस कारणसे वे दुःखी हुए इन्होंने(गोपोंने) भगवान् कृष्णमें देह, मित्र, धन, स्त्री और पुत्र आदि सर्व अर्पण कर दिये थे अतः दुःखी हुए थे. सर्पके दंशसे भगवान्को तो कुछ भी दुःख नहीं हुआ किन्तु गोपोंकी आत्मा जो वहां थी उसको दुःख हुआ, अतः गोप दुःखी हुए एवं मित्र आदि भी भगवान्में थे वे दुःखी हुए उनको दुःखी देख गोपोंको शोक भी हुआ. इससे इनके होश उड़ गये, भयभीत होकर, तीन गुणोंके कार्यसे मूढ बने हुए पहिले जीवित किये हुए थे तो भी अभी मूर्छित होकर गिर गये ।।१०।।

गौओंकी भी गोपालों जैसी दशा हुई उसका वर्णन करते हैं:

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ।
कृष्णे न्यस्तेक्षणप्राणा क्रन्दन्त्य इव तस्थिरे ।।११।।

गौ बैल, छोटे बछडे ये सब ही दुःखी हो रांभने लगे, श्रीकृष्णमें दृष्टि तथा प्राण लगाते हुए मानो रोते हैं इसी भांति डरके साथ खडे रहे।।११।।

स्त्री(गौ) पुरुष(बैल) बालक(छोटे बछड़े बछड़िया) रांभते हुए दुःखी हो गये. वे मूर्छित न हुए कारण कि उनमें सात्विक भाव नहीं था किन्तु कृष्णमें अपने नेत्र और प्राण लगा दिये थे वे सर्प आदिके भेदको नहीं जानते थे केवल कृष्णकी चेष्टाको देख रहे थे कृष्णको वैसे स्थानमें देख जहां स्वयं जा नहीं सकती थीं इससे दुःखी हो रही थीं, पुकार रही थीं, यहां स्त्रीलिङ्ग इसलिये दिया है कि ग्राम्य पशुओंका सङ्ग है. ये पशु इसी भांति रोते हुए खड़े रहे जैसे विवेकवाली स्त्रियां खड़ी होकर रोती हैं. सब देवता, लोक, भूतमात्र तथा कालादिक भी शेषशायी भगवान् अब प्रलय करेंगे यों समझकर सर्व प्रकारके उत्पात करने लगे ।।११।।

इन उत्पातोंको देखकर गोकुलवासी डर गए व्रजका ही प्रकरण है अतः व्रजमें हुए उत्पातोंका इस श्लोकमें वर्णन करते हैं:

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।
उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ।।१२।।

अनन्तर व्रजमें तुरन्त ही अतिभयानक तीन प्रकारके बडे-बडे उत्पात

निकट होनेवाले भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी, आकाश तथा शरीरमें होने लगे।।१२।।

यह काल साधारण काल नहीं था किन्तु सर्वकालोंसे विलक्षण था, यह बतानेकेलिये श्लोकमें 'अथ' शब्द दिया है प्रलय कालमें होनेवाले उत्पातों जैसे तीन प्रकारके[१] उत्पात स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें होने लगे. श्लोकमें आये हुए 'हि' शब्दका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि प्रलयके समान दृश्य देखकर भी यदि अधिकारी देव वैसे (प्रलय जैसे) उत्पात न करें तो दण्डके भागी हो जाये अतः उन्होंने ये उपद्रव किये. वे उत्पात स्वरूपसे भी अति दारुण थे एवं अभी जल्दी प्रलय होने वाली है वैसी सूचना देते थे कारण कि एक ही कालमें साथमें सर्वत्र उत्पात होने लगे थे ।।१२।।

१.लेख: आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीन प्रकारके उत्पात हुए.

गोप उपद्रव देखकर घबरा गए उसका वर्णन करते हैं:

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः।
विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ।।१३।।
तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः।
तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ।।१४।।
आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः।
निर्जग्मुर्गोकुलाद् दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ।।१५।।

हे प्रिय ! उनको (उत्पातोंको) देखकर नन्द आदि गोप भयसे विह्वल हो गए उस समय श्रीकृष्ण भी अकेले (रामके बिना) गौओंको चराने चले गए थे ये गोप, श्रीकृष्णके प्रभावसे अनजान थे इसीलिए इन बुरे निमित्त देखकर श्रीकृष्णका अनिष्ट हुआ मान बैठे, जिससे श्रीकृष्णमें ही प्राण और मनवाले वे सब गोप छोटे बडे दुःख शोक तथा भयसे व्याकुल हो गए. पशुके समान वृत्तिवाले वे सर्व गोप दीन होकर श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छासे गोकुलसे बाहर निकल गए।।१३ – १५।।

व्रजवासियोंने उत्पातोंके प्रथम चिह्न देखे पीछे जान लिया कि उपद्रव हो रहे हैं जिससे डर गये तथा घबराहटमें आ गये क्योंकि गोप थे. ये गोप कर्मके सिद्धान्तको माननेवाले थे, अर्थात् दुःख–सुख कर्मसे ही प्राप्त होता है उन्होंने जो मुख्य गोप नन्दजी थे वे भी कर्मवादी थे अतः ये उत्पात कर्मके ही फल हैं.

कर्मको माननेवालोंके अतिरिक्त अन्य गोप जिनका भगवान्ने निरोध किया था, वे विवेकवाले थे, जिससे उनको यह दृढ़ विश्वास था कि श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें हमारा प्रलय नहीं होगा. पश्चात् प्राकृत बुद्धि(लौकिक बुद्धि)से विचारने लगे कि श्रीकृष्ण अकेले गये हैं राम बलवान् हैं [१]धेनुकको भी रामने ही मारा था वे तो यहां हैं. इसी बीचमें उपद्रव हो गये हैं अब क्या होगा? शकुन भी अच्छे नहीं दिखते हैं, इससे समझमें आता है कि श्रीकृष्णका अनिष्ट हुआ है. यों विचारते हुए गोकुलसे बाहिर निकले. ऐसा बुरा विचार इनको इसलिये आया कि ये श्रीकृष्णके प्रभावको नहीं जानते थे. अतः इनको ऐसा विचार होना उचित ही है कारण कि ये लौकिक हैं. उनमें सदा ऐसे विचार होते हैं कि जब भी कुछ उपद्रव आदि सुनते हैं तो अपने प्रियका अनिष्ट ही उनके मनमें आ जाता है. यह स्नेहका स्वभाव है. शत्रुकेलिये तो ऐसे विचार नहीं आते हैं. गोपोंको अपना भी अनिष्ट होगा ऐसे भी विचार आने लगे क्योंकि उनके प्राण तथा मन आदि सब श्रीकृष्णमें अर्पित थे जिससे श्रीकृष्णके साथ अपना भी अनिष्ट अवश्य होगा ऐसा विचार उनको होने लगा. अतः वे सब दुःख, शोक तथा भयसे व्याकुल हो गये उसी अवस्थामें छोटे बड़े स्त्री तथा पुरुष सब गोकुलको शून्य करके वहांसे निकल गये. हे अङ्ग! यह सम्बोधन स्नेहकी सूचना देनेवाला है. उन गोपोंकी वृत्ति(दशा) पशुओं जैसी हो गयी थी अर्थात् देह वस्त्र आदिका भी ज्ञान नहीं रहा था गोपोंने इस प्रकार गोकुलको खाली कर दिया उसका कारण श्रीकृष्णके दर्शनकी उत्कट कामना थी, वे दर्शनकेलिये व्याकुल हो रहे थे ।।१३-१५।।

१.लोककी वैसी प्रतीति थी कि धेनुकको रामने मारा है वास्तविक तो श्रीकृष्णने ही राममें प्रविष्ट हो उसको मारा था.

वे गोप गोकुलसे निकलकर सीधे भगवान्के समीप पहुंच गए जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः।
भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ।।१६।।

वे प्यारे कृष्णको ढूंढते - ढूंढते भगवान्के लक्षणवाले चरणोंसे सूचित मार्गसे(पगडंडीसे) सीधे यमुनाजीके तटपर पहुंचे।।१६।।

साधारण पति कहीं चला गया हो और उस समय कोई उपद्रव उत्पन्न हो जाये तो वैसे पतिको भी ढूंढा जाता है सो यह पति तो सदानन्द स्वरूप पति हैं,

उनको तो अवश्य ढूंढना चाहिये इस विचारसे वे उसी मार्गसे गये जिस मार्गसे श्रीकृष्ण गये थे. यह रास्ता कैसा था? इसपर कहते हैं कि वह मार्ग पगडंडीका था और उस पगडंडीपर भगवान्के चरण चिह्न अङ्कित थे तथा वह सीधा यमुना किनारे तक था अतः ये भी इस रास्तेसे बिना भ्रमके यमुना तटपर पहुंच गये, जानेमें रास्तेका भ्रम नहीं हुआ, कारण कि वह भूमि आर्द्र थी जिससे उसपर भगवान्के ध्वज 'वज्र' अङ्कुश आदि चिह्न साफ-साफ देखनेमें आ रहे थे ।।१६।।

भगवान् अकेले नहीं गए थे किन्तु साथमें गौ और गोपोंको भी ले गए थे जिसका ज्ञान निम्न श्लोकसे कराते हैं:

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ।।१७।।

वे लोग वहां - वहां कमल, यव, अंकुश, वज्र और ध्वजाके चिह्नवाले वैश्योंके अधिपति भगवान्के चरणोंको अन्योंके चरणोंके मध्यमें स्थित देखकर शीघ्र वहां पहुंचे।।१७।।

जाते समय वे गोप इसी प्रकार चलते थे, मानो उनमें प्राण है ही नहीं, किन्तु जब राहमें जहां-तहां, अन्योंके पद पङ्क्तियोंके मध्यमें, भगवान्के चरण चिह्न देखे, तब उनमें प्राण आ गये, जिससे वे शीघ्र चलने लगे. आचार्यश्री भगवान्के चरण चिह्नोंके भावोंको स्पष्टकर बताते हैं ''यव''का चिह्न कीर्तिका प्रतिपादन करनेवाला है 'कमल'का चिह्न इसलिये है कि आपके श्रीचरण, संसार ताप हारक होनेसे, सेवा करनेके योग्य हैं.'अङ्कुश'का चिह्न इसलिये धारण किया है कि भक्तोंके मनरूप हस्तीको अपने वशमेंकर रखें. 'वज्र' धारण करनेका तात्पर्य यह है कि शरणागत भक्तोंके पापरूप पर्वतोंको नष्ट करनेमें विलम्ब न होये. 'ध्वज'का चिह्न धारणकर भक्तोंको निर्भय रहनेका दान किया है अर्थात् मेरे शरणागतोंको किसी प्रकार भय नहीं करना चाहिये यह आश्वासन दिया है इस प्रकार अनेक चिह्नोंसे युक्त आपके चरणारविन्द हैं. अतः जैसे पृथ्वी कृतार्थ हुई है, वैसे ही हम भी कृतार्थ होंगे, अर्थात् हमारी मनोकामना पूर्ण होंगी, कारण कि, ऐसे शुभ चिह्नोंका दर्शन शुभ शकुन है. ऐसा जान शीघ्रतासे जाने लगे. राहमें अन्योंके साथ भगवान्के चरण देख संतोष भी हुआ कि भगवान् अकेले नहीं हैं जिससे चिन्ता आदि कुछ कम हो गये ।।१७।।

बलरामजी जो सर्वज्ञ थे, उन्होंने गोपोंको क्यों नहीं रोका? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकमें करते हैं कि:

तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः।
प्रहस्य किञ्चिद् नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ।।१८।।

बलरामजी उनको वैसे भीरू देखकर हंसे, किन्तु कुछ भी बोले नहीं, कारण कि, अपने छोटे भाई माधव(भगवान्)के प्रभावको जानते थे।।१८।।

बलरामजी उन (गोपों)को इस प्रकार अतिदीन देख, हंसकर चुप रह गये उनको कुछ नहीं कहा कि वैसे करो, अथवा न करो, क्योंकि छोटे भाईके प्रभावको वे जानते थे और यह भी जानते थे कि कृष्णने इनकी परीक्षाकेलिये यह लीला की है. यह श्लोक इससे पहले चाहिये अथवा क्षेपक समझना चाहिये. इसी कारणसे आचार्यश्रीने इस श्लोकपर सूक्ष्ममें टीकाकी है दूसरे टीकाकारोंने इसको १६वां श्लोक माना है ।।१८।।

वहां गए, जाते हुए दूरसे ही(जैसे समुद्रमें शेषशायीके दर्शन होते हैं वैसे हैं) यहां(यमुना ह्रदमें) भगवान्के दर्शन किये, उसका वर्णन करते हैं:

अन्तर्ह्रदे भुजग–भोग–परीतम् आरात् कृष्णं निरीहम् उपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च सङ्क्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ।।१९।।

वे सब कालीय दहके भीतर दूरसे सर्पके शरीरसे वेष्टित निश्चेष्ट श्रीकृष्णको और जलाशयके पास मूर्छा खाकर गिरे हुए गोपोंको तथा आर्त स्वरसे रांभते हुए पशुओंको देखकर दुःखी हुए जिससे वे मूर्छित हो गए।।१९।।

ह्रद(दह)के मध्यमें दूरसे ही सांपके शरीरसे लपेटे हुए भगवान्को तथा जलाशयके समीप जिनकी बुद्धि शिथिल हो गई है, ऐसे गोपोंको और चारों ओर व्याकुल हुए अनिष्ट होनेके कारण आर्ततासे रांभते हुए पशुओंको देखा. ये गोप राहसे तो जैसे–तैसे भी आ गये, किन्तु यहांकी ऐसी तीन प्रकारकी अवस्था देखकर आर्त(पीड़ित–दुःखी) हो गये जिससे व्याकुल और सन्तापको प्राप्त हो मूर्छित हुए ।।१९।।

इस प्रकार आर्तिके होनेके अनन्तर गोपियोंकी तथा यशोदा सहित सब साधारण स्त्रियोंकी एवं नन्दादि वृद्ध गोपोंकी अवस्थाका वर्णन नीचेके तीन श्लोकोंसे करते हैं:

गोप्योऽनुरक्त–मनसो भगवत्यनन्ते तत्सौह्रद–स्मित–विलोक- गिरः स्मरन्त्यः ।

ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ।।२०।।

जिनका मन भगवान्में प्रेमपूर्वक आसक्त है वैसी गोपियां, अपने प्रियतमको सांपसे जकडा हुआ देख उनके सौहार्द मंद हास्य, कटाक्ष, और मीठी वाणीको स्मरणकर अति दुःखसे पीडित हो गईं और प्यारेके बिना उनको तीन लोक शून्य देखनेमें आए।।२०।।

गोपीजन भगवान्की इस प्रकारकी चेष्टा(शरीरकी स्थिति) देख त्रिलोकीको प्रीतमसे शून्य समझने लगीं. अपने प्रिय रक्षा करने योग्य हैं, इस कारणसे उन्होंने अपनी तीनों प्रकार(प्राणरक्षा, लोकरक्षा और परलोक रक्षा)की रक्षा करनी छोड़ जैसे भगवान्के समान लय प्राप्त कर ली. गोपीजनोंकी तामसी अवस्था है यदि उनकी गोपियोंकी वैसी दशा हो गई तो उनके प्राण क्यों न निकल गये? उस शङ्काका निवारण करते हुए कहते हैं कि उनका मन भगवान्में लगा हुआ था इनके पास मन नहीं था. अतः सर्व समर्थ षड्गुण पूर्ण भगवान्ने उनके प्राणोंकी रक्षा कर ली उनको जाने नहीं दिया. प्रीतमकी यह दशा और भक्तके प्राण रहे यह भक्तिसे विरुद्ध है. इस शङ्काके समाधानकेलिये भगवान्का विशेषण 'अनन्त' दिया है, अर्थात् वह भगवान्, किस प्रकार लीला करते हैं, क्यों करते हैं? उसको वे (अनन्त भगवान्) ही जानते हैं और यह विषय अनिष्ट भी नहीं है अतः भगवान्ने उनकी रक्षाकर उनको जीवित रहने दिया. केवल अब क्या करना चाहिये इतनी समझ नहीं रही और भी यह अन्य कारण उनके जीवनमें है. वे भगवान्की प्रीति, मन्दहास्य, कटाक्ष एवं वाणीका स्मरण कर रही थीं, जिससे वे जीवित रह गईं. प्रभुके प्रेमस्मरणसे देह, मन्दहास्यके स्मरणसे इन्द्रियां, कटाक्षोंके स्मरणसे प्राण, तथा वाणीकी स्मृतिसे अन्तःकरण नष्ट न हुआ. ये कारण तो प्राणोंके रक्षक हुए. अब प्राणोंके बाधक कारण कहते हैं. गोपियोंके परम प्रेमका स्थान भगवान् श्रीकृष्ण हैं. उनको सांपने लपेट लिया है यह देख गोपियां अत्यन्त दुःखी हो गईं, जिससे प्रीतम बिना तीन लोक उनकेलिये निरर्थक हो गये. इससे उनकी दशा आधी जली हुईके समान हो गई मानो उस समय वे न जीवितोंकी पङ्क्तिमें थीं और न मरे हुएकी गिनतीमें गिनने योग्य थीं ।।२०।।

यशोदाके साथ आई हुई स्त्रियोंकी अवस्थाका वर्णन करते हैं :

ताः कृष्णमातरम् अपत्यम् अनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ।।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन् कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः।।२१

यशोदाजी, पुत्रके पीछे जो जलमें प्रवेश करने लगीं, तो उनको रोककर, यशोदा जैसी ही व्यथावाली गोपियां आंसू डालती हुई, व्रजके प्यारेकी विविध कथाएं कहने लगीं, वे कृष्णके मुखारविन्दको ही देख रही थीं उस समय उनकी दशा मृतकोंके समान थी।।२१।।

यशोदाके साथ जो स्त्रियां(गोपियां) आईं थीं उन्होंने यशोदाजीको अपने पुत्र श्रीकृष्णकेलिये जलमें प्रवेश करती देख लौकिक रीतिके अनुसार उनको रोक रखा. उस समय उनकी आंखोंमेंसे जल बह रहा था. यशोदाजीने तो पुत्रके पीछे जलमें प्रवेश किया अन्य उनके साथ आई थीं उन्होंका जलमें प्रवेश न करनेका कारण यह था कि वे व्रजके प्यारेकी लीलाओंका गान कर रही थीं और उनके मुखारविन्दके दर्शनका रस ले रही थीं जिससे वे जीवित रह गईं(पानीमें प्रवेश नहीं किया) यद्यपि वे जीवित थीं तो भी प्रिय विरह(दुःख)के कारण मृतक समान हो रही थीं. ऊपरके श्लोक २०में गोपियोंकी रक्षा भगवान्ने की थी जिससे वे जीवित रह गईं और ये भगवान्के गुणगान तथा दर्शनके कारण जीवित रहीं ।।२१।।

बलभद्रने नन्दादि गोपोंकी रक्षाकी उसका वर्णन करते हैं:

कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम्।
प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित्।।२२।।

कृष्णमें प्राणवाले, नन्द आदि गोपोंको ह्रदमें प्रवेश करते हुए देख, भगवान् बलरामजीने ऐसे करनेसे उनको रोका क्योंकि आप श्रीकृष्णके प्रभावको जानते हैं।।२२।।

जीवका निवास स्थान प्राण है, अतः जहां प्राण है, वहां जीव जाना ही चाहता है यहां भी नन्दादिकोंके प्राण श्रीकृष्णमें थे इसलिये वे श्रीकृष्णके पास जाना चाहते थे, किन्तु राम, कृष्णके प्रभावको जानते थे उनको ज्ञान था कि श्रीकृष्ण कालीयके दमनकेलिये यह लीला कर रहे हैं, इसलिये आपने (बलरामजीने) इनको (नन्दादि गोपोंको) जानेसे रोका नन्दादि गोप भी जानेसे रुक गये कारण कि नन्दादि गोपोंको यह ज्ञान था कि 'राम' साधारण मनुष्य नहीं हैं किञ्च भगवान् वा भगवान्के आवेशसे युक्त हैं ।।२२।।

सर्व समर्थ भगवान्को इस प्रकार सब गोकुलवासियोंको व्याकुल करना वा उलझनमें डालना योग्य नहीं था इस शंकाका निवारण 'इत्थं स्वगोकुलं'

श्लोकसे करते हैं:

इत्थं स्वगोकुलमनन्यपतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।
आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ।।२३।।

इस प्रकार भगवान्ने अच्छे प्रकारसे देख लिया कि मेरा यह गोकुल मेरे बिना अन्य किसीकी भी शरण नहीं लेता है. मैं एक ही इसका आश्रय हूं अतः मेरे लिए ही जब स्त्री बालक सहित सर्व नन्दादि गोप दुःखी हैं तब मुझे भी विशेष समय तक इस स्थितिमें नहीं रहना चाहिए ऐसे विचार, थोडे समय तक इस स्थितिमें रह कर, शीघ्र ही सर्पके बन्धनसे स्वतः छूट आए।।२३।।

यह गोकुल (गोकुलमें रहनेवाले सब मनुष्य पशु आदि) मेरा है क्योंकि मैंने इसका निरोध किया है अतः इसकी परीक्षा करनी आवश्यक है, यदि परीक्षा नहीं की गई तो, कैसे पता लगेगा कि इनका जो निरोध किया वह सिद्ध है वा ये भूल गये हैं, परीक्षासे यदि यह ज्ञान हो जाये कि ये अब 'निरोध'में स्थित नहीं हैं, तो किया हुआ कार्य और जो करना है वह व्यर्थ है. इसलिये परीक्षा ली गई है. परीक्षाका परिणाम यह आया कि ये इतना कष्ट झेलते हुए भी दूसरेकी शरणमें नहीं गये हैं दूसरेकी शरण नहीं जानेसे दुःखके कारण जड़ बन गये हैं. भगवान्ने परीक्षासे यह निश्चय किया तथा स्त्री, बाल और आप सब दुःखी हैं यह देख विचारकर इनके दुःखको मिटानेकेलिये स्वतः थोड़े ही कालमें सर्पके बन्धनसे छूट गये. भगवान् आप सर्वज्ञ हैं तब परीक्षाकी क्या आवश्यकता थी? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्ने यह मनुष्यके समान परीक्षाकी है. इसलिये जैसे मनुष्य भावसे लीला करते हुए निरोध किया है वैसे ही उसी भावसे परीक्षा भी की है. जैसे शेषशय्यापर कुछ देर निद्रा लेते हैं और निद्राकी निवृत्ति होते ही सृष्टि करते हैं वैसे ही यहां भी थोड़ी देर नागके बन्धनमें स्थितिकर स्वतः उस बन्धनसे छूट गये ।।२३।।

कालीयने भगवान्को छोड दिया उसके पश्चात् जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ।
तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ।।२४।

(भगवान्को जब नागने अपनी पाशमें जकड लिया तब वे अपने अंगको फुलाने लगे) भगवान्के शरीरके बढनेसे उस सांपका शरीर पीडित होने लगा

(अर्थात् नसें टूटने लगीं) जिससे उसने भगवान्को अपने बन्धनसे छोड तो दिया किन्तु क्रोधित होकर विषेली फूंकारे नाक छिद्रोंसे फेंकने लगा तथा आंवा (भट्टी)में तपाए हुए (खपराके समान) लाल स्थिर नेत्रोंसे युक्त मुखसे आगकी लपटें निकालते हुए और श्रीकृष्णको देखते हुए सामने खडा हो गया.

भारत आदि ग्रन्थोंमें कहा है कि जब भगवान् सांपसे अपनेको लपेटे जाकर निश्चेष्ट हो गये थे, तब बलरामजीने भगवान्की स्तुति की है और उनको प्रबोध भी किया है (जगाया है) यह उन ग्रन्थोंमें कही हुई कथा किसी दूसरे कल्पकी है. कितने ही कहते हैं कि उस कल्पमें भगवान् अंशावतार थे और मनुष्य भाव ग्रहण किया था (दूसरोंका कहना है कि भगवान्ने लीलासे यों किया था) वास्तविक बात तो यह है कि भगवान् जहां, जैसे, जिससे जो कुछ करते हैं वह (भगवान्की प्रेरणानुसार) वहां वैसा ही करता है. पहले (जब सांपने आपको लपेटा था तब) आप सूक्ष्म थे पश्चात् (लपेटे जानेके कुछ समयके अनन्तर) स्थूल बन गये जिससे सांपके शरीरके बन्धन स्वतः मानों टूटने लगे और उस शरीरके अनन्तर स्थूल बन गये जिससे सांपके शरीरके बन्धन स्वतः मानों टूटने लगे और उस शरीरकी स्थूलतासे सर्पके शरीरमें पीड़ा होने लगी, पीड़ाके कारण शीघ्र ही उसने भगवान्को छोड़ तो दिया किन्तु अपने फणोंको ऊंचेकर क्रोधित हो के लड़नेकेलिये सामने खड़ा हो गया क्रोध इसलिये किया कि जब शरीरमें क्रोध उत्पन्न होता है तब शक्ति बढ़ जाती है. खड़े होनेके समय भी सर्प अपने पांच छिद्रों (२ नेत्रके २ नाकके और एक मुख)से भयावह दिखता था, जैसे नाकके छिद्रोंसे विष सहित वायु निकालता था, आंवा (भुननेके पात्र)के समान लाल स्तब्ध नेत्रोंसे, मानो अग्नि आ रही है, इसी प्रकार जिसके मुखसे भी आग उगली जा रही है वैसा वह काला कालीय हरिको देख रहा था. इस विषैली वायु एवं अग्निसे भगवान्को तो कुछ हो ही नहीं सकता था, किन्तु सर्प नष्ट हो जाता फिर भी वैसा नहीं हुआ, कारण कि, भगवान्की सन्निधिमें खड़ा था इसलिये जला नहीं, भगवान्के सामने ही खड़ा रहा ।।२४।।

उसके पश्चात् भगवान्ने जो किया वह इस श्लोकमें कहते हैं:

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणाः ।।२५।।

दो शिखावाली (दोहरी) जीभसे दोनों गलफरोंको चाट रहा है ऐसे

अति विकराल विषाग्निसे भरे हुए दृष्टिवाले इस सर्पके चारों और क्रीडा करते हुए भगवान् गरुडके समान फिरने लगे और वह भी अवसर देखता हुआ भगवान्के चारों और फिरने लगा।।२५।।

दो शिखावाली (दोहरी) जीभसे दोनों होठोंके भागोंको चाटते हुए, अतिविकराल विषरूप अग्नि सहित दृष्टिवाले सर्व प्रकार क्रोधसे बेसुध बने हुए उस प्रसिद्ध कालीयके चारों तरफ कौतुकी (विनोद करनेवाले) भगवान् जैसे गरुड़ निर्भय हो फिरता है वैसे निर्भय फिरने लगे. जैसे काष्ठसे अग्निको भय नहीं होता है. भक्ष्य पदार्थसे भक्षकको भय नहीं होता है, वैसे ही जो जलाये जाते हैं उनसे जलानेवालेको डर नहीं होता है इसी प्रकार दुष्टोंको तो भगवान् जलाकर नष्ट करते हैं उनसे आपको भय कैसे होगा? अतः आप निर्भय हो फिर रहे थे. वह ही डर रहा था, तो भी दुष्टताके कारण एवं अज्ञतासे दाव देखता हुआ भगवान्के चारों ओर अनेक प्रकारसे फिरने लगा ।।२५।।

इस प्रकार फिरते समय भगवान्ने उसको पकड लिया और उसपर नृत्य करने लगे उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं :

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ।।२६।।

वैसे फिरते – फिरते, जब उसका (सर्पका) बल नष्ट हो गया, तब उंचे कन्धेवाले उसको (सर्पको) नमाकर, वे आदि पुरुष भगवान् उसके (चंचल) शिरोंपर चढ गए और नृत्य करने लगे क्योंकि आप सर्व कलाओंके गुरू हैं. उस समय आपके चरण कमल उसके मस्तकके रत्नोंके समूहसे अतिशय लाल हो रहे थे।।२६।।

यद्यपि कालीय सर्प दुष्ट होनेके कारण भगवान्को अपने ऊपर नृत्य करने नहीं देता, किन्तु सर्पकी शक्ति चक्कर काटनेसे नष्ट हो जाती है अतः इसने भी बहुत परिभ्रमण किया था जिससे इसकी शक्ति नष्ट हो गई थी, शक्तिहीन हो जानेसे भगवान्के नृत्यमें रुकावट डाल न सका. शक्तिहीन हो गया था किन्तु कन्धे ऊंचे थे उनको भगवान्ने नमा लिया. दो कन्धोंके ऊपर दो पाद धरकर उनको नमाया और दोको हाथोंसे नीचे कर लिया अनन्तर उन विशाल शिरोंपर चढ़ गये. यद्यपि सर्प अमङ्गल है उसपर चढ़ना नहीं चाहिये किन्तु भगवान् सबके आदि होनेसे सबके पिता हैं तो सर्पके भी पिता हैं पिताकेलिये कोई सन्तति

अमङ्गल नहीं है और भगवान् सर्वदा शेषशायी हैं इसलिये आपको सर्पपर चढ़नेका अभ्यास भी है अतः वहां चढ़ गये. चढ़नेके अनन्तर सर्पके शिरोंके रत्नोंसे आपके चरण लाल हो गये, जिससे आप उसको मानों अपनी पूजा समझ सन्तुष्ट हो गये अतः आप उन (शिरों)पर नृत्य करने लगे. कालीयके शिर सीधे नहीं थे और विषम थे उन पर नृत्य कैसे किया? इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहा है कि भगवान्ने ही सब नृत्य आदि कलाएं संसारमात्रको सिखाई हैं अतः आप सम्पूर्ण कलाओंको सिखानेवाले आदि गुरु हैं. जगत्में जब देखा जाता है कि रस्सी पर खड़ाऊं पहनकर नाचते हैं तब इन स्थूल विशाल फणोंपर नाचनेमें कौनसा आश्चर्य है ।।२६।।

नाचके समय यदि गीत और बाजे नहीं हों तो नृत्यमें रस नहीं आता है इस शंकाके होनेपर यह श्लोक कहा गया है:

तं नर्तुमद्युतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धमुनिचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ।।२७।।

जब आप नृत्य करनेको उद्यत हुए, तब आपको देख, भगवदीय गन्धर्व, सिद्धमुनि, देव, चारण और अप्सराएं ये सब आनन्दपूर्वक मृदंग, पणव, आनक आदि बाजे, गीत और पुष्प तथा भेंट एवं स्तुतिसे सेवा करनेकेलिए तुरन्त उपस्थित हो गए।।२७।।

देवता लोग सब स्थानोंमें भगवान्को देखते रहते हैं यहां भी उन्होंने देखा कि लौकिक मनुष्योंमें भगवान्की सेवा करनेका सामर्थ्य नहीं है इसलिये स्वयं सेवा करनेकेलिये उपस्थित हुए जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

भगवान्को नृत्यकेलिये उद्यत देखकर उसी समय भगवदीय जो गन्धर्व आदि थे, वे अपने सेवाके विनियोग अवसर देख, मृदङ्ग, पणव और आनक आदि बाजे, गीत, पुष्प, वृष्टि तथा स्तोत्र आदि लेकर शीघ्र ही आकर वहां उपस्थित हुए. जब नृत्य आरम्भ करना होता है तब प्रथम ँनान्दी पश्चात् पुष्पोंकी वर्षा होती है उसके अनन्तर वाद्य तथा गीत आदिकी क्रियाकी जाती है. यहां भी प्रथम वाद्य तथा गीतका प्रारम्भकर नान्दीको प्रकट करनेकेलिए पुष्प वृष्टि होगी ही. यहां क्रम कहनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि देवोंके भी अधिदेव भगवान्की स्तुति करनी है अतः कहा गया है कि शीघ्र ही वे वहां आकर पहुंचे.

गन्धर्व (गानेवाले) व सिद्ध (पुष्प वर्षा करनेवाले) मुनि (स्तुति

करनेवाले) चारण (बजानेवाले) देव वधू-अप्सराएं (नृत्य करनेवाली) ये सब सेवा करनेकेलिये प्रेमसे आये हुए थे. नाटकमें कभी दो का नृत्य होता है और कभी बहुतोंका नाच दिखलाया जाता है, इसी प्रकार यहां भी उनका इस नृत्यमें उपयोग होनेसे उपकार ही है ।।२७।।

१.नाटकमें सूत्रधार आकर जो सर्वप्रथम मङ्गलाचरणसे देवताकी स्तुति करता है उसे नान्दी कहते हैं.

भगवान्के नृत्य करनेसे जो कुछ हुआ वह इस श्लोकमें कहते हैं :

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन् ममर्द खलदण्डधरोङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो रुधिरमुल्बणमास्यतोसृङ् नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ।।२८।।

हे अंग! सौ मुख्य मस्तकवालेका जो-जो शिर नहीं नमता है (था) दुष्ट दमन करनेवाले भगवान् अपने चरण प्रहारसे उसका दमन कर देते थे कालीय नागकी आयु क्षीण हो रही थी तब भी घूम रहा था उससे उसके मुख तथा नासिकासे रक्त बहने लगा जिससे उसको बहुत कष्ट होने लगा।।२८।।

जो-जो कालीयका शिर नहीं नमता था उसको ही भगवान् दमन करते थे. कालीयके सौ शिर थे किन्तु प्रत्येक शिर मुख्य था अर्थात् स्वतन्त्र था जिससे एकके दमन करनेसे दूसरेका दमन नहीं होता था, इसी कारणसे भगवान्को हर एक शिरका दमन पृथक्-पृथक् करना पड़ा. यहां अङ्ग यह सम्बोधन स्नेह प्रकट करनेकेलिये दिया गया है यदि कालीय स्वतः अपने सिरको पहले ही नहीं नमा लेता था तो भगवान् अन्य शिरपर स्थित होते हुए ही नाच करते, जब तालको लयकी गति समाप्ति होनेका समय आता तो उसके साथ आप अपने पादके प्रहारसे उस दूसरे उठाये हुए शिरको लात मारनेके साथ कुचल भी देते थे जिससे वह डरकर पुनः उस शिरको ऊपर न उठाकर नीचे ही रखता था कुचलनेसे सांपकी ऊपरकी चमड़ी उखड़ जाती जिससे दूसरी बार लात मारनेसे विशेष पीड़ा हो तो यह अपने शिरको पुनः ऊंचा न उठावे. भगवान् तो क्लिष्ट देनेवाले कर्म करते नहीं हैं फिर यहां वैसा कर्म क्यों किया? इस शङ्काका उत्तर देते हैं कि भगवान् अक्लिष्ट कर्मा होनेके साथ दुष्टोंको दण्ड देनेवाले भी हैं. अतः सर्पको दण्ड देनेकेलिये यों करते हैं. इस प्रकार दमन करनेसे उसकी प्राण शक्ति निर्बल होनेसे वह मूर्छितके समान हो गया और उसके नासिका तथा मुखसे रक्त बहने लगा जिसे रोकनेकी शक्ति उसमें नहीं रही थी. रक्त निकल जानेसे उसको अत्यन्त

कष्ट हुआ. अथवा बहुत मूर्छा आ गई. ऐसी दशामें भी वह इसलिये नहीं भागा कि सर्प जाति शूरवीर होते हैं, वीर युद्धमें मरना स्वीकार करते हैं किन्तु भागना नहीं चाहते हैं, इससे यह कालीय काला सर्प कैसे भागे. क्षीणबलवालेमें रुधिर बढ़ गया यह वाक्य पृथक् है अर्थात् केवल देहसे सम्बन्ध रखनेवाला है. शेष अन्य वाक्य जीवसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं ।।२८।।

पूर्व श्लोक २८में आधिभौतिक तथा आध्यात्मिकके दण्डका वर्णन किया अब २९में आधिदैविकके दण्डका वर्णन करते हैं :

तस्याक्षिभिर्गरलम् उद्वमतः शिरस्सु यद्यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यत् पदाऽनुनमयन् दमयाम्बभूव पुष्पैः सुपूजित इवेह पुमान् पुराणः ।।२९।।

क्रोधसे ऊंचा श्वास लेता और नेत्रोंमेंसे गरल(सर्पका विष) उगलता हुआ यह नाग, शिरोंमेंसे, जिस – जिस शिरको उठाता है, उसी शिरपर नृत्य करते हुए भगवानने अपने चरणसे नमाकर सर्पका दमन+१ किया उस समय गन्धर्वादिक देवोंने जो पुष्प वृष्टिकी उससे मानो भगवान्का यहां पूजन हुआ है. वैसा दृश्य देखनेमें आया।।२९।।

कालीय अब अपना विष नेत्रों द्वारा बाहिर निकालने लगा क्योंकि पहले तो रक्त विशेष होनेसे नासिका तथा मुखसे वह बहने लगा था जिससे सर्प उन द्वारोंसे विष वमन नहीं कर सका कारण कि रुधिरने विषके निकलनेका मार्ग बन्द कर दिया था. नेत्र ज्ञान प्रधान थे अतः विषको निकलनेसे नहीं रोका. आंखोंसे गरल वमन करनेवालेके शिरोंमेंसे जो शिर ऊंचा उठता था उसको भगवान् चरणसे मारकर दमन कर देते थे. इन सर्पके शिरोंमें जो शिर [१]आधिदैविक भावको प्राप्त हुए थे, वे ही फिर ऊंचे होते थे. ऊंचे होनेकी शक्ति उसके (सर्पके) उपाय स्वरूप गरलसे उनमें आई हुई थी फिर वह शिर भी जब पादप्रहारसे कुचलकर निर्बल हो जाता तब ठंडी सांस लेने लगता और समझ जाता कि अब कोई अन्य छुटकारा नहीं है. क्षीण होनेपर भी, यदि भगवान् मारेंगे तो भले मारें, मरनेकेलिये स्वयं आगे आ जाता और क्रोधमें भरकर शिरको अच्छी तरह ऊंचा करता, इससे यह जताता कि, यह शिर देवताका अधिष्ठान है. आधिदैविक बल भी क्षीण होनेसे, मरणकेलिये उपस्थित हुआ है किन्तु इसको साक्षात् मारना उचित नहीं है अतः भगवान् नाच करनेवाले पादसे उसको सम्मुखकर फिर अपनेको प्रणाम कराके एवं [२]शिक्षा करते हुए उसका दमन करने लगे अथवा स्वयं भगवान्ने ही दमन किया.

इस प्रकार दमन करनेसे आधिदैविक (शेष) एवं उपास्य देवताको कोई अनिष्ट न हो जाये यदि होगी तो यह कार्य मर्यादाके विरुद्ध हुआ कहा जायेगा. किसीको इस प्रकार शङ्का हो जाये तो उसका निवारण करते हुए कहते हैं कि इस अवसरपर भगवान् मानों पुष्पोंसे पूजे गये. आध्यात्मिकको भगवान्ने सन्मार्गकी शिक्षा दी इससे आध्यात्मिक और आधिदैविक दोनों सन्तुष्ट हुए जिससे उन्होंने अलौकिक प्रकारसे अर्थात् अपने दिव्य तेजोंसे भगवान्का पूजन किया वे तेज, पुष्प जैसे हो गये इसलिये कहा है कि पुष्पोंसे भगवान्की पूजा की.

दोनोंने भगवान्की आधिदैविक प्रकारसे पूजाकी प्रत्येकके पूजाका कारण यह है कि, भगवान् पुरुष हैं, श्लोकमें केवल पुरुष न कहकर पुराण भी कहा है इसलिये जो पुराण पुरुष अर्थात् पुरुषोत्तम है तथा जिसकी व्यास कपिल आदि भी उपासना करते हैं वह सबोंको पूजना चाहिये इसलिये जो तीन [३]प्राकृत रूप उपास्य है वे भी उसकी (पुरुषोत्तमकी) उपासना करते हैं. अतः कालीयने आध्यात्मिक तथा आधिदैविक दोनों रूपोंसे जो पूजा की वह उचित ही है.

भगवान् अद्भुत कर्मा हैं अतः मूर्छा[४] पर्यन्त दुष्ट कालीयको दण्ड दिया और अक्लिष्ट कर्मा होनेके कारण नृत्य करते हुए दण्ड दिया, मारा नहीं ।।२९।।

१.जिन शिरोंमें सर्पका उपास्य देव विष आ गया था वह शिर आधिदैविक भाववाला हो गया था.

२.ऐसे पवित्र स्थानपर जिस प्रकारका कार्य अब तू कर रहा है उस प्रकार नहीं करना चाहिये इस प्रकारकी शिक्षा करते हुए.

३.एकादश स्कन्धके २२वें अध्यायके इस श्लोक (ममाङ्ग माया)में लिखा है कि मेरी माया अनेक प्रकारकी है इसलिये रूपमें जो विकल्प बुद्धि होती है वह गुणों द्वारा होती है जिससे अध्यात्म, आधिदैव एवं अधिभूत कहा जाता है इत्यादि. प्रकाश

४.उससे इन्द्रियोंका सामर्थ्य नष्ट हो गया. यह दण्ड आध्यात्मिक स्वरूपको दिया है. लेख.

इस प्रकार नृत्य करनेसे भगवान्के चरणारविन्दके अनुग्रहसे उसको (कालीयको) ज्ञान तथा भक्तिकी प्राप्ति हुई, इस श्लोकमें यह वर्णन किया है:

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफलातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः।।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ।।३०।।

हे नृप! भगवान्के विचित्र ताण्डव करनेसे जिसके फण रूप छत्र टूट पडे

ऐसा, वह नाग मुखोंमेंसे रक्त उगलता हुआ जब भग्नशरीर हो गया तब उसने श्रीकृष्णचन्द्रको चराचरके गुरु, पुराण पुरुष और नारायण समझ मनसे उसकी शरण ली।।३०।।

वह कालीय अभिमानी था उसको ज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे राजाको राजापनका अभिमान तब तक रहता है जब तक उसका श्वेत छत्र स्थापित है, उसके नष्ट होनेपर, राजाका राजापनका अभिमान नष्ट हो जाता है, वैसे इसके फलरूप छत्रको, भगवान्ने विचित्र ताण्डवनृत्य करनेसे, विशेष भांति भग्न कर दिया जिससे उसका अभिमान भी नष्ट हो गया.

नृत्य दो प्रकारके होते हैं: लास्य और ताण्डव. लास्य नृत्य स्त्रियां करती हैं और ताण्डव पुरुषोंका नृत्य है. उन नाचोंके अनेक प्रकार हैं. उनमें, जैसे प्रलयके समय, विचित्र ताण्डव नृत्यकर महादेवजी उस रसमें मग्न हो जाते हैं. वैसे ही पुरुष भी ताण्डव करता हुआ रस मग्न होता है. वह नृत्य भगवान्ने यहां उसकी (सर्पकी) शिक्षाकेलिये किया. अन्तःकरणका दोष रक्त है वह आध्यात्मिक दोष मुखसे रक्तके वमन हो जानेसे नष्ट हो गया और गात्रोंके टूट जानेसे, आधिभौतिक (बाहरका) दोष दूर हो गया. जिससे निर्दोष हो गया अतः अभिमान त्याग, नारायण स्मरण करने लगा. नारायणका स्मरण इसलिये किया कि नारायण, आधिदैविक शेषपर शयन (स्थिति) करते हैं, क्योंकि वे अपने सम्बन्ध वाले हैं जिससे उसपर आधिदैविकका उपकार हो जाता है. इस उपकारसे शुद्धान्तःकरण हो, नारायणकी स्मृति करने लगा. निर्दोष होनेपर भी जब तक महापुरुषोंकी कृपा नहीं होती, तब तक भगवत्स्मरण नहीं होता है कालीय निर्दोष हो गया किन्तु जब आधिदैविकने उपकार किया, तब पूर्ण स्मरण करने लगा.

उपास्यकी कृपासे, इसको (कालीयको), यह ज्ञान हो गया, कि वह ही यह पुरुषोत्तम है. ऐसा ज्ञान होनेसे अपनेको दास समझ उनको स्वामी, मान और यह ही सबके आदि हैं यों निश्चय पूर्वक जान लेनेसे उनके ही शरण मनपूर्वक गया.

नारायणके शरणकी भावना मनसे ही करनी चाहिये क्योंकि वे अन्तःकरणके साक्षी हैं. इसलिये जब तक हम मनसे शरण नहीं जायेंगे तब तक उससे फल सिद्धि नहीं होगी क्योंकि वे हमारे अन्तःकरणकी सब बात जानते हैं. इस प्रकार शरण जानेके पीछे सेवा करनेसे भक्त बनता है. भक्त होनेके पीछे प्रहार

नहीं होता है यों समझ लेना चाहिये ।।३०।।

कालीय भगवान्‌की शरण अन्योंकी प्रेरणासे आया था अतः उसको अन्योंने ही छुडाया यह कहनेकेलिए उसकी (नागकी) स्त्रियां आईं जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिभग्नफणातपत्रम् ।।
दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ।।३१।।

उदरमें स्थित समस्त जगत्‌के भारवाले भगवान्‌के बोझसे पीडित और उनकी ऐडीके प्रहारसे टूटे हुए फण रूप छत्रवाले कालीय नागको देख जिनके वस्त्र, आभूषण और बालोंकी शोभा शिथिल हो गई है वैसी अत्यन्त आर्त उसकी पत्नियां भगवान्‌के शरण आयी।।३१।।

नागकी स्त्रियां पतिव्रताएं थीं, वे पतिके दर्शनकेलिये वहां आई थीं उनको ज्ञान पतिव्रत धर्मके पालनके बलसे हुआ था. श्रीकृष्णके बोझसे पीड़ित तथा एड़ीके प्रहारसे, जिसके फलरूप छत्र टूट गये हैं वैसे नागको, उन्होंने (नाग पत्नियोंने) देखा. भगवान्‌के इस प्रकारकी लीलासे, जिसके अपने (देहके) तथा अभिमानके दोष शेष नष्ट हो गये हैं वैसे उसको देख, उसकी स्त्रियां दुःखित होने लगी, अतः भगवान्‌के निकट शरणमें आयी.

भगवान्‌के भारसे पीड़ित हुयी, यह कहना असङ्गत है, कारण कि पीड़ा बोझसे होती है, बोझ स्थूल पदार्थमें होता है, स्थूल पदार्थ वह होता है जो पांच भूतोंमेंसे बना हुआ हो. भगवान्‌का श्रीअङ्ग पंचभूतोंसे नहीं बना है अतः सूक्ष्म अलौकिक होनेसे, उसमें भार तो है ही नहीं, तब वह पीड़ित कैसे हुआ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि देहके भारसे पीड़ित नहीं हुआ किन्तु उदरमें स्थित जगत्‌के भारसे पीड़ित हुआ है अकेला इतना जगत्‌का भार कैसे सहन कर सकेगा इसलिये दुःखी हुआ है.

इसका (कालीयका) भाई, शेष कैसे जगत् भार अकेले धारण करता है. जब वह धारण कर सकता है, तो यह क्यों न धारण करे. इसपर कहते हैं, कि उसकी (कालीयकी) फणें भगवान्‌ने तोड़ डाली हैं, जिससे वह क्षीण हो गया है. क्षीण शक्तिवाला भार कैसे सहन कर सकेगा, केवल भगवान्‌का भार हो, तो किसी प्रकार वह सहन करनेका प्रयत्न भी करे, किन्तु वे तो मारते भी थे.

ये स्त्रियां, नागकी पत्नियां हैं, वे दूसरेके वहां, अर्थात् भगवान्‌के

स्थानपर कैसे आयी इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि वह (भगवान् कृष्ण) सर्प (कालीय) तथा उसकी स्त्रियोंके आदि हैं. ये स्त्रियां कालीयकी पत्नियां तब हों, जब वे, भगवान्से संयोग करें क्योंकि, ''पत्युर्नो यज्ञसंयोग'' (पाणि.सू. ४।१।३३) इस शास्त्र वचनके अनुसार पत्नीत्व तब होता है, इसको स्पष्टकर समझाते हैं कि यह भगवान् यज्ञरूप है उससे हमारे पतिका संयोग हुआ है. अब हम यज्ञरूप भगवान्से संयोग न करें तो हम पत्नियां हीं नहीं बनें. पत्नी होनेसे उसका अर्धशरीर थी तब ही तो दुःखी हुयी जिससे वे बताती हैं, कि देखो हम भी उनसे (भगवान्से) ताड़ित होकर आधी मरी हो गई हैं.

कोई कहें कि, यह आपका कहना सत्य नहीं है. क्योंकि एकके मारनेसे अन्यका मारा जाना कैसे माना जाये, जिससे दूसरेको पीड़ा हुई हो. उसका उत्तर देती हैं कि यह आपका मत, अनुभवसे विरुद्ध है. शास्त्रने जो पत्नीको पतिका आधा अङ्ग कहा है वह अलंकारिक भाषा नहीं है किन्तु सत्य वाक्य है. इसके प्रमाणमें हम अपना अनुभव तथा चिह्न बताती हैं. मार खानेसे हमारे शरीर दुबले हो गये हैं. जिससे हमारे वस्त्र, आभूषण और केश पाश सब शिथिल हो गये हैं ।।३१।।

शरीर पर धारण किये हुए वस्त्र, मध्यमें पहने हुए आभूषण और मस्तक पर केशपाश जो अंगोसे संबद्ध थे, वे मार पडे बिना कभी भी शिथिल नहीं पडते हैं और ये तो पतिव्रताएं थीं इसलिए इनका शरीर तो हृष्ट पुष्ट रहता है अतः मारके कारण ही वैसा हुआ है ये पतिव्रताएं, पतिको छुडानेकेलिए पतिपर भगवान् दया करें, ऐसे विचार भगवान्के हृदयमें उत्पन्न करानेकेलिए, यह हमारा बालक है वैसा जनाती हुई, भर्तृ रूप बालकोंको भेंटकी तरह आगे कर, और पतिके दिए हुए अपने सर्वस्वको भगवान्के आगे निवेदनकर, आप(नाग पत्नियां) भी हृदके मध्य पृथ्वी[१] पर प्रविष्ट हुए भगवान्को मानों आत्मनिवेदन करती हुई प्रणाम कर, उनकी स्तुति करने लगी इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

तास्तं विपन्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ।।३२।।

उद्विग्न मनवाली और पापी पतिको दुःखसे छुडानेकी इच्छावाली वे पतिव्रताएं, अपने बच्चोंको आगे कर, शरण देनेवाले भगवान्की शरणमें आकर हाथ जोड अपने शरीरको पृथ्वीपर धरके प्रणाम करने लगीं।।३२।।

उनको (नाग पत्नियोंको) आते ही भगवान्‌को प्रार्थना करनी चाहिये थी, किन्तु चिन्ताग्रस्त मन होनेसे उनको यह विश्वास नहीं हुआ कि हमारे इस अपराधी पापी पतिको भगवान् छोड़ेंगे या नहीं? अतः प्रथम प्रार्थना न कर, अन्य प्रकारसे स्तुति करने लगीं. जिन्होंने बालकोंको आगे कर रखा है इसलिये कि ये हमारे बालक हैं इनको देखकर भगवान्‌को दया आयेगी. और संयुक्त सामग्री तो पहले ही भगवान्‌के पास जा चुकी थी. अतः पृथ्वीपर शरीरको दण्डवत् धर दिया. ये पतिव्रताएं थीं इनको पर पुरुषोंके पास इस प्रकार लेट जाना योग्य नहीं था. इस शंकाके मिटानेकेलिये कहा है कि ये पर पुरुषके पास नहीं नमी थीं किन्तु जिनके आगे नमी थीं वे समस्त भूतोंके पति हैं, पति होनेसे इनके ऊपर भी अनुग्रह करेंगे और साथमें ये साध्वी (पतिके साथ छायाके समान रहनेवाली पतिव्रताएं) हैं. इन्होंने भगवान्‌की जो प्रणामरूपसे, सेवा की है, वह भगवान्‌को पति समझकर ही की है, न कि अन्य प्रकारसे अर्थात् पर पुरुष समझकर नहीं की है. अतः हाथ जोड़कर देवतारूप होनेसे, वे दिव्य (अलौकिक) रूप स्त्रियां अपने पतिके पाप तथा अपराधको क्षमा कराना चाहती थीं. इन्होंने जान लिया कि भगवान् शरण्य (शरण आये हुए पर दया करनेवाले) हैं इसलिये उनके शरण गईं. वह (सर्प) तो शरण आया हुआ ही था भगवान् उसको तो मारेंगे नहीं किन्तु वह सहज (स्वभावसे) पापी है क्योंकि तमोरूप है और इसी कारणसे भगवान्‌का अब अपराधी हुआ है. इस पाप तथा अपराधका जाना कठिन है इसलिये ही नाग पत्नियोंका उद्यम है ।।३२।।

१.यमुनाजीके किनारेकी भूमि. २ जलके भीतर उत्पन्न आधिदैविक भूमि और ३ ह्रद के नीचेकी भूमि. इस प्रकार भूमि शब्द तीन प्रकार की भूमि बताता है किन्तु भगवान् स्त्रियोंकी लज्जा रखने केलिये ह्रदके नीचेकी भूमि पर कालीय के साथ प्रविष्ट हुए. प्रकाश व लेख.

दण्डानुमोदनं षड्भिर्नमनं दशभिस्तथा।
प्रार्थना पञ्चभिश्चेति त्रेधा स्तुतिरुदीर्यते।।का.१।।
द्विविधस्यापि पापस्य सापराधस्य नाशिका।
भगवान् षड्गुणस्तास्तु दशधा पञ्चधा पतिः।।का.२।।

छः श्लोकोंसे दण्डका समर्थन, दश श्लोकोंसे प्रणाम, पांच श्लोकोंसे प्रार्थना इस प्रकार तीन भांति स्तुति कही जाती है।।१।।

वह स्तुति, अपराध तथा दो प्रकारके पापोंको, नाश करनेवाली है,

उनके(नागपत्नियोंके) हृदयमें भगवान् छः गुणोंसे प्रकट हुए हैं और पांच प्रकारसे उनके पति हैं।।२।।

नाग पत्नियोंने भगवान्की तीन भांति इक्कीस श्लोकोंमें स्तुतिकी है. पहला प्रकार छः श्लोकों ३३ से ३८ में जो स्तुतिकी, उसमें भगवान्ने जो कालीयको दण्ड दिया उसका अनुमोदन (आपने इसको दण्ड दिया वह अच्छा किया इस प्रकारके वचन कहनेसे) किया. दूसरा प्रकार दश श्लोकों ३९ से ४८ में जो स्तुतिकी उसमें भगवान्को प्रणाम किया है कारण कि उनके हृदयमें दशलीला युक्त भगवान्का आविर्भाव हो गया था. तीसरा प्रकार पांच श्लोकों ४९ से ५३ में जो स्तुतिकी वह प्रार्थना रूपमें की है. उस (प्रार्थना)का पांच श्लोकोंमें करनेका तात्पर्य यह है कि भगवान् पांच प्रकारसे पति है.

१.श्रियःपतिः २.यज्ञपतिः ३.प्रजापतिः ४.धियापतिः ५.लोकपतिः[१] अतः इनके भी पति हैं अतः उनको प्रार्थना करना योग्य है यह भी इससे बता दिया है।।१।।

नाग पत्निओंने भगवान्की स्तुति इस आशयसे की है कि हमारे पतिके तीन प्रकारके दोष नष्ट हो जावें.

१. सहज दोष, देहके साथ (जन्मसे) उत्पन्न हुए वे दोष हैं अतः वे स्वाभाविक दोष कहे जाते हैं.

२.तमोरूप वा अज्ञान रूप है जिसके कारण वह प्रतिदिन अपने विषसे प्राणियोंको नाश करता था.

३. भगवान्को दंश से पीडा पहुंचाना और उनको लपेट लेना, उनका यह (भगवान्का) अपराध किया है अतः यह तीसरा दोष है.

इस प्रकार वह तीन तरहसे दोषी था जिससे उन तीनों दोषोंकी निवृत्ति एक प्रकारकी स्तुतिसे नहीं हो सकती है इसलिए उन तीनोंकी निवृत्तिकेलिए पृथक्-पृथक् प्रकारसे स्तुति की है.

१.लक्ष्मीके पति हैं, यज्ञके पति हैं, प्रजाके पति हैं, बुद्धिके पति हैं, और लोक-धराके पति हैं. इस प्रकार पांचके पति हैं. लोक और धरा एक ही मान पांचके पति कहे हैं लोकमें नागपत्नियां तथा सर्पके भी पति हैं क्योंकि लोकमें ये भी आ जाते हैं.

इति कारिका व्याख्या सार

नाग पत्नियां निम्न श्लोकमें कहती हैं कि भगवान्ने जो दण्ड दिया है

वह न्यायके अनुसार है.

नागपत्न्यः ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ।।३३।।

नाग पत्नियां कहने लगीं कि इस (पापी) अपराधीको जो आपने दण्ड दिया है वह न्याय किया है. आपका अवतार दुष्टोंको दण्ड देनेकेलिए ही है. आप जो कुछ दण्ड देते हैं वह फलका विचार करके देते हैं, कारण कि, आप शत्रु तथा पुत्रको एक समान देखते हैं।।३३।।

इसको जो आपने पीटा है वह न्याय युक्त है. ईश्वरमें तीन प्रकारके धर्म हैं, १.प्रसाद, २.मर्यादा और ३.अनुग्रह. अतः दण्ड भी तीन प्रकार करते है १.न्याय (पूरा) २.कम, और तीसरा अधिक. इनमेंसे दण्ड न्याय्य है कारण कि इसने बहुतोंकी हिंसाकर अनेक पाप किये हैं इसलिये इसका इस प्रकार दमन करना उचित ही है. आप यों नहीं कहना कि पापका दण्ड देना तो यमके अधिकारकी बात है मेरे अधिकारकी नहीं है. क्योंकि आपने अवतार ही खलोंके दमन करनेकेलिये लिया है कारण कि, यदि आप इस प्रकार मध्यमें ही अवतार लेकर खलोंका निग्रह नहीं करो तो, ये खल बड़ी आयुवाले होनेसे अपने कर्मोंसे संसारको नष्ट कर देते. यम तो मरनेके अनन्तर दुष्टोंको दण्ड देनेका अधिकारी है. अतः आप जगत्की रक्षाकेलिये मध्यमें अवतार लेकर खलोंको दण्ड देकर अपना जगत् रक्षकका धर्म पालन करते हैं.

यदि आप कहो कि यह (कालीय) तो कश्यपका पुत्र और शेषका भ्राता है वह दण्डके योग्य कैसे? यह आपका कहना आपके सहज धर्मके अनुकूल नहीं है क्योंकि आपका सहज धर्म, शत्रु और ँपुत्रको समान देखना है अतः यह कश्यपका पुत्र हो, वा शेषका भाई हो, तो भी, अपराधी होनेके कारण, आपसे दण्ड देने योग्य ही है. नहीं तो आपका सहज धर्म, समदृष्टि रहेगी नहीं. इसको यदि आप दण्ड नहीं देते तो आप विषम दृष्टिवाले कहे जाते.

भगवान् सबकी आत्मा और आदि है अतः किसीको भी दण्ड, पीड़ा देनेकेलिये नहीं देते हैं यदि पीड़ा देनेकेलिये देवें तो उनका अपनापन तथा आदि कारण रहे नहीं. यदि पीड़ाकेलिये नहीं देते हैं तो किसलिये देते हैं? उसके उत्तरमें कहते हैं कि, पहले विचार करते हैं, कि इसको ऐसा दण्ड दूं, जिससे, इसका हित

होवे, यह फल विचारकर, पश्चात् उसी प्रकारका उसको वैसा दण्ड देते हैं ।।३३।।

१.यहां मूलमें 'रिपोः सुतानां' ये दो पद षष्ठी विभक्तिमें हैं किन्तु यह षष्ठी– सप्तमीके अर्थमें दी हुई है अतः इनका अर्थ सप्तमीके समान होगा. अर्थात् इसका अर्थ होगा. शत्रु और पुत्रोंपर एक जैसी दृष्टि रखते हैं . सुबो.

उपरोक्त ३३वें श्लोकमें भगवान्ने जो सर्पका दमन किया उसको दण्ड स्वीकार किया है, अब इस ३४वें श्लोकमें उस दण्डकेलिए कहती हैं कि वास्तवमें वह दण्ड होते हुए भी आपका अनुग्रह ही है:

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतोऽहिनो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ।
यद् दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः ।।३४।।

आपने सर्पके उपर अनुग्रह ही किया है क्योंकि आप जो दण्ड करते हैं वह पापियोंके पापको नाश करनेवाला हैं. यह जिस पापके कारण सर्प योनिमें आया है (वह पाप इस दण्डसे नष्ट हो गया है) सत्पुरुष आपके क्रोधको अनुग्रह ही मानते हैं।।३४।।

आपने इस सर्प[१] पर अनुग्रह ही किया. साधारण अनुग्रह नहीं किया है, किन्तु विशेष अनुग्रह किया है. जिस दण्डके मिलनेसे दुःख होता है, वह दण्डका अनुग्रह है, इस प्रकार आप कैसे कहती हो? इसके उत्तरमें कहती हैं कि भारतमें (दण्ड)को भगवान्का ही रूप सिद्ध किया है क्योंकि जैसे भगवान् पापीके पापोंको नाश करते हैं वैसे ही दण्ड क्लेशरूप होते हुए भी तपस्या तथा यागके समान पापको नाश करता है, अतः हम कहती हैं कि यह दण्ड, दण्डरूप आप, भगवान्का, अनुग्रह ही है.

पाप तो नित्य होते ही हैं, उनकी निवृत्तिकेलिये दण्ड सहन करना निरर्थक है क्योंकि जैसे दीपकसे अन्धेरा मिटानेपर भी अन्धेरा सर्वथा निवृत्त नहीं होता है, क्योंकि अन्धकारका कारण रात्रि विद्यमान है. यदि पाप पुनः उत्पन्न न होवे, तो उनके मिटानेकेलिये दण्ड सहन करना युक्त है, किन्तु वैसा होता नहीं है, अर्थात् दण्ड सहन करनेके अनन्तर, पुनः पाप किये जाते हैं. सांसारिक धनाभाव आदि दुःखोंसे छूटनेकेलिये प्राणी अनेक प्रकारके पाप करते हैं, यदि पापोंसे छूटनेकेलिये दण्डरूप दुःख भोगा जाये और उसके भोगनेपर, पुनः पाप न किये जावें तो वह दुःखका भोगा जाना सार्थक है, किन्तु दण्डरूप दुःख भोगनेपर भी

पाप प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होती है, तो दण्डरूप दुःख भोगनेसे, वे सांसारिक दुःख स्वल्प हैं, अतः वे ही भोगे जाने अच्छे हैं. इस शंकाको मिटानेकेलिये कहती हैं कि इसको जो सर्प योनि मिली है उसके मिलनेका कारण पाप है. उन पापोंको मिटानेवाला आपका किया हुआ यह दण्ड है. इस दण्डसे, इसके पाप मिट जानेसे, यह असत् है, वह सत् हो जायेगा, जिससे इस देहका सम्बन्ध एवं उससे उत्पन्न अहंकार भी नष्ट हो जायेगा. अतः बहुत अर्थों (कार्यों)को सिद्ध करनेवाला यह आपका दिया हुआ दण्ड तथा दण्डका कारण क्रोध, दोनों ही अनुग्रहरूप हैं. यह केवल युक्तिसे हम नहीं कहती हैं किञ्च सर्व सत्पुरुषोंका यह सिद्धान्त है, कोई भी सत्पुरुष इसका विरोध नहीं करते हैं ।।३४।।

१.श्लोकमें 'अहिनः' पद है यों 'अहि' शब्द पुल्लिङ्गका है उसको नपुंसकलिङ्गमें देनेका भाव यह है कि यहां दिखाना है कि 'सर्प'का पौरुष यहां चल नहीं सका है अतः यह नपुंसक है. आचार्यश्री कहते हैं कि यदि (अहिनः) स्थानपर (अहीनः) पद मान लिया जाये और वह 'अनुग्रह'का विशेषण समझकर अर्थ किया जाये कि आपका सर्पके उपर यह अनुग्रह स्वल्प नहीं है किन्तु विशेष है. प्रकाश

यह दण्ड अनुग्रह है इसको तो हमने समझ लिया किन्तु आपने इसके ऊपर जो नृत्य किया वह क्यों किया? उसका हमको बहुत आश्चर्य है इसको हम समझ नहीं सकती हैं इस अपने विचारको निम्न श्लोकमें कहती हैं :

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ।
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ।।३५।।

इसने पूर्व जन्ममें ऐसा क्या तप किया है, जिससे सबको जिलानेवाले आप, इसपर प्रसन्न हुए हैं, अवश्य इसने मान छोड, दूसरोंको मान दिया है और सबपर दया भी की है इस प्रकार धर्म तथा तप करनेके कारण ही आप इसपर प्रसन्न हुए हो।।३५।।

शास्त्रोंमें धर्म दो प्रकारके कहे हैं. एक प्रवृत्तिरूप धर्म और दूसरा निवृत्तिरूप धर्म. इनमेंसे निवृत्तिरूप धर्म तपस्या है, क्योंकि, वह (तपस्या) धर्म, असत् (लौकिक, धन, पुत्र आदिसे सम्बन्ध) है उसको छुड़ाता है अतः निवृत्तिरूप है. जैसे कहा है कि ''यदा वै दीक्षितः कृशो भवति अथ मेध्यो भवति'' जब दीक्षित[१] कृश हो जाता है तब वह पवित्र हो जाता है.

१.उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जानेसे विषयकी इच्छा रहित हो जाती है और लौकिक

सम्बन्ध भी शिथिल होता है. 'अनुवादक'

'प्रवृत्ति'रूप धर्म दोषोंकी चिन्ता छुडाकर नवीन फल प्राप्त कराता है जिससे प्राणी उस फलको पाकर उसमें आसक्त हो उसको भोगता है. निवृत्तिरूप धर्म दोषोंको मिटाकर प्रथम जो था वही फल प्रकट करता है.

भगवान् तो ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं तथा सबकी आत्मा हैं अतः ज्ञान तथा भक्तिसे प्रसन्न होते हैं.

प्रथम पक्ष (निवृत्ति पक्ष) यद्यपि 'तपस्या' निवृत्ति धर्म सिद्ध करानेवाली है तो भी उससे सर्व दोषोंकी निवृत्ति नहीं होती है जब तक सर्व दोषोंका नाश नहीं होता है तब तक निवृत्ति धर्म सिद्ध नहीं होता है. जैसे कि अहंकार दोष तपस्यासे मिटता तो नहीं है किन्तु बढ़ता है कि मैं तपस्वी हूं. जब तपसे सर्व दोषोंकी निवृत्ति नहीं हुई तो भगवान्की प्रसन्नता कैसे होगी? हम देखती हैं कि इसपर आप प्रसन्न हैं, इससे अनुमान है कि इस साधारण तपस्यासे दूसरी कोई विशेष तपस्या है जिसको इसने किया है जिससे इसपर आप प्रसन्न हुए हैं. आपके प्रसन्न होनेकी कोई अन्य प्रकारकी उपपत्ति नहीं है.

वह विशेष तपस्या भी साधारण प्रकारसे नहीं की है किन्तु अच्छे प्रकारसे की है. अर्थात् देश काल आदि सर्व साधन उत्तम थे और तप करनेका प्रकार भी श्रेष्ठ था यदि इस प्रकार न होते तो भगवान् (आप) प्रसन्न नहीं होते.

अन्य दोषोंको मिटानेकेलिये दो धर्मोंकी आवश्यकता रहती है. एक स्वयं निरभिमान होना और अपनेसे जो हीन हैं उनसे भी नम्र होकर व्यवहार करना यों करनेसे अपने आप जो अहंकार होता है वह नष्ट होता है और दूसरोंके द्वारा आदर किये जानेसे जो अहंकार उत्पन्न होता है, उसका भी नाश होता है. जब ये दो धर्म भी सिद्ध होते हैं तब भगवान् प्रसन्न तो होते हैं किन्तु इस पक्ष (विशेष तप और दोनों धर्मकी सिद्धि)के अनुसार भी यदि भगवान् नृत्य करें तो भी उनमें उतनी प्रसन्नता नहीं होती है जितनी कि होनी चाहिये अतः दूसरा पक्ष कहते हैं क्योंकि पहले पक्ष (तप करने)से भगवान्का बहिः सन्तोष और नृत्य करना दोनों सिद्ध नहीं होते हैं यहां तो भगवान् प्रसन्न भी हुए हैं और उन्होंने नृत्य भी किये हैं अतः इसकेलिये कोई अन्य कारण ढूंढना चाहिये. श्लोकमें समुच्चयार्थक 'वा' शब्दका भाव बताते हैं कि निवृत्ति सिद्ध करानेवाला धर्म (तप) हुआ हो या न हुआ हो किन्तु भगवान्की प्रसन्नताके कारणकी अपेक्षा है ही अतः उस कारणको

ढूंढना आवश्यक है.

श्लोकमें 'अथ' शब्द आया है, जिसका तात्पर्य है कि, अब उसका शोध करनेकेलिये दूसरा प्रक्रम करते हैं. धर्मशास्त्रके अनुसार किया हुआ धर्म इस प्रकारका फल सिद्ध नहीं कर सकता है, किन्तु भगवत् शास्त्रके अनुसार किया हुआ धर्म इस प्रकारका फल सिद्ध कर सकता है, किन्तु उसमें (भगवत् शास्त्रके अनुसार किये हुए धर्ममें) भी एक दोष आता है उसे मिटाना चाहिये. यदि वह (भगवद् शास्त्रानुसारी) धर्म द्रव्यमय (जो द्रव्यसे किया जाता है) हो, तो अन्यको (जिसका द्रव्य लगाया जाता है उसको) उपद्रव करनेवाला होता है क्रियामय (कर्मरूप) धर्म हो, तो अपनेको उपद्रव (परिश्रम) देनेवाला होता है और ज्ञानमय होनेपर भी अपनेको (साधनोंके करनेमें क्लेश करनेसे) उपद्रव कारक होता है. तपस्या करनेमें भी यही क्लेश है. अतः कहते हैं कि इन दोषोंको मिटानेकेलिये ऐसे धर्मका आचरण करना चाहिये, कि जिससे किसीको भी परिश्रम आदि क्लेश नहीं हों. वह धर्म भगवान्के चरित्रोंका श्रवण कीर्तन आदि है, जिससे अपना तथा दूसरोंका भी द्रोह नहीं होता है और सर्व जीवोंपर दयाकी जाती है. श्रवणसे भी कीर्तनमें विशेषता है क्योंकि उसको दूसरेसे सुनकर प्रसन्न होते हैं. भगवान्को प्रसन्न करानेवाले भगवान्की सेवा आदि भगवद् धर्मोंके होते हुए आप कीर्तनसे ही भगवान्को प्रसन्न करनेवाला एवं सर्वका उपकारक धर्म कैसे कहती हो? उसके उत्तरमें 'सर्व जीव' पद दिया है. जिस पदका भावार्थ बताते हुए आचार्यश्री उसके तीन अर्थ करते हैं १.भगवान् सबको जिलानेवाले हैं, २.भगवान्से सर्व जीव मात्र उत्पन्न हुए हैं, ३.भगवान् सबोंके जीवरूपसे आत्मा हैं. इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् ही इस प्रकार सर्व जीवरूप हैं. अतः जिस धर्मसे सर्व जीव प्रसन्न हों और उनका उपकार हो उसी धर्मसे भगवान् प्रसन्न होते हैं वह योग्य ही है. इस प्रकार कहनेसे नागपत्नियोंने यह भी सूचित किया है कि यह कालीय निरापराधी है कारण कि जब भगवान् सर्व जीवरूप हैं तो इसकी आत्मा भी भगवान्का रूप है इस प्रकारके (सर्व जीवोंपर दयारूप) धर्मका आचरण इसने किया हो यह आश्चर्य जैसा है क्योंकि सर्पकी योनि, सर्पका स्वभाव और उसके कर्म (प्राणियोंको नाश करना) ये तीनों ही इस धर्मके विरुद्ध हैं ।।३५।।

यह तो आश्चर्य है किन्तु इससे भी विशेष आश्चर्य अन्य उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करती हैं:

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रि–रेणु–स्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत् तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ।।३६।।

जिस आपके चरण रजकी प्राप्तिकी इच्छा पूर्तिकेलिए लक्ष्मीजीने सर्व कामनाओंका त्यागकर, बहुत समय तक तप किया (किन्तु प्राप्त नहीं हुई) उस आपके चरण रजके स्पर्शका अधिकारी, यह किसके प्रभावसे हुआ यह हम नहीं जानती हैं।।३६।।

भगवान्के चरणकमलकी रेणु, प्राणीकी देहको भगवदीय (अलौकिक) बना देती है. यह पहले हमने (आचार्यश्रीने सुबोधीनीजीमें) कहा है. उन रेणुओं का सम्बन्ध, इसने सिद्ध कर लिया है, अतः निश्चयसे जाना जाता है कि इसे अवश्य भगवदीय देहकी प्राप्ति होगी.

मर्यादाके अनुसार यह नियम है कि करोड़ों जन्मोंमें उपार्जित किये हुए तीन प्रकारके (श्रौत, स्मार्त और भगवदीय) धर्मोंसे जिनके भूत (जिनसे सूक्ष्म देह बनती है) संस्कार (शुद्ध) किये हुए हैं उनको भगवान्के चरणारविन्दकी रजके स्पर्शकी प्राप्ति होती है जिससे उनकी देह भगवदीय बनती है.

साधारण धर्मसे यदि देह संस्कृत हुई हो कदाचित् उसको भगवान्के चरणरेणुका स्पर्श होता हुआ देखा जाये तो उसमें कोई हेतु कहना चाहिये वह हेतु क्रियारूप, धर्मरूप नहीं होना चाहिये क्योंकि धर्मरूप तो करोड़ों जन्मोंके अनन्तर फल सिद्धि करानेमें सफल होता है अतः साधारण धर्मसे यदि यह फल (भगवान्के चरणरजकी प्राप्ति) होवे तो उसमें कोई अलौकिक कारण होगा किन्तु ऐसा कोई दृष्टान्त अब तक लोकमें देखनेमें नहीं आया है. इस सर्पको जो आपके चरण रेणुके स्पर्शका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसमें अवश्य कोई किसी महानुभावका प्रभाव होगा किञ्च वह प्रभाव किसका है यह हम नहीं जान सकी हैं. जो जीव आपके चरणारविन्दके रेणुके अधिकारी हैं वे निर्गुण हैं सगुण जीव आपके चरणरेणुके स्पर्शका अधिकारी नहीं है वे सगुण कितने भी ऊंचे अधिकारवाले हों, तो वे प्राप्त नहीं कर सकते हैं, जैसे कि श्रीलक्ष्मीजी भगवान्की सात्त्विक शक्ति सत्त्व गुणाधिष्ठाता विष्णुकी स्त्री हैं तो भी उसको सर्व काम त्यागकर वर्षों तक तप (धर्म) करनेपर भी आपके चरणरेणुकी प्राप्ति नहीं हुई है जब उसको (सात्त्विक शक्ति–विष्णुकी स्त्रीको) नहीं मिली तो ब्रह्मा रुद्र आदि तथा उनके सम्बन्धियोंकी तो निश्चयसे उसकी (रेणुकी) प्राप्ति नहीं होगी.

लक्ष्मी तो ब्रह्मानन्दरूपा हैं उसको इसकी प्राप्ति कैसे न होगी? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'ललना' शब्द दिया है जिसका तात्पर्य है कि यहां जिस लक्ष्मीका दृष्टान्त दिया है वह ब्रह्मानन्दरूपा श्री नहीं हैं, किञ्च सात्त्विक शक्ति सत्त्व गुणाधिष्ठाता विष्णुकी पत्नी कही गई हैं, इससे यह बताया कि, यह लक्ष्मी भगवान्‌की अन्तरङ्ग दासी हैं, वह दास्य सिद्धिके (चरणरेणुके)लिये तप करती हैं तो भी रेणुको प्राप्त नहीं कर सकती हैं. कारण कि इस लक्ष्मीका स्थान तीन गुण ही हैं, क्योंकि सकाम, सगुण होते हैं. निर्गुण भगवद् भक्तोंमें, किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती है. यद्यपि लक्ष्मीने सर्व काम त्यागकर तप किया है तो भी वह चरणरेणु प्राप्त नहीं हुई उसका कारण है कि लक्ष्मीने तपरूप साधनसे धर्मका आश्रय किया है. साधन धर्म आश्रयसे भगवान् वा भगवान्‌के चरणकी रेणु प्राप्त नहीं होती है ।।३६।।

उपरोक्त श्लोकमें साधनोंका विचार करते हुए यह सिद्ध किया है कि रेणु उत्कृष्ट होनेसे साधनोंसे भी प्राप्त नहीं होती है, अतः यह (सर्प) तो उनके स्पर्शके भी योग्य नहीं है इसका समर्थन किया है:

अब फलके विचारसे भी उनका(रेणुओंका) माहात्म्य कहकर सिद्ध करती हैं कि इससे भी यह(सर्प) उनके रेणुंओंके स्पर्शका अधिकारी नहीं है जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करती हैं:

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ।।३७।।

जो आपके चरणरजके शरण हैं, वे न तो स्वर्ग, न चक्रवर्ती राज, न ब्रह्मलोक, न पातालका राज, न योग न सिद्धियां और न मोक्ष चाहते हैं।।३७।।

इस श्लोकमें कहे हुए फल लोकमें फलरूप माने गये हैं. वे तीन प्रकारके धर्मसे प्राप्त होते हैं. जैसे कि सात्त्विक धर्मसे, जहां इन्द्रादिक देवता रहते हैं वह स्वर्ग प्राप्त होता है. राजस धर्मसे समस्त पृथ्वीका राज्य अर्थात् चक्रवर्ती पदकी प्राप्ति होती है. ज्ञानके अतिरिक्त सात्त्विक तथा राजस धर्मके करनेका फल कहकर अब ज्ञान सहित सात्त्विक तथा राजस धर्मसे, जिस फलकी प्राप्ति होती है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि ज्ञान सहित सात्त्विक तथा राजस धर्मसे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है. तामस धर्मसे पाताल लोकका आधिपत्य मिलता है. निवृत्ति धर्मसे योगकी सिद्धिरूप फल प्राप्त होता है. ध्यान आदि धर्म करनेसे

अणिमादि ८ (आठ) सिद्धियां मिलती हैं. सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि रखनेसे, तथा सर्वका हित करनेसे, जो सर्व साध्य धर्म किया जाता है, उससे मोक्षकी प्राप्ति होती है. श्लोकमें आये हुए 'वा', शब्दका भाव यह है कि इनके सिवाय जो अन्य फल हैं उन सबका साथमें अनादर (वे फल कहनेके योग्य नहीं हैं) दिखाया है. जिन जीवोंने भगवान् (आप)के चरण रजकी शरण ली है वे भी उपर्युक्त फलोंको नहीं चाहते हैं तो जिनको आपके चरणरजकी प्राप्ति हो गई है वे इन फलोंको न चाहें तो उसमें क्या कहना है।।३७।।

इस प्रकार रेणुके माहात्म्यका वर्णन कहती हैं कि वह रेणु इसने (सर्पने) प्राप्तकी जिससे यह भाग्यशाली है उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करती हैं :

तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छितः स्याद् विभवः समक्षः ।।३८।।

हे नाथ ! जिस रजको अन्य पुरुष, प्राप्त नहीं कर सकते हैं उसको इस तमोगुणसे उत्पन्न और क्रोधके वशीभूत सर्प राजने प्राप्त किया है. यह आपकी (चरण) रज ऐसी है जिसको संसारके चक्रमें घूमता हुआ प्राणी भी केवल इच्छा करता है तो उसको विभव (ऐश्वर्य वा मोक्ष आदि फल) प्रत्यक्ष होता है।।३८।।

'हे नाथ! इस सम्बोधन देनेसे इस (कालीय)को भगवान्के चरण रेणुकी प्राप्ति हुई इसको कारण बताकर सिद्ध किया है.

अन्योंको यह (रज) दुराय भी (कठिनतासे प्राप्त) है, किन्तु इसको यह प्राप्त हो गई है, जबकि यह सर्व प्रकार अयोग्य भी है. इसकी अयोग्यताके धर्मोंको कहती है १.इसका जन्म तमोगुणसे हुआ है अतः यह मूलसे ही अशुद्ध है. २.क्रोधके अधीन होनेसे कार्यसे अशुद्ध है. ३.सर्पोंका राजा है इसका संसर्ग सर्पोंसे ही रहता है अतः संसर्ग दोषवाला है. इसके अतिरिक्त सर्पोंका राजा होनेसे सर्पोंके पापसे भी, इसका सम्बन्ध है इस कारणसे भी यह अशुद्ध है. इस प्रकार, सब दोषोंके भण्डार इसको सबसे उत्तम और दुर्लभ फलकी प्राप्ति हुई है वह केवल भगवदिच्छासे हुई है. उसका वर्णन श्लोकके उत्तरार्द्धसे करती है अचानक यह उत्कृष्ट फल भगवान्की इच्छासे ही होता है इसका निर्णय करती हैं. संसाररूप चक्रमें घूमता हुआ प्राणी कभी भगवान्के पधारनेपर उनके चरणके समीप भी आ पहुंचता है इस पहुंचनेमें किसी प्रकारका कर्म आदि कारण नहीं है. किन्तु भगवान्के चरण रेणुकी इच्छा ही कारण है, वह पुरुष भले ही साधनसे हीन

भी हो, तो कभी अचानक उसको उत्कृष्ट फल प्रत्यक्ष होता है. श्लोकमें 'यदिच्छतः'के स्थानपर 'यदृच्छातः' पाठ लेनेसे उसका अर्थ होता है, अकस्मात् वा भगवान्‌की इच्छासे यह उत्कृष्ट फल मिला है ।।३८।।

१. आप स्वामी हो सब कुछ आपकी इच्छासे होता है अतः यह भी आपकी इच्छासे ही हुआ है.

कालीयको भगवान्‌के चरण स्पर्श हुए यह भगवान्‌के प्रसन्न होनेके लक्षण हैं, इस प्रकार उसके भाग्यका बखान किया, जिससे, यह भी बता दिया कि उसके (सर्पके) हम सम्बन्धी (अर्द्धांगिनी) हैं अतः हम भी भगवान्‌को नमस्कार करनेकेलिए अधिकारिणी हैं यों सिद्धकर 'नमस्तुभ्यं'से लेकर दश श्लोकोंसे नमस्कार करती हैं :

दश रूपाणि तु हरेर्मूलरूपः स्वशास्त्रतः ।
वेदान्तवेद्यरूपश्च जगद्रूपस्तथैव च ।।का.१।।
सङ्घातजीवरूपश्च नानारूपश्च शास्त्रतः ।
एवं प्रमेयरूपाणि पञ्चधोक्तानि वै हरेः ।।का.२।।
वेदार्थरूपस्तन्त्रार्थो गुणार्थो ह्यवतारकृत् ।
अन्तर्यामी च भगवान् दशधोक्तः स्वलीलया ।।का.३।।

हरिके दश रूप हैं १.अपने शास्त्रके अनुसार 'मूलरूप' २.वेदान्तसे जिस रूपका ज्ञान होता है और ३.वैसे ही जगद्‌रूप।।१।।

४.संघात जीवरूप ५.शास्त्रमें जो अनेक रूप कहे हैं. इस प्रकार ये पांच रूप हरिके प्रमेय रूप हैं।।२।।

६.वेदार्थरूप ७.तन्त्रार्थरूप. ८.गुणार्थरूप, ९.अवतार लेनेवाला रूप और १०.अन्तर्यामी हैं, इस प्रकार भगवान्‌के जो दश रूप कहे हैं वे आपकी लीलाके कारण हैं।।३।।

प्रकाश, लेख और योजना साहित्यका स्वल्पसार:

वेदमें भगवान्‌के कर्म (यज्ञ) और ब्रह्मके भेदसे दो रूप कहे हैं एवं तन्त्र शास्त्रमें चार व्यूह रूप कहे हैं, अतः दो वा चार श्लोकोंसे नमन कहना चाहिए न कि दश श्लोकोंसे, इन छः रूपोंसे अधिक रूपोंका वर्णन कहीं देखनेमें नहीं आया है, इस शंकाका निवारण करते हुए इन कारिकाओं द्वारा भागवतमें की हुई दश लीलाओंके अनुसार भगवान्‌के दशरूप हैं यह सिद्ध करते हैं. जिससे दश

श्लोकोंसे नमन करनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है.

भगवान्‌के दश रूप हैं. जैसे कि

१. मूलरूप ३९वें श्लोकमें जिसको परमात्मा (सर्वोत्तम) भूतावास (सर्वाश्रय) और व्यापक कहकर मूल रूप कहा है उसको नमस्कार करती हैं.

२. वेदान्तवेद्यरूप ४०वें श्लोकमें उस रूपको नमन करती हैं जो वेदान्त शास्त्रसे जाना जाता है उस श्लोकमें भगवान्‌को ज्ञानविज्ञानकी निधि अविकारी और अनन्त शक्तिमान आदि विशेषणोंसे उसका स्वरूप वर्णनकर यह बताया है कि यह स्वरूप वेदान्त(उपनिषदों)से समझमें आता है.

३. जगत्‌रूप ४१वें श्लोकमें जिस भगवान्‌के रूपका वर्णन 'विश्व' शब्दसे किया है और उस विश्वके रूपोंको समझाया है. नाग पत्नियां उसमें जगत्‌रूप भगवान्‌को नमस्कार करती हैं वह नमस्कार भी वेदान्तमें कहे हुए प्रकारसे जगत्‌को ब्रह्म रूप जानकर करती हैं.

४. संघात जीव रूप, इस भगवान्‌के रूपको वेदान्त (उपनिषद्) तथा सांख्यमें भी भूत, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूपसे वर्णन किया है तदनुसार समझकर ब्रह्मभावनासे नमस्कार करती हैं.

५. नानारूप, यह भगवान्‌का नाम और सृष्टिरूप है जिसका वर्णन ४३वें श्लोकमें 'अनन्त' पदसे किया है. उसको इस श्लोकमें नमस्कार करती है.

ये उपरोक्त पांच रूप जिनको नाग पत्नियोंने ३९वें श्लोकसे ४३वें श्लोकमें नमस्कार किया है वे भगवान्‌के पांचो रूप प्रमेय रूप हैं.

६. वेदार्थरूप, इस भगवान्‌के रूपको ४४वें श्लोकमें नमस्कार करती हैं. इस स्वरूपका उस श्लोकमें स्वरूप दिखाया है. वेदरूप और उसका अर्थरूप भी भगवान् हैं यह 'प्रमाण' 'मूल' शब्द देकर सिद्ध किया (समझाया) है.

७. तन्त्रार्थरूप (तन्त्रमें कहा हुआ रूप) इस रूपको ४५वें श्लोकमें वर्णन किया है जैसे कि चारों व्यूह राम (संकर्षण) वसुदेव सुत (वासुदेव) प्रद्युम्न और अनिरुद्ध सहित पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण)के रूपका तन्त्रमें प्रतिपादन है, उस स्वरूपको नमस्कार किया है.

८. गुणार्थ रूप(गुणोंका अर्थ सहित प्रकाश करनेवाला) इस रूपका वर्णन ४६वें श्लोकमें है और उस रूपको इस श्लोकमें नमन किया है.

९. 'अवतार लेनेवालारूप' इस रूपका वर्णन ४७वें श्लोकमें किया है जिसमें

'अव्याकृतविहाराय' पदसे दिखाया है कि आपका विहार(अनेक अवतार लेते हो वह विहार) विकार रहित है अर्थात् अवतार लेकर क्रीडा करते भी आपमें विकार उत्पन्न नहीं होता है ऐसे स्वरूपको इस श्लोकमें नमस्कार करती हैं.

१०. 'अन्तर्यामी रूप' इसका वर्णन ४८वें श्लोकमें सबकी गतिको जाननेवाला आदि विशेषण देकर किया है और उस श्लोकमें नागपत्नियोंने इस स्वरूपको नमस्कार किया है.

इस प्रकार दश लीलाकर्ता भगवान्के दशरूपोंको दश श्लोकोंसे नाग पत्नियां नमस्कार करती हैं.

भगवान्के स्वरूपको जानकर ही स्तुति करनी चाहिए जिसकी हम स्तुति करती हैं, वह कौन है? कितना है? इसके गुण कैसे हैं? इन सब बातोंको जानकर जो स्तुतिकी जाती है, उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं. अन्यथा भगवान् यों समझते हैं कि इसने कदाचित् अन्यके गुणोंको मुझमें आरोप कर दिया है और शास्त्र यह भी कहता है कि यदि स्वरूप जाने बिना भगवान्की स्तुतिकी जाए तो भगवान्का स्वरूप जिस प्रकारका है, उसका अन्य प्रकारसे वर्णन करें, तो स्तुति कर्ता, आत्मापहारी चोर कहा जाता है, अतः जानकर ही स्तुति करनी चाहिए.

भगवान् एक होते हुए भी दश प्रकारकी लीला करनेसे दशविध कहे जाते हैं किन्तु एक लीलामें जितने अवान्तरके रूप हैं वे सब यहां कहे जाते हैं. उसमें प्रथम सृष्टि लीलाका वर्णन करती हुई, पुरुषोत्तमरूप भगवान्का निरूपणकर, इस निम्न श्लोकमें उनको नमस्कार करती हैं:

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ।।३९।।

आप भगवान्, महात्मा, पुरुषरूप, आकाशादि भूतोंके आश्रयरूप, सबसे उत्तम परमात्माको हम नमस्कार करती हैं।।३९।।

जो भगवान् मूलरूप कहे जाते हैं वे ही आप हैं. इसलिये कहती हैं कि 'आप भगवान्को नमस्कार है'. भगवान्के प्रकट और अप्रकट दोनों रूप, यही (जो हमारे सामने स्थित आप हैं वही) हैं.

यह ही रूप सर्वोत्तम है (भूमा-अजन्मा है) तो भी प्रकट हुआ है प्रकट होनेवालेको दूसरेकी अपेक्षा रहती है किन्तु इसको नहीं है क्योंकि पुरुषोत्तम है. इसका समर्थन करनेकेलिये 'पुरुषाय महात्मने' दो विशेषण दिये हैं, जिनका

आशय यह है कि 'आत्मा' शब्द कहनेसे यह बताया है कि स्मृति शास्त्र भी आपका 'आत्मा' पदसे प्रतिपादन करते हैं, 'पुरुष' शब्द देकर यह सिद्ध किया है कि साङ्ख्य शास्त्र 'पुरुष' शब्दसे आपका ही वर्णन करता है. एवं 'महान्' पदसे बताते हैं कि वेद भी आपको ही मूलरूप कहता है, इन तीनों पदोंको मिलानेसे महान्, पुरुषरूप और आत्मा यों कहा गया है इससे ही आप सच्चिदानन्दरूप हैं यह भी कह दिया गया है. जैसे कि, 'पुरुष' पदसे आप सद्रूप हैं 'महान्' पदसे आप आनन्दरूप हैं 'आत्मा' पदसे आप चिद्रूप हैं अर्थात् आप 'सच्चिदानन्द स्वरूप' मूलरूप हैं.

अब मूलभूत स्वरूपके जो पांच प्रमेयरूप हैं उनका वर्णन करती हैं

१.आप मूलरूपका एक प्रमेयरूप भूतावास स्वरूप हैं मूलरूप उसे कहते हैं जो सबका आश्रय हो आपने माताको मुखमें सकल जगत् दिखाकर यह प्रमाणित कर दिया है कि मैं मूलरूप हूं.

२.'भूताय' शब्दसे कहा है कि भूतरूप भी आप हैं. भीतर (उदर)में रहे हुए भूत आदि आपसे पृथक् होवें तो आप अन्य हो और भूत अन्य हैं ऐसा सिद्ध होने पर द्वैत हो जाये, किन्तु आप सर्वभूत होनेसे द्वैतका नाश हो जाता है और आप किसीसे भी पृथक् नहीं हैं सबमें मिले हुए होनेसे भूतरूप हैं.

३.नियामक रूप भी आप हैं. श्रुति भगवती कहती हैं कि हे गार्गि! इस अक्षर–ब्रह्मकी आज्ञासे पृथ्वी आकाशादि कार्य कर रहे हैं. अतः नियममें रखनेवाले होनेसे आप मूलरूप हैं इसलिये आप 'पर' शब्दसे वर्णन किये जाते हैं.

४.सर्वोत्तम भी आप हैं इसलिये आपका 'परम' शब्दसे वर्णन किया गया है जो सर्वोत्तम नहीं है वह मूलरूप भी नहीं हो सकता है, आप सर्वोत्तम होनेसे मूलरूप हैं.

५.व्यापकरूप भी आप हैं, इसलिये आपका 'आत्मा' शब्दसे वर्णन किया गया है. जो व्यापक नहीं है, वह विभूतियोंवाला नहीं होता है और न वह मूलरूप हो सकता है. अतः आपको आत्मा कहकर, व्यापक सिद्ध किया गया है, जिससे आप मूलरूप हैं यह निश्चित् सिद्धान्त हो जाता है, अतः आप 'परम' 'सर्वोत्तम' तथा 'आत्मा' (व्यापक) होनेसे मूलरूप (परमात्मा) ही हैं.

मूलरूप जब सृष्टि लीला करते हैं तब प्रथम 'भगवान् होते हैं, पश्चात् 'पुरुष' अनन्तर 'महत्तत्व' उससे पश्चात् 'अहङ्कार' (जिसमें भूतोका निवास है)

पीछे 'भूत', पुनः पश्चात् सारा 'जगत्' होता है. उसमें भी 'पर' विराट्रूप और नारायण स्वरूप होते हैं इस प्रकार समग्र ब्रह्माण्डका विग्रह किस प्रकार बनता है वह सर्व कथा यहां (भागवत)में कही है ।।३९।।

१.अपने ऐश्वर्यादि षड्गुणोंको अपने स्वरूपमें प्रकट करते हैं अतः भगवान् कहे जाते हैं.

विसर्ग लीलाकर्ता ब्रह्मस्वरूप भगवान्को नमस्कार करती हैं :

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ।।४०।।

ज्ञान तथा विज्ञानके निधि, ब्रह्मरूप अनन्त शक्ति, निर्गुण, निर्विकार, और अप्राकृत वैसे आपको हम नमस्कार करती हैं।।४०।।

ज्ञान (जो शास्त्रसे होता है) विज्ञान (अनुभवसे) यह ज्ञान तथा विज्ञान निर्विषयक (किसी पदार्थके सम्बन्धवाला न हो) अथवा सविषयक (पदार्थके विषयोंसे सम्बन्धवाला) हो, आत्माके (किसी पदार्थके अपने) हो, या गुणोंके हो. इस प्रकार जो सब ज्ञान तथा विज्ञान हैं, उनकी निधि (उत्पन्न होनेका स्थान) आप हो. जो कोई ज्ञान तथा विज्ञानको समझना चाहते हैं उनको भी वे आपसे ही प्राप्त होते हैं, कारण कि प्रत्येक पदार्थ वहांसे प्राप्त किया जाता है जहां उन पदार्थोंका भण्डार हो, तो ज्ञान तथा विज्ञानके भण्डार आप हैं जिससे इनके चाहनेवाले, आपसे ही प्राप्त करनेकेलिये आपकी शरण लेते हैं.

इस प्रकार साधनका रूप बताकर अब फलके रूपका वर्णन करती हैं. जगत्का कर्ता फलरूप कैसे होगा? इस शङ्काके निवारणकेलिये उत्तरमें कहती हैं कि, आप अनन्त शक्तिमान हैं शक्तिमान सब कुछ कर सकते हैं अतः आप जगत् बना भी सकते हैं और फलरूप भी रह सकते हैं.

अनन्त शक्ति, गुणोंके सम्बन्ध बिना, नहीं आती है, गुणोंका सम्बन्ध, विकारोंको पैदा करता है. इस शङ्काकी निवृत्तिकेलिये कहती हैं कि, गुणोंका सम्बन्ध और उससे विकारका होना उनमें होता है जो प्राकृत होते हैं. आप अप्राकृत हैं, जिससे आपका गुणोंसे सम्बन्ध नहीं है. अतः आप निर्गुण हैं एवं अप्राकृत होनेके कारण निर्गुण हैं तो आपका निर्विकारी होना स्वतः सिद्ध है ही. अतः आपमें जन्म-मरणादि दोषोंका अभाव है, इत्यादि उपपत्तिसे आप जगत् कर्ता होते हुए भी फलरूप भी हैं. इसमें किञ्चित् मात्र संशय नहीं है. आप

सङ्गरहित होनेके कारण ही 'अप्राकृत' हैं. यह श्लोकमें आये हुए 'च' शब्दका आशय है.

विसर्ग लीलामें तो 'ज्ञान' शब्द अधिकारीका विशेषण है अर्थात् जो ज्ञानसे पूर्ण होगा वही सृष्टिकी रचना कर सकेगा. अतः ब्रह्मा ज्ञान पूर्ण हैं. अनेक प्रकारका ज्ञान, सृष्टिके बनानेमें उपयोगी होता है. इस प्रकार स्वरूप और कार्यके उपयोगी दोनों विशेषण कहकर अब विसर्गरूपका वर्णन करते हुए कहती हैं, कि 'ब्रह्मणे' आपका ब्रह्मारूप विसर्गका है. यहां 'ब्रह्मन्' शब्दसे चतुर्मुख ब्रह्मा कहा गया है. वह अनन्त शक्तिमान् है क्योंकि, उसको सर्व प्रकारके सृष्टिके कार्यकी उत्पत्ति करनी है. और सृष्टि कार्य करते हुए भी इस स्वरूपको बन्धन नहीं है, कारण कि वह निर्गुण है. सृष्टि कार्य करनेसे आपके स्वरूपमें कोई विकार नहीं होता है. क्योंकि, आप निर्विकार हैं. अपनी इच्छासे सृष्टि कार्य बन्द कर देते हैं कारण कि आप 'अप्राकृत' हैं. इससे विसर्ग लीलामें छः गुण ऊपर कहे हैं. तीन गुणोंसे, तीन दोषों (विकारों[१])का अभाव दिखाया है शेष तीन गुण, ज्ञान महत्त्व और सामर्थ्य गुणरूप रहे हैं ।।४०।।

१.बन्ध, दोष और जडता ये तीन दोष (विकार).

भगवान्को हेतु सहित जगत् रूपपन कहकर उस रूपको नमन करती हैं जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें किया है:

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे तस्य हेतवे ।।४१।।

कालरूप नाभिमें कालको आश्रय देनेवाले, कालके अवयवोंके साक्षी, विश्वरूप विश्वके द्रष्टा, विश्वके कर्ता और विश्वके कारण (हम आपको नमन करती हैं)।।४१।।

स्थान दो प्रकारके हैं, इस नियमन लीलामें नियामक दो हैं. 'शब्द' मर्यादा (वेदमें कही हुई मर्यादा)में काल नियामक है. 'अर्थ' मर्यादा अर्थ (स्थान जम्बूद्वीप तीर्थ आदिकी मर्यादा)में भूमि (शेषात्मक ब्रह्माण्ड भूमि) नियामक है. उसका वर्णन करते हैं कि, भगवान्की चेष्टारूप होनेसे काल ही जगत्का मूल कारण है. काल मृत्युरूप भी है, उस मृत्युरूप कालसे समस्त जगत् घिरा[१] हुआ है, वह मृत्युरूप काल, जगत्का भक्षणकर अपने स्थान भगवान्की नाभिमें जाकर निवास करता है. भगवान्ने मृत्युको अपनी नाभिमें आश्रय देकर रखा है उसका

प्रयोजन यह है कि जब भगवान्‌की सृष्टि करनेकी इच्छा होवे, तब मृत्युरूप कालने जिनका भक्षण किया है, उनको नाभिसे बाहिर निकालते हैं. यह काल भगवान्‌की क्रियारूप शक्ति है. उस क्रिया शक्तिरूप कालके, जो अवयव, इस समग्र विश्वके पदार्थ मात्रके, उत्पन्न होनेके कारण हैं उनके आप साक्षी हो अतः विश्वकी रचनामें, आपको किञ्चित्मात्र भी, क्लेश नहीं होता है, इस प्रकार 'अर्थ' मर्यादाको समझकर अब 'शब्द' मर्यादाका वर्णन करती हैं.

'शब्द' मर्यादा (वेदमें कही हुई मर्यादा)में सूर्य[२] कालका रूप है [३]'शब्द' कालकी नाभि है अर्थात् शब्दोंमें (वेदोंमें) रहता है.

कालके अवयव जिनके साक्षी हैं, वैसे सर्व वेद कर्म हैं. सूर्यका कालात्मारूप, तृतीय स्कन्धमें वर्णन किया है. वर्ण मात्रारूप है अतः वर्णमें कालकी अपेक्षा रहती है. कालमें ही कर्म किये जाते हैं अतः कालके अवयव उनके साक्षी हैं, क्योंकि कर्म नित्य है. इस प्रकार आप (भगवान्) विश्वके कारणरूप हैं यह प्रतिपादनकर, अब 'विश्वाय' शब्दसे कहती हैं कि, विश्वरूप भी आप हैं. वह विश्व आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिकरूपसे तीन प्रकारका है. उस विश्वके उपद्रष्टा आप, विश्वके आधिदैविकरूप हो यदि आप आधिदैविकरूप न होते तो विश्व भी न होता अतः प्रथम आधिदैविकस्वरूप आपको कहा है. अनन्तर विश्वके 'कर्ता' आप आध्यात्मिकरूप हो, उसके बिना भी जगत् बने नहीं, अतः द्वितीय आध्यात्मिक स्वरूप आपका वर्णन किया है. पश्चात् तीसरे आधिभौतिक विश्वके रूपका वर्णन करती हुई कहती हैं कि इस विश्वके हेतु (महाभूत अधिकरण,) भी आप हैं. इस प्रकार इन चार 'विश्वाय' 'तदुपद्रष्ट्रे' 'तत्कर्त्रे' और 'तस्य हेतवे' पदोंसे अर्थ (पुरुषार्थ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)की मर्यादाका भी निरूपण हुआ. कैसे निरूपण हुआ उसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि 'विश्व' ही 'अर्थरूप' है, उस विश्वका उपद्रष्ट्रा ही 'मोक्षरूप' है, उसका कर्ता 'कामरूप' है और उसका हेतु 'धर्मरूप' है ।।४१।।

१.'मृत्युनैवेदमावृत्तमासीत्' 'काण्व शाखाके बृहदारण्यक'के प्रारम्भ अग्नि ब्राह्मणमें यह श्रुति है वहां इस विषयका विस्तारसे वर्णन है.

२.आधिभौतिक कालका रूप दृश्यमान सूर्य है. योजना

३.ऋक्, यजुः और साम तीनों वेदोंमें कालात्मा सूर्य हैं वह कालात्मा सूर्य, वेदोंमें रहता है. उसके द्वारा वेद वर्ण (अक्षर-शब्दों)की व्यवस्था प्रकट करता है, अतःवेद कालनाभि है प्रकाश.

प्रकार भगवान्के विश्व रूपका वर्णनकर, उस विश्वके भोक्ता संघात और जीवरूपका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करती हैं :

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ।।४२।।

पंचमहाभूत, तन्मात्रा, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और चित्त, आत्मा (अहंकाररूप) तथा त्रिगुणरूप अभिमानसे, अपने अंशरूप आत्माओंके अनुभवको आच्छादित कर दिया है. वैसे आपको हम नमन करती हैं।।४२।।

सङ्घात और जीवरूप दोनोंमेंसे, प्रथम सङ्घातरूपका वर्णन करते हैं, भूत(महाभूत) मात्रा(तन्मात्रा) इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और आत्मा (अहङ्कार) ये सङ्घातरूप हैं. ऐसे आप सङ्घातरूप तथा जीवके रूप भी आप हैं, किन्तु त्रिगुणरूप अभिमानसे अपनी आत्माकी अनुभूति गूढ़ की है, वैसे आपको, हम नमस्कार करती हैं.

यह ही आपका(भगवान्का) पुष्टिरूप है, जिसकी आपने मर्यादाके विरुद्ध स्थिति की है. कैसे? वहां कहती हैं कि, आप सङ्घातरूप तथा उसी समय जीवरूप भी होकर दोनों रूपोंका अनुभव करते हैं, साथमें अपने आत्मरूपका भी आनन्द लेते हैं, यह मर्यादाके विरुद्ध है. इसलिये यह ही आपका पुष्टिरूप है, केवल इसको, अन्य समझ न सकें अतः अपनी आत्माकी अनुभूतिको, गुणोंके द्वारा गुप्त रखते हैं ।।४२।।

इस प्रकार उपर्युक्त ४ श्लोकोंमें, प्रमेयरूप, 'अर्थ' सृष्टिका वर्णन किया, कारिकाओंके अनुसार, ५ श्लोकोंमें प्रमेयरूपका वर्णन होना चाहिए अतः इस श्लोकमें प्रमेय रूप 'शब्द' सृष्टिका वर्णन करती हैं जिससे ५ श्लोककी संख्या जो कारिकाओंमें कही हुई है वह कहना योग्य सिद्ध हो गया है:

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ।।४३।।

अनन्त, सूक्ष्म, कूटस्थ, सर्वज्ञ, अनेक वादोंके अनुरोधवाले वाच्य (अर्थ) और वाचक(शब्द) दोनोंमें जिनकी शक्ति है वैसे आपको हम प्रणाम करती हैं।।४३।।

नाम(शब्द) सृष्टि और रूपसृष्टिमें चार प्रकारके भेद हैं, १.रूपसृष्टि अन्तवाली है और नाम सृष्टि अनन्त है. २.रूपसृष्टि स्थूल है और नाम सृष्टि

सूक्ष्म है. ३.रूपसृष्टि विकारवाली है और नामसृष्टि विकार रहित है. ४.रूपसृष्टि जड़रूप है. और नामसृष्टि ज्ञानरूप है यों रूप और नाम सृष्टिकी विलक्षणता बताई.

यदि नामसृष्टि इस प्रकारकी ही होगी तो जगत्के विलय हो जानेकी आपत्ति आ जायेगी अर्थात् जगत्का अस्तित्व ही नहीं रहेगा. इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहती हैं कि आपके अनेक प्रकारके जो-जो वाद प्रचलित हैं उनका अनुसरण करनेवाले हैं.

जगत्में १.शास्त्रोंके अनुसार सिद्धान्त है, २.शास्त्रीय सिद्धान्तसे, मिलता-जुलता, सिद्धान्ताभासः है, जैसे ब्राह्मणमें, ब्राह्मणके धर्म पूर्ण न होवें तो, उसको ब्राह्मणाभास कहा जाता है. वैसे ही मायावादादि सिद्धान्त, पूर्ण शास्त्रीय सिद्धान्त, न होनेसे सिद्धान्ताभास है. ३.'पाषण्डरूप' सिद्धान्त, जो वेद विरुद्ध सिद्धान्त है. इस प्रकार अनेक वाद हैं, किन्तु आपके जो सिद्धान्त जिस प्रकार आपका वर्णन करते हैं, आप उनकेलिये वैसे ही बन जाते हैं, कारण कि, 'शब्द' और 'अर्थ' दोनोंमें आपकी शक्तियां विद्यमान हैं. अतः 'शब्द'का अर्थ जो जैसे करना चाहते हैं वैसा ही हो सकता है. क्योंकि शब्दका अर्थ जैसा करना चाहो वैसी शक्ति उसमें विद्यमान है. यह भगवान्की ऊति लीला है, ऊति कहते हैं कर्म वासनाको अतः जिस अधिकारीकी जैसी वासना होती है वह उसके अनुकूल अर्थ करता है ।।४३।।

इस प्रकार सामान्य रूपसे नाम सृष्टिकी लीलाको कहकर अब विशेष प्रकारसे नाम(शब्द) सृष्टिलीलाका वर्णन इस श्लोकमें करती हैं:

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ।।४४।।

प्रमाणके आदि कारण, कवि, शास्त्र(वेद)के कारण प्रवृत्ति तथा निवृत्ति करानेवाले, निगम(वेद)रूप आपको हम नमस्कार करती हैं।।४४।।

वेद आदि शास्त्रोंको हम प्रमाण इसीलिये मानते हैं और इसीलिये उनका आदर करते हैं कि वेदादिके प्रतिपाद्य विषय आप ही हैं और वेद आदि शास्त्रोंका प्रतिपादन आपने ही किया है, यदि यों न होवे तो उनको कोई प्रमाण न मानें, यदि नित्य हो तो भी, भगवान्से पृथक् होनेके कारण, उसका प्रामाण्य कोई न मानें तथा उसकी नित्यता भी न रहे, अतः प्रमाण मूलभूत कारण आप ही हैं और उसमें

जो रस है, उसके स्वरूपको जाननेके कारण तथा वक्ता एवं शब्दरूप होनेसे आप कवि हैं. आप 'शब्द'के उपादान कारणरूप हो अतः आपको 'शास्त्रयोनिः' (वेदका कारण) कहा गया है. वेदके अवान्तररूपका वर्णन करती हैं कि, वेद आज्ञारूप हैं, वह (निगम–वेद) दो कार्योंका सम्पादन करता है (१)प्रवृत्ति, (२)निवृत्ति कराता है. किन्हीं कार्योंमें प्रवृत्तिकी आज्ञा देकर प्रवृत्ति कराता है किन्हीं कार्योंके करनेका निषेधकर उनसे निवृत्ति कराता है. इस प्रकार आप निगमरूप वा वेदरूप हैं इससे सद्धर्म कहे हैं जिससे सिद्ध है, कि यह सद्धर्म मन्वन्तर लीला है ।।४४।।

इस तरह वैदिक प्रमाण और वैदिक प्रमेयके रूपमें भगवान्के वर्णनके पीछे अब तन्त्रके प्रकारवाले चतुमूर्ति भगवान्का वर्णन करते हैं क्योंकि यह भगवान्का आविर्भूत रूप है जबकि वैदिक रूप आविर्भूत नहीं है:

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ।।४५।।

कृष्णरूप, रामरूप, वासुदेव पुत्ररूप, प्रद्युम्नरूप और अनिरुद्धरूप सात्त्वतोंके पति चतुमूर्ति आपको हम नमस्कार करती हैं।।४५।।

कृष्ण नाम कहनेसे नागपत्नियोंने यह बताया है कि आप (भगवान्) सदानन्द हैं अतः आपका प्रधान स्वरूप सदानन्द ही है. आपके दूसरे स्वरूप ये हैं १.राम (सङ्कर्षण) २.वसुदेवजीके पुत्र वासुदेव,(श्लोकमें आये हुए 'च' और शब्दसे यह ध्वनि प्रकट की है कि [१]वसुदेवके पुत्र एवं प्रद्युम्नरूप भी हैं कारण कि 'वसुदेव' शब्दसे दो का सङ्केत है १.वसुदेवसे शुद्ध सत्वरूप पर और दूसरा वसुदेव नाम पर तथा ३.प्रद्युम्न एवं, ४.अनिरुद्ध इन चार व्यूहोंके कारण आप चतुर्मूर्ति भगवान् कहे जाते हैं. सदानन्द श्रीकृष्ण भगवान् चतुर्मूर्ति स्वरूपसे जिनकेलिये प्रकट हुए उनका वर्णन 'सात्वतां पतये' पदसे कहती हैं कि आप शुद्ध सत्वगुणवालों (परम वैष्णवों)के पति हैं. 'सात्वत' शब्द यहां दो अर्थोंमें दिया है १.'सात्वत' शब्दसे वैष्णव. (२)'सात्वत' शब्दसे वह ज्ञान, जो भक्तिका भी फलरूप है, अतः आप भक्तिके फलरूप ज्ञानका स्वरूप हैं जिसका भाव यह है कि आप भक्तिके द्वारा ही प्राप्त होते हैं और आप भक्तिके प्रवर्त्तक भी हो. अतः इससे ईशानु कथा (अर्थात् विष्णुकी भक्ति)का निरूपण किया है ।।४५।।

१.भगवान्को जब देवकी द्वारा प्रकट होना था, तब आप वासुदेव व्यूहरूपसे वसुदेवके

हृदयमें पधारे अतः 'वसुदेव पुत्र' कहनेसे वासुदेव व्यूह समझना चाहिये. वंश वृद्धि करनेकेलिये भगवान् प्रद्युम्न व्यूहरूपसे वसुदेवके यहां प्रकटे हैं, इसलिये वह भी वसुदेव पुत्र होनेसे वासुदेव अर्थात् वसुदेवजीके पुत्र कहे जा सकते हैं. अनुवादक

इस प्रकार तन्त्र शास्त्रोंमें जिस भांति भगवान्के स्वरूपोंका वर्णन किया गया है वह निरूपणकर अब इस निम्न श्लोकमें स्मार्तमतवालों(स्मृति शास्त्रोंको मुख्य प्रमाण माननेवालों)ने सांख्य तथा योगादि शास्त्रोंसे, जिस प्रकार भगवान्के स्वरूपका वर्णन किया है उसी प्रकारके भगवान्के स्वरूपका वर्णन करती हैं :

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणावृत्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ।।४६।।

गुणोंके प्रकाशक, गुणोंसे अपने स्वरूपके आच्छादक गुणोंकी वृत्तियोंसे बोध करानेवाले, गुणोंके द्रष्टा, स्वतः स्वयं ज्ञानवाले, वैसे आपको हम नमन करती हैं।।४६।।

भगवान् गुणोंको प्रकाशित करनेकेलिये अपने पास रखते हैं अतः आपको 'सगुण' कहते हैं. इस प्रकार गुणोंको प्रकट करते हुए उनका माहात्म्य प्रसिद्ध करनेकेलिये उन गुणोंसे अपना आच्छादन कर देते हैं अर्थात् भगवान् अपना तेज गुणोंको देकर आप तिरोहित हो जाते हैं पश्चात् पुनः कौतुककेलिये, गुणोंकी वृत्तियां(नेत्र आदिका ज्ञान, देखना आदि)से अपना बोध कराते हैं. इस प्रकार सत्व, रज और तमोगुणके भाव इस प्रकार(गुणोंका प्रकाशन, उनसे अपना आच्छादन और पुनः गुणोंकी वृत्तियांसे अपना ज्ञान कराना) भगवान् यों किसलिये करते हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् गुणोंको देखते हुए, उनपर इस प्रकार उपकार करते हैं. उनपर इसी भांति उपकार करनेसे, भगवान्का कुछ भी अपकार नहीं हुआ है कारण कि आप 'स्वतः' स्वयं ज्ञानवाले हैं उनका अन्य कोई न ज्ञानदाता है और न उनके ज्ञानका कोई भी नाश कर सकता है, अतः जिन गुणोंके सत् चित् और आनन्द रूप धर्म हैं, उन-उन गुणोंके रूपसे स्वयं भगवान् स्वतः प्रकट होते हैं, प्रकट होकर उनपर उपकार करते हैं जिससे आप 'सगुण' कहे जाते हैं ।।४६।।

इसी भांति भगवान्के सगुणरूपका वर्णनकर अब इस निम्न श्लोकमें भगवान्के जिस रूपको जानना चाहिए उस रूपका निरूपण करती हैं:

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ।।४७।।

हे हृषीकेश! जिस आपके विहारको कोई नहीं जान सकता है, सर्व व्याकृतकी(तत्त्वादि) जिस आपसे सिद्धि होती है, मुनि और मौन स्वभाववाले भी आप हैं, वैसे आपको हमारा प्रणाम हो।।४७।।

इस श्लोकमें दो सिद्धान्त कहे हैं. एक 'उत्पत्ति' सिद्धान्त, अर्थात् उत्पत्ति कैसे एवं किससे हुई? और उत्पत्ति कर्ताका स्वरूप कैसा है? तथा दूसरा, 'ज्ञप्ति' सिद्धान्त अर्थात् भगवान्के मूलरूपका ज्ञान, हो जाये कि वह कैसे हैं?

श्लोकके पूर्वार्धमें, उत्पत्ति पक्ष(सिद्धान्त) कहते हैं (१)उत्पत्ति कर्ता (कारणरूप)के स्वरूपका वर्णन करते हैं 'अव्याकृतविहाराय' वह कारण स्वरूप (१)अव्याकृत होनेसे उसके विहारको कोई जान नहीं सकता है (२)प्रकृति और पुरुषरूपमें जो विहार करते हैं अर्थात् जिनका प्रकृति और पुरुष स्वरूप है उनमें वा उनके द्वारा, लीला कर रहे हैं (३)कोई भी जान न सके इसलिये जिसका विहार है अतः आप आनन्दाकार होते हुए भी मनुष्यरूपका दिखावा करते हैं जिससे आपके आनन्दाकारको कोई नहीं जान सकता है. इस प्रकार आपका कारणरूप अव्याकृत है. यह कहकर उसकी दृढ सिद्धिकेलिये कहती हैं कि 'सर्वव्याकृत-सिद्धये' सब जो तत्व, ब्रह्माण्ड और उनके भीतर जो कुछ है उनकी उत्पत्ति और ज्ञान जिससे होता है वह आप हैं. गीतामें इसीलिये कहा गया है कि इन भूतोंकी आदि अव्यक्त है. यदि वह अव्याकृत न होवे तो उससे उत्पत्ति नहीं हो सके, कारण कि, व्याकृतसे उत्पत्ति नहीं होती है. व्याकृत अर्थात् कार्य विकारवाला होता है. अतः कारणसे कार्यका प्रकार पृथक् होता है, जब कार्य(व्याकृत) विकारवाला है तब कारणका अव्याकृत होना निश्चित ही है.

इस प्रकार पूर्वार्धमें उत्पत्ति पक्षका निरूपणकर, अब उत्तरार्द्धमें 'ज्ञप्ति' पक्षका निरूपण करती हैं. नागपत्नियां भगवान्को प्रत्यक्ष सामने नमस्कार करती हुई कहती हैं कि आपको हमारा नमस्कार हो कारण कि आप इन्द्रियोंके ईश हो अतः उनके प्रेरक हो, इस लीलामें भी आप इस हृषीकेश नामके भावको सिद्ध करते हुए इन्द्रियोंको प्रवृत्त करते हुए इस लीलामें उपस्थित हो. अथवा आप इसी अवस्थामें दर्शन दो. यदि इस प्रकार प्रकट दर्शन होंगे, तो अव्याकृतका ज्ञान फिर कैसे होगा? इस आकाङ्क्षामें कहते हैं, कि मनन करनेसे, उस अव्याकृतका ज्ञान हो जायेगा, क्योंकि, आप 'मुनि' हो. 'मुनि' द्रष्टा होते हैं. वही रूप आपका है. कुछ और कहती हैं कि, अव्याकृत, भगवान्का ज्ञान, प्राप्त करनेकेलिये दूसरा

साधन है, वाणीका शान्त होना. इसलिये कहा है कि, 'मौनशालिने' मौन ही जिसका सहज स्वभाव है. अर्थात् जीव जब मौनावस्था सिद्ध करता है तब उसको पा सकता है. जब वाणी शान्त होती है तब कौनसी ज्योति है? ऐसे प्रश्नके उत्तरमें कहा है कि इस अवस्थामें(जब वाणी शान्त हो जाती है) यह पुरुष स्वयं ज्योति स्वरूप है. वह एक भगवान्का ही अव्याकृतरूप है. (जो कहता है कि मैंने नहीं जाना है उसने जान लिया है) जैसे वचनोंकी सङ्गति भी यहीं इस भगवान्के रूपमें बैठ जाती है ।।४७।।

इस निम्न श्लोकमें भगवान्का जो शास्त्रार्थ रूप(शास्त्रोंमें जिस रूपका वर्णन) है जिसको पण्डित व्यवहारमें लाते हैं उसका वर्णन करते हैं:

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रे तस्य हेतवे ।।४८।।

छोटे और बडोंकी गतिको जाननेवाले, सर्वके स्वामी तथा विश्वसे पृथक् और विश्वरूप उसके दृष्टा एवं उसके कारण रूप आपको हम नमन करती हैं।।४८।।

शास्त्रोंमेंसे यह ज्ञान होता है कि बड़े (ब्रह्मादि देवता) तथा छोटे(हमारे जैसों)की गतिको आप जानते हैं इस प्रकार शास्त्रोंसे होनेवाले बाहिरके ज्ञानके रूपका वर्णनकर, भीतरके ज्ञानको कहती हैं कि आप सबके साक्षीरूप भी हो अतः ऐसे भगवान्के रूपको प्रत्यक्ष प्रणाम करती हैं.

अब उत्तरार्धमें शास्त्रोंमें कहे हुए रूपोंको, सङ्क्षेपमें कहती हैं, कि आप विश्वसे पृथक् तथा विश्वरूप भी हो वैसे दो रूप आपके कैसे हैं? इसको आचार्यश्री दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे वृक्षका एक रूप शाखादि है और एकरूप फल है वे पृथक् भी कहे जाते हैं किन्तु वे दोनों ही रूप वृक्षके ही हैं, वृक्ष उनसे अन्य नहीं और वे(शाखादि एवं फल) उससे(वृक्षसे) अन्य नहीं वैसे ही आप भी दोनों रूप होते हुए भी एक ही हैं. श्लोकमें आये हुए 'च' शब्दका आशय यह है कि दोनों रूप, दोनों स्थानोंपर(विश्वमें और विश्वसे बाहर भी) हैं.

इस प्रकारका वर्णन शास्त्रोंमें होनेसे, कितने ही भगवान्को केवल 'विश्वरूप' कहते हैं और कितने ही कहते हैं, कि विश्वसे बाहर(पृथक्) हैं और कितने ही कहते हैं कि भगवान् तो विश्वरूप भी हैं और विश्वसे बाहर भी हैं अतः एक ही भगवान् दोनों रूप हैं एवं जो कहते हैं कि विश्वसे बाहरका रूप और

विश्वका भीतरीरूप दोनों अलग हैं एकदेशीय[1] हैं.

किञ्च(कुछ और कहती हैं कि) भगवान् विश्वसे बाहर हैं उसमें प्रमाण देती हैं कि आप विश्वके द्रष्टा हैं. द्रष्टा दृश्यसे बाहर ही रहता है, आप विश्वरूप हैं, इसमें प्रमाण देती हैं कि आप विश्वके कारणरूप हैं कार्य, कारणका ही रूप है उससे (कारणसे) कार्य अन्य वस्तु नही है. इस प्रकार इन ४६वें, ४७वें और ४८वें श्लोकोंमें क्रमसे 'निरोध' 'मुक्ति' और 'आश्रय' के स्वरूप[2] कहे हैं।।४८।।

१.इस मतका खण्डन (३।२।१२)वें ब्रह्मसूत्रमें आचार्यश्रीने किया है.

२.४६वें, ४७वें और ४८वें श्लोकोंमें 'निरोध' 'मुक्ति' और आश्रय कैसे कहे हैं उसको स्पष्टकर समझाते हैं कि ४६वें श्लोंकमें भगवान्ने गुणोंके ऊपर अर्थात् सगुण जीवोंपर उपकारकर उनको प्रकाश दिया है इससे उनका निरोध किया है, अतः इस श्लोकसे 'निरोध'लीला कही है. ४७वें श्लोकमें भगवान् अव्याकृत विहार करते हैं यों कहा है, जिसका तात्पर्य है कि भगवान् जीव स्वरूपमें स्थिति करते हैं. जीव भगवान्में स्थित हुआ उसे मुक्ति कहते हैं, अतः यह मुक्तिलीला हुई. ४८वें श्लोकमें ज्ञानका तथा क्रियाका आश्रय भगवान् हैं वैसे कहा है अतः इसमें आश्रय लीला कही गयी है.

इसे कहनेसे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान्की की हुई दशलीलाओंसे भगवान्के जो दश स्वरूप हुए हैं उनको नागपत्नियां प्रणाम करती हैं.

इस प्रकार भगवान्के दश लीलावाले सर्व स्वरूपको प्रणामकर अब प्रार्थना करती हैं, जिसमें प्रथम कहती हैं, कि जैसे इसका अपराध कहा जाता है, वैसे इसका अपराध नहीं है. उसको इस श्लोकमें युक्ति देकर सिद्ध करती हैं कि आप ही सर्वके स्वभावोंको जगाते हो अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव बताते हो उस स्वभावके अनुसार कार्य करता है अतः जैसा इसका स्वभाव आपने बताया है उसके अनुसार यह कर्म करता है :

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षयामोघविहार ईहसे ।।४९।।

हे प्रभो! काल शक्ति धारण करनेवाले आप इच्छा रहित होते हुए भी गुणोंसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हो. आपकी लीला अमोघ (व्यर्थ नही किन्तु सत्य) है, अतः आप उन-उन वस्तुओंके जैसे-जैसे स्वभाव हैं, वैसे-वैसे ही, उन स्वभावोंको जागृतकर, सत्पुरुषोंका पूर्ण ध्यान करते (रखते) हुए लीला करते हैं।।४९।।

भगवान् 'निरीह' कहे जाते हैं अर्थात् निरीह होनेसे भगवान्को किसी

प्रकार कुछ भी करनेकी इच्छा नहीं होती है, तो इस जगत्का जन्म, स्थिति और लय, भगवान्ने कैसे किया? इस शङ्काका समाधान करते हुए इस श्लोकमें इस विषयको समझाते हैं कि भगवान् जब अपनी काल शक्तिको धारणकर उसका अधिष्ठान बनते हैं, तब जैसे सिंहासनपर धरी हुई पुतलियां, हवाके लगनेसे चलने लगती हैं वैसे ही काल शक्तिको धारण करनेपर, गुणोंमें क्षोभ होता है जिसके द्वारा जगत्के सृष्टि आदि सर्व कार्य होते हैं. इस कार्योंके होनेमें 'गुण' उपादान कारण है. 'काल' निमित्त कारण है और 'स्वभाव' नियामक है. उसको 'तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन्' पदसे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तुका जो स्वभाव है वह उसका नियामक है और उनको (स्वभावों-नियामकोंको जागृत् करनेवाला काल ही है) वह काल, किस स्वरूपसे जागृत् करता है? जिस कालका स्वरूप स्वभावोंके भीतर[१] स्थित है. इस प्रकार सत्पुरुषोंकी पालना करते हुए आप लीला करते हैं.

लीलाके समयमें आपके दो कार्य हैं. जब आप अवतार नहीं लेते हैं और 'अक्षर'पर आरूढ़ होते हैं तब अक्षरसे, काल शक्ति, गुण और स्वभाव प्रकट हो जाते हैं. अनन्तर उनमेंसे जगत्की अनेक प्रकार (सदोष और निर्दोष)की उत्पत्ति होती है. उस अनेक प्रकारवाले जगत्में, आप सब प्रकारके सन्मार्ग तथा सत्पुरुषोंकी पूरी तरह देख रेखसे पालन करते हुए लीला करते हैं. इसी भांति लीला करनेसे उनके (सत्पुरुषोंके) सर्व पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं तथा जगत्की भी रक्षा होती है जिससे शीघ्र बार-बार जगत् बनाना नहीं पड़ता है, वैसा होनेका कारण कहती हैं, कि आपकी, की हुई लीला सत्य होनेसे व्यर्थ नहीं जाती है. इससे स्वभावको जाग्रत् करने तथा सत् कार्य एवं सत्पुरुषोंको रक्षा दोनों कार्योंका कारण कहा ।।४९।।

१.स्वभावके भीतर स्थित स्वरूप कालका आधिदैविक स्वरूप है.

सर्पका स्वभाव दुष्ट क्यों है? और भगवान् शिक्षक कैसे हैं? उन दोनोंके कारण बतलाकर अब भगवान्ने जो कार्य किया (सर्पको शिक्षा दी) उसका वर्णन करते हैं :

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुः सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ।।५०।।

त्रिलोकीमें शान्त, अशान्त तथा मूढ सात्त्विक, राजस और तामस,

जितने शरीर हैं वे सब आपके क्रीडाके साधनरूप होनेसे आपके ही शरीर हैं. तो भी अब आपको शान्त रूप प्रिय हैं, क्योंकि, सत्पुरुषोंके धर्म पालनकी इच्छासे, प्रवृत्ति करते हुए आपने उन्हींकी रक्षाकेलिए अवतार धारण किया है।।५०।।

जब भगवान् अपनेलिये ही (क्रीड़ा करनेकेलिये ही) सब जगत् बनाते हैं, तब सब शरीर भगवान्की लीलामें उपयोगी होनेसे, उनके ही शरीर होते हैं. वे शरीर तीन प्रकारके होते हैं १.शान्त अर्थात् सात्विक, २.अशान्त अर्थात् राजस और ३.मूढ योनिवाले तामस, वे तीन प्रकारके शरीर आपके ही शरीर हैं. यहां द्वितीय प्रकारकी सृष्टिमें यों होता है. उस द्वितीय प्रकारकी सृष्टिमें ही, दैत्यांशोका उपकार होता है.

मूढ योनिवाले तामसोंमें भी भगवान्के शरीरोंको मानना अनुचित है (योग्य नहीं है) इस प्रकारकी शङ्का होनेसे, उसको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'ते' शब्द देकर कहा है कि वे मूढ योनिवाले भी आपके शरीर हैं मूलमें आये हुए 'उत'का तात्पर्य भी यह है कि मूढ योनिवाले आपके शरीर हैं. यदि सब शरीर भगवान्के ही हैं तो अवतारकी लीला कैसे बन सकेगी? इस शङ्काका निवारण श्लोकके उत्तरार्धसे करते हैं कि, इस समय आपको शान्ति ही प्रिय है. कारण कि, आपने धर्म रक्षाकी इच्छासे अवतार धारण किया है. इसीलिये आप सत्पुरुषोंका पालन कर रहे हैं. शेष दो (राजस और तामस) प्रिय नहीं हैं, क्योंकि राजस सृष्टि बढ़ाकर पृथ्वीपर अधिक बोझ डालते हैं और तामस नाश करनेवाले विरोधी हैं. इससे भगवान्के अवतार लेनेके दोनों कार्य (दुष्टोंका निग्रह करना और सत्पुरुषोंका पालन करना) बता दिये ।।५०।।

सर्प वैसा दुष्ट है, तो भी आपको इसका अपराध सहन करना चाहिए. इस प्रकारकी प्रार्थना इस निम्न श्लोकमें करती हैं :

अपराधः सकृद् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ।।५१।।

पालन कर्ता स्वामीको एक बार अपनी प्रजाका अपराध सहन करना चाहिए. हे शान्त स्वरूप! आपके स्वरूपसे, अनजान इस मूर्खपर, आपको क्षमा करनी चाहिए।।५१।।

यद्यपि आपका इस समय अन्योंकी (सात्विकोंकी) रक्षा पालनेमें आग्रह है, तो भी, हम लोगोंके भी, इस समय आप ही पति हैं. इसको न समझकर

समयका विचार भी न कर, जो इसने, हमारे पति सर्पने अपराध किया है वह आपको सहन करना चाहिये. क्यों सहन करें? इसके उत्तरमें कहती हैं कि यह अपराध जिसने किया है, वह आपकी प्रजा है. प्रजा पालनेके योग्य ही होती है, यदि उसका अपराध सहन न कर, उसका नाश करोगे, तो आपका पालकपन चला जायेगा. अतः कार्य चलता रहे, इसलिये प्रजाका अपराध एक बार सहन करना चाहिये. यदि दूसरी बार करे तो, उसको मारना चाहिये. क्योंकि एक बार, क्षमा मिलनेपर भी यदि पुनः अपराध यह विरोधी करे तब वह दण्डके योग्य है. अब तो आप क्षमा सहन करते हुए, अपने प्रजा पालन धर्मको सिद्ध करें.

आपको क्षमा इसलिये भी करनी चाहिये, कि आप शान्त आत्मा हो, जिससे आप सत्त्वके धाम हैं. इसीसे, आपमें क्षोभ नहीं होता है इसके अतिरिक्त आपने इसको दण्ड दिया है जिससे ही कार्य सिद्ध हो गया है. अब आगे इससे किसी प्रकार विघ्न आदि नहीं होंगे, अतः अब एक बार अपराध सहन कीजिये.

इसने यह अपराध अनजानमें किया है वैसे हम कैसे जानें? जानकर किया हो, तो एक बार भी सहन नहीं करना चाहिये, इस शङ्काको मिटानेकेलिये उसको विशेषण 'मूढ' दिया है, अर्थात् वह अज्ञान है, सर्पयोनि तामस होनेसे, 'मूढ' ही है, अतः आपके स्वरूपका उसको परिचय नहीं है इसलिये जो अज्ञानसे किया गया अपराध है वह नहीं किये हुएके समान है ।।५१।।

क्षमा करते हुए जो कुछ करना है उसको इस श्लोकमें कहती हैं :

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ।।५२।।

हे भगवान्! अनुग्रह कीजिए, यह सर्प मरता है, साधु पुरुषोंकेलिए शोचनीय हम स्त्रियोंपर कृपाकर पतिरूप प्राण दीजिए।।५२।।

आप इस सर्पपर अनुग्रह कीजिये, इसपर अनुग्रह करनेमें, इसका (सर्पका) गुण कारण नहीं है, किन्तु आप 'भगवान्' हो अतः आपका 'भगवत्व' ही दया करनेमें कारण है. यदि भगवत्व कारण है तो सर्वत्र सदा ही अनुग्रह करना चाहिये? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, अब अनुग्रह करनेका समय है, क्योंकि यह मर रहा है. जैसे, कृपा करनेमें, भक्ति आदि, कारण हैं, वैसे ही 'समय' भी, एक प्रकारसे हेतु है, इस कारणसे ही ग्रहण आदि कालमें, जो सेवा आदि नहीं करते हैं, उनको भी 'समय'के कारण, दान दिया जाता है वैसे ही अब भी कृपा करनेका

समय है, अतः कृपा कीजिये. इसपर दया करनेमें दूसरा कारण यह भी है कि यह पन्नग(सर्प) अल्प जीव है इसलिये भी अनुग्रह कीजिये. जब यह छोटा सा साधारण जीव है, तो इसके जीनेसे क्या लाभ है? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि हम स्त्रियोंका यह पतिरूप प्राण है. स्त्रियोंकी रक्षा सर्व प्रकारसे करनी चाहिये.

स्त्रियां भी दुष्ट होती हैं जैसा कि श्रुति कहती है कि 'शालावृकाणां हृदयान्येता' (स्त्रियां सियारके जैसे हृदयवाली होती हैं) अतः उनकी रक्षा कैसेकी जाये, इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहती हैं, कि सत्य है स्त्रियां दुष्ट हैं किन्तु वह दोष देहका दोष है न कि जीवका दोष है जीवका दोष न होनेके कारण ही, साधु पुरुष स्त्रियोंपर दयाकर, शोक करते हैं कि ये जीव स्त्री शरीरमें कैसे आकर पड़े हैं? जिस शरीरमें भय, पराधीनता और मुक्तिका अभाव है. आप साधुओंके पूर्ण रीतिसे पालन करने योग्य हैं अतः उनके (साधुओंके) शोक मिटानेकेलिये हमारे प्राणोंकी रक्षा कीजिये ।।५२।।

सर्व जीव मात्र मुक्ति चाहते हैं अतः आप भी प्राणोंकी रक्षा मांगनेसे मुक्ति क्यों नहीं मांगती हो? इसका उत्तर निम्न श्लोकमें देती हैं:

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ।।५३।।

हम आपकी दासियां हैं, जो आज्ञा करनी हो वह करो, हम वैसे ही करेंगीं आपकी आज्ञाके अनुसार जो श्रद्धासे बर्ताव करते हैं, वे सर्व प्रकारके भयसे छूट जाते हैं।।५३।।

हम आपको आत्मनिवेदन करनेसे आपकी दासी बन चुकी हैं, इसलिये आपकी आज्ञाका पालन करना हमारा स्वधर्म हुआ है. जिससे आपकी दासियोंको आपकी आज्ञा ही पालनी चाहिये. उसके पालनेसे क्या होगा? वह स्पष्टकर बताती हैं, कि जो आपकी आज्ञाका पालन श्रद्धासे करता है, वह सर्व प्रकारके भयसे छूट जाता है. मुक्तिकी प्राप्ति तो आपकी आज्ञा पालन करनेसे भी हो जायेगी. यदि यों ही (आपकी आज्ञाके बिना) अब हम मुक्ति मांग लेवें तो हमारे दास्य भाव तथा आत्मनिवेदन तो, व्यर्थ हो जायेंगे. मुक्ति प्राप्त करनेपर, भक्ति रसका जो अनन्त आनन्द है, उसका अनुभव भी नहीं मिलेगा. अतः अब यह (पति रूप प्राण) दीजिये यह ही प्रार्थना है ।।५३।।

इस प्रकार नाग पत्नियोंकी प्रार्थना करनेके अनन्तर जो भगवान्ने किया

उसका वर्णन श्रीशुकदेवजी इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः ।

मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ।।५४।।

इस प्रकार नागपत्नियोंसे स्तुति किये हुए भगवान्ने भग्न शिरवाले तथा मूर्छित सर्पको अपने चरणोंके प्रहारसे दूर फेंक दिया।।५४।।

इस प्रकार जब नागपत्नियोंने भगवान्की, स्तुतिकी, तब भगवान्ने मूर्छाको प्राप्त (अन्तःकरणमें खेदवाले) टूटे हुए शिरवाले (शिरोंके टूटनेसे बाहिर भी खेदवाले) सर्पको, जहां उसकी स्त्रियां थीं, वहां पाद प्रहारसे फेंक दिया. आपने जलमें विहार करते हुए ही उसके फेंकनेकी यह क्रीड़ा की ।।५४।।

इसी भांति सर्पको फेंकनेसे जो कुछ हुआ उसका वर्णन करते हैं.

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालीयः शनकैर्हरिम् ।

कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् देवः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ।।५५।।

जिसको इन्द्रियां और प्राण मिले हैं, वैसा कालीय, देव बन, धीरे-धीरे कष्टसे श्वास लेता हुआ हाथ जोड भगवान्को प्रार्थना करने लगा।।५५।।

व्यासजीने "**मुग्धेऽर्ध सम्पत्तिः परिशेषात्**"(ब्रह्मसूत्र३।२।१०)में कहा है कि जो मूर्छित हो जाता है उसमें आधी सम्पत्ति होती है अतः यह सर्प मूर्छित होनेसे प्राण और इन्द्रियोंकी शक्तिका आधा भाग खो के बैठा था, किन्तु भगवान्के चरण स्पर्शकर फेंक देनेसे गई हुई इन्द्रियां और प्राणोंकी आधी शक्ति, पुनः उसमें लौटकर आ गई, जिससे वह बोलनेकी सामर्थ्यवाला हुआ. यों तो वह नामसे कालीय है, उसको अब सद्बुद्धि आई है जिससे उसकी प्रसिद्धि हो गई, इसलिये श्लोकमें इसका विशेषण 'देव' शब्द दिया है. सद्बुद्धि होनेसे, हाथ जोड़ हरि (पाप भय आदिको हरण करनेवाले) श्रीकृष्णकी धीरे-धीरे स्तुति करने लगा. धीरे-धीरेका भाव है कि वह अब भगवान् हरि हैं दुःख हरने वाले हैं, यह जान गया था, अतः मैं अब मरूंगा नहीं उसको निश्चय हो गया था इसलिये स्तुति, प्रेमसे धीरे-धीरे निर्भय होकर करने लगा. स्तुतिके समय जब शब्द बोलता था तब उसके श्वासोंको कष्ट होता था तो भी स्तुति करनेसे रुका नहीं ।।५५।।

अब निम्न श्लोकमें कालीय भगवान्के आगे अपना किया हुआ अपराध स्वीकार कर तदर्थ क्षमा मांगकर कृपाकी याचना करता है:

कालीयः उवाच

वयं खलाः सहोत्पत्या तामसा दीर्घमन्यवः ।

स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ।।५६।।

कालीय बोला हे नाथ! हम जन्मसे ही खल, तमोगुणी, बहुत क्रोधी हैं, लोगोंका जो मिथ्या आग्रह हो जाता है, जिससे स्वभावका बदलना कठिन होता है।।५६।।

हम स्वभावसे ही अन्योंकेलिये उपद्रव करनेवाले तथा दुष्ट स्वभाववाले हैं यह दोष आगन्तुक नहीं है किन्तु सहज है. अतः इसकेलिये शिक्षा देनी व्यर्थ है. क्योंकि यह दोष मिटनेका नहीं है. यदि सर्वदा केलिये नाश कर दिया जाये तो उत्पत्ति करनी व्यर्थ है. मारे नहीं, किन्तु शिक्षासे कुछ तो गुण होगा, यों कहा जाये तो वह भी नहीं होगा, कारण कि हम तामस प्रकृतिके जीव हैं. जिनमें कुछ समझ हो, विचार कर सकें, उनकेलिये शिक्षा, उपकार कर सकती है. तामसोंमें विचार करनेकी कोई बुद्धि नहीं है, अतः उनको शिक्षा देनेसे उपकारके स्थानपर उलटी शिक्षा देनेवालेकी हानि होती है. क्योंकि हम बहुत क्रोधी हैं कहनेसे यह बताया गया कि यदि हमको मारेंगे तो दूसरे मेरे सम्बन्धी आपके सेवकोंका अपकार करेंगे, अतः हम दुष्ट होनेसे, किसी भी उपायसे, सर्वथा दुष्टता नहीं छोड़ सकते हैं ।।५६।।

हम ऐसे दुष्ट क्यों हुए, उसका कारण भी आप ही हैं इसका निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं:

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातुर्गुणविसर्जनम् ।

नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ।।५७।।

हे धाता ! गुणोंसे विविध प्रकारका यह विश्व आपने रचा है जिसके स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज, आशय और आकृति ये सब पृथक्-पृथक् हैं।।५७।।

यह विविध विश्व आपने बनाया है, तो भी, इसके विविध प्रकारके होनेमें, आपका दोष नहीं है, कारण कि, आपने सकल विश्व गुणोंके द्वारा एक साथमें ही बनाया है, पृथक्-पृथक् बनाकर उसमें कुछ फेर फार करते तो आपका दोष माना जाये. अब आपका कोई दोष नहीं है. जगत्का स्रष्टा जो ब्रह्मा कहा जाता है वह भी आप ही हैं. गुणोंके द्वारा सृजन करनेसे गुणोंका त्रिविधपन सबमें

विद्यमान है जिससे उसमें स्वाभाविक भेद रहता है. जैसे कि जीवमें, जो प्रकृतिका धर्म रहता है, उसको स्वभाव कहते हैं. इसी प्रकार वीर्य, इन्द्रियोंका धर्म है और बल प्राणोंका धर्म है योनि (कारण) जीवोंका वर्ग-उत्पत्ति स्थान माताका धर्म है, क्योंकि बीज पिताका धर्म है आशय (कर्मसे उपजी हुई वासनारूप संस्कार) अन्तःकरणका धर्म है. ये सब ही प्रत्येकके और समुदायोंके भिन्न-भिन्न अनेक होते हैं. अतः इनमें नानाप्रकार और विचित्रपन देखनेमें आता है ।।५७।।

हम सर्पोंका तो, उपर कहे हुए, स्वभाव आदि सब तमो गुणवाले हैं जिसका निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं :

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्वयः ।
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ।।५८।।

हे भगवन्! उस (सृष्टि)में, हम तो जन्म ही से, बडे क्रोधी सर्प हैं, स्वयं मोहको प्राप्त हुए हैं, वह आपकी माया जो छोडी नहीं जा सकती है उसको कैसे छोडें।।५८।।

श्लोकमें आये हुवे 'च' शब्दका अर्थ १.'तो' 'और' है २.भौतिक अग्नि आदिका सङ्ग्रह करना है. सृष्टिमें हम सर्प, जातिसे, बहुत क्रोधी हैं जिसको आप जानते ही हैं, क्योंकि आप भगवान् हैं. हम क्रोधी हैं जिससे न केवल, जातिसे दुष्ट हैं, किन्तु क्रोधी होनेसे स्वभावसे भी दुष्ट हैं. आपकी मायाका त्याग हम कैसे करें? मायाका त्याग तो गुणातीत अवस्थामें, जब गुणोंका प्रभाव मिट जावे उस अवस्थामें, वा सात्त्विक अवस्थामें जब रजोगुण और तमोगुण दोनों नष्ट हो जावें, केवल अन्तःकरणमें सतोगुणका प्रभाव रहे, उस अवस्थामें हो सकता है, अन्यथा नहीं. हम तो क्रोधके अधीन हैं, वे तो छोड़नेमें सर्वथा असमर्थ हैं. आपकी माया दुस्त्यज है. यदि कहो कि मेरी माया छोड़नी कठिन है तो उसको छोड़नेकेलिये भगवान्की प्रार्थना क्यों नहीं करते हो? वह प्रयत्न भी हम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अपने आप मोहमें पड़े हुए हैं, तथा हमारी 'आत्मा' ही मोहित है. जिससे, हमारा कल्याण किस कार्यके करनेमें हैं, इसका परिज्ञान नहीं है, अतः त्यागकेलिये भी प्रयत्न नहीं करते हैं ।।५८।।

यदि यों है, तो आप लोगोंसे दोषोंकी (जीव मात्रके दुःखोंकी) उत्पत्ति होगी? इसलिए आपको नाश कर देना ही अच्छा है इसके उत्तरमें निम्न श्लोक कहता है :

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ।।५९।।

इस प्रकार (हम लोगोंसे दोषोंकी उत्पत्ति होगी) जिसमें भी कारण आप सर्वज्ञ जगदीश्वर हैं. फिर भी, हमपर अनुग्रह वा निग्रह जो आप योग्य समझते हैं वह करो।।५९।।

हम (हम लोगोंसे दोषोंकी उत्पत्ति होगी) वैसे जो हुए हैं उसका कारण भी आप ही हैं. मैं उसका कारण हूं इसमें प्रमाण क्या है? उसमें आपकी कही हुई गीताका वाक्य "**बुद्धिर्ज्ञानम् असम्मोहः**"(भग.गी.१०।४) प्रमाण है. वैसा होनेपर भी, अब, आप चाहें 'अनुग्रह' करो वा 'निग्रह' करो. जैसे भी करना आपको योग्य ध्यानमें आवे, वह करो. मैंने अपराध किया है यदि यों सत्य समझो तो निग्रह करो, यदि वह अपराध आपने मुझसे कराया है तो अनुग्रह करो. जो इस दोषके कारणसे, दण्ड करना हो, तो भी आपको तो, अनुग्रह ही करना उचित है. कारण कि जब आप ही सर्वरूप हो, तब आपकी निग्रहसे अनुग्रह करना चाहिये. निग्रह वा अनुग्रह किया जाये इनको आप सर्वज्ञ होनेसे जानते ही हो, अन्य कोई नहीं जानता है, अतः आप जो कुछ करना उचित समझें वह कीजिये, आप जगदीश्वर हैं, अतः शक्तिका अभाव तो है ही नहीं, ज्यों चाहें, सो कर सकते हैं ।।५९।।

इस प्रकार कालीयने जो कुछ कहा, वह सुनकर, भगवान्ने जो कुछ किया, उसका वर्णन श्रीशुकदेवजी निम्न श्लोकमें करते हैं:

श्रीशुकः उवाच
इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ।
नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ।
स्वज्ञात्यपदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ।।६०।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि कार्यकेलिए मनुष्याकृति धारण किये हुए भगवान्ने कालीयके ये वचन सुनकर, कहा कि हे सर्प ! तुम यहांपर मत रहो शीघ्र अपने साथ अपने परिवारको लेकर समुद्रको चले जाओ, इस (श्रीयमुनाजी)का सेवन गौ और मनुष्य करें।।६०।।

भगवान्ने कालीयके वचन ही सुने उनका अर्थ तो पहले ही जानते थे. क्योंकि इस (सर्प)का पूर्व भाव अर्थात् क्रोध आदि दोषवाला स्वभाव आपने ही किया है तथा सर्पने स्तुति भी की है अतः इसपर अनुग्रह करना चाहिये, तो भी,

समयके अनुसार, अन्य प्रकारसे अनुग्रह करना है, कारण कि, आपने जब कार्य करनेकेलिये, अपना ईश्वर भाव छिपाकर, अन्यथा भाव (मनुष्य भाव) किया है, तो इस भक्त सर्पपर, अन्य प्रकारसे अनुग्रह करें तो क्या है? अन्य प्रकारसे अनुग्रह इसलिये नहीं करते हैं, कि यह दुःख देता है, किन्तु यह भक्त है अतः मेरी आज्ञा मानेगा. भगवान् तीन आज्ञा करते हैं कि हे सर्प यहांसे दूसरे स्थानको जानेमें समर्थ यहां तुम न रहो शीघ्र समुद्रको जाओ.

किस प्रकार जाओ, वह प्रकार बताते हैं अपनी ज्ञाति, पुत्र और स्त्रियां आदिको अपने साथ लेकर (समुद्रमें) जाओ. आप जहां कहीं भी निवास करोगे तो आपको श्रम नहीं होगा. यदि पूछो कि हम यहांसे क्यों जायें? तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि आपके जानेपर, ये गौ और मनुष्य आदि श्रीयमुनाजीका उपभोग करेंगे, तुम रहोगे तो वे उपभोग नहीं कर सकेंगे. यह कहकर सर्पको यह बताया कि तुमने श्रीयमुनाजीके जलको दोषवाला बना दिया है, यह तुम्हारा अधिक दोष है ।।६०।।

''सर्पजात्युरुमन्यवः'' सर्पकी जाति बहुत क्रोधी होती है. इस वाक्यके अनुसार कदाचित् (कभी) वैष्णवोंको दुःख देगा, अतः भगवान् अन्य आज्ञा करते हैं जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें है :

य एतत् संस्मरेद् मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशानम्।
कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ।।६१।।

जो मनुष्य, इस मेरी आज्ञाको, जो मैंने तुझसे कही है, उनको दोनों सन्धयाके समय स्मरण करेगा या कीर्तन करेगा उसको तुम्हारा भय नहीं होगा।।६१।।

सर्प वैष्णवोंको तो डसेगा(काटेगा) ही नहीं किन्तु जो अन्य(अवैष्णव) भी यदि आपकी दी हुई, इस आज्ञाका अच्छी तरह स्मरण करेगा अथवा दोनों सन्ध्याओंमें (प्रातः और सायंकालमें) इसका ध्यान पूर्वक स्मरण तथा पाठ करेगा, वह आपसे कभी भी भयभीत नहीं होवेगा यह 'आप्नुयात्' क्रिया विधि लिङ्लकार होनेसे पूर्ण आज्ञा अर्थमें है जिसका तात्पर्य है कि इस प्रकार करनेवालेको सर्प कुछ भी नहीं करेगा वैसी मेरी आज्ञा सर्पको है ।।६१।।

किसी प्राणीने पूर्व जन्ममें वैसा पाप किया है, जिससे उनको सर्पसे दंशित होना हो, तो उसको सर्प क्यों न भक्षण करे. इस शंकाके निवारणकेलिए

निम्न श्लोक कहते हैं :

अस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६२।।

मेरे इस क्रीडा स्थानमें स्नानकर, जो मनुष्य जलोंसे देवादिकोंका तर्पण करेगा तथा उपवासकर मेरा स्मरण करता हुआ पूजन करेगा वह सब पापोंसे छूट जाएगा ।।६२।।

यह कालीय देह, जिसमें मैंने क्रीड़ा की है, वह मेरे क्रीड़ा करनेसे, अन्य स्थानोंसे विशेष है, विशेषता बताते हुए कहते हैं कि, इसमें केवल स्नान करनेसे ही, उसके देहसे सम्बन्धवाले पाप नाश हो जाते हैं. उपवास करनेसे प्राणसे सम्बन्ध रखनेवाले पाप नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार मेरे स्मरणसे, अन्तःकरणके पाप तथा अर्चन करनेसे, इन्द्रियोंके पाप जाते हैं. पाप करनेके समय, देश, काल और कर्मके साक्षी तथा अभिमानी देव पितर, वंशके पितर और ऋषि उन पापोंको देखते हैं, जिससे वे क्रोध युक्त हो जाते हैं कारण कि, पापी पाप करनेसे वेदकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहे हैं, जिसको वे सहन नहीं कर सकते हैं. अतः उन सबको प्रसन्न करनेकेलिये, इस कालीय देहके जलसे उनका तर्पण करें, जिससे, वे प्रसन्न होकर, आशीर्वाद देंगे और क्रोध पीनेसे वे तृप्त हो जायेंगे (तृप्तिसे उनका) क्रोध शान्त हो जायेगा और हृदय प्रसन्न होगा जिससे आशीर्वाद ही देंगे.

जिस दिन उपवास करें, उसी दिन स्नान तथा तर्पण दोनों करें, तथा दूसरे दिन अर्चन स्मरणादि करें, उस दिन भी स्नान तर्पण करें. अथवा वह स्नान पृथक् है क्योंकि काम्य है कामनासे (सर्पके भय निवृत्तिकेलिये), किया जाता है ।।६२।।

सर्पके मनमें यह शंका(वा भय) उत्पन्न होवे कि मैं यदि दूसरे स्थानपर जाऊंगा तो मेरा गरुड भक्षण करेगा इस भयके निवारणार्थ निम्न श्लोकमें कहते हैं :

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतदुपाश्रितः ।
यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान् मत्पादलाञ्छितम् ।।६३।।

जिस गरुडके भयसे, रमणक द्वीपको छोडकर (तुमने) इस कालीय दहका आश्रय लिया है, वह गरुड अब तेरा भक्षण नहीं करेगा, कारण कि (अब) तू मेरे चरणोंके चिह्नसे चिह्नित हो गया है।।६३।।

यह कालीय सर्प पहले रमणक द्वीपमें रहता था, गरुड़के भयसे यहां आकर रहा है. भगवान् आज्ञा करते हैं कि, अब तू उसका भय मत कर, वह तुझे

मारेगा नहीं, इस आज्ञासे ही निर्णय हो जाता है, तो भी, सर्पको दृढ़ निश्चय करानेकेलिये कहते हैं कि, देख तेरे पीठपर मेरे चरण चिह्न हैं, जिनको देख, वह तेरा भक्षण नहीं करेगा ।।६३।।

भगवान्ने जब इस प्रकार कहा, तब सर्पका डर मिट गया. जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें श्रीशुकदेवजी करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

मुक्तो भगवता राजन् कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ।।६४।।

श्रीशुकदेवजीने कहा हे राजन्! अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने, इस प्रकार कहकर, जब सर्पको निर्भय किया, तब सर्प और उसकी पत्नियोंने आदर पूर्वक प्रसन्नतासे भगवान्की पूजा की।।६४।।

भगवान् अद्भुत कर्मा हैं. अतः निग्रहके साथ सर्पपर अनुग्रह भी किया है. भगवान्ने इसपर यह अनुग्रह किया है जो सर्प किसी भी स्थानपर जानेसे डरता था, वह डर उसका निकल गया अब वह कहीं भी जा सकता है. कदाचित् गरुड़ भक्षण करे, तो उस भक्षणका भय भी नहीं रहा. किसी प्रकार भी, भगवान्से सम्बन्ध होनेपर, प्राणी भयसे छूट जाता है, क्योंकि, भगवान्का सम्बन्ध सर्व प्रकारके भयसे छुड़ानेवाला है.

हे राजन्! ये सम्बोधन देकर, परीक्षितको भी, यह संकेत किया कि, आपका भगवान्से सम्बन्ध हुआ है. अतः आप भी सर्पसे डरो मत, दिव्य पुष्प वस्त्र चन्दन आदिसे सर्प तथा उसकी स्त्रियोंने प्रसन्नतासे एवं आदरसे भगवान्का पूजन किया, गरुड़का भय मिट गया इसलिये आनन्दमग्न हो गये थे. जलमें पुष्प, वस्त्र, चन्दसे पूजन करनेसे वे तो भीज जायेंगे और धुल जायेंगे. ऐसी किसीको शङ्का होवे उसको मिटानेकेलिये इनका विशेषण 'दिव्य' दिया है. अर्थात् ये तीनों पदार्थ अलौकिक थे अतः ये न भींजे और न धुल गये. रमणक द्वीपमें न भेजकर अन्य स्थानपर भेजनेका आशय यह है कि यदि रमणकमें भेजते तो सर्पमें पुनः ये पूर्वके दोष आ जाते, अतः नहीं भेजा ।।६४।।

निम्न दो श्लोकमें जिस सामग्री (साधन वस्तुओं)से सर्पने भगवान्को पूजनसे प्रसन्नकर समुद्रके द्वीपमें गया उसका वर्णन करते हैं:

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ।

दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ।।६५।।
पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ।
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्यभिवन्द्य च ।।
सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ।।६६।।

दिव्य वस्त्र, माला, रत्न, अमूल्य आभरण, दिव्य चन्दनका लेपन और बडी कमलोंकी मालासे गरुडध्वज, जगन्नाथ भगवान्‌की पूजाकी, जिससे उनको प्रसन्नकर और उनकी आज्ञा ले तथा परिक्रमाकर, एवं प्रणामकर, स्त्री, पुत्र और बान्धवोंको साथ लेकर समुद्रके द्वीपमें गया।।६५ – ६६।।

अलौकिक वस्त्र, माला और सर्पके शिरके रत्न (मणि) और अमूल्य, मुकुट, कड़े तथा बाजूबन्द आदि आभूषण, दिव्य गन्धवाले लेपन जिसमें केसर, कस्तूरी, चन्दन अरगजा चार समान डाले गये हैं तथा बड़ी कमलोंकी माला आदिसे (इस प्रकार चार तरहसे) अलङ्कृतकर अनन्तर भगवान्‌का पूजन किया. जिसने इतनी पीड़ा दी उसका पूजन कैसे किया? इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहते हैं कि वह जगत्‌का नाथ है और रक्षक भी वही है, अतः उसने जो आज्ञा की है, वह योग्य ही है. पश्चात् प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो प्रसन्न हो यों कहनेका कारण कहते हैं कि आपकी ध्वजामें गरुड़ बिराज रहा है, आप प्रसन्न होंगे तो गरुड़ नहीं खायेगा यदि गरुड़को यह पता लगे कि भगवान् इस (सर्प)पर प्रसन्न नहीं है, तो वह खा जायेगा अतः आप कृपाकर प्रसन्न हो जाओ.

पहले तो सर्पको, भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान नहीं था, जिससे भगवान्‌का अपराध किया, जब भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान हुआ, तब भगवान्‌का पूजनकर उनको प्रार्थना करने लगा, कि आप प्रसन्न हो जाओ, इस प्रकार पूजन तथा प्रार्थना करनेसे, भगवान् प्रसन्न हुए, जिससे सर्पको भी आनन्द हुआ पश्चात् भगवान्‌ने भी जानेकी आज्ञा दी. आज्ञा पानेके अनन्तर भगवान्‌की परिक्रमाकर, उनको नमस्कार करने लगा, फिर जानेकी तैयारी की, अर्थात्, अपने पुत्र स्त्री आदि बान्धवोंको सहायताकेलिये साथमें लिया, उनको लेकर समुद्रके द्वीपमें ऐसे स्थानपर गया जहां कोई न आ सके, मूल श्लोकमें 'ह' आश्चर्य कहनेका भाव यह है, कि जिसने भगवान्‌का अपराध किया, उसपर आपने अनुग्रह किया है ।।६६।।

जब वह (सर्प) निकल गया, उस समय ही, भगवान्‌की कृपासे,

श्रीयमुनाजीका जल मीठा तथा विष रहित हो गया. जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं :

तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ।।६७।।

क्रीडाकेलिए मनुष्याकृति धारण करनेवाले भगवान्के अनुग्रहसे, उसी समय वह श्रीयमुनाजीका जल विष रहित तथा अमृतके समान हो गया।।६७।।

श्रीयमुनाजीका जल केवल मीठा ही नहीं हो गया, किन्तु मुक्ति दाता भी बन गया. श्रीयमुनाजीमें कालीयके कारण, जो सहज विष आदि दोष उत्पन्न हुआ था, वह भी निवृत्त हो गया. कारण कि, भगवान्ने उसपर (यमुनाजी पर) भी अनुग्रह किया है. केवल कालीयके चले जानेसे वैसा जल नहीं हुआ, किञ्च भगवान्ने क्रीड़ा करनेकेलिये जो अनुग्रह किया, जिससे वैसा जल हो गया.

इस प्रकार यमुनाजीको निर्दोष करनेका कारण यह है कि भगवान्को इसमें क्रीड़ा करनी है. इनको यह (क्रीड़ा करनेका) ज्ञान तो था क्योंकि भगवान् हैं. यमुनाजीमें किसलिये क्रीड़ा करनी है? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि 'क्रीड़ा मानुष रूपिणः' क्रीड़ाकेलिये ही मनुष्यरूप धारण किया है. अतः श्रीयमुनाजीमें अवश्य ही क्रीड़ा करनी है इसलिये पहले ही, 'प्रसाद' (अनुग्रह-कृपा) किया है इससे श्रीयमुनाजीके निरोध होनेसे बाधक सर्व दोषोंकी निवृत्ति बताई ।।६७।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके वर्यनिरूपक अध्याय २ (स्कन्धानुसार अध्याय १३/१६) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १४

व्रज वासियोंको दावानलसे बचाना

चतुर्दशे भगवतो दर्शनान्निर्वृतो वृजः।
अग्नेः संरक्षितः पश्चात् प्रासङ्गिकमिहोच्यते।।का.१।।

चौदहवें अध्यायमें भगवान्के दर्शनसे आनन्द मग्न वृजवासियोंका, अग्निसे संरक्षण किया है तथा प्रसंगवाली कथा भी कही है।।१।।

इस अध्यायमें १.अग्निसे व्रजवासियोंकी रक्षा, २.कालीयकी कथा. ३.गरुडको सौभरि ऋषिने शाप देकर यमुनाजीसे निकाल दिया है ये दो प्रासंगिक कथाएं भी हैं।।१।।

इन्द्रियप्राणयोर्दोषो निवार्यस्तु सहैव हि।
अतः कालीयकथया दाहाभावो निरूप्यते।।का.२।।

इस अध्यायमें इन्द्रिय और प्राणके दोषोंको साथमें मिटाते हैं इसलिए कालीयकी कथाके साथ दाहके अभावका निरूपण किया है।।२।।

कालीय इन्द्रियरूप है. उसके(कालीयके) भयको मिटानेसे, इन्द्रियोंके दोष नष्ट हो जाते हैं. अतः कालीयको, यहांसे बाहर भेज दिया है. इसी प्रकार प्राणके दोष अग्निको (क्षुधाको) निवृत्त करनेकेलिए अग्निके भयको मिटाया गया है. अतः भगवान्ने दावाग्निका पान किया है.

इन्द्रिय तथा प्राणका परस्पर इसी प्रकार सम्बन्ध मिला जुला हुआ है, कि एकका दोष निवृत्त भी हो जाए तो दूसरेका दोष उसका (मिटे हुएका) कार्य कर देता है अतः दोनोंके दोष साथमें मिटाए गए हैं.

गरुड प्राणके दोष (क्षुधा)के कारण, यमुनाजीमें मत्स्योंको खाता था, इसलिए सौभरि ऋषिने उसको शाप दिया, जिससे वह यमुनाजीको छोडकर चला गया. इस कथासे, प्रत्येकको यह शिक्षा लेनी है, कि इस दोषको मिटाना आवश्यक है. यह ज्ञान करानेकेलिए यह प्रासंगिक कथा यहां कही गई है.

जिह्वा इन्द्रियका धर्म, रुचि है, भोजन जब रुचिसे किया जाता है, तो प्राणोंके धर्म, बलकी वृद्धि होती है. इस प्रकार इन्द्रिय और प्राणका परस्पर सम्बन्ध है. जिससे दोनोंके दोषोंकी साथ निवृत्ति करना आवश्यक है.

प्रासङ्गिककथा त्वत्र हरेरद्भुतकर्मताम्।

वक्तुं युक्ता सर्वदोषा नान्यथा यान्ति हीति च ।।का. ३।।

यहां हरिके अद्‌भुत कर्मको कहनेकेलिए प्रासंगिक कथा कहनी योग्य है. यदि न कही जाती, तो सबके दोष निश्चयसे मिटते नहीं।।३।।

कालीय यमुनाजीके जिस दहमें आकर रहा था, वह उसके लिए निर्भय स्थान था, क्योंकि कालीय, जिस गरुडसे डरकर, रमणकसे भागा था, वह (गरुड) सौभरि ऋषिके शापसे, यहां आ नहीं सकता था. सौभरि ऋषिने मत्स्योंके भय मिटानेकेलिए उनके काल, गरुडको शाप देकर यहांसे निकाल दिया, किन्तु वहां पुनः मत्स्योंका अन्य काल, कालीय आकर रहा, जिससे जाना जाता है कि भगवान् अद्‌भुत कर्मा हैं, जिनके आगे, जीवकी कृति कुछ नहीं कर सकती है.

भगवान्‌ने उस स्थानपर क्रीडाकर, उसको, सबकेलिए शाप रहित (मत्स्य आदि सर्व प्राणी मात्रकेलिए) निर्भय स्थान बना दिया, सौभरि ऋषिके शापसे, वह (स्थान) पूर्ण निर्भय न हो सका था, क्योंकि वहां कालीय आकर रह गया, जिसका कारण सौभरिका शाप था, भगवान्‌ने उसको निकाल दिया. सौभरिने भक्त गरुडको शाप देकर अपराध किया था.

भगवान्‌ने इस लीलासे सबके दोष मिटाए, जैसे कि प्राणियोंको, प्राण जानेका भय था वह मिट गया, सौभरिका अपराध नष्ट हुआ, और श्रीयमुनाजी निर्विष हो अमृत जलवाली हुईं. तथा भगवान्‌के क्रीडाकी स्थली बननेके योग्य हुईं. अतः इसको बतानेकेलिए ही यहां यह प्रासंगिकी कथा कही गई है।।३।।

इस अध्यायमें प्रारम्भमें राजा प्रासंगिक कथा पूछता है:

राजोवाच

नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ।।१।।

राजा परीक्षितने कहा कि कालीयने अपना निवास स्थान रमणीक द्वीप क्यों छोड दिया ? इस अकेले नागने गरुडका क्या अपराध किया था।।१।।

राजा पूछते हैं कि, यह जो भगवान्‌ने कहा है कि 'रमणक द्वीप छोड़कर कालीय यहां आकर रहा है' तो बताइये कि उसका क्या कारण है ? वह द्वीप तो नागोंके रहनेका सहज स्थान है, गरुड़का तो नहीं है. तो भी इसने उसको क्यों छोड़ा ? यदि भयसे छोड़ा है तो क्या वह साधारण भय था, या असाधारण ? अर्थात् सर्व सर्पोंकेलिये भय उत्पन्न हुआ था वा इस अकेलेको भय हुआ था

इसलिये यह अकेला छोड़ आया, तो बताइये, कि इस एकने ही गरुड़का क्या अपराध किया था? जिससे इसको भय हुआ और भागना पड़ा. यहां गरुड़को 'सुपर्ण' इसलिये कहा कि वह (गरुड़) जो कुछ कर्म करता है उसमें उसको परिश्रम नहीं होता है ।।१।।

श्रीशुकः उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ।
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ।।२।।

श्रीशुकदेवजीने कहा कि भेट करनेवाले सर्प जनोंने, पहले महीनेमें गरुडके निमित्त वृक्षके मूलमें बलि रख आनेका ठहराव किया था।।२।।

भेट करनेवाले अतल आदि लोकोंमें रहनेवाले, साधारण सर्प अथवा उनके सेवक आदिने यह ठहराव किया था कि हम हर मासमें गरुड़केलिये रमणक द्वीपमें बलिदान करेंगे.

यह आख्यायिका इस प्रकार है. गरुड़ माताके वैरको स्मरण करता हुआ, नित्य जो भी सर्प हाथ लगाता था उसका भक्षण करता था किसीको तो [१]वृथा ही मारता था.

इस प्रकार अपने कुटुम्बका क्षय देखनेके अनन्तर वासुकि आदि प्रमुख सर्प गरुड़से डरकर, ब्रह्माकी शरण गये. ब्रह्माने गरुड़को बुलाकर दोनोंकी सन्धि कराई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि 'अमावस्या'के दिन नागोंमेंसे एककी बलि वृक्षके मूलमें रखी जाये, गरुड़ वहां जाकर उसका भक्षण करे उसके अतिरिक्त किसी भी सर्पको नहीं पीड़ित करेगा. इस ठहरावके अनुसार सर्प हर महिने वृक्षके मूलमें बलि छोड़ आते थे.

राजाको 'महाबाहो' यह विशेषण देकर समझाया कि आप भी राजा हो, सबसे 'कर' लेते हो वैसे ही गरुड़ भी लेता है, इससे यह भी बताया है कि राजा शत्रुओंका केवल वध नहीं करे किन्तु उनको दण्ड भी देवे. अतः कहा है कि नागोंको इस प्रकार दण्ड दिया गया जिसका वर्णन पहले किया है ।।२।।

१.पेट भर जानेके बाद भी जो सर्प सामने मिल जाता तो उसको मार देता था.

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ।
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ।।३।।

सभी सर्प अपनी रक्षाकेलिए हर एक अमावस्याको अपना-अपना भाग

महात्मा सुपर्ण (गरुडजी)को देते थे।।३।।

नागोंके आठ कुल हैं, वे सभी कद्रूकी सन्तान हैं. वे अपना-अपना भाग अमावस्याको गरुड़के नित्य आहारार्थ वृक्षके मूलमें रख आते थे. वे समझते थे यों करनेसे हमारी रक्षा होगी. गरुड़ हमको खायेगा नहीं. यद्यपि वैरी, दण्ड देनेपर भी मार देता है, किन्तु गरुड़ महान् आत्मा है अतः वह ऐसा कार्य नहीं करेगा ऐसा उनको निश्चय था ।।३।।

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बली।।४।।

कद्रूका पुत्र कालिय विषरूप वीर्यसे अभिमानमें आ गया, जिससे गरुडको तुच्छ समझकर उसकी बली स्वयं खाने लगा।।४।।

कालीयका देवता विष है अतः उसने उसकी (विषरूप देवताकी) उपासना की, जिससे वह विषरूप देवताके प्रभावसे विष वीर्यवाला हो गया. उस (विषवीर्य)के मदसे अभिमानमें आ गया और माता कद्रूके दोषने भी, इसमें प्रवेश किया तथा कालिय कालका आधिभौतिकरूप भी है, गरुड़को तुच्छ जानकर वहां बलिकी रक्षाकेलिये जो गरुड़के सेवक थे उनको मारकर, स्वयं उस बलिको खा जाता था, कारण कि, यह कालिय महान् बलवान था ।।३।।

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत्।।५।।

हे राजन्! यह बात सुनकर, भगवान्के प्यारे, गरुड भगवान् क्रोधित हुए, अतः कालीयको मारनेकी इच्छासे बडे वेगसे उसके (कालीयके)के समीप आए।।५।।

गरुड़के सेवकोंने जाकर अपने स्वामीको ये सारे समाचार सुनाये जिनको सुनकर वे क्रुद्ध हुए. राजन्! यह सम्बोधन देकर यह बताया है कि राज्यकी स्थिति ऐसी ही होती है. गरुड़ शक्तिमें कम नहीं है इसको जतानेकेलिये गरुड़को 'भगवान्' कहा है. पक्षी होकर भगवान् कैसे? इसका स्पष्टीकरण आचार्यश्री करते हैं, कि भगवान्की कृपासे गरुड़में ऐश्वर्य आदि छः गुण उद्भव हो गये थे अतः उनको श्लोकमें भगवान् कहा है. भगवान्ने कृपा इसलिये की है, कि वह भगवान्का प्यारा वाहन है. गरुड़ कालियको दण्ड देना भी स्वीकार न कर, उसको नाश ही करना है, ऐसी इच्छासे कालीयके पास ही बड़े वेगसे ध्वनि करते हुए

शीघ्र आकर पहुंचे ।।५।।

कालीयने अपने देवता विषकी आराधनाकी थी, जिससे वह विषात्मा उसके (कालीयके) हृदयमें प्रविष्ट हुआ, अतः गरुडके सामने युद्धकेलिए तैयार हुआ जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तमापतन्तं तरसा नखायुधं प्रत्यभ्ययादुत्थितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् रदायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोऽग्रलोचनः ।।६।।

वेगसे उडकर आते हुए उस नखायुध (गरुड)के सामने, अनेक मस्तकोंको ऊंचाकर यह (कालिय) आया. भयंकर जीभ तथा उग्र नेत्रवाले एवं दान्त रूप शस्त्रवाले कालियने गरुडको दान्तोंसे डसा।।६।।

कालीय, बिना शस्त्रवाले गरुड़से लड़नेकेलिये कैसे गया? इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहा है, कि गरुड़ शस्त्र होनेसे हीन नहीं था किन्तु गरुड़के पास उसके नख ही आयुध थे. इसको जानकर कालीय लड़नेके वास्ते सामने गया. कालीयने अपने अनेक मस्तकोंको ऊंचा उठाकर गरुड़को यह बताया कि तू एक रूपवाला है मेरे बहुत रूप हैं. पश्चात् अपने विषसे भरे हुए दातोंसे उसको (गरुड़को) डंसा. डंसकर उसको छोड़ दूं ऐसी कालीयकी इच्छा नहीं थी, किन्तु उग्र जिह्वाके कारण खा भी जावे, क्योंकि उसके लोचन स्तम्भित हो गये थे. जिससे उसकी ज्ञानशक्ति नष्ट हो गई थी. इन दोषोंसे उसने (कालियने) [१]मर्यादाका भङ्ग किया, विपरीत[२] कर्म किया ।।६।।

१.गरुड़से किया हुआ बलिदानका नियम तोड़कर मर्यादा भङ्ग किया. योजना
२.जो गरुड़ कालियको मारनेमें शक्तिमान है उसको मारनेकी चेष्टा(इच्छा.) करना विपरीत कर्म है वह किया. योजना

वैसेको भी गरुडने ताडनाकी जिसका वर्णन इस श्लोकमें है:

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युना प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ।।७।।

(जब कालियने यों डसने आदि, क्रियाकी तब तो) भगवान्के आसन, उग्र पराक्रम उस गरुडने बहुत क्रोधमें आकर इस (कालीय)को दूर फेंककर बडे वेगसे सुवर्णके सदृश चमकते हुए अपने सव्य पंखसे कद्रूके पुत्रपर प्रहार किया।।७।।

'तार्क्ष्य' (कश्यप)ने चाररूप धारणकर चारसे विवाह किया था. कालिय

'कद्रू' नामवाली स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था उसके दोष इस (कालीय)में आ गये थे, पिताके बीजकी मुख्यता इस कालीयमें नहीं थी किन्तु विनताके पुत्र गरुड़में पिताके बीचकी मुख्यता थी. अतः कश्यपके पुत्र होनेसे, दोनों यद्यपि समान थे, तो भी उपर्युक्त कारणसे दोनोंकी शक्तिमें अन्तर था.

सर्पने बलि खाकर गरुड़को अपना शत्रु बना लिया था. जिससे गरुड़को क्रोध उत्पन्न हुआ. अतः उसको दूर फेंक दिया अर्थात् उसका अपमान किया. यद्यपि सर्प आधिदैविक बलसे, सामने लड़नेकेलिये आ रहा था, तो भी क्रोधके आनेपर शक्तिकी वृद्धि हो जाती है. अतः उसने क्रोधके द्वारा इसका (कालीय का) तिरस्कार किया.

कालीयसे गरुड़में क्रियाशक्ति विशेष थी क्योंकि भगवान्का आसन था. कहीं भी भगवान्को शीघ्र जाना हो तो गरुड़को आसन बनाते थे, अतः भगवान्ने उसको क्रियाशक्ति दी थी इसलिये इसमें(गरुड़में) दैवी क्रिया शक्ति थी जिससे कालीयसे बलवान् था. इस बलके कारण अक्षररूप सव्य पंखके प्रहारसे सर्प निरस्त हो गया. वह सव्य पंख सुवर्ण जैसी कान्तिवाला था. अर्थात् भगवद्धर्मवाला था क्योंकि यह सुवर्ण जैसी कान्ति भगवान्का धर्म है.

यद्यपि सर्प भी कश्यपका पुत्र था तो भी उसको गरुड़ इसलिये मार सका, क्योंकि उसमें कद्रूके दोष आ गये थे.

दंशसे प्रहारका बल अल्प है, तो प्रहारसे इस (गरुड़)की जीत कैसे हुई? इस शङ्काके मिटानेकेलिये कहा है कि साधारण रीतिसे, प्रहार दंशसे अल्प है किन्तु गरुड़ उग्र विक्रम है, अतः उसका प्रहार अत्यन्त बलवान् है, जिस प्रहारसे मरण भी हो सकता है ।।७।।

उसके अनन्तर जो कुछ हुआ वह इस श्लोकमें कहते हैं:

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः।
ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ।।८।।

गरुडके पंखके प्रहारसे, बहुत घबराए हुए कालीयने कालिन्दीके ह्रदमें प्रवेश किया, जहां गरुड आ नहीं सकता था और अगाध जलके कारण वहां जाना भी कठिन था।।८।।

सुपर्णके पंखसे ताड़ित होनेसे, घबराया हुआ कालिय, कालिन्दीके ह्रदमें चला गया, क्योंकि गरुड़ वहां नहीं जा सकते थे ।।८।।

गरुड क्यों नहीं जा सकता था वह बतानेकेलिए उपाख्यान कहते हैं :

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ।।९।।

किसी समय वहां गरुड आया, उसने सौभरि ऋषिके निषेध करनेपर भी क्षुधित होनेसे अपने प्रिय भक्ष्य मत्स्यको बलात्कारसे खाया।।९।।

सौभरि ऋषिके उपाख्यानसे जाना जाता है कि उसको मत्स्योंका सङ्ग था, इसलिये वह उनका हित चाहता था. मीन सङ्गके कारण उस समय, उसमें[१] (सौभरिमें) भगवद्भाव भी नहीं था. ऐसे समय गरुड़ दैव गतिसे उसके (सौभरिके) समीप गया और उसके सामने अपने प्रिय भक्ष्य रोहित आदि मत्स्यको खानेकेलिये पकड़ने लगा, तब ऋषिने गरुड़को यों करनेसे निषेध किया किन्तु क्षुधासे व्याकुल, गरुड़की वृत्ति बहिर्मुख हो गई थी, जिससे वह जलचरको पकड़के दूसरे स्थानपर ले गया और वहां उसका भक्षण किया. वहां ही खाता तो सामने आज्ञाके उल्लङ्घनसे ऋषिको विशेष खेद होता जिससे मरण ही होता. जीवित मत्स्य अन्य स्थानपर ले जानेसे समझा जाता है कि कालिन्दीके ह्रदमें वह नहीं जा सकता था ।।९।।

१.गोस्वामी पुरुषोत्तमजी प्रकाशमें सुबोधिनीजीके अ.१४, श्लोक ९की 'अस्य न भगवद्भावः'का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि 'सौभरिमें भगवद्भाव नहीं था'.

भगवान्ने गरुडकेलिए जो खाद्य पदार्थ बनाया है उसकेलिए सौभरिने इस प्रकार निषेधका आग्रह कैसे किया? उसका कारण बतानेकेलिए निम्न श्लोक कहते हैं:

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हृते ।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ।।१०।।

मत्स्य पतिको गरुड ले गया जिससे अन्य दीन मत्स्य अत्यन्त दुःखी हुए उनको दुःखी देखकर उनके कल्याणकी इच्छासे दयार्द्र ह्रदय हो सौभरिने जो कहा वह निम्न श्लोकमें है।।१०।।

भगवान्ने वैदिक और लौकिक दो प्रकारकी मर्यादाएं बनाई हैं. वैदिक मर्यादाके अनुसार सर्व प्राणियोंपर दया करनी चाहिये. जो दया नहीं करता है, दीनोंकी उपेक्षा करता है, उसके ह्रदयमें ब्रह्म चला जाता है, जैसे फूटे हुए बर्तनमेंसे दूध निकल जाता है. गरुड़जीने लौकिक मर्यादाके अनुसार अपने भक्ष्य मत्स्यका

भक्षण किया था, जिससे मत्स्य पतिके जानेसे, दीन मत्स्य दुःखी होने लगे क्योंकि उनका रक्षक तथा उनको नियमसे चलानेवाला कोई नहीं रहा. इससे मत्स्य अपने कुलके भक्षक होनेसे, परस्पर मित्र बान्धवोंको खाने लग गये. ऐसी दशा देखकर सौभरिने उनपर दया करनेकेलिये मर्यादाका उल्लङ्घन किया. यद्यपि, मत्स्योंको दुःख अज्ञानके कारण था, तो भी दीन थे, जिससे उनकी रक्षा करनेका यत्न सौभरिने निम्न प्रकारसे किया. किन्तु वह परमार्थ भी अनर्थ हो गया क्योंकि, गरुड़के न आनेसे वहां कालीय आकर रहा जिसके विषसे, सर्व मत्स्योंका नाश हो गया. उस प्रसङ्गसे अन्य जीव भी नष्ट हुए. इससे यह सिद्धान्त निश्चय हुआ कि भगवान्की मर्यादा (इच्छा)के विरुद्ध जो कुछ करता है वह अनर्थ ही है, उससे लाभके स्थानपर हानि ही होती है ।।१०।।

सौभरिने जो शाप दिया वह इस श्लोकमें कहते हैं:

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ।।११।।

यहां गरुड आवेगा और जो वह मत्स्योंका भक्षण करेगा तो, उसके उसी समय प्राण चले जाऐंगे, मैं यह सत्य कहता हूं।।११।।

सौभरिने गरुड़को दो प्रकारसे शाप दिया, एक यमुनाके ह्रदमें प्रवेश करेगा तो उसी समय प्राणसे रहित हो जायेगा. दूसरा मत्स्योंको खायेगा तो भी तेरे प्राण शीघ्र निकल जायेंगे. इस शापसे यह भी दिखाया है कि गरुड़के अतिरिक्त अन्य पक्षीकेलिये यह शाप नहीं है. इस शापके कारण कालियकी भी रक्षा हो गई क्योंकि यदि यह शाप विशिष्ट (ह्रदमें प्रवेश तथा मत्स्य भक्षण दोनोंका मिलित) शाप न होता तो गरुड़ ह्रदमें प्रवेशकर, कालियको दुःख देता. इस प्रकार शाप न होता तो उसकी (कालीयकी) रक्षा न होती. इसीलिये ही मूल श्लोकमें 'स' 'वह' गरुड़ शब्द फिर दिया है. ब्राह्मणका वचन आज्ञारूप है. यह सौभरिका कहना केवल [1]अनुवाद नहीं है, किन्तु यह सत्य है, ब्रह्म वाक्य होनेसे प्रमाण है. ब्राह्मणके वाक्य कभी भी झूठे नहीं होते हैं ।।११।।

१.यदि सौभरि इस प्रकार शाप नहीं देता तो कालीय इस ह्रदमें प्रविष्ट न होता: टिप्पणी गरुड़ ह्रदमें आते तो सर्पके विषसे उसका मरण नहीं होता, किन्तु शापके कारण मृत्यु हो सकता अतः सौभरिका वचन प्रमाण है जिससे गरुड़ ह्रदमें नहीं आता था. प्रकाश

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ।

अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ।।१२।।

इस बातको केवल कालिय ही जानता था दूसरा कोई सर्प नहीं जानता था, इसलिए गरुडसे भयभीत हो यहां आकर रहा, और श्रीकृष्णने उसे निकाल दिया।।१२।।

उस अर्थ अर्थात् गरुड़ सौभरिके शापसे इस ह्रदमें नहीं आ सकेगा इसको केवल कालिय ही पूरी तरह जानता था. गरुड़के साथ विरोध करनेकी इच्छावाले कालियने यह विचार किया कि यदि इससे विरोध करूंगा तो यहांसे भागना तो पड़ेगा क्योंकि यह बलवान् है, फिर कहां जाकर रहूंगा, वह स्थान ऐसा हो जहां गरुड़ नहीं आ सके. वह यमुनाजीका ह्रद ही है जहां वह जा नहीं सकता है वहां जाकर रहूंगा, दूसरे सर्पोंको तो गरुड़से वैर करनेकी इच्छा ही नहीं थी और उनको इसका पता भी नहीं था. अतः गरुड़से डरा हुआ(कालिय) वहां जाकर रहा और भगवान् श्रीकृष्णने उसे वहांसे दूर किया ।।१२।।

इस प्रकार प्रासंगिक विषयोंको छोड अब चालू विषयको कहते हैं:

कृष्णं ह्रदाद् विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ।
महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।।१३।।
उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इव प्रजाः ।
प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरेभिरे ।।१४।।

दिव्यमाला, चन्दन, वस्त्र पहिरे, अमूल्य मणिमालाओंसे व्याप्त, सुवर्णसे अलंकृत श्रीकृष्णचन्द्र ह्रदसे बाहर निकले, तब भगवान्को पाकर सब गोप, जैसे इन्द्रियां प्राण आने पर सचेत हो जाती हैं वैसे ही आनन्दसे पूर्ण चित्तवाले होकर प्रेमसे उनके(श्रीकृष्णके) साथ मिले।।१३ – १४।।

यहां दो श्लोकोंका परस्पर सम्बन्ध है अन्ततः उनका तात्पर्य साथमें ही समझाया गया है.

ह्रदके बीचसे अचानक प्रकट हुए भगवान्को देखकर सब उनसे मिले. भगवान् पहलेसे(जब यमुनाजीमें कूदे थे तबसे) अब विलक्षण दर्शन दे रहे थे, अतः उस विलक्षणरूपका वर्णन करते हैं.

स्वर्गके दिव्य चन्दन माला वस्त्र आदिसे, भगवान्की वहां सामान्य पूजा हुई है ऐसा प्रतीत होता था, पातालके पदार्थ महान् मणिओंकी मालाओंसे व्याप्त देखनेसे समझा गया कि इनकी विशेष पूजा हुई है, और पृथ्वीके उत्तम पदार्थ

सुवर्णके आभूषणोंसे सुशोभित हुआ देखकर, सबने निश्चय किया, कि भगवान्‌की तीन लोकोंके पदार्थोंसे सब प्रकार पूजा हुई है.

पूजासे सुशोभित विलक्षणरूपवाले वैसे भगवान्‌को अचानक आविर्भूत हुए देखकर, उनके सन्निधि मात्रसे उनमें (गोपादिमें) प्राण आ गये. बालकोंकी तरह वे उठकर खड़े हो गये. जैसे बालक खड़े होते हैं वैसे ही प्राण मिलनेसे वृद्ध भी उठकर खड़े हो गये. प्रजा(बालक) अथवा लौकिक मनुष्यकी परस्पर पहचान न होते हुए भी जैसे प्राणोंके (प्रेमी सुन्दर पुरुषोंके) आनेपर उठते हैं, उसी प्रकार, ये गोपादि भी श्रीकृष्णचन्द्रजीके आनेपर, उठकर खड़े हुए.पश्चात् समीप होनेपर, आनन्दसे पूर्ण, अन्तःकरणवाले, पहले, उन तरुण पुरुषोंने पुरुषोत्तमको भी प्रेमसे आलिङ्गन किया ।।१३-१४।।

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गावश्च कौरव ।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसंल्लब्धमनोरथाः ।।१५।।

हे कौरव ! यशोदा, रोहिणी, नन्दरायजी, गोपियां और गोप ये सब श्रीकृष्णको पाकर चेष्टावाले हुए और इनका मनोरथ पूर्ण हुआ।।१५।।

स्त्रियोंमें उत्सुकता(प्रियके मिलनेकी चाह) विशेष होती है इसलिये पहले यशोदा और रोहिणी भगवान्‌से मिलीं, रोहिणीसे स्पर्श न हो जाये, इस भयसे, नन्दजी पश्चात् मिले, नन्दजीके भयसे गोपियां पीछे मिली, उसके अनन्तर गायें भी मिलीं. परीक्षितको यह जतानेकेलिये कि यह प्रसङ्ग यों ही हुआ है इसपर तू विश्वास कर, संशय न कर, क्योंकि तू कुरुके कुलमें उत्पन्न हुआ है अतः परीक्षितको 'कौरव' विशेषण देकर सावधान किया है. सब कृष्णको प्राप्तकर चेष्टावाले हुए अर्थात् उनमें क्रिया शक्ति आ गई और उनका मनोरथ भी पूर्ण हुआ जिससे ज्ञान शक्ति भी उनमें प्रकट हो गई. इस प्रकार क्रिया और ज्ञान शक्तिका परस्पर सम्बन्ध दिखाया है कि जहां क्रिया शक्ति आती है वहां ज्ञान शक्ति अवश्य उत्पन्न होती है ।।१५।।

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ।
नरा नार्यो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ।।१६।।

बलरामजीने अच्युत(श्रीकृष्णजी)का आलिंगन किया उनके प्रभावको जाननेसे हंसने लगे. पुरुष, स्त्रियां, वृष और बछडे अत्यन्त प्रसन्न हुए।।१६।।

रामने भी अन्योंके समान भगवान्‌का आलिङ्गन किया. रामने जब

आलिङ्गन किया, तब हंसे नहीं, आलिङ्गनके अनन्तर हंसे, जिसका कारण यह है, कि बलरामजीमें पहले, भगवान्का अंश नहीं था, भगवान्से आलिङ्गन करनेसे वह भगवदंश बलरामजीमें आ गया तब समानता होनेसे हंसने लगे. हंसकर, श्रीकृष्णको जताने लगे कि आपने इनकी(गोपादिकोंकी) पूर्ण परीक्षाकी है. कालियको निकाला इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है, कारण कि भगवान्के प्रभावको जानते थे, जो विश्वको क्षणमें उलट सकते हैं उनका यह कार्य आश्चर्यजनक नहीं है. पुरुष, स्त्रियों, वृषभ और बछड़े इन चारोंको सुखके साथ दुःख भी हुआ होगा? इसके उत्तरमें स्पष्ट कहते हैं कि नहीं, वे बहुत आनन्दको प्राप्त हुए (दुःख लेशमात्र भी न था) ।।१६।।

ब्राह्मण इतने समय तक तो शान्त रहे, किसी प्रकार उपदेश द्वारा सान्त्वना नहीं दी, अब नन्दरायजीको सान्त्वना करानेकेलिए कैसे आए? इस शंकाको मिटानेकेलिए निम्न श्लोक कहते हैं :

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः।
ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ।।१७।।

पत्नियों समेत कर्म कराने, वा गुरु ब्राह्मण नन्दजीके पास आकर कहने लगे कि 'बधाई है' प्रसन्नताकी बात है कि कालीयका पकड़ा हुआ आपका पुत्र सकुशल छूटकर आ गया।।१७।।

'विप्र' तो बहुत ही महान् पुरुष होते हैं. वैश्योंके गुरु, जो उनको कर्म मात्र कराते हैं, वे कर्मजड़ होते हैं. वे वहां आजीविकाकेलिये खड़े हुए उनके (कर्मजड़ ब्राह्मणोंके) सम्बन्धी(स्त्री, पुत्र आदि भी) वैसे ही होते हैं इसी कारणसे, स्त्रियों समेत, वे कर्मजड़ गुरु ब्राह्मण नन्दजीके पास आकर कहने लगे कि, कालीयका पकड़ा हुआ तुम्हारा पुत्र, आनन्द पूर्वक छूट आया है, वह हमारे भाग्यसे ही छूटा है. अतः बधाई है. (यों कहनेका तात्पर्य यह है कि आप हम ब्राह्मणोंको बधाईके रूपमें कुछ भी दीजिये) ।।१६।।

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे।
नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदादिशत् ।।१७।।[अ]

हे राजन्! कृष्ण सकुशल छूट आए अतः उनके निमित्त ब्राह्मणोंको दान दीजिए. नन्दजीने प्रसन्न चित्तसे ब्राह्मणोंको गौ और सुवर्ण दानमें दिए।।१७।।

इस आशयको समझकर नन्दजीने प्रसन्नतासे ब्राह्मणोंको गौ और सुवर्ण

बधाईके रूपमें दिया ।।१७ ।।

अ. यह १७वां श्लोक और इसकी टीका प्रायः बहुत पुस्तकोंमें देखनेमें नहीं आती है किन्तु दोनोंका सम्बन्ध होनेसे कहीं-कहीं लिखा है.

यशोदाने जो विशेष किया उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

यशोदा च महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ।।१८।।

सती यशोदा, महा भाग्यवाली हैं, क्योंकि, अदृश्य(जो गुम होनेसे देखनेमें नहीं आता है वैसा) पुत्र पीछे (बादमें) वापस मिल गया है, उसने पहले पुत्रका आलिंगन किया पश्चात् गोदमें बिठाया उस समय उसके(यशोदाके) नेत्रोंसे(प्रेमके कारण) आंसू बहने लगे।।१८।।

ब्राह्मणोंने यशोदाको महाभाग्यवाली कही है, उसके दो कारण हैं. एक ब्राह्मणोंको बहुत दान मिला था और दूसरा यशोदाने कृष्णकेलिये सबसे विशेष प्रेम दिखाया है. जैसे कि, सबसे प्रथम, कृष्णके आनेपर, उसका आलिङ्गनकर गोदमें बिठाया, जिससे प्रेम बढ़कर आंखोंसे अश्रु बह निकले ।।१८।।

निम्न श्लोकमें कहते हैं कि, इस समस्त कार्यमें आधी रात्रि बीत गई, उस दिन किसीने भी खाया नहीं था, जिससे गौओंके स्तन सूख गए थे, अर्थात् उनमें दूध नहीं था, किन्तु भगवान्के पधारनेकी प्रसन्नतामें वे ही स्तन दूधसे पूर्ण हो गए किन्तु दोहनेके पात्र न होनेसे, गौओंसे दूध दूहा नहीं गया वे सर्व आनन्द मग्न होनेसे वहां ही रात्रि भर रहे.

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्शिताः ।
ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ।।१९।।

हे राजेन्द्र! व्रजवासी और गो भूख तथा प्यास एवं श्रमसे कम शक्तिवाले हो गए थे, अतः वहां ही कालिन्दीके किनारेके निकट ही सो गए।।१९।।

गोप, गौ आदि सबको, गोकुलसे यहां आनेसे दैहिक श्रम, भगवान्का कालियके साथ युद्ध देखनेसे चित्तका श्रम और उससे मरणके विचार करनेका श्रम इत्यादि श्रमसे दुर्बल तो हो गये थे, फिर क्षुधा तथा तृष्णासे विशेषरूपसे निर्बल हो गये. श्रम तो निर्बलता देकर चले गये, किन्तु क्षुधा और तृष्णा तो शरीरके साथ ही रही इसलिये उनके स्वरूपको बताया. ये 'गोवाडों'में रहनेवाले होनेसे, अनपढ़ थे, इस कारणसे कालिन्दीके किनारेसे थोड़ा दूर अर्थात् किनारेको छोड़कर निकट

ही वनके मध्यमें सो गये ।।१९।।

कालियमें जो अहंकार दोष रूप दैत्य था, वह और क्षुधा तथा तृष्णा रूप जो मृत्यु था, उन दोनोंने मिलकर अग्निका रूप धारण किया, अनन्तर वह अग्नि दावाग्नि रूपसे गोकुलवासियोंको जलानेकेलिए प्रकट हुई जिसका वर्णन नीचे श्लोकमें करते हैं :

तदाशु विपिनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ।।२०।।

वनमें उत्पन्न दावाग्निने, सोते हुए व्रजको शीघ्र ही चारों ओरसे घेरकर आधी रातको जलाना प्रारम्भ किया।।२०।।

श्लोकके 'आशु' पदका भावार्थ बताते हैं कि वैर लेनेकेलिये अग्नि शीघ्र ही वनमें अपने आप ही उत्पन्न हुई. अग्नि तथा पेड़की लकड़ियोंके आपसमें घर्षणसे उद्भूत हुई अग्नि जिसको दावाग्नि कहते हैं, उसके सब पदार्थोंको इकट्ठा कर जलानेसे, सोये हुए व्रजको चारों तरफ घेरकर, आधी रातमें जलाने लगीं.

भगवान्ने कालीय दहमें कूदकर तथा कालीयसे युद्ध लीला दृश्य दिखाकर, व्रजवासियोंके प्रेमकी परीक्षा की. अब उस स्नेहका स्थापन करते हुए, उनमें जो देह सम्बन्ध रहा हुआ है, उसको दूर करनेके साथ, अपना माहात्म्य ज्ञान भी, विशेष प्रकारसे कराते हैं. यदि इस प्रकार, देह सम्बन्ध दूर न करावें तो स्नेह लौकिक हो जायेगा. अभी तक, ये स्नेहके कारण, भगवान्केलिये दुःखी तो हुए किन्तु, इनका देहाभिमान नहीं गया था. वह बतानेकेलिये यह कहा जाता है. यदि इनमें देहाभिमान नहीं होता तो, ये ज्ञानके अधिकारी हो जाते, स्नेहके अधिकारी नहीं होते ।।२०।।

दावाग्निसे, जब जलने लगे, तब देहाभिमान होनेके कारण व्याकुल हुए और भगवान्की प्रार्थना करने लगे जिसका वर्णन निम्न तीन श्लोकोंमें करते हैं. इस श्लोकमें उनकी व्याकुलता और प्रार्थनाका वर्णन करते हैं:

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामानुषमीश्वरम् ।।२१।।

तब व्रजवासी जलते हुए उठे और घबराकर, मायासे मनुष्य देखनेमें आनेवाले, परमेश्वर श्रीकृष्णकी शरणमें गए।।२१।।

बहुत घबराये और विशेष निद्रा आ जानेसे तथा घबराहटके कारण, देश, दिशा और समयका भी ज्ञान उनको नहीं रहा. और स्वभावसे भी, वे व्रजवासी थे जिससे अनपड़ तथा ज्ञान शून्य थे. कालीयने भगवान्का पूजन किया है यह देखकर वे भी श्रीकृष्णकी शरण गये ।।२१।।

श्रीकृष्णकी रक्षाकेलिए तो उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया किन्तु अपनी रक्षाकेलिए ही श्रीकृष्णकी प्रार्थना करने लगे:

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ।।२२।।

हे कृष्ण ! हे महान् भाग्यवाले कृष्ण ! हे असीम पराक्रमवाले राम ! यह महाघोर अग्नि आपके सेवक जो हम हैं उनको खा जाती हैं(भस्म कर रही है)।।२२।।

कृष्ण–कृष्ण दो बार नाम भयसे घबरानेके कारण कहे हैं. हम आपके शरण आये हैं, क्योंकि आप उनकी अवश्य रक्षा करते हो, जो आपकी शरण लेते हैं, इसलिये आप शरण्य होनेसे, महाभाग कहे जाते हैं. प्रार्थना करनेवाले, सर्व साधारण थे, अतः रामको भी प्रार्थना करते हुए कहते हैं, कि आपका पराक्रम तालवनमें हमने देखा है, अतः आपका पराक्रम असीम है. राम और कृष्णमें भेदभाव न रखकर, प्रार्थना करते हैं कि, यह अग्नि बहुत भयानक है, अतः शीघ्र ही भक्षण करनेवाली है. आपके जो हम हैं, उनको निगल रही है, इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है. इसलिये मूल श्लोकमें 'हि' शब्द दिया है. इस दशामें जीनेकी आशा नहीं रही है ।।२२।।

ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए? इसके उत्तरमें, निम्न श्लोक कहते हैं:

सुदुस्तरान् नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं सन्त्यक्तुमकुतोभयम् ।।२३।।

हे प्रभु! इस महादुस्तर, कालरूप अग्निसे, आपके भक्त और मित्रोंकी रक्षा कीजिए, किसी प्रकारका भी जिनको भय नहीं है, वैसे आपके चरणोंका त्याग करनेमें हम सर्वथा अशक्त हैं।।२३।।

यह अग्नि कालरूप है, अतः प्रलय करनेवाली(अग्नि) है जिससे बचना कठिन है अथवा सहन करना भी अशक्य है. इसलिये अपने भक्त और शुद्ध हृदयवाले सम्बन्धियोंकी रक्षा करो. कारण कि, भगवच्छास्त्रके विचारसे,

भक्तोंकी रक्षा करना और लौकिक शास्त्रके विचारसे, सम्बन्धियोंकी रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है, अतः भगवच्छास्त्रका और लौकिक शास्त्रका विचारकर रक्षा करो, कारण कि, आप सर्व समर्थ हैं.

भक्तोंका भगवान्‌के सन्मुख मरना अच्छा है, उनके देहकी रक्षा करनेका कोई प्रयोजन नहीं है, यदि आप यों कहो, तो हमारा उत्तर यह है, कि हमको देहमें ममता नहीं है, अतः हम मरनेसे भी नहीं डरते हैं, किन्तु मरनेसे आपके श्रीचरणोंका वियोग होगा, जिसको हम सहन नहीं कर सकते हैं, दाहको तो सहन कर सकते हैं.

आप जिन चरणोंको चाहते हो, उनकी अग्नि, विरोधिनी है, वह चरणोंको यों ही दूर कर देगी क्योंकि बलिष्ठ है, अर्थात् जिन(चरणोंसे) रक्षा चाहते हो अथवा जिन चरणोंके वियोगसे डरकर अपनी रक्षा चाहते हो उनको तो यह नाश कर देगी. इसके उत्तरमें 'अकुतो भयम्' पद दिया है जिसका आशय है कि यह अग्नि क्या है? किन्तु उनको किसीसे भी (मृत्यु आदिका) भय नहीं है वे निर्भय हैं अतः हम उनको ही चाहते हैं, न कि देहको चाहते हैं. देहकी रक्षा उन चरणारविन्दके मकरन्द रस पान करनेकेलिये चाहते हैं. हम आपको प्रार्थना केवल शङ्काके कारण कर रहे हैं. शेष हमको तो अभी भी निश्चयरूपसे कोई भय नहीं है ।।२३।।

इस प्रकार प्रार्थना करनेपर जो कुछ योग्य कर्त्तव्य करना था वह भगवान्‌ने किया है जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः।
तमग्निमपिबच्छीघ्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ।।२४।।

अपने भक्तोंकी इस प्रकार घबराहट देख, अनन्त शक्तिवाले, अनन्त जगदीश्वरने उस अग्निका शीघ्र पान किया।।२४।।

दाहकेलिये आ रही अग्निको बुझा दें, अथवा इन व्रजवासियोंको दूसरे स्थानपर ले जावें तो विलम्ब होगा इतना विलम्ब भी ये सहन नहीं कर सकेंगे इसलिये और कालीयके सम्बन्धसे हुए दुष्ट पदार्थ, जो आपके भीतर रहे हैं, उनको जलाकर नष्ट करनेकेलिये भी, उस अग्निका भगवान्‌ने पान किया. अग्निके पान करनेमें अन्य भी कारण थे, भगवान् एक ही लीलासे अनेक कार्य सिद्ध करते हैं जैसे कि(१)व्रजवासियोंकी घबराहट दूर की, (२)दुष्ट पदार्थोंका

नाश किया, (३)कालकूट विषके भक्षण करनेसे महादेवको गर्व हुआ था उसके गर्वको भी दावाग्नि पान कर नाश किया, (४)यह सिद्धकर दिखा दिया कि मेरा मुख अग्निरूप है इसी कारणसे अग्निपानसे मेरा मुख जला नहीं है.

भगवान् स्वयं अभयरूप हैं ही, किन्तु अग्नि पान करते देखकर, व्रजजनोंको भयकी प्रतीति भी नहीं हो, इसलिये मूलमें 'शीघ्रं' शब्द दिया है, अर्थात् शीघ्र ही पी गये जैसे उन्होंने देखा ही नहीं.

भगवान् अनन्त हैं, अतः अनन्त शक्तिमान् भी हैं. जिससे अग्निका पान एक प्रकारसे नहीं, बहुत प्रकारसे कर सकते हैं, जैसे कि वायुरूप होकर भी पान कर सकते हैं, यदि जलरूप धारण करें तो उस रूपसे बुझा सकते हैं, सर्वत्र मुख होनेसे मुख बन्द कर लेवें तो भी उसका पान कर सकते हैं वहां ही मुख खोल दें तो भी पान कर सकते हैं, अतः भगवान्की इस लीला करनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ।।२४।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके यश निरूपक अध्याय ३ (स्कन्धानुसार अध्याय १४/१७) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १५

प्रलम्बासुरका उद्धार

उक्तः पञ्चदशेऽध्याये प्रलम्बस्य वधो महान्।
आवेशिचरितं वाच्यं बलभद्रकृतं ततः ।।का.१।।

पंद्रहवें अध्यायमें प्रलम्बके वधका महान् चरित्र कहा है. भगवान्के आवेश युक्त बलभद्रका किया हुआ यह चरित्र भी भगवान्का किया हुआ ही समझना चाहिए।।१।।

जब राजा परीक्षितने दशम स्कन्धके प्रथम अध्यायके १०वें श्लोकमें श्रीकृष्ण चरित्रका प्रश्न किया है तो यहां श्रीशुकदेवजीने बलदेवजीका चरित्र क्यों कहा? इस शंकाको मिटानेकेलिए उपरोक्त कारिकामें आचार्यश्रीने स्पष्टीकरण किया है कि प्रलम्बका वध भगवान्ने बलदेवजीमें प्रवेशकर, किया है. अतः यह भी भगवान्का ही चरित्र है.

भगवान्ने स्वतः प्रलम्ब वध न कर, बलदेवजीमें प्रवेशकर क्यों किया? इस प्रकारकी लीला करनेका कारण यह है कि भगवान्को शिक्षा देनी थी, कि जिसमें (भक्तमें अंशरूपमें) मेरा आवेश होता है उस भगवदीयके संगसे अन्तःकरणका दोष निवृत्तहो जाता है.

व्रजे गतस्य क्रीडा च सर्वथा वनगोष्ठयोः।
अन्तःकरणदोषश्च महानत्र निवर्त्यते ।।का.२।।

व्रजमें पधारे हुए भगवान्का वन और गोष्ठकी जो लीला कही गई है, उनसे महान् अन्तःकरण दोष नाश किया गया है।।२।।

१५वें अध्यायमें वन लीलाका वर्णन है और गोष्ठलीलाका वर्णन १६वें अध्यायमें है, तो भी, कारिकामें दोनों लीलाएं, एक ही दिन भगवान्ने की हैं, इसलिए कारिकामें दोनों लीलाएं साथमें दी हैं.

लोकमें, लौकिक पुरुष भी क्रीडामें यदि अपनेसे बडोंपर सवारी करनी पडती हो तो, वे नहीं करते हैं क्योंकि ऐसा शिष्टाचार है, किन्तु गोपोंका भगवान्में स्नेह था तो भी, खेलमें, सवारी करनेका अवसर आया, तो भगवान्के ऊपर सवारी करनेमें, अन्तःकरणकी प्रवृत्ति हुई, इस प्रकार, शिष्टाचारके त्यागका कारण अवश्य कोई होना चाहिए, वह कारण था, अन्तःकरणका दोष, जिसको

भगवान्ने प्रलम्ब(अन्तःकरणका दोषरूप)का वधकर निवृत्त किया है प्रलम्बके वधसे उनके अन्तःकरणका दोष निवृत्त हुआ, जिससे, उनमें भगवान्केलिए विशेष प्रेम बढा, इससे भगवान्को आशीर्वाद दिए.

इस प्रकार १५वें अध्यायके अन्तमेंकी हुई लीलासे व्रजवासियोंकी रक्षाकी. तदनन्तर अपने स्थानमेंकी हुई लीलाका वर्णन पृथक् क्रमसे करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो बन्धुभिर्मुदितात्मभिः ।
अनुगीयमानो न्यविशद् व्रजं गोकुलमण्डितम् ।।१।।

श्रीशुकदेवजीने कहा कि प्रसन्न अन्तःकरणवाले, बान्धवोंसे घिरे हुए और स्तुति किये हुए श्रीकृष्णचन्द्रजीने गौओंके समूहसे सुशोभित व्रजमें प्रवेश किया।।१।।

प्रातःकाल होते ही, सर्व व्रजवासियोंकेसाथ क्रीड़ा करनेकेलिये ही, भगवान् प्रकट हुए, सब बान्धवोंसे घिरे हुए थे और अत्यन्त प्रसन्न उनसे स्तुति किये हुए थे, वैसे भगवान् गौओंके समूहसे सुशोभित व्रजमें प्रविष्ट हुए. उस दिन गौओंको चरानेकेलिये कोई भी ले नहीं गया था. सब गौ भी गोकुलमें लाई गईं थीं, इससे प्रथम, सकल गौओंको अपने-अपने स्थानपर खड़ी करवानेके पश्चात् आपने प्रवेश किया.

इस प्रकार एक ही श्लोकसे, यह कह दिया कि सब लोग व्रजमें लौटकर आ गये. यदि लौटकर न आते तो नियतधर्मवाले दोषोंका अभाव होनेसे उनके धर्मों (शरीर)के भी[१] नाश हो जानेकी शङ्का होती ।।१।।

१.पिछले अध्यायमें कालीय दमन और दावाग्निपानसे, इन्द्रिय तथा प्राणके दोष निवृत्त किये, उससे इन्द्रिय और प्राण भी नाश होने चाहिये, क्योंकि उनके धर्मोंका नाश हो गया है, धर्मनाशसे धर्मी नाश हो जाता है, किन्तु यहां इस प्रकार नहीं हुआ है यह दिखानेकेलिये वे व्रजवासी भगवान्के साथ व्रजमें लौटकर आ गये हैं. धर्मीका नाश क्यों न हुआ उसका कारण यह है कि शरीर नाश तब होता है जब अध्यासकी निवृत्ति होती है व्रजवासियोंके लौकिक दोषरूप अध्यास निवृत्त हो गया, किन्तु अलौकिक भगवत्सम्बन्धी अध्यास निवृत्त नहीं हुआ था, अतः धर्मोंका नाश नहीं हुआ उससे तो व्रजवासियोंको भगवान्के साथ क्रीड़ाकर रस पान करना था.

पूर्व अध्यायमें कहे हुए दोष, कालके कारण उत्पन्न हुए हैं यह जतानेकेलिए ग्रीष्म ऋतुके उपद्रवोंका वर्णन करते हैं:

भगवान्‌की सन्निधिसे, जो गुण, भूमिमें आ गए उन गुणोंसे उन दोषोंका नाश हुआ. इस प्रकार, कालने जो अन्तःकरण दोष उत्पन्न किए, उनका भी भगवान्‌के सानिध्यवाले पदार्थोंसे नाश होगा. जिसका वर्णन दो निम्न श्लोकोंसे करते हैं:

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्मरूपिणोः।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन् नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ।।२।।

जिस समय छलसे, गोपरूपधारी(श्रीकृष्ण और बलराम) व्रजमें क्रीडा कर रहे थे उस समय शरीरधारियोंको विशेष रुचिकर नहीं, ऐसी ग्रीष्म नामवाली ऋतु उत्पन्न हुई।।२।।

जहां गोप और गौओंका प्रसिद्ध निवास स्थान है, जो व्रज कहलाता है उसमें दोनों(श्रीकृष्णजी और बलरामजी) खेल रहे थे उस समय ग्रीष्म ऋतु आ गई, साक्षात् भगवान्‌के विराजमान होते हुए अरुचिकर ग्रीष्म ऋतु आई है, यदि एकको भी पहचान जाती, तो न आती. ग्रीष्म ऋतु दोषवाली है, इसको बतानेकेलिये ही कहा है कि शरीरधारियोंको यह बहुत प्रिय नहीं है. बहुतोंको तो प्रिय नहीं है, किन्तु शीतसे जो डरते हैं केवल उनको प्रिय है ।।२।।

इस प्रकार दोषवाली ऋतुकी निवृत्ति करनेकेलिए भगवान्‌को प्रकट होना चाहिए, इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि उस ऋतुके दोषकी निवृत्ति, अन्य प्रकारसे हुई है जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशवः ।।३।।

वह ग्रीष्मऋतु वृन्दावनके गुणोंके कारण वसन्तके समान देखनेमें आई, जिस (वृन्दावन)में बलरामजीके साथ भगवान् केशव साक्षात् बिराजते थे।।३।।

मूल श्लोकमें 'च' शब्द देनेका आशय यह है कि ग्रीष्मके ताप आदि दोषोंके अतिरिक्त अन्य वायु आदिके दोष भी निवृत्त हो गये.

वृन्दावनके गुणोंका वर्णन जो आगे किया जायेगा, उन गुणोंके कारण, व्रजवासियोंने इस ग्रीष्मऋतुको वसन्त ऋतुके समान समझा. वसन्त ऋतुमें शीत व ग्रीष्म दोनों समान होते हैं. हेम ऋतुमें ठंड विशेष होती है और ग्रीष्ममें ताप अधिक होता है.

जल समीपवाला देश, शीतको पैदा करनेवाला होता है और वहां वायु

भी विशेष होती है. इसलिये वैसे प्रदेशमें, ग्रीष्म ऋतुमें भी शीत तथा ताप समान होते हैं जिससे वहां ग्रीष्ममें भी वसन्त होती है. वृन्दावनके स्वाभाविक गुणोंके कारण ग्रीष्ममें आधिभौतिक वसन्तका, आविर्भाव हो गया उस समय न केवल आधिभौतिक वसन्तका आविर्भाव हुआ, किन्तु बलरामजीके सामीप्यसे, आध्यात्मिक वसन्त तथा भगवान्के सान्निध्यसे, आधिदैविक वसन्तका भी, प्राकट्य हो गया. अतः सर्व प्रकारसे वसन्त ही हो गया. इसलिये मूलमें कहा है कि वृन्दावनके गुणोंके कारण यह ग्रीष्म ऋतु भी वास्तवमें पूर्ण वसन्त बन गई.

मूल श्लोकमें 'इव' शब्द कहनेका तात्पर्य यह है, कि देशकी अपेक्षा काल बलवान्[१] है, जो इस प्रकार न होता अर्थात् (ग्रीष्म वसन्त न बन जाती तो) ग्रीष्मका होना और कालका बाध, पृथक् कहना पड़ता. यदि यों होता अर्थात् कालका बाध होता तो ग्रीष्म ऋतुके गुण जो वर्षा उत्पन्न करनेके हैं वे व्यर्थ जाते, तात्पर्य वर्षा नहीं पड़ती जिससे वहां धान्यादि न होकर केवल यव उत्पन्न हो जाते.

वहां (वृन्दावन तथा ग्रीष्म ऋतुमें) साक्षात् भगवान्के विराजनेसे षड्गुण प्रकट होने लगे. लोकमें ईश्वरकी स्थिति होनेसे ही, सर्व कालके गुण एक ही समयमें उत्पन्न हो जाते हैं. अतः ग्रीष्ममें वसन्त होना कोई आश्चर्य नहीं है. भगवान्के एक-एक गुणसे क्या होता है उसका स्पष्टीकरण करके कहते हैं, कि जहां भगवान्का वीर्य गुण, कार्य करता है, वहां एकका गुण दूसरेमें आ सकता है. (जैसे यहां ग्रीष्ममें वसन्त आया है) यश और श्री गुण जहां होते हैं वहां सर्व गुण आ जाते हैं, ज्ञान गुण जहां प्रकट होता है वहां सर्वात्मभाव उत्पन्न हो जाता है, जहां वैराग्य गुण कार्य करता है वहां किसी वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं रहती है. जब एक गुण होनेसे इस प्रकार होता है तो जहां सर्व गुणों सहित साक्षात् स्वयं भगवान् विराजते हैं वहां यों होवे उसमें कौन सा सन्देह है? कोई सन्देह नहीं होना चाहिये.

भगवान् केशव हैं इसलिये ग्रीष्मके अधिपति महादेव और ग्रीष्मको वर देनेवाला ब्रह्मा भी ग्रीष्मका पक्षपात नहीं कर सकते हैं, कारण कि भगवान् दोनों (महादेव और ब्रह्मा)के उपजीव्य हैं ।।३।।

१.काल व्यापक (सर्व स्थलमें रहनेवाला) होनेसे बलवान है. प्रकाश.

निम्न तीन श्लोकोंसे वृन्दावनके गुणोंका वर्णन करते हैं:

राजसः सात्विकश्चैव तामसश्चापि कीर्त्यते ।।का.।।

वृन्दावनके राजस, सात्विक और तामस गुणोंका वर्णन (क्रमशः) निम्न तीन श्लोकोंमें किया जाता है.

यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम्।
शश्वत्तच्छीकरर्जीषदुममण्डलमण्डितम्।।४।।

जहां झरनोंके शब्दसे, झिल्लीका[१] शब्द सुननेमें नहीं आता है और निरन्तर झरनोंकी बूंदोंसे युक्त सार रहित छालवाले वृक्षोंका समूह शोभा दे रहा था।।४।।

इस श्लोकमें राजसगुणका वर्णन करते हैं यहां वृन्दावनमें, झरनोंके शब्दसे झिल्लीका शब्द सुननेमें नहीं आता है, वैसा ही वह वन सदा ही झरनोंके बिन्दुओंसे युक्त, सार रहित छालवाले सजातीय और विजातीय वृक्षोंसे मिलकर एक ही मण्डल होकर शोभा दे रहा था.

जैसे झरनोंके सुन्दर शब्दोंने झिल्लीके कुत्सित शब्दको कम कर दिया अर्थात् वह (बुरा शब्द) सुननेमें नहीं आया, वैसे ही रस हरण करनेवाली ग्रीष्म ऋतुने तथा झिल्लीने वृक्षोंका रस शुष्ककर अथवा चूंसकर, वृक्षोंको जो निःसार छाल जैसा बना दिया था, उनको झरनोंकी बूंदोंने रस प्रदानकर, पूर्व जैसा, वा वसन्त जैसा, हरा-भरा बना दिया. अतः कहा है कि अनिष्ट शब्दका 'सु'(सन्दर) शब्द बाधक है और रसहरण करनेवालेका रस दाता बाधक है ।।४।।

१. एक प्रकारका क्षुद्र कीट – झींगुर.

तापको मिटानेवाले वायुका वर्णन करते हैं:

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाड्वले ।।५।।

जहां नदी, तालाबों तथा झरनोंकी लहरोंसे मिश्रित, कल्हार, कमल और उत्पलकी रजको हरनेवाला वायु चल रहा है, जिससे वह भूमि, हरित तृणवाली ठंडी हो गई थी, अतः उस वनमें रहनेवालोंपर ग्रीष्म, अग्नि और सूर्यसे होनेवाले तापका प्रभाव कुछ नहीं हुआ।।५।।

राजस नदी, सात्त्विक तलाव और तामस झरने इस तीनोंकी लहरोंसे उत्पन्न हुआ पवन, शीत तथा मन्द था, और वह पवन, सन्ध्यामें विकसित होनेवाले कह्लारके पुष्प, दिनमें विकसित होनेवाले कमल तथा रात्रिको प्रफुल्लित होनेवाले उत्पल, इन तीनोंकी रेणुको हरण करनेसे सर्वदा सुगन्धिवाला रहता था,

जिससे वनमें रहनेवालोंको जो गर्मीके कारण अग्नि और सूर्यसे होनेवाला ताप था वह कुछ भी दुःखदायी न हो सका अर्थात् शीत, मन्द और सुगन्धि युक्त वायुसे ताप लगा ही नहीं. इस कहनेसे यह भी बताया कि पित्तादिसे भी ताप होता है. वह भी नहीं हुआ. तथा भूमि हरित घासवाली शीत होनेसे भूमि कृत ताप भी न हुआ. तात्पर्य यह है कि ग्रीष्म, वसन्त समान हो जानेसे उसका कोई प्रभाव किसीपर भी न हुआ ।।५।।

ग्रीष्मको वसन्त बनानेवाले गुणोंसे अन्य जो गुण वृन्दावनमें हैं, जिन गुणोंसे रस जागृत होता है उन गुणोंका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

अगाध–तोय–ह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाड्वलितं च गृह्णते ।।६।।

जहां अगाध जलवाले सरोवरोंके तटके उर्मियोंसे तीरकी मिट्टी चारों तरफ द्रवीभूत हो रही है, वैसी भूमिके रस तथा हरियालीको सूर्यकी विषसे भी तेज किरणें चूसनेमें समर्थ नहीं।।६।।

अगाध जलवाले सरोवरोंके समीप होनेवाली लहरोंसे, चारों और गली हुई मृत्तिकावाली, रस भरित तथा हरित भूमिके रसको एवं हरियालीको विषसे भी प्रचण्ड सूर्यकी किरण ग्रहण नहीं कर सकते हैं, अतः वृन्दावनकी भूमि सदैव रसवाली रहती है. इसको स्पष्टकर समझाते हैं कि, वृन्दावनके चारों ओर सरोवरोंके किनारोंकी लहरोंसे पुलिन भीगे हुए रहते हैं जिससे वहां सदा ही मध्यमें तथा बाहर शीतलता रहती है. मूलमें तथा ऊपरके भागमें, अधिक रस होनेसे, शुष्कताका अभाव रहता है जिससे पृथ्वीपर रस तथा हरियालीका, कभी भी अभाव न होनेसे, वृन्दावनकी सरसताका निरूपण किया है ।।६।।

इस निम्न श्लोकमें वनके अन्य धर्मोंका वर्णन करते हैं:

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ।।७।।

पुष्पोंसे समृद्ध तथा सुन्दर, सुशोभित वन, जिसमें विचित्र पशु तथा पक्षी नाद कर रहे हैं, मयूर और भौरें गा रहे हैं एवं कोयल तथा सारसें कूंजन कर रही हैं।।७।।

ग्रीष्म ऋतुमें प्रायः पुष्प उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु यहां पुष्पोंकी समृद्धि थी, जिससे वन सुशोभित था रजोगुण शोभा बढ़ाता है, पुष्प राजस है, अतः उनके

कारण, वन सुशोभित था. वनका राजसभाव बताकर अब सात्त्विकभाव बताते हैं, मृग और पक्षी सात्त्विक होते हैं वे वहां नाद कर रहे थे एवं कोयल तथा सारस कूजन करते थे इस प्रकार नाद तथा गानसे, जब रस प्रकट होता, तब कूजन प्रारम्भ होने लगता. अतः तीनोंका वर्णन किया है. सबमें दो-दो कहनेका तात्पर्य यह है कि एकसे कार्यकी पूर्णता नहीं होती है. ध्वनि हो तब उसकी पूर्णताकेलिये अन्यकी अपेक्षा होती है इसलिये नाद कर्ता मृगोंके साथ पक्षी कहे हैं. इस प्रकार गानमें नृत्य चाहिये, नहीं तो गान पूर्ण न होए अतः गान करनेवाले भ्रमरोंके साथ मयूर शामिल किये गये हैं. कूजनमें पर पुष्टकी अपेक्षा है अतः सारसोंके साथ कोयल कही है. तात्पर्य यह है कि वनमें भगवान्को क्रीड़ा करनी है अतः वनके गुणोंका वर्णन किया है ।।७।।

इस प्रकार वनके गुणोंका वर्णनकर, अब भगवान्की जो क्रीडा करनी है, उसको कहनेसे पहले, क्रीडा कर्ता भगवान्का, निम्न श्लोकमें, प्रवेशका वर्णन करते हैं:

क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन् गौपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ।।८।।

क्रीडा करनेकी इच्छावाले गोप और गोधनसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने बलदेवजीके साथ वैसे सुन्दर वनमें प्रवेश किया।।८।।

वनमें, जो इतने गुणोंका प्रादुर्भाव किया, जिसका कारण, भगवान्को यहां क्रीड़ा करनेकी इच्छा थी. वनमें, इस प्रकार, गुणोंको प्रकटकर, श्रीकृष्ण क्रीड़ाकेलिये भगवान् बल(क्रियाशक्ति)को साथ लेकर वहां आविर्भूत हुए. इस प्रकार छः अपने धर्म एवं सातवां बल, इन सात स्वरूपोंसे क्रीड़ा करेंगे, अतः उसका वर्णन सात श्लोकोंसे कहेंगे. वनमें प्रवेश करनेके समय, वेणु बजानेका आशय यह था कि वहांके देव जागृत हो जायें. गोपोंको सेवाकेलिये और गोधन, धर्म तथा अर्थकेलिये साथमें लेकर पधारे हैं. इस प्रकार पधारनेसे रसका प्रारम्भ हुआ यह कहा ।।८।।

इस निम्न श्लोकमें सबकी सामान्य क्रीडाका वर्णन करते हैं:

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ।
कृष्णरामादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ।।९।।

श्रीकृष्ण, राम आदि सर्व गोपोंने प्रवाल, मोरपिच्छ, पुष्पोंके गुच्छे माला

और धातु इनके आभूषण धारणकर, परस्पर सामान्य क्रीडाकी, जैसे कि कभी नृत्य करते थे, कभी युद्ध करते थे और कभी गाते थे।।९।।

कृष्ण राम आदि सब गोपोंने पांच प्रकारके आभूषण धारण किये, १.पल्लवोंके, २.मयूर पिच्छोंके, ३.पुष्पोंके गुच्छोंसे, ४.पुष्पोंकी मालाओंसे, ५.गैरिक धातुओंसे. इस प्रकार पांच तरहके आभूषणोंसे भूषित हो, गोप[१] क्रीड़ा करने लगे. १.नाच करते हुए मनोविलास करने लगे, २.युद्ध करते हुए देहका विलास लेने लगे, ३.गान करते हुए वाणीका विलास प्राप्त करने लगे ।।९।।

१.इस ९वें श्लोकमें कही हुई क्रीड़ा केवल गोपोंने की है, भगवान्की क्रीड़ाका वर्णन १०वें श्लोकमें है. लेख

९वें श्लोकमें गोपोंकी लीला कही अब निम्न श्लोकमें भगवान्की लीला कहते हैं:

कृष्णस्य नृत्यतः केचिद् जगुः केचिदवादयन्।
वेणुपाणिदलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ।।१०।।

श्रीकृष्णचन्द्रजीके नृत्य करनेपर, कई गाते थे, कतिपय बंशी करताल और सींग बजाते थे और अन्य प्रशंसा करते थे।।१०।।

भगवान् नृत्य विद्याकी शिक्षाकेलिये तथा लोकमें नृत्यकी प्रसिद्धिके हेतु नृत्य करते थे, तब अन्य नृत्यमें रसको उत्पन्न करनेकेलिये उसके अङ्गभूत गायन तथा वादन करने लगे, वेणु श्रुति पूरक(शब्दको पूर्ण करनेवाली) है हाथसे शङ्खके समान ध्वनि हो रही थी, पीपलके पत्ते गौके मुखके शब्दके समान शब्द करते थे और सींग बजाये गये, तथा अन्य नृत्य सम्बन्धी स्वतन्त्र प्रशंसा पृथक् प्रकारसे कर रहे थे[१] ।।१०।।

१.इस श्लोकका तात्पर्य श्रीकृष्णका नृत्य ही है, गान और वादनका वर्णन नृत्यके अङ्गके रूपमें कहे गये है. लेख

गोपोंको यह ज्ञान था कि, श्रीकृष्ण भगवान् हैं, महापुरुष सब कुछ कर सकते हैं तब प्रशंसा करनी योग्य नहीं, इस शंकाके उत्तरमें यह श्लोक कहते हैं:

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ।।११।।

महाराज! देवगण गोप जातिसे अपनेको गुप्त बनाकर, कृष्ण और रामकी वैसे स्तुति करने लगे, जैसे नट, नटकी बडाई करते हैं।।११।।

जिस प्रकार भगवान्ने अपनेको मनुष्यरूपसे छिपा रखा है, वैसे ही उनके सेवकोंने भी अपनेको गोप जातिमें छिपा रखा है.

सेवक, नटोंके समान, अब गोप वेश धारणकर, गोप बनकर नहीं आये हैं, किन्तु गोप आदिमें उत्पन्न हुए हैं, उस गोपरूप देहोंमें ही, देव स्वरूपका आवेश, जन्म समयमें किया था, अतः कृष्ण और रामकी स्तुति करने लगे. यह भी शङ्का नहीं करनी कि, सेवक होकर वैसी धृष्टता कैसेकी? क्योंकि जैसे नट, नटकी प्रशंसा करते हैं वैसी उन्होंने प्रशंसा की है. कारण कि इस समय दोनोंका रूप वेश नटके समान था, स्वामि–सेवक भाव नहीं था अतः किसी प्रकार धाष्ट्र्य नहीं है ।।११।।

इस निम्न श्लोकमें पुनः भगवान्की अनेक प्रकारकी क्रीडाओंका वर्णन करते हैं:

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः।
चिक्रीडतुर्निर्युद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ।।१२।।

कभी–कभी काक पक्ष धारण किये हुए, ये दोनों भाई, चकरी खाना, कूदना, फेंकना, ताल ठोकना, खेंचना, बाहु युद्ध करना आदि अनेक खेल खेलने लगे।।१२।।

एक दूसरेका हाथ पकड़कर घूमना, दोनों हाथ मिलाकर घुमाना, मल्ल युद्धमें इस प्रकार भ्रमण और भ्रामणकी क्रियाएं होती हैं. यह खेल बच्चे भी करते हैं. इसी प्रकार उच्च भूमिसे कूदना, गढ्ढेमें कूदना, अथवा मल्लोंसे कूद जाना तिरस्कार करना वा दूर फेंक देना, बाहुओंको ठोकना, बल पूर्वक नियमित स्थानपर ले जाना. इस प्रकार पांच तरहकी लीला, बाहुयुद्धसे करने लगे. क्रीड़ा करनेके समय कृष्ण और रामके, काक पक्षके समान बाल, कानोंके समीप थे. वे बाल चूड़ाकरण संस्कारके समय रखे जाते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि कृष्ण रामका चूड़ाकरण संस्कार हो गया है ।।१२।।

भगवान्की नृत्य आदि लीला वर्णन करनेके अनन्तर अब भगवान्की उपस्थितिमें अन्योंके नृत्यका वर्णन करते हैं:

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्।
शशंसतुर्महाराज साधुसाध्वितिवादिनौ ।।१३।।

महाराज! कभी अन्य नाच करते तब आप दोनों भाई गाते हैं और बजाते

हैं वाह–वाह कहते हैं और प्रशंसा करते हैं।।१३।।

अन्य (गोप) नाचते थे तब आप गाते और बजाते थे, मूल श्लोकमें आये हुए 'च' शब्दका आशय कहते हैं कि, अन्य गाते थे, तो आप बजाते थे तथा अन्य बजाते थे, तो आप गान करते थे और अपनी इच्छासे ही, उनकी बड़ाई करते, कभी दूसरोंकी प्रेरणासे भी, वाह–वाह कहते, थे. कभी तो, विशेष स्तुति करते थे और कभी विशेष प्रकारसे नृत्यकी शिक्षा देते थे ।।१३।।

इस प्रकार शास्त्रके अनुसार, जो लीलाएंकीं, उनका वर्णनकर, अब लोकमें, जिस प्रकार बालक खेल खेलते हैं, उस प्रकारके खेल कहते हैं:

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्य नेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ।।१४।।

कभी बिल्व फलों (बेलों)से, कभी कुंभीके फलोंसे, कभी आमलोंसे, कभी मुठ्ठियोंसे, कभी छूने न देनेसे, कभी आंख मिचोनीसे, तथा कभी हरिणों व पक्षियोंके अनुकरण करनेसे (खेलते थे)।।१४।।

जैसे गेन्द फेंकनेका खेल बालक खेलते हैं, कभी, उसी प्रकार, बिल्व फलोंसे खेलने लगे, कुम्भीफल तथा आमल छोटे होते हैं, लाखके सूक्ष्म पिण्डसे जैसे खेला जाता है, वैसे उनसे खेलने लगे, कभी मुठ्ठियोंको घुमानेकी क्रीड़ा करने लगे तथा कभी एक अपनेको छूने नहीं दे और अन्य उसको किसी प्रकार भी छू लें, इस प्रकारकी क्रीड़ा करते थे. (जिस क्रीड़ाको कपर्दिका अथवा वरवर्तिका उस देशमें कहते हैं) कभी आंख मिचोनी खेल खेलते थे, श्लोकमें 'आदि' शब्दसे अन्य लोक प्रसिद्ध क्रीड़ाएं जैसे कि छिप जानेकी क्रीड़ा जिसका आगे वर्णन होगा, तथा एक दूसरेके पृष्ठपर चढ़ना, एक पैरसे चलना, जल तथा थलपर कपालसे खेलना और कभी हरिण तथा मयूर बनकर नाचना, इस प्रकारकी अनेक क्रीड़ाएं करने लगे ।।१४।।

इस प्रकार साधारण रीतिसे स्थलकी क्रीडाका वर्णनकर अब विशेष प्रकारकी जल क्रीडाका वर्णन करते हैं:

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित् स्पन्दोलिकया कदाचिन्नृपचेष्टया ।।१५।।

कभी मेंढकोंके समान कूदनेसे, कभी अनेक प्रकारके हास्य करनेसे, कभी झूलोंसे, कभी राजाके वेशोंको धारणकर राज्यक्रीडा करनेसे(खेलते थे) ।।१५।।

कभी तड़ाग वा अल्प जलवाले स्थलोंमें, मेंढकके समान पादोंकी ऊपर कूदनेकी कठिन क्रीड़ा भी करते थे, कठिन होनेक कारण, अब वह क्रीड़ा बालकोंमें प्रसिद्ध नहीं है अर्थात् अबके बालक वह क्रीड़ा नहीं करते हैं. इस क्रीड़ामें कूदना, किसी पदार्थको भी उल्लङ्घनकर जाना आदि विविध प्रकारके थे और हास्य भी अनेक प्रकारसे करते थे.

कभी भगवान् राजा बनते तब गोप कहार बन राजाको पालकीमें विराजमानकर अपने कन्धेपर पालकीको उठाके चलते थे, कभी गोप स्वयं पालकी बनते. वह पालकी झूलती पालकी होती थी जिसको संस्कृतमें 'स्पन्दोलिका' कहते हैं. जिसमें दो गोप बैलोंके समान आगेके भागको लेकर चलते हैं, एक गोप बीचमें एक बाहूको लम्बीकर उसको पकड़कर चलता है, परस्पर हाथ मिलाकर चार गोप मिलकर भगवान्को लेकर चलते रहते हैं. कभी किसी स्थलपर भगवान् सिंहासनपर विराजमान होकर पासोंसे खेलते थे, अन्योंको आज्ञा देते अथवा बान्धते तथा दण्ड करते ।।१५।।

इस प्रकार क्रीडाओंका वर्णनकर, अब इस श्लोकमें उपसंहार करते हैं:

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरित्सु च ।।१६।।

इस प्रकार वे दोनों भ्राता, लोक प्रसिद्ध अनेक प्रकारकी क्रीडा करते हुए वन, नदी, पर्वत, द्रोणी, कुंज, कानन और सरोवरोंमें फिरते थे।।१६।।

ये क्रीड़ाएं लोकोंने ही प्रारम्भकी हैं अर्थात् इन क्रीड़ाओंका शास्त्रोंमें वर्णन नहीं है अतः इनका प्रमाण लोक ही है. ये क्रीड़ाएं वनमें ही हुई हैं. कुछ क्रीड़ाएं नदीमें, पर्वतपर, पर्वतोंके बीचकी निम्नभूमिमें, कुंजोंमें, काननोंमें, छोटी नदियोंमें और सरोवरोंमें करते थे. इस प्रकार सर्वत्र बाल क्रीड़ा करनेका आशय यह है, कि जब तक किसी भी कार्यमें, भगवान् प्रवेश नहीं करते हैं, तब तक क्रीड़ा आदि कार्य करनेवालोंमें लौकिक भाव रहता है, जिससे भगवान्की स्मृति नहीं रहती है, अतः भगवान्ने स्वयं क्रीड़ामें प्रवेशकर, बालकोंको प्रपञ्चकी विस्मृति करा दी ।।१६।।

गोप बालकोंमें भगवद्भाव रहित कर्म क्रियारूप था और इसी प्रकार भगवत्स्मृति न कराके, केवल कर्मकी क्रियाका ही स्मरण था, इन दोषोंको बाल क्रीडासे निवृत्तकर, अब अन्तःकरणके दोषरूप अभिमानी देवता, तो दैत्य बन गए

हैं उसने निवारणार्थ श्रीशुकदेवजी वह उपाख्यान (जिस लीलासे अन्तःकरण दोष दूर हुआ वह कथा) कहते हैं:

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ।
गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिघांसया ।।१७।।
तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ।।१८।।

गोपोंके साथ उस वनमें, पशु चराते हुए राम कृष्णको हर ले जानेकी इच्छासे, प्रलम्ब नामवाला असुर, गोपका रूप धारणकर, वहां आया. सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण उसको जानते थे, तो भी, उसके वधका विचारकर, आपने उसके साथ मित्रता करनी स्वीकार की।।१७ – १८।।

जिस समय, गोपोंके साथ, जहां पशुओंको दोनों भाई चराते थे, वहां प्रलम्ब गया. अन्तःकरणके अनुसार रूप बनता है. प्रलम्ब गोपोंके अन्तःकरणके दोषोंका अभिमानी दैत्य था और वह अन्तःकरण दोषाभिमानी, दोषों द्वारा गोपोंका अपहरण करना चाहता था अतः गोपरूप होकर आया. भगवान् सर्वज्ञ होनेसे उसको पहचानते थे कि यह गोप नहीं है अन्तःकरणका दोषरूप प्रलम्भ असुर है जो मुक्ति पर्यन्त अन्तःकरणमें रहनेवाला है अतः इसको बालकोंसे दूर करना है, जब यह दूर होगा तब वे शुद्ध होकर मुझमें निरुद्ध होंगे. इस अन्तःकरणके दोषोंके अभिमानी दैत्यको तो जाकर भी मारना ही था किन्तु जब वह स्वयं आ गया तो फिर उसकी मृत्युमें सन्देह ही कैसा? भगवान् सबके सखा और आत्मा हैं अतः भगवान्ने उसको मारा नहीं. देहसे उत्पन्न होनेवालेको वह आप नहीं मारते हैं इसलिये भगवान्ने स्वयं इसको मारा नहीं, किन्तु उसके नाशकेलिये लीला प्रारम्भकी, प्रलम्बने मित्रता करनी चाही तो उसका अनुमोदनकर उससे मित्रता कर ली.

देहमें रोग उत्पन्न होता है तो, उसको मिटानेकेलिये, औषधका उपयोग किया जाता है, जिससे वह मिट जाये देह निरोग हो जाये. इसी प्रकार यह असुर, देहसे उत्पन्न होते हुए भी दोषरूप रोग है. उस रोगको नाश करना भी आवश्यक है. इस रोगकी औषध बलभद्र है. बलरामजी व्यवहारमें कृष्णके सम्बन्धी हैं, गोपोंके बीचमें उनका भी प्रवेश कृष्णके समान है. मैत्री करनेका कारण भी यह था कि बिना क्लेशके लीला करते हुए इसका वध हो जाये ।।१७–१८।।

मित्रता करनेके अनन्तर, भगवान्ने उसका वध कैसे किया जाए? उसका विचार करने लगे. यद्यपि भगवान् होनेके कारण, श्रीकृष्णको विचार करनेकी आवश्यकता नहीं थी, तो भी, उनको लीला लोकवत् करनी है, इसलिए करने लगे, जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं :

तत्रोपाहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित्।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ।।१९।।

सब प्रकारके खेलोंको जाननेवाले, श्रीकृष्णने गोपोंको वहां बुलाकर कहा कि, हे गोपों! हम लोग जैसे कोई प्रतिबन्ध न पडे वैसे सुखपूर्वक, दो टोले बनाकर खेलेंगे।।१९।।

अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंमें प्रवृत्त हुए सब गोपालोंको, विशेष क्रीड़ाका उपदेश करनेकेलिये, जो भूमि समतल क्रीड़ा करनेके योग्य थी, वहां बुलाकर, जो आगे कहा जायेगा वह कहने लगे. भगवान्को किसी प्रकार कार्य करनेमें परिश्रम नहीं होता है. अतः गोपोंको स्पष्ट कहने लगे. (मूल श्लोकमें भगवान्को 'विहारवित्' कहा है जिसका भावार्थ है कि, भगवान्को सब प्रकारकी विशेष क्रीड़ाएं आती हैं) ये देखकर गोप, वे (क्रीड़ाएं) सीखनेकेलिये और हमारा आपमें विश्वास है इसको सिद्ध करनेकेलिये अपनी प्रवृत्तकी हुई क्रीड़ाओंको छोड़कर, भगवान्के निकट आ गये.

समीप आये हुए गोपोंको भगवान् कहने लगे कि हे गोपों हम लोग एक साथ हो मिले हुए हैं तो भी क्रीड़ा करनेकेलिये दो टोले बनाकर सुख पूर्वक खेलेंगे. किसी भी टोलेके किसी एककी जीत या हार हुई तो, वह उस समग्र टोलेकी जय व पराजय मानी जायेगी ।।१९।।

गोपोंने भगवान्की आज्ञानुसार कार्य किया जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ।
कृष्णसङ्घट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ।।२०।।

वहां गोपोंने राम तथा कृष्णको मुखिया बनाया, उनमेंसे कितने ही कृष्णके साथी और कितने ही रामके साथी बने।।२०।।

उस प्रकारकी क्रीड़ामें दो मुखिया बनाये जाते हैं, पश्चात् दो-दो (गोप) कृत्रिम नाम धारणकर मुखियोंके समीप आते हैं. प्रत्येक मुखिया जिस कृत्रिम

नामको स्वीकार करता है उस नामवाला वह गोप उसका साथी बन जाता है. इस प्रकार कितने ही कृष्णके साथी हुए और कई रामके साथी बन गये ।।२०।।

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ।।२१।।

चढने और चढाने आदि अनेक प्रकारके खेल खेलने लगे, जिसमें जो हारे वे चढाकर ले जाए और जो जीते वे चढें।।२१।।

इस प्रकारकी क्रीडामें यह नियम है कि जोडी प्रथम आ पहुंचे, वह जोडी मुख्य कार्य कर्ता बने।

यहां श्रीदामा तथा प्रलम्ब, दोनों मिलकर प्रथम आये थे. उनमेंसे श्रीदामाको बलरामजीने अपना साथी बनाया जिससे वह बलरामजीका कार्य कर्त्ता हो गया और प्रलम्बको कृष्णने साथी किया, अतः वह कृष्णका कार्य करनेवाला हुआ. तात्पर्य यह है कि ये दोनों, बलराम तथा कृष्णके मन्त्री जैसे हुए. यदि इस प्रकार मन्त्री न बनाये जाते तो, कृष्ण तथा राम भी, जय या पराजयके समय कृष्ण तथा रामको भी परस्पर वाहक बनना पड़ता, क्योंकि, वे दोनों एक जैसे हैं. वहां सर्व कार्य, नियम अनुसार होते हैं, कोई किसीको स्व इच्छासे ले जाये यों नहीं था, वैसा न करनेसे, किसीका अपमान हो सकनेका अवसर आ जानेसे कलह हो जाये अतः नियम पूर्वक कार्य होता है. यों भी नहीं था कि, चढ़नेवाला पक्ष मुख्य है. यदि वैसा किया जाता तो चढानेवाला पक्ष ही अयोग्य माना जाता, इसका तात्पर्य यह है कि चढनेवाला और चढानेवाला, दोनों पक्ष समान गिने जाते हैं. जिससे कोई भी (भगवान् भी) वाहक बन जावे तो किसी प्रकारकी अशिष्टता नहीं हो.

मुख्योंमेंसे एक क्रीड़ा करता है और एक वहन करता है, अथवा विशेष क्रीड़ामें, यों भी होता है कि, एक पक्षके सब गोप अन्य पक्षके सब गोपोंको चढाकर ले जावें.

एक पादसे चलनेकी अथवा एक पादसे कूदनेकी क्रीड़ामें यदि खेलनेवालेके पादने पृथ्वीका स्पर्श किया तो वह पराजित माना जाता है. इस क्रीड़ामें विरुद्ध पक्षवाला क्रीड़ा करनेवालेको इसी प्रकार भ्रमण कराता है जैसे उसका पाद भूमिका स्पर्श करे. जो-जो प्रतिपक्षी खेलनेवालेके पादका भूमिको स्पर्श कराता है उसको खिलाड़ी चढाकर ले जाता है. इसी भांति चढना-चढाना

आदि क्रीडाएं करने लगे ।।२१।।

इस क्रीडामें यों भी नियम नहीं है, कि एक बार हारा वह सदा केलिए वाहक बना रहे, किन्तु इसमें कभी कोई पक्ष जीतता है, और कभी कोई हार जाता है, जब जीतता है, तब चढनेवाला होता है और जब हारता है तब चढानेवाला बनता है जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ।।२२।।

वैसे चढते-चढाते और गायोंको चराते हुए श्रीकृष्णको अपना मुखिया बनाकर सब गोप भांडीर नामवाले बटके पास जाने लगे।।२२।।

श्लोकमें 'चारयन्तश्च जग्मुः' कहा है (गौओंके चराते हुए तथा उनकी रक्षा करते हुए जाने लगे) जिसके कहनेका भाव यह है कि किसीको यह शङ्का मनमें नहीं लानी चाहिये कि सब खेलनेमें आसक्त हो गये होंगे, तो गोधनका चराना और रक्षा करनी भूल गये होंगे जिससे चतुर्विध पुरुषार्थकी हानि होती है. जाते समय वे खेलते थे और गोधनको चराते तथा उसकी रक्षा भी करते थे.

इस वनका नाम 'भाण्डीरक' इसलिये पड़ा है कि वहां एक बड़ा वटका प्रसिद्ध वृक्ष है, जिसका नाम भाण्डीरक है, जिससे इस वनको भाण्डीरक वन कहते हैं. उस वनकी भूमि सम है. सब साथमें मिलकर (किसीको पीछे न छोड़कर) भाण्डीरक वटके पास जाने लगे. कारण कि, प्रलम्बके साथ अन्य गोप भी थे जिसको वह चढाकर ले चलता था यदि वह पीछे रह जाये तो, अन्य गोपको भी, लेकर अन्यत्र चला जाये इसलिये सब साथ चलते थे. इस सत्य बातको(प्रलम्बके आशयको) भगवान् जानते थे इसलिये श्रीकृष्णको नेता बनाया है. वहां बीचमें (रास्तेमें जाते समय) भी क्रीड़ा करते जाते थे ।।२२।।

पश्चात् जब हार होवें तब हारे हुए जीतनेवालेको उठाते थे जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

रामसङ्घट्टिनो ये हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ।।२३।।

हे नृप! जब बलरामजीके पक्षके श्रीदामा, वृषभ आदि गोप जीत गए तब कृष्ण आदिकने उनको चढाया था।।२३।।

अन्य गोपोंके जीतनेका न कहकर केवल तीनके जीतनेका भाव बताते

हुए आचार्यश्री कहते हैं कि अन्तःकरणके तीन प्रकारके गुण होते हैं अतः राम राजस, श्रीदामा सात्विक और वृषभ तामस इन तीनोंसे जीतनेका वर्णन किया (तात्पर्य लौकिकमें तीन गुण ही जीत रहे हैं) वे जब क्रीडामें जीते तब उनको कृष्ण आदिने वहन किया।।२३।।

अक्लिष्टकर्मतासिद्ध्यै हीनत्वं कुरुते क्वचित्।
धर्मप्रधानो भगवानिति ज्ञापयितुं तथा ।।का.१।।

भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं अतः कभी ऐसा कार्य भी करते हैं जो भगवान्के महत्वके अनुरूप न हो जैसे यहां श्रीदामाका अपनेपर आरोहन भगवान् ऐसा कार्य इसलिए करते हैं कि यह जाना जा सके कि भगवान् धर्म प्रधान हैं.

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ।।२४।।

हारे हुए भगवान् श्रीकृष्णने श्रीदामाको उठाया, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बासुरने बलरामजीको उठाया।।२४।।

यद्यपि, श्रीकृष्णको नियमानुसार, बलभद्रको उठाना चाहिये था, किन्तु भगवान्को जो प्रलम्ब वध बलरामजी द्वारा कराना था, अतः आपने बलरामजीके स्थानपर उसके मन्त्री तथा साथी श्रीदामाको उठाया, इस तत्त्वको भगवान्के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता था. श्रीदामाको उठानेका और यह कारण था कि, श्रीदामा नामसे उसके स्वरूपका भाव, समझमें आ जाता है कि, वह लक्ष्मीकी बनाई हुई वनमालाका रूप था अतः भगवान्को उसके आधिदैविक रूपको धारण करना था, इसलिये उसको उठाया था, जो योग्य था. श्रीकृष्ण खेलमें पराजित हुए, यह उठानेका कारण था, यदि भगवान् स्वयं नियमानुसार न उठावें, तो अन्य भी न उठावें, जो योग्य नहीं था. भगवान्ने श्रीदामाको उठा लिया, यह देखकर भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बने रोहिणी पुत्रको उठाया. यहां बलरामजीका नाम न देकर रोहिणीका पुत्र इसलिये कहा कि बलरामजीको यह गोप प्रलम्बासुर है इसका अज्ञान है ।।२४।।

पश्चात् जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः।
वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ।।२५।।

वह दानव, श्रेष्ठ, श्रीकृष्णको ‘बलवत्तम समझ, बलरामजीको लेकर

शीघ्रतासे चलता हुआ नियत स्थानसे दूर चला गया।।२५।।

भगवान्‌से मित्रता करनेसे प्रलम्बको यह ज्ञान हो गया कि श्रीकृष्णका भार कोई भी सहन नहीं कर सकेगा अतः राम और कृष्ण इन दोनोंमेंसे एकका भी यदि उपद्रव किया जाये तो वह (उत्पात) मेरे कार्यके फलको सिद्ध कर देगा, अर्थात्, मैं जिस कार्यकेलिये आया हूं वह पूर्ण हो जायेगा. इसलिये दानव श्रेष्ठ प्रलम्ब, कृष्णको न लेकर, रोहिणीके पुत्रको उठाकर, उतारनेकेलिये निश्चित किये हुए स्थानसे शीघ्रता पूर्वक चलकर दूर ले गया. यदि, धीरे-धीरे, सबके साथ जाता तो, रोहिणी पुत्रको दूर ले जा नहीं सकता था. उतारनेके स्थानपर, उतारना यह मर्यादा थी, किन्तु यह असुर मर्यादाका उल्लङ्घनकर, उस स्थानसे दूर चला गया ।।२५।।

१.अत्यन्त भारवाला होनेसे सर्वथा असहन योग.

प्रलम्बने अपना स्वार्थ सिद्ध हुआ समझकर, मायासे जो गोपरूप धारण किया था, उसको छोड असुररूप धारण कर लिया और भगवान्‌से जो मित्रताकी थी वह भी छोड दी, क्योंकि उसने अहंकारके देवता (संकर्षण)को साथमें ले लिया था, जिससे समझा कि, अब मेरा असुरपन दृढ हुआ है, इससे असुर रूपसे ही, बलरामजीको उठाके आगे जाने लगा, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तमुद्वहन् धरणि-धरेन्द्र-गौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिमानिवाम्बुदः ।।२६।।

जब पर्वतके समान अधिक बोझवाले बलदेवजीका भार उठानेसे उसका वेग बन्द हो गया, तब शीघ्र उसने अपना दैत्य शरीर धारण किया, उस समय वह सुवर्णके आभूषण धारण किये हुए ऐसे शोभा दे रहा था, जैसे चन्द्रमाको धारण किये दामिनीकी दमकसे बादल शोभायमान हो।।२६।।

जब प्रलम्बने मर्यादाको (नियमानुसार उतारनेका स्थान) छोड़ दिया तब भगवान्‌ने बलभद्रजीमें अपना आवेश डाला. उससे बलरामजी मेरु आदि पर्वतके समान गौरववाले(गुरुत्ववाले, विशेष बोझवाले) हो गये. ऐसे महान् भारको उठानेमें महान् असुर होनेसे इसलिये समर्थ हुआ, जो प्रलम्बने समझा कि, इस कृत्रिम (गोप) रूपसे यह भार नहीं उठा सकूंगा, अब मुझे वही असुररूप धारण करना चाहिये, इस विचारसे, उन असुरोंमें मुख्य, प्रलम्बने अपना निजीरूप धारण कर लिया. उस समय वह सुवर्णके आभूषण धारण किये हुए शोभा देने लगा.

शोभाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रलम्बके कन्धेपर बैठे हुए बलभद्रजीका मुकुट सूर्यके समान चमकता था और प्रलम्बका मुकट शीघ्र गतिके कारण बिजलीकी भांति भासमान हो रहा था, तथा बलभद्रजी श्वेत वर्ण होनेसे, चन्द्रके समान दीखते थे और प्रलम्ब श्याम होनेसे, मेघके समान दीखता था. आचार्यश्री कहते हैं कि, यह उपमा अभूत है. (होनेवाली नहीं है किन्तु यहां हुई है) बिजली, सूर्य और चन्द्रमा एक ही कालमें परस्पर इस प्रकार मिलते नहीं हैं. असुर श्रेष्ठ प्रलम्बने अपना महान् असुररूप धारण कर लिया तो भी बलभद्रजीके भारी भारसे उसका बल नष्ट हो गया अर्थात् बलभद्रजीके भार उठानेमें वह असमर्थ हो गया ।।२६।।

पश्चात् बलभद्रजीने जो कार्य किया उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरन् प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।
ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ।।२७।।

आकाशमें घूमते हुए, बलभद्रजी उसका (प्रलम्बका) शरीर अन्य प्रकारका देखकर कुछ डरे, उसका शरीर अतिशय दीप्त दृष्टिवाला, भौंह तक जिसकी उग्र दाढें पहुंच रही हैं और केश जिसके मानो जल रहे हैं ऐसे किरीट, कुंडल तथा कडोंकी कांतिसे अद्भुत था।।२७।।

बलभद्रजी आकाशमें जा रहे थे उस समय उसके (प्रलम्बके) विचित्र नवीन प्रकारके रूपको देखकर कुछ डर गये. उसके रूपका वर्णन करते हैं अतिशय तेज दृष्टिवाला, भौंह तक जिसकी उग्र दाढें–पहुंच रही हैं जिससे उसका मुख क्रोधसे विकारवाला हो रहा है, जिसकी अग्निके समान लाल तथा चमकती हुई शिखाएं हैं, किरीट, कुण्डल तथा कड़ोंकी कान्तिवाला है, ऐसे अद्भुत अपूर्वरूपको देखकर हलको धारण करते हुए भी बलभद्रजी कुछ डर गये. बलरामजीका डर जाना जो कहा है उसके दो आशय हैं १.वह(प्रलम्ब) छलसे ले जाता था, २.अन्य कल्पमें, इस लीलाके समय, भगवान्ने बलरामजीको प्रलम्बका परिचय कराया था. परिचय न होनेसे और अब छलसे ले जाना, अतः कुछ डरे ऐसा कहा है ।।२७।।

इस समय तो, भगवान्के आवेश युक्त होनेसे, बलरामजीने जो किया, उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसार्थमिव हरन्तम् आत्मनः ।

रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ।।२८।।

फिर स्मृति आते ही निर्भय हो, बलदेवजीने किसी पदार्थके समान अपनेको आकाशमें ले जाते हुए शत्रुको देखकर, क्रोधित हो के, इन्द्रने जैसे वज्रके वेगसे पर्वतपर प्रहार किया था वैसे ही उसके सिरपर दृढ मुष्टिसे प्रहार किया।।२८।।

मूल श्लोकमें 'अथ' शब्द कहनेका आशय यह है कि 'अनन्तर' अर्थात् बलरामजीने निर्भय होकर प्रलम्बके वधका कार्य भगवान्के आवेश आ जानेके पीछे किया, अकेले नहीं कर सकते थे. आवेशके प्रवेशसे (उनको) स्मृति आ गई जिससे निर्भय हुए. आकाश मार्गसे, अपनेको हर ले जानेवाला, स्वाभाविक शत्रु वधके ही योग्य है, ऐसा विचारकर, क्रोधित होके दृढ़ मुष्टिसे उसके शिरपर ऐसे प्रहार किया, जैसे इन्द्रने वज्रके वेगसे, पर्वतपर प्रहार किया था, केवल ले जानेके अपराधसे क्यों मारा? अर्थात् स्वल्प दोषकेलिये इतना भारी दण्ड क्यों दिया? इस शङ्काके मिटानेकेलिये इन्द्रका दृष्टान्त दिया है, कि इन्द्रने पर्वतोंको सकल लोकोंका अपकार करनेवाला जानकर, जैसे दुःख देनेवाले, उनके, उड़नेके पंख काट दिये थे वैसे ही यह लोकोंको दुःख देनेवाला था इसलिये इसको मारा गया है. वेगसे मारनेका कारण यह है कि, यह उपद्रवी है, किसी प्रकार प्रतीकार न कर सके. वेगसे मुक्का मारनेसे यह बच नहीं सका, अर्थात्, वेगके कारण केवल मुक्केसे ही मर गया ।।२८।।

मुक्के लगनेके अनन्तर जो हुआ वह इस श्लोकमें कहते हैं:

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद् वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत् समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ।।२९।।

प्रहार होते ही, शीघ्र उसका शिर बिखर गया, मुंहसे रक्त बहने लगा, और वह दैत्य बडा शब्द करता हुआ अचेत हो, बिना प्राण होकर गिर गया, जैसे इन्द्रके शस्त्रके प्रहारसे पर्वत गिर गया था।।२९।।

चारों तरफसे मारा हुआ, उसका मस्तक सहसा खण्डित हो गया पश्चात् मुखसे लहू बहने लगा जिसके साथ वह अपने भीतरके दोष भी निकालने लगा, तब उसकी स्मृति भी चली गई. इस प्रकार देह, इन्द्रिय और मनकी विकलताका निरूपण किया. ऐसी दशा होनेपर भी असुर था इसलिये अपना राजसभाव प्रदर्शित करने लगा. राजसभाव कैसे दिखाया? इसपर कहते हैं कि बड़े जोरसे

शब्द करता हुआ निष्प्राण होके भूमिपर गिरा. प्राण तो आकाशमें होते हुए ही निकल गये थे, पृथ्वीपर उसका शव ही गिरा. यह असुर भी गिरनेके अनन्तर, वज्रसे गिरे हुए पर्वतके समान न उठा और न बढा, अस्थिओंका ढेर हो गया ।।२९।।

उसके पीछे जो हुआ, उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना।
गोपाः सुविस्मिता आसन् साधुसाध्वितिवादिनः ।।३०।।

बलवान बलभद्रजीसे प्रलम्ब (को) मरा हुआ देख, गोप अचंभेमें पड गए और अच्छा हुआ, अच्छा हुआ यों कहने लगे।।३०।।

गोपोंको आश्चर्य इसलिये नहीं हुआ था कि बलभद्रजीने प्रलम्बको मारा है, क्योंकि बलभद्रजीकी शक्तिको (वे) जानते थे. किन्तु आश्चर्य इससे हुआ कि, बलभद्रजीने कैसे पहिचाना कि यह गोप नहीं है और असुर है? और इसको शीघ्र मारनेके ढंगकी स्फूर्ति कैसे हुई? तथा एक ही प्रहारसे मर गया इत्यादि कारणोंसे गोप जाति होनेके कारण, विशेष विस्मित हुए. प्रथम, जब वह असुर बलभद्रजीको आकाशमें ले जाता था उस समय गोप चिन्तित थे अतः उसके (असुरके) मरनेसे प्रसन्न हुए जिससे 'साधु' शब्दका उच्चारण करने लगे ।।३०।।

वे गोप अन्तःकरणके दोषोंके निवृत्त होनेसे देव भावको प्राप्त हुए जिससे बलरामजीको आशीर्वाद देने लगे उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

आशिषोऽभिगृणन्तश्च प्रशशंसुस्तदर्हणम्।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ।।३१।।

गोप देव भावको प्राप्तकर बलरामजीको आशीर्वाद देते हुए कहने लगे कि बहुत समय तक जीवन धारण करो और हम लोगोंका पालन करो।।३१।।

उनका (बलभद्रजीका) पूजन जिस प्रकार हो वैसे ही उनकी स्तुति करने लगे, अर्थात् पूजा करनेके अनन्तर स्वयं स्तुति करने लगे. इस प्रकार उत्तम गोपोंके उत्तम भाव तथा हीन गोपोंके हीन भावका वर्णनकर शेष आधे श्लोकमें कहते हैं कि समभाववाले गोपोंने बलभद्रजीका इस प्रकार प्रेमसे विह्वल होकर आलिङ्गन किया जैसे मरकर जीता हुआ लौटकर आया हो उसका आलिङ्गन किया जाता है ।।३१।।

प्रलम्बका वध केवल भूमिपर रहनेवालोंकेलिए हितकारी नहीं था,

किन्तु देवोंकेलिए भी लाभकारी था, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ।।३२।।

पापी प्रलम्बके मरनेसे, देवगण परम प्रसन्न हुए जिससे बलदेवजीके उपर पुष्प बरसाने लगे और वाह – वाहकर प्रशंसा करने लगे।।३२।।

पापी प्रलम्बके मरनेसे शुद्ध सत्व गुणरूप देवगण, कंस आदि दैत्योंके भयसे छूटे, अतः परम आनन्दको प्राप्त हुए. उस आनन्दको प्रकट करनेकेलिये बलरामजीके ऊपर फूल बरसाने लगे तथा उनकी स्तुति करने लगे एवं वाह–वाह करते हुए प्रशंसा करने लगे प्रशंसा करनेसे उनके देवताका ज्ञान होता है, पुष्पोंकी वर्षा हर्ष बताती है. इससे यह बताया है कि दोष दूर होनेसे उनके (दोषोंके) अभिमानी भी सुखी होते हैं. इस लीलासे अन्तःकरणके दोषोंकी निवृत्ति की, जिससे गोप (जिनके अन्तःकरणके दोष निवृत्त हो गये) तथा देव दोनोंने उसका अनुमोदन किया ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके श्रीनिरूपक अध्याय ४ (स्कन्धानुसार अध्याय १५/१८) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १६

गौओ्ं और गोपो्ंको द्वितीय दावानलसे बचाना

अज्ञानात्मा ह्यात्मदोषो दवाग्निस्तन्निवारणम्।
षोडशे प्रोच्यते सम्यङ्निरोधः सेत्स्यते ततः ।।का.१।।

आत्माका अज्ञान है, वह दोषरूप है, उस आत्मा अज्ञानरूप दोषका दावाग्नि प्रकट रूप है, अतः इसको नाश करना चाहिए, जिसका वर्णन १६वें अध्यायमें करते हैं जिससे निरोध सिद्ध होगा।।१।।

पञ्च पर्वरूप अविद्याका एक पर्व, स्वरूपका अज्ञान है, जिसका प्रकटरूप दावाग्नि है, उसके नाशके अनन्तर ही, निरोध सिद्ध हुआ. निरोध सिद्धिसे, व्रज भक्तोंको यह ज्ञान हो गया, कि भगवान्की लीलामें उपयोगी श्रवण तथा आचरण करना चाहिए तथा विपरीतका त्याग करना चाहिए एवं दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिए. [1]दावाग्निके (स्वरूप विस्मृतिरूप अज्ञानके) नाशके अनन्तर ही, गोपोंको भगवान् तथा बलदेवजीके स्वरूपका पूर्ण ज्ञान हुआ.

अविद्याके पंचपर्वरूप दोषोंके स्वरूप धेनुकादि दैत्योंका नाश, भगवान्ने इस दशम स्कन्धमें किया है, जिससे निरोध सिद्ध हुआ है, अतः यह लीला निरोधका अंग होनेसे दशम स्कन्धमें कही गई है, इसलिए इस कारिका द्वारा स्कन्धार्थकी संगति कही गई है।।१।।

१.'स्वरूप विस्मृति' दोषने, जीवको अपने स्वरूप (मैं भगवान्का अंश हूं जिससे भगवान्से अन्य वस्तु (देहादि) नहीं हूं) और भगवान् अंशी होनेसे, पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वशक्ति युक्त हैं, इस प्रकारके भगवत्स्वरूपका तथा वह कृष्ण भगवान् हैं, इस प्रकारका ज्ञान, गोपोंको अविद्याके कारण नहीं रहा, यह जीव दोष है, उस स्वरूप विस्मृतिरूप अज्ञान(दोष)का स्वरूप दावाग्नि है, जिसका नाश जब भगवान्ने किया तब गोपादिकोंको, यह ज्ञान हुआ कि हम भगवान्के अंश हैं और वह अंशी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं. बलरामजी भी उनकी क्रियाशक्तिरूप हैं, अतः दोनों हमारे देव हैं.

ततो दासैर्मुदा लीला स्वच्छन्दाग्रे भविष्यति।
स्त्रीणां चैव मनःप्रीतिस्तदासक्तिः फलिष्यति।।का.२।।

पश्चात्(निरोध होनेके अनन्तर) जब दासोंके साथ स्वच्छन्द लीला होगी, तथा स्त्रियोंके मनकी प्रीति भी होगी, तब भगवान्में हुई आसक्ति फलीभूत होगी।।२।।

साधारणतः सिद्ध निरोधका भी, मुख्य लीलामें जो उपयोग होगा, उसका निरूपण इस उपरोक्त कारिकासे किया है. यह (निरोध) आसक्तिरूप निरोध होनेसे, दास(गोप) भी स्वच्छन्दलीला भगवान्के साथ करेंगे तथा स्त्रियोंकी भी प्रेमपूर्वक आसक्ति होगी. १७वें व १८वें अध्यायोंकी लीला निरोध सिद्ध होनेके पीछे हुई है जिसमें गोपोंके साथ की हुई लीलाका वर्णन १७वें अध्यायमें और स्त्रीजनोंमें वेणुनाद द्वारा उत्पन्न प्रेमसे जो लीला हुई जिसका वर्णन १८वें अध्यायमें है. इस प्रकार गोप तथा स्त्रीभक्तोंसे की हुई लीलाका वर्णन किया है ।।२।।

श्रीशुकः उवाच

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः।

स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ।।१।।

श्रीशुकदेवजीने कहा कि जब गोप खेलनेमें आसक्त हो गए तब उनकी गौ स्वेच्छा पूर्वक चरती-चरती तृणके लोभसे गह्वर(सघन)वनमें चली गई।।१।।

प्रलम्बके वधसे निर्भय गोप क्रीड़ामें आसक्त हो गये, जिससे, उनका गौधन, जहां-तहां चला गया जिसका इनको ज्ञान भी नहीं रहा. इसलिये नहीं रहा, कि जब अन्तःकरणका दोष नाश हो जाता है, तब लौकिक विषयका अज्ञान सा रहता है, क्योंकि दोष निवृत्तिसे उस जीवकी मुक्त सम अवस्था हो जाती है. अतः पशुधनका ध्यान गोपोंको नहीं रहा किन्तु जब तक पूर्ण निरोध, वा मुक्त अवस्था नहीं होती है तथा देहकी उपाधि लगी हुई है, जिससे असत् अर्थमें प्रवेश होता है, असत् अर्थमें प्रवेश होनेसे, आत्मा, जीव भी उस दोषवाला(असत्में प्रवेशवाला) होता है. तब गौओंके दाह होनेपर (गौका तात्पर्य यहां देह है) गोप (जीव) भी दग्ध हुए कहे जाते हैं. तात्पर्य यह है, कि जीव भी देहकी उपाधिके दोषोंसे, स्वयं दोषी कहा जाता है अथवा स्वयं यों मानता है. इस प्रकार, जब सर्वनाश होने लगता है, तब हरि ही रक्षक हैं. यदि हरिकी उपेक्षाकी जावे तो सर्वनाश हो जाये. भगवान्की शरण लेनेसे ही सर्वकी रक्षा हो जाती है. अतः जो सर्व उपाधिसे छूट गया है उसको भी भगवान्की शरण लेनी चाहिये.

गोप क्रीड़ामें आसक्त हो गये जिससे गौओंका पालक कोई भी न रहनेसे गौ दूर चली गई. स्वच्छन्द होनेसे तृणोंके लोभकेलिये जानेके योग्य नहीं वैसे स्थानमें पहुंच गई. इस प्रकार देहकी भी यदि उपेक्षा की जाये तो वह भी अशक्य

स्थानमें प्रवेश करे ।।१।।

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम् ।
इषीकाटवीं विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ।।२।।

अजा, गौ, महिषी ये सब वनको जाती हुई दावसे प्यासी हो गई, जिससे रंभाती हुई मुञ्जारण्यमें चली गई।।२।।

जैसे देह सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारकी हैं, वैसे ही, ये गौ भी तीन प्रकारकी थीं, इसलिये श्लोकमें, राजस गौओंको 'अजा', सात्त्विक गौओंको 'गावः' और तामस गौओंको 'महिष्य' कहा गया है. पूर्व प्रकरणमें, केवल गोपोंका धर्म, गौ रक्षा है, इतना ही वर्णन करना था, अतः गौ कितने प्रकारकी थीं, उसके वर्णनकी आवश्यकता नहीं थी. इसलिये वहां तीन प्रकारकी गौ हैं यह वर्णन नहीं किया गया. मूल श्लोकमें 'च' शब्द इसलिये दिया है, कि उस समय लीलाकेलिये हरिण वा श्वान आदि पशु भी साथमें लिये थे. जिस वनमें देवताका सान्निध्य था और किसी प्रकारका उपद्रव नहीं था, उस वनका त्यागकर वैसे (मुंजारण्य)में जा पहुंचे, जहां कोई रक्षक नहीं था और जिससे आना जाना भी कठिन है वहां जानेके अनन्तर देखा कि एक सालकी सूखी हुई मूंज जो स्वयं मरणासन्न हो गई वह हमारी रक्षा कैसे कर सकेगी, अतः वे रोती हुई पुकारने लगी तथा धूपके कारण प्याससे व्याकुल होने लगीं. इस प्रकार गायोंने आप ही अपने पालक गोपोंका सम्बन्ध गंवाया और अनिष्टसे सम्बन्ध किया ।।२।।

जिनके अन्तःकरणका दोष नाश हो गया है उनको (गोपोंको) गौओंकी स्मृति हुई, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं :

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ।
जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ।।३।।

वे, कृष्ण, राम आदि गोप पशुओंको न देखकर, पछताते हुए दुःखी हो गए, गायोंको बहुत कुछ ढूंढा परन्तु पता न लगा।।३।।

जब गोपोंने गोधनको नहीं देखा, तब जहां वे चली गई हैं, उस स्थानका ज्ञान करनेकेलिये राम-कृष्णको अपना मुख्य नायक बनाकर, उस रास्तेसे जाने लगे. (रास्तेसे जाने लगे यह ४थे श्लोकमें है उससे इसका सम्बन्ध है.) पहले जब क्रीड़ासे विरक्त हुए तब पशुओंका स्मरण हुआ उनको न देखकर पछताने लगे, कि यह जो लीला की, वह न करनेके बराबर है, कारण कि, इससे उत्पन्न आनन्द

नष्ट हो गया. अतः गौओंके जानेके स्थानकी गति[२] न हुई. गौओंके स्थान जाननेका प्रयत्न इसीलिये किया कि धर्मकी पालना करनेमें गौ जाति मुख्य है ।।३।।

१.अन्तःकरणका स्वरूप विस्मृति दोषपूर्ण रीतिसे जब तक नष्ट नहीं होता है, तब तक अल्प दोष भी पुनः उद्‌भूत हो जाते हैं. गोपोंको इसीलिये पुनः गौओंकी स्मृति आदि लौकिक ज्ञान उदय हो गया.

२.जिस स्थानपर वे गईं थीं उसका ज्ञान.

इसके अनन्तर, अनुमानसे स्थानको जान लिया. जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ।
मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ।।४।।

आजीविकाके साधन नष्ट हो जानेसे चेतन रहित हो गए. परन्तु गायोंके खुरोंसे तथा दांतोंसे कटी हुई घास देखते हुए गायोंके खुरोंके चिह्नवाले मार्गपर जाने लगे ।।४।।

उस मार्गसे जाने लगे, जिसमें देखा, कि यहांका यह घास गौओंने अपने खुरोंसे और दान्तोंसे काटा है, अतः इस मार्गसे गौ गई हैं आगे जानेसे मिल जायेगी. गौओंके खुरोंसे यह जान लिया, कि इस वनको छोड़कर दूसरे वनमें, इस मार्गसे गई हैं और दान्तोंसे कटी हुई घाससे, सामान्य रीतिसे, यह पहचान लिया, कि गौ इस रास्तेसे किस प्रकार कहां-कहां गई हैं. गौओंके जानेसे, उस मार्गके तृण तीन प्रकारके हो गये थे. १.जड़से कटे हुए तृण, २.बीचसे टूटे हुए और ३.गोबर तथा खुरोंके घातसे पीड़ित तृण. इन तीन प्रकारके तृणोंसे यह निश्चय हो गया कि, गौ यहांसे ही गई हैं इसमें किसी प्रकारकी शङ्का नहीं है. ऐसा निश्चय होनेसे, सब उसी मार्गसे जाने लगे. सब इसी एक ही मार्गसे, इसलिये जाने लगे कि, जो सबोंकी आजीविकाका आश्रय गौ थीं, उनके जानेसे, सब आजीविका विहीन हो गये थे.

गोप चेतन थे, वे अचेतन पशुओंके मार्गपर कैसे गये? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आजीविका जानेसे व्याकुल तथा विवेक रहित हो गये थे ।।४।।

वहां पहुंचकर गोधन लेकर पीछे लौटकर आए जिसका वर्णन करते हैं:

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं च गोधनम् ।

सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते सन्न्यवर्तयन् ।।५।।

मूंजके वनमें भूले हुए पुकारते हुए, अपने गोधनको प्राप्तकर, प्यासे तथा थके हुए गोपोंने उसको चारों ओरसे घेरकर पीछे लौटाया।।५।।

वह गौधन, यदि मध्यमें मूंजका वन न आता तो, इससे भी आगे जाता, किन्तु मूंजके वनमें ही भूल जानेसे, कर्त्तव्यविमूढ हो गये. मूंजके स्पर्शसे, दुःखित होनेके कारण, पुकारने लगे. गोप इसी प्रकारके गोधनको प्राप्तकर स्वयं भी प्यासे और श्रमित हो गये. इनकी दशा भी गौओंके समान हो गई. प्यास मिटाके थोड़ा समय विश्रामकर पीछे भली भांति उनको लेकर लौटे ।।५।।

सर्व गौ लौटकर आईं अथवा कोई रह गई, इस सन्देहको दूर करने केलिए, भगवान्ने सामान्य तथा विशेष रीतिसे ध्वनिकर उनको बुलाया जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ।।६।।

मेघ जैसी गम्भीर वाणीसे, जब भगवान्ने उनको बुलाया, तब वे गौ, अपने नामकी ध्वनि सुनकर, प्रसन्न होकर, पीछे आप भी नाद करने लगीं।।६।।

वनसे सब आ गई हैं अथवा कोई रह गई हैं इसलिये भगवान्ने मेघके समान ध्वनिसे प्रत्येकका नाम लेकर उनको बुलाया. भगवान्के उस शब्द सुननेसे, उनके बाहर और भीतरके दोनों ताप मिट गये. ताप मिट जानेसे, अपने नाम सुनकर, वहां ही खड़ी रहकर, आप भी ध्वनि करने लगीं और बहुत प्रसन्न हुईं और भगवान्के पास आ गईं, कोई नहीं भी आई ।।६।।

उसी समय, प्रलम्ब दैत्यके अभिमानरूप देवता, तथा उससे (प्रलम्बसे) उपासना किये हुए देवता, एवं अन्तःकरणके अभिमानरूप तथा दोषरूप देवता, इन चार प्रकारके देवताओंने मिलकर, दावाग्निका रूप धारण किया. उस दावाग्निने मूंजसे पीडित होनेके कारण, भाग जानेमें असमर्थ गौ आदिको. चारों ओरसे घेर लिया जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं :

ततः समन्ताद् वन–धूमकेतुः यदृच्छयाभूत् क्षयकृद् वनौकसाम् ।
समीरितः सारथिनोल्बणोन्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान् ।।७।।

पश्चात् यदृच्छासे चारों ओर बनवासियोंका नाश करनेवाली बडी दावानल उत्पन्न हो गई, उसके सहायक मित्र सारथीने(वायुने) उस(अग्नि)को

विशेष बढाया जिससे वह महती अग्नि तेज ज्वालाओंसे स्थावर तथा जंगम पदार्थोंको चाटने लगीं अर्थात् भस्म करने लगीं।।७।।

मूल श्लोकमें अग्निकेलिये 'धूमकेतु' नाम देनेसे यह बताया है, कि यह अग्नि अनिष्टका कारण है तथा इस अग्निका माहात्म्य दिखानेकेलिये कहा, कि यह अग्नि किसीकी उत्पन्न की हुई नहीं है, किन्तु यह अपनी इच्छासे अचानक स्वयं प्रकट हुई है, अथवा काल, कर्म, स्वभाव वा भगवदिच्छासे उद्भूत हुई है. उत्पन्न होनेके कारण बतानेकेलिये कहते हैं, कि वनमें रहनेवालोंका क्षय करनेकेलिये प्रकट हुई है. यह अग्नि वनकी सदा सम्बन्धिनी है, अतः जो अन्य, वनसे सम्बन्ध करते हैं, उनको पीड़ा करती है, अर्थात् अन्यका वनसे सम्बन्ध हो वह मानो इसको सहन नहीं कर सकती है. उस अग्निको, तेज करनेवाला अन्य भी सहायक मिल गया. वह है वायु. वायुको शास्त्रोंमें अग्निका सारथी कहा गया है. अग्निका रथ अग्निकी ज्वालाएं हैं, उनको वह(वायु) तेजकर, आगे बढाता है, इसलिये मूलमें, तेज ज्वालाओंसे काटने लगी जैसे सर्प समीपमें आये हुएको ग्रसताहै, जिससे वह पुष्ट होता है वैसे ही वह अग्नि भी इस प्रकार करनेसे महान् हुई ।।७।।

इस प्रकारकी वह दावाग्नि, जहां भगवदीय (गोप, गौ) बैठे थे, वहां भी आई. जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ।।८।।

चारों ओरसे आती हुई, उस दावाग्निको देख गौ और गोप भयभीत हो गए, जिससे बलराम तथा श्रीकृष्णकी शरण जाकर उनको कहने लगे।।८।।

अपरिहार्य अग्निको अपने ऊपर आती हुई देख गोप(उस अग्निके मिटानेके उपायको न जाननेवाले थे) और गौ(पशु-मूढ थीं) इसलिये अग्निको देख डर गये. पश्चात् भगवान्के माहात्म्यको जानते थे अतः उनके शरण गये तथा प्रार्थना करने लगे. क्रियाशक्तिरूप बलभद्र एवं सदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, अतः इस कार्यमें वे हमारी अवश्य सहायता करेंगे, यों समझ प्रार्थना की क्योंकि, श्रीकृष्ण सदानन्द स्वरूप होते हुए भी अब लीला करनेकेलिये प्रकट हुए हैं. इस प्रकार, बलरामजी भी क्रियार्थ प्रकट हुए हैं, इसलिये शरण जाकर प्रार्थना करनेसे, हमारा यह सङ्कट वैसे ही मिटायेंगे, जैसे गजेन्द्रका मिटाया था अतः गजेन्द्रकी

तरह अत्यन्त दीन होकर शरण गये ।।८।।

प्रार्थनामुपपत्तिं च क्रमेणाह निराकृतौ ।।का.।।

दावाग्निसे प्राप्त भयके निवारण केलिए प्रार्थना तथा उपपत्ति(हेतु देकर कार्य सिद्धका उपाय बताना)को क्रम पूर्वक कहते हैं.

निम्न दो श्लोकोंसे प्रार्थना करते हैं:

कृष्ण! कृष्ण! महावीर्य! हे रामामितविक्रम! ।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ।।९।।

महान् पराक्रमवाले हे कृष्ण! हे कृष्ण! अनन्त पराक्रमवाले हे राम! दावानलसे जलते हुए हम, जो आपके शरणागत हुए हैं उनकी रक्षा कीजिए।।९।।

भगवान्को कृष्ण! कृष्ण! यह सम्बोधन देनेका अर्थात् दो बार कहनेका भाव यह है कि एक तो श्रीकृष्णकेलिये आदर प्रकट किया है और दूसरा अपनी विकलता बताई है तथा महान् पराक्रमवाले हो इस विशेषण देनेसे प्रकृत कार्य (दावानलसे बचाने)में आप समर्थ हो यह बताया है. इसी प्रकार गोपोंने रामको अनन्त पराक्रमवाला कहकर दावाग्निसे बचानेकी प्रार्थना की है किन्तु गोप[१] दो प्रकारके थे इसलिये 'राम' यह सम्बोधन दो बार नहीं कहा. विशेषसे, यह बता दिया कि आपने अभी प्रलम्बको मारा है अतः इस दावाग्निसे भी रक्षा करनेमें शक्तिमान हो. हम आपकी शरण आये हैं जो समर्थ होता है, वह शरणागतकी रक्षा करता है, क्योंकि उसको वैसा करनेका अधिकार है. इसलिये आप दोनों हमारी रक्षा करनेकेलिये योग्य हैं ।।९।।

१.साधारण गोप श्रीकृष्ण व बलरामको समान मानते थे, असाधारण श्रीकृष्णको विशेष मानते थे, वा उनको पूर्णरूपसे मानते थे. प्रकाश

उपर्युक्त श्लोकमें मर्यादाके विचारसे अपनी रक्षाकी आवश्यकताका निरूपण कर, अब पुष्टिमार्गसे, अपनी रक्षा करानी आवश्यक है अथवा आपकी स्थिति(पद)से, तथा हमारी स्थिति(दशा)से भी हमारी रक्षा आवश्यक है जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्येवसीदितुम् ।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ।।१०।।

हे कृष्ण! निश्चयसे हम आपके बान्धव हैं, अतः हम दुःखी होवें, यह योग्य नहीं है. हे सर्व धर्मोंको जाननेवाले ! हम सबके आप नाथ हैं और आप ही

शरण्य हैं।।१०।।

भगवान्को कृष्ण नाम कहकर, यह बताया है कि सदानन्दस्वरूप हैं अतः आप(सदानन्दस्वरूप)के सेवक(हम) दुःखी, यह उचित नहीं है तथा हम आपके बान्धव हैं, इससे भी हम दुःखी होने योग्य नहीं हैं. 'च' शब्दसे यह बताया है कि थोड़ा सा भी दुःख हम(आपके सेवक तथा बान्धव होनेसे) सहन करने योग्य नहीं है. 'एव' शब्दसे यह भी कह दिया कि, किसी भी समय, हमको दुःख नहीं होना चाहिये. आप हमारे बान्धव हैं, इसका हेतु देकर सिद्ध करते हैं. लौकिक, वैदिक अनन्त प्रकारके जो धर्म हैं, वे भिन्न-भिन्न हैं, उनको आप ही जानते हैं. तथा कौन सा धर्म किस धर्मको बाध करता है और कौनसे धर्मोंका अन्य धर्मसे बाध होता है इसको भी आप जानते हैं. अतः चाहे किसी भी प्रकारसे हम आपके शरण आये हैं, उस शरणागतिकी किसी भी धर्ममें गणना होनी चाहिये यदि नहीं गणना होती है तो आप ही हमारे नाथ हैं यह कैसे सिद्ध होगा? धर्मके अतिरिक्त विशेष प्रकारसे आप नाथ नहीं हो सकते हैं और वह विशेष यह है कि हमारे परम स्थान आप ही हैं. नाथ माननेपर भी एक निष्ठता(अनन्यभक्ति) अतीव दुर्लभ है. [१]जैसे आप गायोंके नाथ हो और हमारे तो नाथ और आधार भी आप ही हो क्योंकि हम 'त्वन्नाथ' भी हैं और 'त्वत्परायणः' भी. अथवा गायें भगवान्को अपने नाथके रूपमें प्रार्थना कर रही हैं और गोप अपने आधार-स्थानके रूपमें ।।१०।।

१.यहां मूलमें 'यथागावस्त्वन्नाथास्त्वनिष्ठा' कहकर 'वयं तु भयविद्या' कहा है अतः स्पष्ट नहीं होता है कि आशय क्या है? अनुवाद 'यथागावस्त्वन्नाथाः' और 'त्वनिष्ठाः वयं तु भयविद्याः' यों 'तु' के स्वारस्यानुरोधसे किया है. अनुवादक

गोपोंने, जो अपनी रक्षाकेलिए बलरामजी तथा श्रीकृष्णको प्रार्थना की है, उसको सुनकर, भगवान्(श्रीकृष्ण)ने तो उनकी प्रार्थनाके अनुसार उनका भय मिटाते हुए उनकी रक्षा की बलरामजी शान्त रहे जिसका वर्णन इस निम्न दो श्लोकोंसे करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत।।११।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि भगवान् हरि बान्धवोंके वैसे दीन वचन

सुनकर, बोले कि हे गोपों! बान्धवों ! मत डरो! आंखे बन्द करो।।११।।

भगवान् जिनके नाथ और आधार हैं, उन गोप बान्धवोंका तथा जिन गोपोंके आप नाथ हैं उनका इस प्रकार दोनों प्रकारके बन्धुओंके दीन वचन सुनकर, सबके दुःखोंको मिटाना, जिनका स्वाभाविक धर्म है तथा दुःख हरणके उपाय जाननेवाला और सर्व समर्थ हरि भगवान्ने दुःख मिटाना आवश्यक समझा, आप अपना कर्म(लीला) देवताओंसे गुप्त रखते हैं और आपके कर्मसे अज्ञ डर जाते हैं, अतः भगवान्ने इन दोनों(देवरूप गोप जाने नहीं और अज्ञ डरे नहीं) कार्योंकी सिद्धिकेलिये गोपोंको आज्ञा दी कि अपने नेत्र मूंद लो. पहली दावाग्नि हुई, तब नेत्र बन्द नहीं करवाये, जिसका कारण यह था, कि उस समय रात्रि थी जिससे वे पूरी तरह देख नहीं सकते थे. अब गोपोंमें ज्ञान शक्ति प्रकट हो गई है, जिससे वे डर गये थे, यदि ज्ञान शक्ति प्रकट न हुई होती तो अज्ञानकी अवस्थामें, अग्निको मित्र समझ, पतङ्गकी तरह अग्निमें पड़ जाते, इनको अन्य स्थानपर ले जानेसे भी भय तो बना रहता, अतः सर्व प्रकारसे, भयका अभाव ही इसलिये आज्ञा दी, कि नेत्र मूंदलो. नेत्र मूंदनेपर अन्तःकरणमें यह भय रह जाता कि अग्नि हमको जला देगी, अतः भगवान्ने इस भयको मिटानेकेलिये विश्वास दिला दिया कि डरो नहीं, अर्थात् अग्नि जला देगी यह भय मत करो ।।११।।

यद्यपि गोपोंको यह ज्ञान नहीं था कि नेत्र बन्द भगवान्ने इसलिए कराए हैं, कि हमारे दुःख निवृत्तिका उपाय भगवान् करते हैं, तो भी, आपकी आज्ञासे नेत्र बन्द किए, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तथा निमीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम्।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ।।१२।।

वैसे ही आंखे बन्द करनेपर, योगेश्वर भगवान्ने मुखसे उस अग्निका पानकर, उन(शरणागतों)को दुःखसे छुडाया।।१२।।

भगवान्ने देखा कि गोपोंने नेत्र मूंद लिये हैं, तब दुष्टके आवेश होनेसे, तेज हुई दावाग्निको, मुखसे ही उसका पानकर शरणागतोंको पहलेकी तरह दुःखसे छुड़ा दिया. अग्निको जलसे न बुझाकर मुखसे इसलिये पान किया, कि उसमें(दावाग्निमें) जो ँसख्य सम्बन्धके कारणसे दोष आये थे वे जलसे नष्ट नहीं होते, अतः उनका पानकर, अर्थात् अपने भीतर स्थित आधिदैविक अग्निमें स्थितकर, उन दोषोंको तथा अग्निरूप दोषोंको भी नाश किया. वे दोष भगवान्में

अन्दर स्थित आधिदैविक अग्निसे मिलनेपर ही समूल नष्ट हो सकते थे. अपने सेवकोंमें तथा अग्निमें, भीतर रहे हुए दोष भगवान्ने कैसे प्रकट किये. इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं, कि योगाधीश (कर्म करनेमें चतुरोंके स्वामी) हैं, अतः भक्तोंके तथा अग्निके दोषों(असुरत्व)को, उनमेंसे पृथक्कर, दावाग्निमें धरा, आपने उस दावाग्निको पानकर, दोष समूल नष्ट कर दिये. वे गोप निर्दोष होनेके साथ दुःखसे छूट गये ।।१२।।

१.गोप भगवान्के सखा थे, अतः सखाभावमें समानता होनेसे, भगवान्को अपने समान समझने लगे, अपना अंशस्वरूप भूल गये यह दोष जो गोपोंमें आ गया था वह दोष 'दावाग्नि' रूप है अतः उसको पानकर, मित्रोंके दोषोंको समूल नाशकर दिया. योजना.

भगवान्ने अग्निका पान कर लिया, तो भी भयके कारण उन्होंने नेत्र खोले नहीं, जब आपने आज्ञाकी, कि नेत्र खोलो, तब आंखे खोल दीं, जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।
निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ।।१३।।

फिर, जो उन्होंने नेत्र खोले, तो देखा कि हम भाण्डीर वनमें हैं, अपनेको और गौओंको छूटे हुएको कहानी सुनकर अचम्भेमें पड गए।।१३।।

भगवान्ने दावाग्निका पानकर, नेत्र मूंदे हुए गोपोंको भाण्डीर वनमें ले आये, वहां उनके नेत्र खुलवाये आंखें खोलकर देखा कि हम तो भाण्डीर वनमें बैठे हैं. मनमें विचारा, कि यह सब भगवान्की कृपा है, उन्होंने ही यहां पहुंचा दिया है. यदि हम स्वतः आते तो एक तो वह मार्ग याद नहीं और नवीन घास उत्पन्न होनेसे, खुरोंके चिह्न भी मिट जानेसे मार्ग ढूंढनेमें विलम्ब होगा. हमारी आंखें बन्द ही थीं तब भगवान्ने यहां पहुंचाया है, उस(पहुंचाने)का कारण यह है, कि भगवान् 'हरि'(दुःख हरण कर्त्ता) हैं. अनन्तर भगवान्के मुखसे अथवा बलरामजीके मुखसे, दावाग्नि पानकर, हमको तथा गौओंको भगवान् दुःखसे छुड़ाकर यहां लाये हैं यह सुनकर तथा समझकर अचम्भेमें पड़ गये. नेत्र बन्ध करनेसे पहलेका सब वृत्तान्त भूल गये थे, पीछे सुननेसे समझा और स्मरण हुआ ।।१३।।

पञ्चपर्वा अविद्या नष्ट होनेके अनन्तर, उन(गोपों)की जैसी बुद्धि हुई,

वैसीका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

कृष्णस्य योगवीर्यं तद् योगमायानुभावितम् ।
दवाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य तं मेनिरेऽमरम् ।।१४।।

योगमायासे जिस(दावाग्निसे रक्षा)का अनुभव हुआ है, वैसा श्रीकृष्णचन्द्रके योगका प्रभाव, देखकर गोपोंने श्रीकृष्णको अमर माना।।१४।।

योगमायासे विस्मरण कराना फिर स्मरण करानेका अनुभव हो रहा है, वैसे अलौकिक भगवान्के वीर्यको,(अपनी दावाग्निसे रक्षा होना एवं अपना कुशल होते) देख उन भगवान्को अमर तथा कालातीत अथवा पुरुषोत्तम मानने लगे, अथवा गोप देवोंको ही, सबसे उत्तम मानते थे, अतः श्रीकृष्णको उन देवोंमें उत्तम देव समझने लगे. दावाग्निके लपेटेमें जो भी आवे, उसका वह नाश करनेवाली है वैसी दावाग्निसे हमारी रक्षा ये(श्रीकृष्ण) ही कर सके हैं ।।१४।।

इस प्रकार सर्वको निर्दोष बनाया, अर्थात् सबकी पञ्चपर्वा अविद्या नाश कर दी और वे दोष फिर आनेके नहीं, अतः यहांसे ही अपने स्थान व्रजमें लौट आए जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः ।।१५।।

सांझके समय, बलदेवजीके संग श्रीकृष्णचन्द्र गौओंको अच्छे प्रकारसे लौटाकर, गोपोंसे स्तुति कराते और बंसी बजाते हुए गोकुलमें पधारे।।१५।।

गोपोंको उसी समय, गोष्ठमें न ले आनेका कारण यह था, कि गोप भयभीत थे, जब उनका भय मिट गया और वे समझ गये कि अब कोई भय नहीं है, तब तक सायंकाल हो गया था, अतः सायंकालमें सुख पूर्वक गोकुल आये. गोपोंकी अविद्या नाश हुई, क्योंकि भगवान् जनार्दन हैं अविद्याको नाश करनेवाले हैं. न केवल अविद्या नाश हुई, किन्तु ईष्टकी भी प्राप्ति हुई, कारण कि भगवान्के साथ बलरामजी भी थे इस प्रकार दोनोंकी प्राप्तिकर, प्रसन्न होते हुए, लौटने लगे. भगवान्ने बंसी बजाकर सबोंके सद्गुणोंको जगाया 'गोष्ठ' शब्दसे स्थानकी पवित्रता दिखाई अर्थात् जहां गौओंका निवास है वह स्थान पवित्र है. गोप भगवान्की स्तुति करते थे. यहां गोष्ठमें आनेपर भी गोपोंको भगवान्के माहात्म्य का ज्ञान दृढ था ।।१५।।

इस प्रकार, भगवान् वनमें पधारे, जिससे गोपोंको आनन्द हुआ उसका

वर्णनकर अब गोष्ठमें आनेसे गापीजनको आनन्द हुआ जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ।।१६।।

भगवान्के दर्शन होते ही, गोपीजनको परमानन्द हुआ, जिन गोपीजनके भगवान्के बिना एक क्षण भी सौ युगके बराबर बीतता था।।१६।।

गोपीजनने गोविन्दका दर्शन किया जिससे उनको परमानन्द हुआ और उससे अज्ञानकी भी निवृत्ति हो गई, तथा गोपीजनको भगवान्के बिना एक क्षण भी सौ युगोंके समान भासता था, जिसका तात्पर्य है, कि गोपियां उसी एक क्षणमें, मनुष्योंके नौ युगमें, जितने जन्म मरण होते हैं, उतने जन्म मरण भोगती अर्थात् उनको वह क्षण भी दुःखरूप संसार था, अतः जब भगवान्के दर्शन हुए तो आनन्द प्राप्त होनेसे, जन्म मरणका चक्कर नष्ट हो गया अर्थात् संसारकी विस्मृति हो गई ।।१६।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके ज्ञाननिरूपक अध्याय ५ (स्कन्धानुसार अध्याय १६/१९) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १७

वर्षा ऋतु और शरद् ऋतुका वर्णन

लीला सप्तदशेऽध्याये निरुद्धैः सहितोच्यते।
वर्षाशरत्कालयोगात् सर्वतत्वं निरूप्यते।।का.१।।

जिन भक्तोंका निरोध हो गया है, उनके साथ की हुई लीलाका वर्णन सत्रहवें अध्यायमें किया जाता है, तथा वर्षा और शरद् ऋतुके योगसे सर्व प्रकारके तत्त्व निरूपण किये जाते हैं।।१।।

इस अध्यायमें निरुद्ध भक्तोंके साथ, जो लीला भगवान्नेकी है, उसका वर्णन है, जिसका कारण यह है कि भगवान्के मित्र गोप तथा व्रजवासियोंकी भगवान्में पहलेसे अब विशेष आसक्ति हुई है, क्योंकि भगवान्ने अन्तःकरणके दोष रूप दावाग्नि तथा प्रलम्ब दैत्यका नाश किया है. इन दैत्योंके नाशसे, गोपोंकी भगवान्में विशेष आसक्ति हुई है अतः निरुद्ध भक्तोंके साथकी हुई लीलाका वर्णन सत्रहवें अध्यायमें है.

इस कारिकामें यों नहीं कहा है, कि निरुद्ध भक्त प्रभुके साथ थे किन्तु उनके साथ प्रभुकी लीलाका वर्णन है जिसका भावार्थ यह है कि जैसे स्वामिनियां जब प्रभु गोचारणार्थ वनमें पधारते तब आपसमें मिलकर परस्पर प्रभुकी लीलाओंका गुणगान करती थीं, जिससे लीलाओंमें तन्मय हो जाती थीं, वैसे ही गोप रात्रिको, परस्पर तथा अन्य व्रजवासियोंके साथ भगवान्की लीलाओंका गुणगान करते थे, जिससे वे लीलाएं उनके हृदयमें स्थिर हो जाती थीं.

वर्षा और शरद् ऋतुके योगसे उनमें(लीलाओंमें) आनेवाले सर्व पदार्थोंके तत्त्वोंका निरूपण किया है.

दोषापगमन एव सर्वतत्वस्य बोधनम्।
ज्ञाते च तत्वे सत्क्रीडा प्राजापत्ये निरूप्यते।।का.२।।

सब तत्त्वोंका ज्ञान तब होता है जब सर्व दोष पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाते हैं, तत्त्वोंका जब ज्ञान हो गया तब सत्क्रीडा हुई जिसका वर्णन ँसत्रहवें अध्यायमें किया गया है।।२।।

पहले भी, ये(वर्षा और शरद्) ऋतुएं आई हैं, तब वर्णन न कर, इस अध्यायमें, इनका वर्णन इसलिए किया गया है, कि अब ये गोप, देहाध्यास आदि

दोषोंके नाश होनेसे, शुद्ध हो गए हैं. दोषको मिटानेवाली, इन लीलाओंके श्रवण मात्रसे, जब सर्व दोषोंकी निवृत्ति होती है तो गोपोंने तो, इन लीलाओंका साक्षात् अनुभव किया है जिससे वे दोष रहित हो गए, यह स्वतः सिद्ध सिद्धान्त है. दोषवालोंको लीलाके स्वरूपके तत्त्वोंका ज्ञान नहीं हो सकता था. अब निर्दोष होनेसे गोपोंको लीलाके सर्वतत्त्व(पदार्थो)का ज्ञान हो गया, जिससे इस अध्यायमें [२]सत्क्रीडाका वर्णन है, जिस क्रीडामें दैत्योंका संहार करते हुए भी, उनका (दैत्योंका) सम्बन्ध न रहे वह सत्क्रीडा है।।२।।

१. यज्ञमें, यज्ञात्मक प्रजापतिको श्रुतिके अनुसार १७वां कहा है. अतः यहां १७के अर्थमें प्रजापत्य है. २. आनन्द रूप क्रीडा.

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु स्नेहः कृष्णो हि युज्यते।
तादृशैश्च मुदा क्रीडा तच्चाप्यत्र निरूप्यते।।का.३।।

श्रीकृष्णमें पूर्ण स्नेह तब होता है जब श्रीकृष्णके माहात्म्यका पहले ज्ञान किया जाए. ऐसे माहात्म्य ज्ञानवाले पूर्ण स्नेहीयोंसे ही भगवान् आनन्दसे क्रीडा करते हैं, उस क्रीडाका भी यहां वर्णन है।।३।।

कारिकामें 'तु'(तो) शब्द देकर यह बताया है, कि भगवान्में लौकिक विषयवाला स्नेह नहीं होना चाहिये. निष्काम स्नेह तब होता है, जब भगवान्के माहात्म्य द्वारा, भगवान्के आनन्द स्वरूप आदिका ज्ञान होता है. इसलिये ये भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान होनेसे, उनका (गोपोंका) भगवान्में शुद्ध स्नेह हुआ था, जिससे आनन्दरूप भगवान्ने उनसे आनन्दमय क्रीड़ाएं की हैं।।३।।

१६वें अध्यायके अन्तमें कहा, कि भगवान्, बलराम तथा गोप गोकुलमें आए उस समय उनमें(गोप आदिमें) विशेषता क्या थी, उसका वर्णन, निम्न दो श्लोकोंसे करते हैं:

श्रीशुकः उवाच
तयोस्तदद्भुतं कर्म दवाग्नेर्मोक्षमात्मनः।
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचक्षुः प्रलम्बवधमेव च।।१।।

श्रीशुकदेवजीने कहा कि गोपोंने इन दोनों भ्राताओंके यह अद्भुत चरित्र अर्थात् अपनेको(गोपोंको) दावानलसे बचाना और प्रलम्बासुरका वध, स्त्रियोंसे कहे।।१।।

भगवान्का किया हुआ उत्तम कर्म, जो पहले किसीने न सुना तथा न

देखा वैसा अद्‌भुत(दावाग्निसे अपनी (गोपोंकी) रक्षा करनेका और प्रलम्बके वधका) चरित्र गोप अपने-अपने घरमें आकर स्त्रियों(घरकी सब स्त्रियों माता आदि)को सुनाने लगे. ज्यों-ज्यों चरित्र वर्णन किया जाता, त्यों-त्यों, भगवान्‌का माहात्म्य हृदयमें स्थिर होने लगा, जिससे शान्त चित्त होकर धीरे-धीरे कहते थे, इसके श्रवणसे, स्त्रियां भी भगवत्परायण होंगी तो, हमको भगवद्‌गुणगानमें प्रतिबन्धक नहीं होंगी. अन्यथा रात्रिको, जागरण होनेसे, क्षुब्ध हो, गुण वर्णनमें, प्रतिबन्ध करेंगी. जो वृद्धत्वके कारण घरमें ही बैठे रहते हैं, उन्होंने भी वह गुणगान श्रवण किया ।।१।।

गोपोंने गोकुलमें आकर जो भगवान्‌के चरित्र कहे उनको सुनकर सर्व व्रजवासियोंको भगवान्‌के माहात्म्यका ज्ञान हुआ जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ।।२।।

गोपोंमें वृद्ध गोप तथा गोपियां यह बात सुन, विस्मय करने लगे, और व्रजमें आए हुए कृष्ण तथा रामको देवोंमें, उत्तम देव समझने(मानने) लगे।।२।।

बूढे गोप तथा गोपियां वह चरित्र सुनकर आश्चर्यमें मग्न हो गईं. श्लोकमें दो बार दिये हुए 'च' का तात्पर्य है कि मूढ, बालक तथा गोपियोंके अतिरिक्त अन्य स्त्रियां भी सुनकर अचम्भेमें आ गईं. पहले श्लोकमें, कहे हुए, चरित्रके श्रवणसे, विस्मित हो गये किन्तु उससे सबको यह ज्ञान हुआ, कि ये दोनों भाई (राम-कृष्ण) सर्व इन्द्रादि देवोंसे उत्तम हैं, अर्थात् दोनों पुरुषोत्तम स्वरूप हैं. किसीको यह शङ्का होवे, कि ये पुरुषोत्तम स्वरूप नहीं हैं, केवल उपचार (पूजार्थ) केलिये यों कहा गया है. इसके उत्तरमें गोप कहते हैं, कि यह शङ्काही नहीं करनी चाहिये. हम इनको, वास्तविक पुरुषोत्तमरूप समझते हैं क्योंकि, शङ्काशीलोंकी शङ्का मिटानेकेलिये उनके नाम 'कृष्ण-रामौ' श्लोकमें दिये गये हैं अर्थात् ये कृष्ण और राम ही, देवोत्तम (पुरुषोत्तम) स्वरूप हैं. श्लोकमें 'प्र'[१] अक्षरसे उनकी विशेषता बताकर यह सिद्ध किया है, कि ये अन्य गोपोंके समान गोप नहीं हैं, किन्तु देवोंमें, भी उत्तम देव होनेसे, सर्वथा पूज्य हैं. जैसे भूपति, सदैव प्रकटरूपसे, अपनी राजधानीमें रहता है, किन्तु कभी कभी अपनी प्रजाकी दशा देखने तथा उनके हित करनेकेलिये भेष बदलकर गरीबोंके घरोंमें जाता है,

वैसे ही भगवान् भी व्रजमें आये हैं ।।२।।

१.शास्त्रोंमें यह नियम है कि एक अक्षरसे समग्र शब्दके अर्थका तात्पर्य समझा जा सकता है जैसे कि 'भारत' में 'भा' 'र' 'त' ये तीन अक्षर हैं जिनका अर्थ यों किया गया है, 'भा' अक्षरसे 'भाति सर्वेषु वेदेषु' लिया है अर्थात् इसमें जो कहा गया है वह ही सर्व वेदोंमें है 'र' 'रति सर्वेषु जन्तुषु' इस शास्त्रका उपदेश है सकल जीवोंसे प्रेम करना. 'त' 'तरणं सर्वभूतानां' इसके श्रवणसे सर्वप्राणी संसारसे पार हो जाते हैं. अतः इस शास्त्रको 'भारत' कहते हैं. इसी प्रकार यहां 'प्र' शब्दसे विशेषता बताई है. 'योजना'

इस प्रकार जब उनको कृष्ण तथा रामके स्वरूपोंका ज्ञान हो गया, तब वर्षा ऋतु, भगवान्, भक्तोंके साथ आनन्द क्रीडा करे, इसलिए आई, जिसका वर्णन २२ श्लोकोंमें करते है:

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्वसमुद्भवा।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ।।३।।

उसके अनन्तर सब जीवोंको उत्पन्न करनेवाली, सर्व दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली, वर्षा ऋतु आई, जिससे सूर्य और चन्द्रमाके समीपमें आए हुए मेघोंसे मण्डल बन गए तथा आकाशमें गडगडाहट शब्द होने लगे।।३।।

भगवान्के क्रीड़ा करणार्थ स्वयं वर्षा ऋतु आई, यद्यपि वर्षा ऋतुमें, मार्गमें कीचड़ आदि होनेसे, भगवान्की क्रीड़ा कैसे वा कौनसी हो सकेगी? यह शङ्का हो, तो उस (शङ्का)के निवारणकेलिये कहते हैं, कि वर्षा ऋतु कार्य तथा स्वरूप दोनोंसे लीलामें, उपयोगिनी हुई है, क्योंकि भगवान्को सर्व जीवोंमें रमण करना है तथा सर्व सत्वगुण प्रकट हों, तब लीला हो, ये दोनों कार्य प्रावृट्(वर्षा) ऋतुने किये हैं, इस प्रकार कार्यसे, प्रावृट् ऋतु, लीलोपयागिनी हुई है. स्वरूपसे भी लीलोपयोगिनी हुई है, जैसे प्रावृट् ऋतुने आकर चारों तरफ, सर्व दिशाएं आगेसे विशेष प्रकाशमान कर दीं, तथा आकाशमें बिजलीके गड़गड़ाहट शब्दके साथ प्रकाश होने लगा. इससे यह बताया है, कि इस (वर्षा ऋतु)ने आकर, लीलाकेलिये सर्व प्रकारकी पहले ही सजावट कर रखी है, जिससे लीलामें, किसी प्रकार विलम्ब वा रुकावट न हो, पूर्ण आनन्दसे रसात्मक लीला हो. वर्षा ऋतुके आनेसे ही, पृथ्वीके गुण, सब जीव, दिशाओंका गुण, बिजलीकी गर्जना, आकाशका गुण (गड़गड़ाहट) आदि होते हैं. जैसे महाराजाके आनेपर समग्र ग्राम जागृत होता है. ये ँगुण, तम, सत्व और रजोरूप हैं ।।३।।

१.ये गुण (धर्म) अप्राकृत अलौकिक हैं अतः भगवद् धर्मरूप हैं. 'प्रकाश'
लेख: उस काल (वर्षाऋतु)में जीवोंमें आनन्दका आविर्भाव होता है यह 'आनन्द धर्म' है. विद्युतका होना यह अस्तित्व दिखाता है जिससे यह 'सत्' धर्म है, आकाशकी 'गड़गड़ाहट' चेतन धर्म है अतः यह चित् धर्म है. इस प्रकार इन्होंमें परस्पर एक दूसरेके धर्म भी रहते हैं. अतः ये तम, सत्व और रजरूप है.

वर्षा ऋतुके आनेसे भगवान्की लीलाके उपयोगमें आनेवाली सर्व भगवान्की शक्तियां भी आ गईं. जिसको बतानेकेलिए [१]अलौकिक इक्कीस धर्मोंका वर्णन इक्कीस श्लोकोंसे करते हैं:

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ।।४।।

दामिनी(बिजली) और गर्जनावाले प्रकाशमान काले बादलोंसे आच्छादित आकाश, सगुण ब्रह्मकी भांति अस्पष्ट तेजवाला हुआ।।४।।

एक श्रुति कहती है, कि यहांसे [२]स्वर्गलोक इक्कीसवां है, दूसरी श्रुति कहती है, कि 'देवलोक इक्कीस हैं [३]तीसरी श्रुति कहती है कि '१२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक और १ यह सूर्य ये मिलकर [४]इक्कीस हैं. इस प्रकार इनमें ही (२१ धर्मोंमें ही) सत्वधर्म वा भगवद्धर्मकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है. पहले सूर्यकी भांति प्रकाशित, सगुण ब्रह्मको, वर्षाऋतुके दृष्टान्तसे स्पष्ट रीतिसे समझाते हैं, ब्रह्मके सम दिये हुए वर्षा ऋतु दृष्टान्तको समझानेकेलिये इस श्लोकमें वर्णन करते हुए कहते हैं, कि 'श्रुति' कहती है, कि 'ब्रह्म'का शरीर (स्वरूप) आकाश है भगवान् कृष्णके स्वरूपको देखते हुए 'आकाश' कृष्णके स्वरूपके समान न होनेसे प्रत्यक्ष विरुद्ध, श्रुतिका कहना, लोक प्रमाणित (प्रमाणरूप) नहीं मानते हैं, अतः उसको प्रमाणित करनेकेलिये ही प्रावृट् (वर्षा) ऋतु आकर उसका समर्थन कर रही है कि आकाशमें जो गुण गुप्त विद्यमान हैं, उन गुणोंको वर्षा ऋतु अन्य समयमें प्रकटकर दिखाती है, कि जैसे आकाश सजल मेघोंवाला, घनश्याम स्वरूप है, वैसा ही, कृष्ण भी घनश्याम हैं, अतः आकाश ब्रह्मका शरीर है. ऐसा सिद्ध होनेपर भी, शङ्का उठती है, कि केवल बादलोंके कारण आकाश ब्रह्मका शरीर है यह मान लेना पूर्ण नहीं है, इसपर कहते हैं कि, केवल वर्णकी समतासे 'आकाश' ब्रह्मका शरीर नहीं है किन्तु अन्य भी समानताएं हैं, जैसे कि आकाश विद्युतरूप आभूषणोंसे विभूषित है, वैसे ही श्रीकृष्ण पीताम्बरसे विभूषित है, तथा जैसे

आकाश गर्जनादि शब्दसे शब्दायमान है वैसे ही श्रीकृष्ण वेणुनाद करते हुए शब्दायमान (शब्द करनेवाले) हैं. इससे भी सिद्ध होता है कि 'आकाश है शरीर जिसका' वैसा ब्रह्म है.

शरीरमें तेज भीतर रहता है और बाहर तेज आच्छन्न रहता है, जैसे भगवान् अपने तेजको भीतर छिपाकर बाहर लोकको व्यामोह करानेकेलिये ऐसा दिखावा करते हैं कि मैंने जन्म लिया है. आकाशमें वैसा न होनेसे उससे भगवान्के रूपकी बराबरी कैसे होगी? इस शङ्काका निवारण करानेकेलिये कहते हैं कि वर्षा ऋतु सिद्धकर दिखाती है कि आकाश भी वैसा ही है, उसमें भी सूर्य आदि ग्रह स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं.

इस प्रकार होनेपर भी, भगवान्का शरीर आकाश है यह सिद्ध नहीं होता है, कारण कि भगवान् अनेक वस्त्र, गृह तथा गोपिओंसे घिरे हुए रहते हैं आकाश तो वैसा नहीं है, इसपर कहते हैं कि आकाश भी मेघोंसे घिरा हुआ रहनेके कारण ब्रह्मका शरीर है, अर्थात् आकाश अनन्त गुण परिपूर्ण सगुण ब्रह्मके समान होनेसे ब्रह्मका शरीर है अतः श्रुतिका यह कहना है कि 'आकाश ब्रह्मका शरीर है' यह यथार्थ है.

ब्रह्ममें सत्व, रज तथा तम ये तीन गुण हैं इस प्रकारसे भी दोनों (आकाश तथा ब्रह्म)में समानता है, जैसे कि आकाशमें मेघ, तम, तथा प्रकाश तीन गुण हैं और श्रीकृष्ण में भी ँतीन गुण १.व्यामोह, २.गोपिओंसे लीला, ३.ज्ञान है ।।४।।

१. यह वर्षाऋतु भगवान्के क्रीडाकेलिए तैयारी करनेकेलिए आई है अतः यह वर्षाऋतु इस लोकसे पृथक् आनन्दरूप(सच्चिदानन्दरूप) वेदसे प्राप्त होने योग्य स्वर्ग लोकके समान अलौकिक है, जिसको बतानेकेलिए कहते हैं कि जितने (२१) प्रकारके स्वर्ग हैं उतने ही २१श्लोकोंसे इस ऋतुका वर्णन करते हैं. 'टिप्पणी'

२.'एकविंशो वा इतः स्वर्गो लोकः'. ३'एकविंशतिर्वै देव लोकाः'. ४.''द्वादश मासा पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश''

५.इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं, कि लोकोंको व्यामोह कराना तमोगुणका कार्य है, गोपिओंसे लीला रजोगुणका कार्य है और ज्ञान सतोगुणका कार्य है. इस प्रकार भगवान् सगुण ब्रह्म जैसे हुए.

इस प्रकार, वर्षाऋतुके कारण जो आकाशका स्वरूप प्रकट हुआ, उसका निरूपणकर, अब इस निम्न श्लोकमें उसके(वर्षाके) सम्बन्धवाले सूर्यका वर्णन करते हैं:

अष्टौ मासान् निपीतं यद् भूम्याश्चोदमयं वसु।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते।।५।।

सूर्यने जो पृथ्वीके जलरूप धनका आठ महिने तक पान किया, उस (जलरूप धन)को समय आनेपर (वर्षा ऋतु आनेपर) पर्जन्य रूप हो के अपनी किरणोंसे छोडने लगे।।५।।

यह सूर्य ही पर्जन्य है, जैसा कि भगवती श्रुति कहती है 'जिन किरणोंसे आदित्य तपता है, उन किरणोंसे ही पर्जन्यरूप रस सूर्य वर्षा करता है, अतः कहा गया है कि सूर्यके तीन रूप हैं

१.आध्यात्मिकरूप, जिसको पर्जन्य कहते हैं,
२.आधिभौतिकरूप, जिसको आदित्य कहते हैं,
३.आधिदैविक स्वरूप है, जिसको संवत्सर कहते हैं.

यह (संवत्सर) प्रजापति है अतः इस सूर्यरूप पर्जन्यने ही अपनी किरणोंसे निरन्तर आठ मास पर्यन्त जो जलरूप धनका पान किया उसको वापस लौटाकर भूमिको आर्द्र करते हैं, जिससे वह जल अन्नादि द्रव्योंको पैदाकर सकती है. अतः जल ही धन है क्योंकि जलके द्वारा ही सस्यादि उत्पन्न होते हैं जिनसे धनकी प्राप्ति होती है. सूर्यने जलरूप धन इसलिये ग्रहण किया, कि उसे पकाकर (उसमें सस्यकी उत्पत्तिकी शक्ति डालकर) लौटा दूं. उसकी किरणें ही मेघ हैं अर्थात् मेघ पर्जन्यरूप सूर्यकी किरणें हैं, जिनके द्वारा लिया हुआ जल वर्षा ऋतु आने पर लौटाता है. यदि लौटाकर न देवे तो वह ऋतु, कालरूप भगवान् उसके(पर्जन्यके) लिये भी उपद्रवका कारण हो जाये. वर्षा ऋतु, जिस प्रकार, आकाशको ब्रह्मका शरीर(स्वरूप) सिद्ध करती है, वैसे ही, सूर्यको भी, जगत्का कर्ता तथा उत्पन्न कर्ता सिद्ध करती है ।।५।।

इस प्रकार वर्षा ऋतुको आकाश तथा सूर्यके स्वरूपका प्रकट करनेवाला कहकर, अब अन्तरिक्ष लोकके स्वरूपका प्रकाशक भी यही है उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव।।६।।

जिस प्रकार दयावान, दुःखी प्राणीको देखकर उसके दुःखको मिटानेकेलिए, अपने सर्वस्व जीवन भी त्याग देता है, वैसे ही प्रबल वायु वेगसे

कम्पित बिजलीवाले बडे – बडे मेघ, इस जगत्को तप्त देखकर, उसको प्रसन्न करनेवाला तथा प्राण देनेवाला जल देने लगे।।६।।

अन्तरिक्ष तथा वायु एक ही है अतः मेघोंके देवता अन्तरिक्ष होनेसे मेघ वायुके आधीन होते हैं. मेघोंमें जो बल (इधर उधर आने और जानेकी शक्ति) है वह अकेली वायुका ही है, उसके(अन्तरिक्ष वा वायुके) ही इन्द्रादिक भेद हैं. तीन देवता हैं, इस प्रकारका निर्णय, बृहदारण्यके शाण्डिल्य ब्राह्मणमें किया गया है, कि जहां अग्नि, वायु और आदित्य रहते हैं वे तीन लोकके देवता हैं, उनमें सर्व देवोंका समावेश हो जाता है. अतः मेघ वायुके आधीन हैं वा इन्द्रके आधीन हैं, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं. इन्द्र देवता, वायु आत्मा और मेघ भूत हैं इस प्रकार तीनोंकी एक रूपता है. जिस प्रकार, पुरुषके प्रयत्नसे, शरीरमें चेष्टा उत्पन्न होती है, उसी प्रकार, वायुकी प्रेरणासे, मेघ अपने कार्य करनेमें स्थिति करते हैं अर्थात् कार्य करते हैं.

मेघ अपना सर्वस्व जल, अवैदिक रीतिसे नहीं देते हैं, किन्तु वैदिकानुसार अर्पण करते हैं, जिससे उस जलसे अन्नादिकोंकी उत्पत्ति होती है, अवैदिक रीतिसे यदि दिया हो, तो अन्नादिकोंकी उत्पत्ति न होवे.

मेघ जो जलदान करते हैं, उसका फल केवल 'वर्षा' नहीं है, किन्तु उससे उत्पन्न अन्न, अग्निमें जब अर्पण किया जाता है तब वह (जलदान) फलरूप होता है. इसलिये अग्निने वर्षामें विद्युतका रूप धारण किया है जिसका वर्णन श्रुतिने इस प्रकार किया है 'विद्युत' अग्नि है, 'वर्षा' हवि है, मेघ 'वषट्' बोलनेवाले हैं तथा उन मेघोंकी 'गड़गड़ाहट' अनुवषट्कार है. ये मेघ 'महामेघ' हैं कारण कि शास्त्रके अर्थका अनुसरण करते हैं अर्थात् शास्त्रकी आज्ञा अनुसार कार्य करते हैं. तेज वायु, देहकी मर्यादाका, विचार नहीं करती है अतः वे मेघ, प्रचण्ड वायुसे कम्पित होते हैं. उन्होंने बलदायक, ताप निवृत्त करनेवाला, अन्नादि उत्पत्तिसे आगे प्राण देनेवाला जल दान किया.

मेघ जलदान करनेसे स्वयं तो रिक्त हो जायेंगे तब ऐसा अपनेको हानि करनेवाला दान क्यों किया? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे दयालु पुरुष करते हैं उनकी तरह इन्होंने भी किया है. दधीचि तथा शिबि आदिकोंने दयाकर प्राण भी दे दिये हैं, इन्होंने दयासे जलदान नहीं किया है किन्तु काल वायुसे प्रेरित होकर किया है अतः श्लोकमें 'इव' शब्द दिया है ।।६।।

वर्षा ऋतुने प्रथम आकाश, सूर्य और अन्तरिक्षके स्वरूपको जिस प्रकार बनाया उसी प्रकार अब पृथ्वीको भी बनाया जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तपःकृशा देवमीढा आसीद् वर्षीयसी मही।
यथैव काम्यतपसस्तनूः सम्प्राप्य तत्फलम्॥७॥

जैसे सकाम पुरुषका शरीर तप करनेसे प्रथम दुर्बल हो जाता है अनन्तर तपस्याका फल मिलने पर पुष्ट होता है, वैसे ही पृथिवी जो ग्रीष्मके तपसे, जल चूंसे जानेके कारण दुर्बल हो गई थी वह इन्द्रके वर्षा करनेसे फिर पुष्ट हो गई॥७॥

प्रथम तेज ताप(ग्रीष्म ऋतुके तीक्ष्ण ताप)से जल चूंसे जानेके कारण पृथ्वी निर्बल हो गई थी, इन्द्र (मेघ)के जलदान देनेसे फिर पुष्ट हो गई. जैसे क्षुधासे पीड़ित और निर्बल पुरुष भोजनकी इच्छा रखता है, उस इच्छाकी पूर्तिसे अर्थात् भोजन मिलनेसे पुष्ट होता है वैसे ही जल चूंस जानेसे, पृथ्वी क्षुधित तथा निर्बल हो गई थी इसलिये वर्षाके जल(भोजन)की इच्छाकर रही थी उस इच्छाकी पूर्ति (जलरूप भोजनकी प्राप्ति)से अर्थात् देवके(मेघके) वर्षा करनेसे पुनः पुष्ट हो गई.

इन्द्र(मेघ) रूप देवको पृथ्वीसे ग्रीष्म ऋतुमें जल लेने और उसको वर्षा ऋतुमें जल देनेकी क्या आवश्यकता वा प्रयोजन था? जिससे भूमिको भी कोई लाभ नहीं. इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे पुरुष प्रथम तपस्या द्वारा कृश होकर फिर फल मिलनेसे पुष्ट होता है अथवा स्वर्गादिमें सुख भोगता है. तपस्या करनेके अनन्तर जो आनन्द मिलता है और शरीर पुष्ट होता है, तपस्या करनेसे पहले होनेवाला आनन्द अथवा पुष्टि वैसी नहीं होती है. इसी प्रकार, पृथ्वी भी जलदान और जल प्राप्त करनेसे प्रथम वैसी प्रसन्न अथवा पुष्ट नहीं हो सकती थी जैसे यों करनेसे (ग्रीष्म ऋतुमें जलदानकर शुष्क हो, अनन्तर वर्षा ऋतु द्वारा) वह परिपक्व, शुद्ध अमृतमय बना हुआ जल, प्राप्तकर प्रसन्न और पुष्ट होती है तथा सस्यादि उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यवाली होती है. देवका जल लेने और देनेका यही प्रयोजन है जिससे पृथ्वी धान्य आदि उत्पन्न कर, समग्र प्राणी मात्रकी क्षुधाकी निवृत्ति कर सके. सकामकी जानेवाली तपस्यासे सम्बन्ध रखनेवाले शरीर, उसका फल प्राप्तकर, पुष्ट हो जाते हैं. मूल श्लोकमें 'तनूः' शब्द दिया है, आचार्यश्री कहते हैं कि यदि 'तनूः' के स्थानपर 'तनु' पद लिया जाये तो, उसका अर्थ इस प्रकार होगा 'सकाम तपस्या करनेवालेका शरीर

तपस्याका फल प्राप्तकर पुष्ट होता है'. अथवा 'तनूः' पदको द्वितीयाका बहुवचन लिया जाये, तो उसका अर्थ हो सकता है 'सकाम तपस्या करनेवाला तपस्वी तपस्यासे सम्बन्ध रखनेवाले शरीरों(स्वर्गादि लोकों)को प्राप्तकर तपस्याका फल (स्वर्गीय सुख) प्राप्त करता है वैसे (ही) पृथ्वी भी तपस्याकर सस्यादि फल प्राप्त करती है.

अ. १५ श्लोक ६में कहा है कि जिस वृन्दावनमें सूर्यकी किरणें पृथ्वीके जलको चूंस नहीं सकती हैं, पुनः यहां उसके विपरीत उसी पृथ्वीके तापसे कृश कैसे कहा? इस शङ्काका निवारण इसमें दिये हुए दृष्टान्तसे ही हो जाता है. जो पुरुष सर्व प्रकारसे सुखी है, तो भी आगामी जन्ममें सुखकी प्राप्ति होवे, इस इच्छासे वह (अस्वभाविक भी) तपस्या करता है यदि तपस्या न करे तो, आगामी सुखकी प्राप्ति उसको नहीं होवे, इसी प्रकार वृन्दावनमें आगे होनेवाले सस्योंकेलिये उस भूमिसे (जिससे व्रजवासियोंकी इच्छा थी) रस ग्रहण करने हैं, जहां विशेष जल (अन्नको उत्पन्न करनेवाला जल-रस) है, उसके रहनेसे बोये हुए बीज भी नष्ट हो जायेंगे. अतः जल न कहकर रस कहा है उसको किरणोंने वहां ही चूंसा है, अन्यत्र नहीं जिसका भाव यह है कि तीक्ष्ण किरण जलको ग्रहणकर पृथ्वीको जला देती है, किन्तु वृन्दावनकी भूमिसे, वे जल भी ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं, तो पृथ्वीको कैसे जला सकेंगे? यह वृन्दावनका माहात्म्य है. इससे यह बताया है कि कालादिक भी व्रजवासियोंके विरुद्ध कुछ भी करनेमें, असमर्थ है.

इस श्लोकमें काम्य तपस्याका दृष्टान्त देकर, यह बताया है, कि इस प्रकारके तपसे, हुई वर्षासे, जो अन्न उत्पन्न होता है, वह वृन्दावनमें स्वतः उत्पन्न अन्नसे पृथक् प्रकारका है. यह लौकिक अन्न केवल वीर्य उत्पन्न करता है, किन्तु वृन्दावनका अन्न भक्ति उत्पन्न करता है. इसका वर्णन प्रथम ही १०।५।१८ श्लोकमें किया गया है ।।७।।

इस प्रकार उपरोक्त श्लोकोंमें सूर्य सहित आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी लोकोंका स्वरूप कहकर, अब शेष ऋतु आदिका स्वरूप वर्णन करते हैं. ऋतु [१]धर्ममें प्रतिष्ठित है और [२]मास धर्मियोंमें प्रतिष्ठित है. पहले ऋतुओंका वर्णन करते हुए धर्मकी प्रतिष्ठा पांच श्लोकोंसे करते हैं:

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।

यथा पापेन पाषण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ।।८।।

जिस प्रकार पापकी वृद्धिसे कलियुगमें वेदोंका प्रकाश नहीं होता है वैसे ही रात्रिके आरम्भमें (प्रदोष समयमें) अन्धकारसे जुगनू चमकते हैं. ग्रह (तारे) नहीं चमकते हैं।।८।।

१. आचार्यश्रीने इस अध्यायके ४थे श्लोककी सुबोधिनीमें श्रुति द्वारा यह बताया है, कि १२मास, ५ऋतु, ३लोक, और १आदित्य इस प्रकार ये २१ हैं. जिनमेंसे चारों (तीन लोक और सूर्य)का वर्णन पूर्वमें कर, अब पांच ऋतुओंका वर्णन करते हुए, ८वें श्लोकके आभासमें कहते हैं, कि ५ऋतुओंकी प्रतिष्ठा धर्ममें है और मांसोंकी 'धर्मिओं'में प्रतिष्ठा है. जिसका स्पष्टीकरण श्रीप्रभुचरण यहां करते हैं कि वर्षमें १२मास होते हैं, एक-एक ऋतु दो मांसोंकी होती है इसी गणनासे ऋतु ६होनी चाहिए तो श्रुतिने पांच क्यों कही? इस शंकाको मिटानेकेलिए ही आचार्यश्रीने कहा है, कि ऋतुओंकी प्रतिष्ठा धर्ममें है, अर्थात् ऋतुओंका विभाग धर्म (कर्म)के कारण हुआ है, अतः जितने धर्म (कर्म) उतनी ऋतुओंकी संख्याकी गई हैं. १.अग्निहोत्र, २.दर्श, ३.पौर्णमास्य, ४.चातुर्मास्य, ५.पशु सोम. इस प्रकारके पांच वैदिक धर्म (कर्म) हैं इन पांच कर्मोंके करनेकी आज्ञा ऋतु अनुसार दी है, जैसे कि, वसन्त ऋतुमें 'अग्निकी स्थापना' करनी चाहिए आदि इसी भांति, अन्य कर्म भी ऋतु अनुसार करने चाहिए तथा वर्ण धर्म भी, ऋतु अनुसार होते हैं, जैसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत वसन्त ऋतुमें करना चाहिए. तात्पर्य यह है कि ऋतु धर्ममें कारण, अथवा उपयोगी होनेसे ही श्रुतिने पांच कही हैं. टिप्पणी

२.५धर्म तथा १धर्मी मिलकर ६होते हैं, उनके करनेवाले सकाम व निष्काम भेदसे, दो प्रकारके हैं अतः वे १२ होते हैं. प्रत्येकके अंग भी १२ होते हैं. धर्मी धर्मका आचरण करे उसका मूल साधन 'आयु' है. कितनी आयु है, इसका अनुमान वर्षोंसे लगाया जाता है. उसके (वर्षके) भी १२ मास होते हैं, अतः कहा गया है कि मास धर्मीमें प्रतिष्ठित हैं. इन ४ श्लोकोंके अनन्तर जो १२ श्लोकोंसे जिन जीवोंका वर्णन होगा उनका भी धर्मीमें समावेश समझना चाहिए. टिप्पणी.

अर्थः शब्दः फलं चापि त्रिविधं परिकीर्तितम् ।
अन्तर्बहिस्तथा चाङ्गमान्तरञ्चेतिभेदतः ।।का.१।।
पुष्टिमार्गे हि मर्यादामार्गस्तत्र न शोभते ।
अतः पञ्चविधस्यापि हानिरत्र निरूप्यते।।का.२।।

तीन श्लोकोंमें अर्थ, शब्द तथा फल इन तीनोंका वर्णन है, और दो श्लोकोंमें फलके अन्दरके अंग तथा बाहरके अंगका वर्णन किया है[१]।।१।।

जहां पुष्टिमार्ग है, वहां मर्यादा मार्गकी शोभा नहीं होती है. इसी कारणसे, पांच प्रकारके धर्मकी हानिका यहां निरूपण किया है[२]।।२।।

१.'निशामुखेषु' श्लोक ८से १२ पर्यन्तके श्लोकोंमें प्रतिपादित अर्थका वर्णन इस कारिकामें करते हैं. १.धर्मकी जड वेद है, उसमें वर्णाश्रमादि धर्म कहे गए हैं, यह वेदोंका अर्थ है, क्योंकि वेदने वर्णाश्रमधर्मरूप अर्थका प्रतिपादन किया है. २. वेदका अध्ययन 'शब्द' है, कारण कि, अध्ययन करनेसे 'शब्द'का ग्रहण होता है उसकी ही मुख्यता है. ३.कर्मका निषिद्ध(हीन) फल, ४.निषिद्ध फलके मिलनेसे बाह्य सम्पत्ति(भगवान्से विमुख करनेवाली सम्पत्ति) प्राप्त होती है. ५.उस बाह्य सम्पत्तिके शरीरमें मद(अभिमान) आता है. इस प्रकार ५ श्लोकोंमें हीन पदार्थोंके दृष्टान्त दिए हैं. उनके देनेका आशय (पुष्टिमार्गे) इस कारिकामें स्पष्ट करते हैं. टिप्पणी

२. हीन पदार्थोंके दृष्टान्त, जो पांच श्लोकमें दिए हैं, उनका तात्पर्य, इस कारिकासे प्रकट करते हैं, कि 'पुष्टिमार्गमें मर्यादा मार्गसे विलक्षणता है. यदि पुष्टिमार्ग और मर्यादामार्गमें भिन्नता है तो इस ८वें श्लोकके आभासमें यह कैसे कहा गया है कि पांच ऋतुओंकी धर्ममें प्रतिष्ठा है? इसको समझाते हैं कि विचार करनेसे दोनों प्रकारका कहना (पुष्टिमार्गसे मर्यादामार्ग भिन्न है और धर्मकी प्रतिष्ठा) योग्य है. जैसे कि, लौकिक सृष्टिमें, जब पाप बढता है तब पाषण्ड धर्म प्रकाशमें आता है और वैदिक धर्म तिरोहित हो जाता है. वैसे ही यहां वर्षा ऋतुका सहज जो अन्धकार, वह धर्म है दूसरा पाप है. उस समयमें (वर्षा ऋतुमें) सदैव प्रकाश करनेवाले चन्द्र आदि ग्रह तो छिप जाते हैं (प्रकाश नहीं करते हैं) किन्तु जुगुनू प्रकाश करने लगते हैं. जुगुनूका प्रकाश (जो क्षणिक है) यही पाषण्डके धर्मका प्रकाश है, इसी प्रकार चन्द्र आदि ग्रहोंका अप्रकाश यही वैदिक धर्मका अप्रकाश है. इनसे पृथक् कोई अन्य पाषण्ड धर्मका प्रकाश नहीं है और वैदिक धर्मका अप्रकाश भी नहीं है. यह वर्षा ऋतुकी शोभा करनेवाला है क्योंकि इससे बताया है कि व्रजमें पूर्ण वैदिक धर्म है, अर्थात् यह वर्षा ऋतु लीला सृष्टिके स्वरूपको जानने वाली है.

प्रथम वेदार्थकी हानिका प्रकार बताते हैं, वसन्त ऋतुमें ब्राह्मणोंको उपनयन संस्कार करना चाहिये अग्निका आधान(गृहमें अग्निहोत्रकेलिये अग्निकी स्थापना करना चाहिये इत्यादि), उनका अभाव, अर्थात्, इस समय उन धर्मोंका

पालन नहीं होता है, जिससे वसन्त ऋतु भी व्यर्थ सी हो गई है, अतः वेदार्थकी हानि है.

उपनयनके अनन्तर ग्रीष्म ऋतुमें, वेदोंका अध्ययन करना चाहिये. वह अध्ययन अपनेलिये न कर, दूसरोंकेलिये करते हैं (जिसका वर्णन ९वें श्लोकमें है) इससे यह सिद्ध हुआ, कि ग्रीष्म ऋतुका धर्म जो वेदाध्ययन ब्राह्मणोंको स्वधर्म समझकर करना चाहिये, वह न करके धन प्राप्त्यर्थ दूसरोंकेलिये करते हैं, अतः ग्रीष्म ऋतुका स्वरूप भी सार्थक नहीं है.

तदनन्तर (१०वें श्लोकमें) वर्षा ऋतुका स्वरूप भी असङ्गत है, क्योंकि वर्षाका कार्य, जो कर्म फल है, वह भी मार्गानुसार न होनेसे, लाभदायी नहीं अतः वर्षा ऋतुका स्वरूप भी विफल है.

दोषोंसे दुष्ट बाह्य और अल्प फलवाली शरद ऋतु है, इसका भी, इसी प्रकार वर्णन किया गया है. हेमन्त और शिशिर ऋतुका फल है, अल्पसे सन्तोष मानना चाहिये. अर्थात् वह युगल ऋतु कहती है, कि जो कुछ मिले, उसमें प्रसन्न रहना चाहिये किन्तु उस (सन्तोष)का भी अभाव है. इस प्रकार सर्व ऋतुओंके स्वरूपकी निष्फलता बताई.

वर्षा ऋतुमें, रात्रिका जब प्रारम्भ होता है, उस समय मेघ और वृष्टि आदिके कारण, अन्धकार होनेसे, जैसे जुगूनू स्वल्प समय तक, चमकने लगते हैं और अन्योंको भी प्रकाशक जैसे होते हैं, वे वर्षासे स्वयं भी नाश हो जाते हैं तथा उस समय नित्य प्रकाश करनेवाले ग्रह आदिका प्रकाश लुप्त सा हो जाता है, इसी प्रकार, कलियुगमें पापरूप अन्धकारके कारण, नित्य प्रकाशक, वेद मार्ग लुप्त हो जायेंगे और पाषण्ड धर्मका प्रकाश होगा, उस वेद बाह्य पाषण्ड धर्ममें रुचि बढती रहेगी ।।८।।

वेदमार्गविरोधेन येषां करणमण्वपि ।
ते हि पाषण्डिनो ज्ञेयाः शास्त्रार्थत्वेन वेषिणः ।।का.३।।

जिनका कर्म स्वल्प भी वेदमार्गसे विपरीत है, उनको पाषण्डी समझना चाहिए, वे शास्त्रोंका अर्थ (विरुद्ध अर्थ) कहनेकेलिए ही वेष(सन्न्यासीका वेश) मात्र धारण कर रहे हैं।।१।।

जब धर्म पुष्ट होता है, तब पाषण्ड धर्ममें रुचि नहीं है और जिसका उपनयनादि संस्कार वैदिक विधिके अनुसार होता है, वह पहलेकी भांति व्यवस्था

करना नहीं चाहता है, अर्थात् वेद विरुद्ध या पाषण्ड धर्मका आचरण करनेकी इच्छा नहीं करता है. अतः पापकी वृद्धिसे ही पाषण्ड बढता है. वेदोंके विद्यमान होते हुए पाषण्डमें प्रवृत्ति कैसे होगी? इस शङ्काके निवारणकेलिये कहते हैं कि ''न हि वेदाः कलौ युगे'' कलियुगमें वेदोंका प्रभाव (प्रकाश) नहीं होगा, कारण कि, 'त्रियुगो धर्मः' धर्म तीन (सत्ययुग, त्रेता और द्वापर) युगों तक रहता है अतः उस धर्मके प्रतिपादक वेद भी, तीन युग तक अपना प्रकाश करते हैं. इस आशयको बतानेकेलिये मूल श्लोकमें 'हि' शब्द दिया है, अर्थात् निश्चयसे, कलियुगमें वेदोंका प्रभाव न रहेगा. जहां भगवान् और जगत् दोनों हैं वह 'युग' है, अतः युगके धर्मको कोई उलङ्घन नहीं कर सकता है, कारण कि, इस समय इस प्रकारका धर्म हो, यह भगवदिच्छा है ।।३।।

उपरोक्त श्लोकमें यह सिद्ध किया है, कि कलियुगमें, वेदमें कहे हुए उपनयन आदि संस्कार भी, विधि अनुसार नहीं होते हैं, अतः इस युगमें वेदका अर्थ नहीं रहा है. अब इस श्लोकमें कहते हैं, कि कलिमें वेदका पठन आदि भी यथाविधि नहीं होता है, अतः शब्दसे भी वेदका अस्तित्व नहीं है, तात्पर्य यह है कि वेदके शब्द तथा अर्थ दोनोंका कलियुगमें ह्रास है अतः कलियुगमें वेद नहीं हैं:

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ।।९।।

जैसे शान्तिसे सोते हुए ब्राह्मण नियमके उल्लंघन होते हुए शब्द सुनकर वेद ध्वनि करते हैं, वैसे ही मेघोंकी गर्जना सुनकर मण्डूक बोलने लगते हैं।।९।।

जैसे इस [१]श्रुतिमें कहते हैं कि मण्डूककी वाणी ग्रामवाले अथवा वनमें रहनेवाले प्राणिओंकी हितकारिणी नहीं है. अतः मण्डूककी वाणी सबको उपद्रव करनेवाले कालके आधीन है, इसी प्रकार, यदि ब्राह्मण भी सर्वकेलिये उपद्रवकारी हो, तो वहां वेदका ज्ञान कैसे स्थित होगा? अर्थात् वैसे ब्राह्मण, वेदका प्रचार वा वेदके तत्वके ज्ञानकी प्राप्ति कैसे कर सकेंगे? इसलिये वेद आदि शास्त्रोंमें भी कहा है कि जैसे मेघोंकी ध्वनि सुनकर, मण्डूक सबको अप्रिय शब्द टर्र-टर्र करते रहते हैं वैसे ही वे ब्राह्मण कर्मके समयपर तो यथाविधि वेदका उच्चारण नहीं करते हैं भली भांति नींद लेते हैं और जब किसी दाता यजमानका शब्द सुनते हैं तब ज्यों आवे त्यों पढने लग जाते हैं जिससे लाभके स्थानपर सबोंका अहित होता है.

[२]श्रुति कहती है, कि ब्राह्मण, जो सोमपान करनेकी इच्छा करनेवाले हैं, वे तो योग्य प्रकारसे वेद पाठ करते हैं, वर्षामें उत्पन्न होनेवाले, अन्नको जो पैदा करनेका काम करते हैं वे तो जैसे आवे वैसे (वेद मन्त्र वा अन्य) बोल देते हैं और अन्य प्रकारके ब्राह्मण जो 'यज्ञ करनेवाले हैं,' सोमयज्ञकी प्रारम्भिक विधि करनेवाले तथा तेजस्वी हैं वे छिपकर रहते हैं, प्रकट नहीं होते हैं, जैसे वर्षा ऋतुमें सूर्य आदि ग्रह छिप जाते हैं. अतः वर्षा ऋतुमें यज्ञादि धर्म नहीं होते हैं किन्तु जैसे इस ऋतुमें मेंढक टर्र-टर्र करते हैं वैसे ही खेती करनेवाले अनजान ब्राह्मण जैसे आता है वैसे ही अण्डबण्ड बोलते हैं.

[३]श्रुति स्पष्ट कहती है कि, जो पुरुष उस वसन्तमें शान्त रहते हैं, जिसमें देवताओंकी वृद्धि होती है उनका कल्याण होता है उस (वसन्त)को नहीं जानते हैं कि यह ऋतु वर्ष भरकी ऋतुओंमें मुख्य एवं श्रेष्ठ ऋतु है, इस प्रकार अज्ञानताके कारण, इस ऋतुमें वेदका अध्ययन न कर, शान्त रहते हैं और जब वर्षा ऋतु आती है तब अण्डबण्ड वाणी बोलते हैं अर्थात् वेदोच्चारण नहीं करते हैं जिससे सबको दुःखी करते हैं और आप भी पीड़ा भोगते हैं.

इस [४]श्रुतिमें यह बताते हैं कि वे बहिर्मुख ब्राह्मण किस प्रकार अण्डबण्ड बोलते हैं जब वर्षा ऋतु आनेसे, खेतमें धान उत्पन्न हो जाता है, तब उनसे पूछते हैं कि इतना धान (धन) किसने दिया? जिसके उत्तरमें कहते हैं कि, गीदड़ने दिया, भेड़ियेने दिया, पृथ्वीने दिया, बादलोंने दिया और मण्डूकोंने सहस्र गायें दीं तथा एक हजार वर्षकी आयु भी दी.

इस श्रुति द्वारा वृष्टि हो, तदर्थ मण्डूकीको प्रार्थना करते हैं.

मण्डूक [५]चार पादोंसे कूदकर तालाब वा नावमें जाकर मण्डूकीको कहता है कि तू कहदे कि थोड़े ही समयमें वर्षा होगी. इस प्रकार जो ब्राह्मण मण्डूकोंके ऊपर आश्रय करनेवाले हैं वे ब्राह्मण वेदकी रक्षा नहीं कर सकते हैं जिससे निश्चय होता है कि कलियुगमें शब्दसे भी वेदकी स्थिति नहीं हैं ।।९।।

१. ''एष वै पशूनाम् अनुजीवनीयो न वा एष ग्राम्येषु पशुषु हितो नारण्ये'' इति श्रुतिः.

२. ''ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृणवन्तः परिवत्सरीणम् अध्वर्यवो''.

३. ''धर्मिणः शिश्विदाना अविर्भवन्ति गुह्या न केचित् श्रुतिः''. ''देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्रमिणन्त्येते संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता धर्मा अश्नुवतेविसर्गम् श्रतिः''

४.''गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि गवां मण्डूका ददतः शताति सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः'' श्रुतिः.

५.''उपप्रवद मण्डूकि वर्षमावदतादुरि मध्ये ह्रदस्य प्लवस्य विगुह्य चतुरः पदः'' श्रुतिः.

यदि कलियुगमें 'वेद' शब्द तथा अर्थ दोनोंसे नहीं रहा है, तो पाषण्ड धर्मोंसे ही काम चलाना चाहिए. इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे (पाषण्ड धर्म) महापुरुषोंके अन्तःकरणमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं और साधारण पुरुषोंके हृदयमें व्यामोह पैदा करते हैं. अतः पाषण्ड धर्म नाशके कारण बन जाते हैं. जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ।।१०।।

जैसे इन्द्रियाधीन पुरुषकी देह, धन तथा सम्पदा उलटे मार्गपर जाकर नाश हो जाती है वैसे ही क्षुद्र नदियां उलटी राहमें जाती हुई अन्तमें सूख जाती हैं (नाशको प्राप्त होती हैं)।।१०।।

छोटी नदियां, वर्षा ऋतुमें, अचानक विशेष जल पानेसे, उसको धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण, उलटे मार्गमें, इधर उधर बहकर शीघ्र ही वैसे ही सूख जाती हैं, जैसे इन्द्रियाधीन पुरुषकी देह और सम्पदाएं उलटी राहपर जाकर नष्ट हो जाती हैं ।।१०।।

१.इस श्लोकमें यह बताया है कि व्रजमें जो ब्राह्मण इस समय हैं वे धर्मनिष्ठ हैं, कलियुगमें जैसे ब्राह्मण होंगे वैसे यहां मण्डूक हैं, और यहां इन्द्रियाधीन पुरुष भी नहीं हैं, सब अन्तरङ्ग भक्त हैं अन्तरङ्ग भक्त इन्द्रियाधीन नहीं होते हैं. टिप्पणी

इस निम्न श्लोकमें बाहरकी सम्पत्तिका वर्णन करते हैं:

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ।।११।।

हरी घाससे हरी, इन्द्रगोपसे(बीरबहूटी–बरसाती लाल कीडा) लाल, उच्छिलिन्द्रसे (छत्राक) छायावाली, पटबीजना भूमि, मनुष्योंकी लक्ष्मी जैसी हो गई।।११।।

यह सर्व भूमि, मनुष्योंकी लक्ष्मी, राज्यकी लक्ष्मी तथा उसके समान धन सम्पत्तिकी भांति तीन गुणोंवाली हो गई. हरी घाससे हरी, पटबीजनासे लाल, छत्राकसे श्वेत हुई अर्थात् पृथ्वी हरी, लाल और श्वेत होनेसे तीन प्रकारकी हुई.

इस पृथ्वीपर, पटबीजना तो राजाके समान, छत्राक छात्रके समान और घासके तिनके सेनाके समान हैं. जिससे यह जताया है कि पृथ्वी भी मानो युद्धकी सामग्रीवाली है. अतः जैसे तलवार अर्थात् युद्धसे जो आजीविकाकी जाती है, वह मारनेवाली ही है, वैसे ही खेतीसे होनेवाली आजीविका भी, मृत्यु लानेवाली ही है. अर्थात् जैसे युद्ध करनेमें, मृत्युका भय बना रहता है वैसे ही खेतीमें भी मृत्युका डर रहता है ।।११।।

शरद् ऋतुका धर्म वैसा ही है और इस श्लोकमें अन्तःकरणको प्रसन्नता और उसका अभाव वर्णन करते हैं:

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।
मानिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ।।१२।।

खेत, धानकी समृद्धिसे किसानोंको आनन्द देने लगे, सब(जय-पराजय) दैवके आधीन है, इस तत्त्वको नहीं जाननेवाले आक्रमणकारी अभिमानियोंको दुःखदायी हुए।।१२।।

खेत, धानकी सम्पदाओंसे, किसानोंको हर्ष देनेवाले हुए. शत्रुपर विजय पानेकेलिये आक्रमण करनेवाले अभिमानियोंको, वर्षासे उत्पन्न हुई कीचड़से, तथा मार्गकी रुकावट करनेवाले सस्य आदिसे, खेत दुःखदायी हुए. वे अभिमानी इस शास्त्रीय सिद्धान्तको तो समझते नहीं हैं कि सब कुछ (जय और पराजय) दैवके आधीन है, दैव अनुकूल है तो रुकावटोंके होते हुए भी जय होगी और यदि दैव अनुकूल नहीं है, तो रुकावटें न होनेपर भी पराजय होती है ।।१२।।

इस प्रकार ऋतुओंके न्यायसे वर्णनकर अब १२ श्लोकोंमें, महिनोंके न्यायसे द्वादश प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं. महीने (धर्मीके स्वरूप प्राप्त करानेमें) कारण हैं. अतः यहां मुख्य जो धर्मी है उनके प्रधान गुण कहने चाहिए सो कहे जाते हैं:

जीवा नद्यः पर्वताश्च मार्गा कामिन्य एव च ।
विद्यावांश्चन्द्रमा बर्ही भक्ता वा तापसास्तथा ।।का.१।।
गृहिणो वैदिका मार्गा राजानश्चेति कीर्तिताः ।
त्रिविधाः सर्व एवैते मासभोग्याः प्रकीर्तिताः ।।का.२।।
सर्वेप्येते वृष्टिकाले सुखं दुःखं च लेभिरे ।
पुष्टिमार्गस्थिताः सर्वे सुखं प्रापुर्न चापरे ।।का.३।।

१.जीव २.नदियां ३.पर्वत ४.मार्ग ५.कामिनियां ६.विद्यावाले ७.चन्द्रमा ८.मयूर वा भक्त ९.तपस्वी १०.गृहस्थी ११.वैदिकमार्ग १२.राजा लोग ये सब तीन प्रकारके मास न्यायसे भोग्य कहे गए हैं।।१-२।।

ये सब वर्षाके समय सुख तथा दुःख भोगने लगे, सुख तो उनको हुआ जो पुष्टिमार्गीय थे, जो दूसरे (पुष्टिमार्गीय नहीं) थे वे दुःख भोगने लगे।।३।।

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया।
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ।।१३।।

जैसे हरिकी सेवा करनेसे, भक्त जन सुन्दर स्वरूपको पाते हैं, वैसे ही जल तथा स्थलके रहनेवाले जीवोंने वर्षाके नवीन जलसे सुन्दर स्वरूपको प्राप्त किया।।१३।।

सुख किसको हुआ और दुःख किसको हुआ? इसका क्रम पूर्वक निरूपण करते हुए, प्रथम बताते हैं कि यह वर्षा ऋतु सर्व प्राणि मात्रको सुखदायिनी हुई क्योंकि यह (वर्षा) ऋतु भगवदीय है, भगवदीय किसीको दुःख नहीं देते हैं किन्तु सुख ही देते हैं, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

पृथ्वीपर रहनेवाले राजस जीवोंने तथा जलमें रहनेवाले तामस जीवोंने वर्षासे प्राप्त नवीन जलके सेवनसे सुख प्राप्त किया अर्थात् नवीन सुन्दर स्वरूप धारण किया, शेष सात्त्विक तो सुखी हुए ही, उनके सुखी होनेकेलिये कहनेकी आवश्यकता नहीं है, सात्त्विक दृष्टान्तकेलिये पृथक् कहे हैं. दोषसे (चित्तमें क्षोभ आदि होनेसे) भी रूपमें विलक्षणता आ जाती है. इस शङ्काको मिटानेकेलिये जो दृष्टान्त भगवान्की सेवाका दिया है, उससे सिद्ध है, कि व्रजमें जो सबके स्वरूप नवीन सुन्दर हो गये हैं वे दोषोंके कारण नहीं हुए हैं, जैसे भगवान्के सेवनसे (जीव) चतुर्भुजादिरूप अथवा विशेष तेजको प्राप्त करता है. जिसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त 'गजेन्द्र' है, भगवान्के सेवन (स्मरण)से गजेन्द्रने नवीन सुन्दर स्वरूप प्राप्त किया है ।।१३।।

बडा, अभिमानी होता है, अतः उसको मोह होता है, जिसको समझानेकेलिए इस १४वें श्लोकमें समुद्रका निरूपण करते हैं :

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षोभ श्वसनोर्मिमान्।
अपक्वयोगनिश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग् यथा ।।१४।।

जैसे अपक्व योगीका चित्त, काम वासना और विषयोंसे युक्त हो क्षोभित

(चञ्चल व दुःखी) होता है, वैसे ही समुद्र, नदियोंके मिलनेसे तथा पवनके वेगसे उत्पन्न लहरोंसे क्षोभवाला होता है।।१४।।

वर्षा ऋतुका समय कामियोंको क्षोभ करता है, उसमें भी, जो स्त्रियोंके सङ्गी हैं उनको विशेष क्षोभ करनेवाला होता है, जैसे कि नदियां समुद्रकी स्त्रियां हैं वे जब समुद्रसे जाकर मिलती हैं, वर्षाका समय होता है साथमें पवन चलती है तो समुद्रमें लहरे उठती हैं जिससे समुद्र क्षुभित हो जाता है. लहरें समुद्रके गर्वको प्रकट करती हैं, वायु चलती है वह बताती है कि समुद्रमें रजोगुण बढ़ रहा है, इस वर्णनसे यह समझाया है कि महान् जो होते हैं वे अनर्थवाले होते हैं. महानोंसे तो अनर्थका अभाव होना चाहिये. आप कैसे कहते हैं कि महान् अनर्थवाले होते हैं? इस शङ्काको मिटानेकेलिये 'अपक्वयोगी' का दृष्टान्त दिया है.

चित्तकी वृत्तियोंके पूर्ण संयम होनेको 'योग' कहते हैं, यदि योग इस प्रकार परिपक्व हो गया हो, तो फलकी सिद्धि होती है: अर्थात् वह योगी कामाधीन न होनेसे क्षोभको प्राप्त नहीं होता है, किन्तु योगीका योग यदि पूर्ण नहीं हुआ है, तो उसका (योगीका) चित्त विषयोंसे डुल जाता है. अपक्व योगसे, परीक्षाके समय अनुत्तीर्ण हो जाता है. विषयासक्त होकर, क्षोभको प्राप्त होता है. अतः स्वभावसे सिद्ध दोष, जब तक समूल नष्ट नहीं होते हैं, तब तक महान् भी अनर्थवाले हो जाते हैं ।।१४।।

उनमें भी जो, फिर दृढ, उच्च तथा भगवान्में निष्ठावाले महापुरुष हैं, वे ज्ञानियोंकी भांति सर्व सम नहीं हैं, समुद्रसे विलक्षण (पर्वत) जैसे वर्षाके उपद्रवोंको सहन करते हैं वे (भगवन्निष्ठ) भी सर्व व्यसनको सहन करते हैं जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ।।१५।।

जैसे भगवान्में स्थित चित्तवाले भक्त दुःखोंसे अभिभूत होनेपर भी, क्षोभको प्राप्त नहीं होते हैं वैसे ही पर्वत, वर्षाकी धाराओंसे पीडित होते हुए भी, व्यथाको प्राप्त नहीं होते हैं।।१५।।

निरन्तर वर्षाकी धाराओंकी मार सहते हुए भी पर्वत व्यथित नहीं हुए, कारण कि, उनकी कन्दराओंमें भगवान् विराजमान हैं. वे समझते हैं, कि हमारे भीतर विराजमान प्रभुको वर्षाकी धाराओंसे होनेवाले कष्टको हमने रोककर,

प्रभुकी सेवा की है, जिससे वर्षाकी धाराओंके दुःखरूप कठिन स्पर्शको यों सुखरूप समझने लगे, जैसे बादल, धूपके स्पर्शको आनन्ददाता समझते हैं. इसी प्रकार, वे महान् पुरुष, जिनके चित्तमें इन्द्रियातीत परब्रह्म विराजमान हैं, उनको व्यसन (स्त्री आदि अथवा आपदाओंसे) पराभव होनेपर भी क्षोभ नहीं होता है.

भगवानका 'अधोक्षज' नाम देकर यह भाव बताया है कि उनके पास अन्य नहीं जा सकते हैं, कारण कि, आप पौढे हुए हैं. यदि उस स्वरूपमें आसक्त कठोर जड़ (पर्वत) भी भगवदीय हैं, तो चेतन जीव उसमें आसक्त हो जावें, उसमें कौनसा आश्चर्य है? समुद्रसे रत्न निकाल लेनेसे, वह निःसार हो गया है, जिससे उसका चित्त भगवान्में नहीं लगता है ।।१५।।

इस प्रकार उपरोक्त दो श्लोकोंमें, राजसी तथा सात्त्विकी व्यवस्था बताकर, अब तामसी व्यवस्था निम्न श्लोकमें कहते हैं :

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना (अ)ह्यसंस्कृताः ।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ।।१६।।

जैसे अभ्यास न करने तथा समय व्यतीत हो जानेसे, ब्राह्मणोंको श्रुतियोंके स्पष्ट शुद्ध पढनेमें कष्ट होता है, वैसे ही लोगोंका आना-जाना न होनेसे और घाससे ढक जानेसे तथा सफाई न होनेसे, मार्ग संदिग्ध हो गए, जिससे आने-जानेमें पथिकोंको कष्ट होने लगा।।१६।।

वर्षा होनेसे, उत्पन्न घाससे, सर्व मार्ग ढक गये थे, जिससे वे मार्ग, आने-जानेवालोंको भी सन्देह उत्पन्न करनेवाले हो गये हैं कि, यह मार्ग है या नहीं है. अनजानकेलिये तो मार्गका पता ही नहीं पड़ता. जब तक वे साफ नहीं किये जायेंगे, तब तक आने-जानेमें रुकावट ही रहेगी. यदि विशेष समय यों छोड़ दिया सफाई नहीं की गई तो मार्ग लुप्त हो जायेंगे. जिस राहको बहुत बार देखा है उसमें सन्देह क्यों पड़ा? इस शङ्काको दृष्टान्त देकर मिटाते हैं कि जैसे ब्राह्मण वेदका पढ़ना छोड़ दे, तो उसको वेद विस्मृत हो जायेगा, पुनः पढ़नेके समय उनको शङ्का होती है, कि ये श्रुतियां वैसी हैं या नहीं? इसी प्रकार पथिकोंको भी मार्गमें न आने-जानेसे, सन्देह होता है. अतः अभ्यास करना यह वेदका दण्ड (स्मृति करानेवाला) है, यदि अभ्यास नहीं किया जाता है तो वेद पढ़नेके समय सन्देह उत्पन्न होता है कि यह बराबर है या नहीं, यदि बहुत समय छोड़ा गया हो, तो ब्राह्मण वेदके मूलको भूल जाता है ।।१६।।

इस प्रकार निर्गुण तथा सगुण भेदसे, वर्षाके चार प्रकारके धर्म कहे हैं. अब विपरीत प्रकारसे, वर्षाके चार प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं. प्रथम राजस, फिर सात्त्विक, अनन्तर तामस, अन्तमें निर्गुण इसी क्रमसे वर्षाके चार धर्म कहते हैं तामस भावसे चार प्रकारके धर्मोका निरूपण आगे करेंगे:

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्वपि ।।१७।।

जैसे कामिनियां गुणगान पुरुषोंमें भी मनको स्थिर नहीं करती हैं वैसे ही वर्षाके समयमें लोगोंके बन्धुरूप मेघोंमें बिजली स्थिर नहीं रहती है।।१७।।

गुणोंसे, जीव तीन प्रकारके होते हैं उनमें जो जीव राजस हैं, उनमें स्त्रियां मुख्य हैं, अर्थात् स्त्रियोंमें रजोगुण मुख्य है, अतः वे सतोगुणी पतिसे, प्रेमकर उसके पास स्थिर स्थिति नहीं करती हैं, किन्तु राजस वा तामस पतिमें स्थिर स्थिति करती हैं. जैसे बिजली लोक बन्धु मेघोंमें स्थिर नहीं रहती है, प्रकाशकर चली जाती है, प्रकाशसे, अपना प्रेम तो प्रकट करती है, किन्तु वे समझती हैं कि हमारे पति मेघ लोकबन्धु (सात्विक परोपकारी) हैं, अपना सब धन (जल) पृथ्वीको दे देंगे जिससे हम दरिद्र भूखी रह जायेंगी. इस प्रकारके विचार कामनियोंका होता है. इसलिये श्लोकमें, 'कामिन्यः' पद दिया है+१ बिजली कामिनियां हैं. जिससे यह बताया है, कि लोकमें, भी व्यभिचारिणी स्त्रियां यों करती हैं, किन्तु कुलीन स्त्रियां तो इस प्रकार न कर, पतिसे स्थिर प्रेम करती हैं. क्योंकि वे समझती हैं कि पतिको अपने पोषणसे भी, हमारे पोषणकी चिन्ता विशेष रहती है. वे जो कुछ दान करते हैं, उससे उनको भगवान् विशेष देते हैं, जिससे हमारा भरण पोषण सुखसे होगा किन्तु कामिनियां तो प्रत्यक्षको ही देख, गुणगानसे प्रेम नहीं करती हैं. श्लोकमें 'गुणवान' विशेषण देकर यह बता दिया है, कि वे सात्त्विक पुरुष इस बातको जानते हैं, कि दानसे वृद्धि ही होती है. मेघ गर्जनाकर अपना गुणीपन बताते हैं ।।१७।।

१.व्रजमें 'कामिनियां' केवल 'बिजलियां ' थी, वहांकी स्त्रियोंमें तो 'कामिनी' कोई नहीं थीं, सब प्रभुमें स्थिर प्रेमवाली थीं. टिप्पणी

वर्षा ऋतुके गुणसे विजातीय भी, विजातीयमें भी शोभा पाता है, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात्।

व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ।।१८।।

गुणोंको गडबडवाले प्रपञ्चमें गुण रहित पुरुष शोभा देता है वैसे (ही) गुणवाले आकाशमें निर्गुण महेन्द्रका धनुष शोभा देने लगा।।१८।।

इन्द्रधनुष निर्गुण-डोरी(ज्या) बिनाका है और आकाश गुणवान है. गुणवान आकाशमें निर्गुण इन्द्र धनुष उभरा है. (आकाशको गुणवान इसलिये कहा जा रहा है कि श्रुतिमें आकाशको ब्रह्मका शरीर बतलाया है. शरीरीका परिचय शरीरसे होता है, विद्यासे ज्ञान प्राप्त होता है अतः आकाश-ब्रह्म विद्यावान है गुणवान है. इन्द्र धनुषका कोई लक्ष्य न होनेसे, निर्गुण होनेपर भी, शोभास्पद हुआ.

इसी तरह गुणातीत वज्र भी (''आयुधानाम् अहं वज्रम्'' (भग.गीता १०।२८)के अनुसार भगवद् विभूतिरूप होनेसे) सगुण महेन्द्रके हाथमें शोभता है. [1]श्रुति कहती है, कि इन्द्र वृत्रको मारकर महेन्द्र बन गया. यहां भगवात्सम्बन्ध ही इन्द्रका दिखलाया गया है. या जैसे सगुण इन्द्रके सम्बन्धसे, वज्र निर्गुण होनेपर भी, भगवद् गुणवाले इन्द्रके हाथोंमें शोभा देता है, वैसे भगवदीय भी [2]सर्वत्र शोभास्पद है.

जीव तीन तरहके होते हैं: १.स्वभावतः भगवद् गुणोंसे युक्त, देव २.स्वभावतः दोषवाले, दैत्य, ३.गुण दोष दोनोंसे रहित मानव. यह मानव भी भगवान्की कृपासे गुणवान बन सकता है. भगवद् गुणके बिना ही कर्मसे व्यक्त सत्त्व रजस्तमो गुणवाले संसारमें गुण रहित भी पुरुष योनि, बीज और वर्णके धर्मोंको लेकर भासमान होता है, अथवा निर्गुण होनेके कारण, भगवान्के सेवक [3]गुणातीत होते हैं. इस तरह इन्द्रधनुषकी शोभाके वर्णनमें भगवान्के धर्मोंका दृष्टान्त देकर, उसका माहात्म्य भी दिखलाया है क्योंकि भगवान्से सम्बद्ध बात ही[4] भगवदीयको प्रकट कर सकती है. 'पुरुष' कहकर गुणोंसे पृथक्ता दिखलायी जब कि प्रकृति तो गुणमय ही है[5]।।१८।।

१.महान् वा अयम् अभूद् यो वृत्रम् अवधीदिति तद् महेन्द्रत्वम्.

२.भगवद् गुणोंवालोंमें गुणातीत शोभता है, तो भगवद्गुण रहितोमें तो अवश्य वही शोभेगा.

३.अर्थात् तीन प्राकृत गुणवाले संसारमें गुणातीत भगवदीय जैसे शोभता है वैसे इन्द्र धनुष आकाशमें शोभा.

४.इन्द्र धनुष भगवदीय है क्योंकि वर्षा ऋतु द्वारा भगवान्‌की लीलाके विनियोगकेलिये उभरा है.

५.यहां 'निर्गुण' शब्द वाच्य 'सगुण' शब्द वाच्यमें शोभता है इसी अंश दृष्टान्त और इन्द्रधनुषका वर्णन है. सगुण और निर्गुण शब्द अनेक अर्थमें यहां प्रयुक्त हुए हैं.

अब इस श्लोकमें गुणोंमें अवशिष्ट तामस चन्द्रका वर्णन करते हैं :

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाभासितैर्घनैः ।
अहम्मत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ।।१९।।

जैसे अपने प्रकाशसे प्रकाशित अहंकारवाली बुद्धिसे आच्छादित पुरुष शोभाको नहीं पाता है, उसी प्रकार अपनी चांदनीसे प्रकाशित हुए मेघसे आच्छादित चन्द्रमा सुशोभित नहीं हुआ।।१९।।

जिस प्रकार, प्रपञ्चमें अपने ही प्रकाशसे प्रकाशवाली अहंबुद्धि (अभिमान)से युक्त अभक्त पुरुष शोभाको नहीं पाता है, वैसे ही, अपनी ही चांदनीसे प्रकाशित मेघोंसे, क्षुद्र जो तारे एवं नक्षत्र हैं उनका अधिपति होते हुए भी चन्द्रमा शोभाको प्राप्त नहीं होता है ।।१९।।

इस प्रकार वर्षाके कारण, सगुणोंकी दशाका वर्णनकर, अब इस श्लोकमें कहते हैं कि जो मयूरोंके समान निर्गुण भगवदीय हैं वे सुखी होते हैं:

मेघागमोत्सवान् दृष्ट्वाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ।।२०।।

जिस प्रकार घरमें सन्तापको प्राप्त हुए विरक्त पुरुष, भगवद्‌भक्तके आगमनसे प्रसन्न हो उनका वाणी आदिसे सत्कार करते हैं उसी भांति गरमीसे तपे (दुःखी) हुए मोर मेघोंके आगमन रूप उत्सवको देख उनका केकावाणीसे आदर करते थे।।२०।।

जिस प्रकार, ग्रीष्मके तापसे दुःखी जीवोंमें भी, केवल भगवदीय मयूर ही मेघोंके आगमनसे जो आनन्द उत्सव होता है (जैसे कि बेल, बूंटे, वृक्ष आदि हरियाली एवं पुष्प फलोंसे सुशोभित होते हैं तथा वृष्टि और बिजली आदिसे शोभा होती है) उसको देखकर प्रसन्न हो, उनका केका वाणीसे अभिनन्दन करते हैं, उसी भांति, घरोंमें रहनेवाले जो गृहस्थी भी दुःसङ्ग अथवा असत् इन्द्रियोंसे एवं गृहकी चिन्ताओंसे व्याकुल हो दुःखी होनेसे निराश होते हैं, वे जब (वर्षा ऋतुमें) देखते हैं, कि हमारे यहां भगवान्‌के जन, परमहंस त्रिदण्डधारी संन्यासी जिन्होंने

इन्द्रियोंको जीतकर भगवान्‌में मन पिरो दिया है, वे पधारे हैं, तब उनका समादरकर प्रसन्न होते हैं. उनके सङ्गसे उस दुःखसे छूटकर, आनन्दको प्राप्त करते हैं. जिनका मन दुःखोंसे व्याकुल न हो, घरोंमें आसक्त है, उनको आनन्द नहीं प्राप्त होता है और वे उनका अभिनन्दन नहीं करते हैं. भगवदीयों वर्षा ऋतु संसारसे तप्त सब [१]भगवदीयोंको आनन्द देती हैं ।।२०।।

१.लेख तथा टिप्पणीजीमें दिये हुए भावोंका सारांश–यद्यपि श्लोकमें 'मयूर' मेघके आगमनसे प्रसन्न हो उनका सत्कार करते हैं यों कहा है, किन्तु इसका भीतरका आशय यह है, कि स्वामिनियां मेघोंको देख, उनका अभिनन्दन करती हैं, कारण कि वर्षा ऋतुमें ही प्रभु वन तथा पर्वत आदिपर, जब स्वैर विहार करने पधारते हें, तब स्वामिनियां वहां जाती हैं, मेघ आकर वर्षा करते हैं तो प्रसन्न होती हैं, क्योंकि वर्षाके कारण प्रीतमका मिलाप विशेष मिलेगा, नहीं तो घर शीघ्र लौटना पड़ता. अब वर्षाके कारण, बहाना मिल गया है. घरवाले रीस नहीं करेंगे, अतः भगवदानन्द देनेवाले मेघोंका सत्कार करती हैं.

चार श्लोकोंसे चार प्रकारके तामसोंका पृथक्–पृथक् वर्णन करते हैं :

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन् नानात्ममूर्तयः ।
प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ।।२१।।

जैसे प्रथम तप करनेसे दुर्बल और थके हुए पुरुष प्रिय पदार्थोंके सेवनसे पुष्ट होकर, अन्य रूपवाले होते हैं, वैसे, (ग्रीष्मके तापसे शुष्क) पेड वांछित जलका मूलसे पानकर, हरे रूपवाले होते हैं।।२१।।

जड़ पदार्थ तामस होते हैं, किन्तु उन तामसोंमें वृक्ष सात्त्विक हैं. वृक्षोंके अपने रूप पृथक्–पृथक् हैं, वे मूलसे पानी पीते हैं, जिससे उनका पानी पीना कोई भी नहीं देख सकता है. 'पादप' शब्दका रूढ़ि अर्थ है. 'मूलसे पानी पीनेवाला' किन्तु शब्दोंसे, जो दूसरा अर्थ निकलता है, वह 'यौगिक' अर्थ इस प्रकार है जो अपनी छायासे प्रबल ताप तथा शीतसे अपने मूलकी रक्षा करते हैं वे 'पादप' कहे जाते हैं.

वृक्ष, एक प्रकारसे उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः वे अनेक रूपवाले तो होते ही हैं, किन्तु यहां 'आत्म' शब्द देकर यह भाव बताया है, कि गर्मीके कारण, जो वृक्षोंके अपने रूप हो गये थे, वे बदलकर नानारूप हो गये जैसे कि कहा है, प्रथम तपस्याके कारण देहसे दुर्बल और तापसे श्रान्त होनेसे जो इन्द्रियोंसे भी दुर्बल हो

गये थे, वे अपने मनोवाञ्छित जल प्राप्त होनेसे, [१]उसका पानकर अनेक रूपवाले (हरे, पत्र, पुष्प, फल आदिसे) युक्त होकर इन्द्रिय देहसे पुष्ट हो गये. यदि इस प्रकार वाञ्छित जलकी प्राप्ति न होती, तो विशेष शोक होनेसे, शीघ्र बलकी प्राप्ति न होती. श्लोकमें तपस्वी पुरुषका दृष्टान्त देकर भी इसकी पुष्टि की गई है, कि पुरुष प्रथम तपस्याकर, देह तथा इन्द्रियोंसे निर्बल होता है, पुनः जब तपस्याका वाञ्छित फल प्राप्त होता है (तब) उसका भोगकर, पुनः विशेष पुष्ट हो जाता है ।।२१।।

१.जो एकपर दृढ़ विश्वास करते हैं, उनको वह मनोवाञ्छित फल देता है जैसे वृक्ष, अपने जीवनरूप जलकी कामना करते हैं, किन्तु स्वयं उसको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, अतः उसकी प्राप्ति करानेवाले मूलकी रक्षा करते हैं, जड़ निर्बल तापसे तप्त होती है उसका दृढ़ आश्रय केवल वर्षा ऋतुपर है, आश्रयके फलस्वरूप, उस जड़को वह ऋतु जल देकर तृप्त करती है. इसी प्रकार, जो भक्त भगवदीयका दृढ़ आश्रय रखता है, उसको उस (भगवदीय)से भगवद् रसकी प्राप्ति होती है. भगवदीय वर्षा ऋतु भी, सर्वत्र निकुञ्ज आदि उत्पन्नकर, वहां भक्तको भगवत्सम्बन्धका आनन्ददान करवाती है. टिप्पणी.

तामसोंमें जो राजस हैं उनका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

सरस्वशान्तरोधस्सु व्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ।।२२।।

हे महाराज ! जैसे दुष्ट अन्तःकरणवाले संसारी पुरुष अखुट कर्मोंसे भरे हुए, घरोंमें रहते हैं, उसी प्रकार, सारस पक्षी उन तालाबोंके किनारोंपर जो किनारे सदैव एक समान शान्त नहीं हैं।।२२।।

जिन पक्षिओंको सरोवरपर रहनेसे ही रस (आनन्द) आता है, उनको 'सारस' कहते हैं. सरोवरोंमें सदैव जल स्वल्प रहता है, किन्तु वे वर्षाके समयमें पूर्ण भरपूर हो जाते हैं, जिससे जल ऊपर आ जाता है. जब जल ऊपर आता है, तब वे पक्षी अपना आवास किनारेपर बनाकर वहां रहते हैं और कभी किनारे भी पानीसे भर जाते हैं, अर्थात् पानीमें डूब जाते हैं, तो वहां भी क्लेश होता है, वहां रहनेमें इतने दोष होते हुए भी सरोवरके रसके इच्छुक, उस रसमें मग्न होनेसे, वे (सारस) वहां ही रहते हैं. इसी प्रकार जिन घरोंमें रहनेसे कभी भी घरके कार्य पूरे नहीं होते हैं, मरण पर्यन्त घरकी चिन्ता लगी ही रहती है, तो भी ग्राममें उत्पन्न

होनेसे, ग्राममें ही जिनको आनन्द आता है, अथवा इन्द्रियरूप ग्रामका पोषण करनेवाले तथा अन्तःकरणके दोषवाले पुरुष भी ग्राम वा गृहको नहीं छोड़ते हैं. यदि घर छोड़ बाहर निकलें, तो वहां दुःख प्राप्त होनेसे भगवान्‌की स्मृति हो, तीर्थोंका दर्शन हो तथा सत्सङ्ग प्राप्त हो एवं काममें ही रुके रहनेसे चिन्ताका भी अभाव हो जाये, किन्तु इस सबको वर्षा होने नहीं देते हैं, कारण कि, वर्षा बाहर निकलने नहीं देती है ।।२२।।

तामसोंमें जो सात्त्विक और राजस थे, उनका वर्णनकर अब तामसोंका वर्णन करते हैं:

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे।
पाषण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गः कलौ यथा ।।२३।।

जिस भांति कलियुगमें, पाषण्डियोंके असद्‌वादोंसे(मिथ्या– झूठे) वेदके मार्ग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इन्द्र द्वाराकी हुई प्रबल वर्षासे पुल टूट गए।।२३।।

इन्द्र द्वाराकी हुई प्रबल वर्षासे, पुल टूट गये, उसका कोई उपाय नहीं, कारण कि, वह वर्षा करनेवाला ईश्वर है अतः वह (ईश्वर) जो कुछ करता है, सो सबके हितकेलिये ही करता है. वर्षा होगी, तो पुल टूटेंगे ही, उसका कोई प्रतिकार नहीं है. यह दृष्टान्त जिसलिये दिया गया है, वह श्लोकके उत्तरार्द्धमें कहते हैं, कि कलियुगमें, भगवान्‌ने बुद्धावतार धारणकर, असद्‌वादोंसे कल्पित युक्तियोंसे, पाषण्ड धर्म चलाये, जिनसे, सब वेद मार्ग (जो वेद मार्ग, कर्म, ज्ञान, भक्ति और उपासना आदि धर्मोंका प्रतिपादन करते थे वे सब) टूट गये [१]लुप्त हो गये, क्योंकि, कलियुगमें उनका कोई प्रयोजन नहीं है ।।२३।।

१.व्रजमें आपके बिराजनेसे केवल जलको पार करनेकेलिये जो पुलें थीं वे ही टूट गईं थीं, किन्तु अन्य वेद धर्मकी सेतु(पुल) नहीं टूटी थी, अर्थात् व्रजमें, वेद धर्म उसी प्रकार ही चल रहा था. टिप्पणी)

तामसोंमें जो गुणातीत हैं उसका वर्णन अब करते हैं:

व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः।
यथाशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ।।२४।।

जैसे ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे, भूपतिगण(राजा) समय – समयपर दीनोंको धनादिक देते हैं, वैसे (ही) वायुसे प्रेरित मेघ, प्राणियोंको समय – समयपर अमृत

जल देते हैं।।२४।।

जो जल, प्राणियोंको [1]अमृत समान (हस्त और मेघा नक्षत्रमें पड़ा हुआ जल अन्नादिकको उत्पन्न करता है अतः अमृतरूप है) हितकर होता है, वह जल समय-समयपर अर्थात् जब प्राणियोंको जलकी आवश्यकता होती है, तब मेघ वायुकी प्रेरणासे उनको देते हैं, जैसे राजा लोग, ब्राह्मणों (पुरोहितों)की प्रेरणासे दीनोंको धन अन्नादि देकर, उनको सुखी करते हैं. वर्षा ऋतुमें, दीन स्वतः अपने कार्य (धनादिको लानेके कार्य) करनेमें असमर्थ होते हैं, अतः जो वर्षा समयमें दान करता है, वह ही दाता है, इससे ब्राह्मणोंकी प्रेरणा प्रत्यक्ष उपयोगवाली सिद्ध हुई है ।।२४।।

१.श्रीप्रभुचरण 'अमृत' शब्दका भावार्थ स्पष्ट करते हुए आज्ञा करते हैं कि, पहले कह आये हैं, कि मेघोंने जल बरसाया, फिर वही बात दुबारा क्यों कही, ऐसी शङ्का निवारणकेलिये 'अमृत' कहा, 'जल' नहीं, क्योंकि, जो जल, हस्त आदि नक्षत्रोंमें पृथ्वीपर पड़ता है, वह अन्न आदि उत्पन्न करता है. यदि वह ऐसे समयमें न पड़े, तो धान्य उत्पन्न न होवे, पहले पड़ा हुआ जल व्यर्थ हो जाये, अतः इस जलको जल न कहकर, 'अमृत' कहा है, कारण कि, वह जल धान्यादि पैदाकर प्राणियोंकी क्षुधारूप मृत्युसे रक्षा करता है, अतः यह जल 'अमृत' कहकर पुनरुक्ति दोषको मिटा दिया है. २. व्रजमें सबको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रभु देते थे, अतः व्रजवासियोंको दूसरे, किसीका प्रयोजन नहीं था, वर्षा ऋतु भगवान्को लीलाकेलिये जिसकी आवश्यकता थी, उसकी प्रथम ही तैयारी कर देती थी.३.जैसे भूपति, दूसरोंकी प्रेरणाके बिना किसीको भी नहीं देते हैं, वैसे ही यहां व्रजमें, केवल मेघ हैं, जो दूसरोंकी (वायुकी) प्रेरणासे जलदान करते हैं, दूसरे नन्दादिक तो, अन्यकी प्रेरणाके बिना (ही) सबको सर्व प्रकारके पदार्थ स्वयं देते हैं.

वर्षा ऋतुका इक्कीस प्रकार तथा स्वरूपसे वर्णनकर, अब वर्षा ऋतुमें भगवान्ने स्वयं तथा गुणोंने जिस प्रकार रमण किया, उसका निम्न सात श्लोकोंसे वर्णन करते हैं. जिसमें प्रथम भगवान्ने रमणकेलिए वनमें प्रवेश किया उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

एवं वनं तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत्।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ।।२५।।

इस प्रकार बहुत सम्पदावाले उस वनमें, जहां खजूर और जामुन पके हुए थे, वहां गौ तथा गोपोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी सहित पधारे।।२५।।

जिस सर्व गुणवाले वनका पहले वर्णन हो चुका है, वह प्रसिद्ध वन, सबसे उत्तम हुआ. वैसे वनमें रमण किया जायेगा तो घर शीघ्र लौटना न हो सकेगा और यदि भोजनकर जावें तो भी दिन बड़े हैं, बीचमें भूख लगेगी, वनमें वर्षाके कारण, आम्र फल तो भोजनकेलिये मिलेंगे नहीं, क्योंकि, वे नष्ट हो गये हैं, अतः भूख होते हुए रमण कैसे हो सकेगा? इस शङ्काके निवारणकेलिये श्लोकमें कहा है, कि वनमें आम्र नहीं हैं, किन्तु भोजनकेलिये पकी हुई खजूर तथा जामुन बहुत हैं, उनसे भूख मिटाई जायेगी, सत्त्वमें स्थित बलरामजी रजोगुणमें स्थित गोप और तममें स्थित गौ, इन तीन प्रकारके सर्व भगवदीयोंसे वेष्टित गुणातीत भगवान् जिनने सबके दोष निवृत्त कर दिये हैं, उन निर्दोष जीवोंके साथ आप उत्तम प्रकारके रमण करनेकेलिये वनमें प्रविष्ट हुए ।।२५।।

भगवान् जिनके साथ वनमें पधारे उनमेंसे प्रथम गौओंकी शोभाका वर्णन करते हैं.

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा।
ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ।।२६।।

भारी [१]ऊधके भारसे गौ धीरे-धीरे चलती थी किन्तु जब भगवान्ने बुलाई तो वे स्तनोंसे दूध स्रवित करती हुई प्रेमसे शीघ्र भगवान्के पास जाने लगी।।२६।।

भगवान्का वनमें प्रवेश भगवान्की वीर्यशक्ति[२] तथा [३]वैराग्यशक्ति का द्योतक है अर्थात् यह प्रवेश भगवान्की वीर्यशक्ति तथा वैराग्यशक्तिको प्रकट करता है. ऐश्वर्यशक्तिका वर्णन करते हैं. गौ ऊधके भारसे धीरे-धीरे चलती थीं, यों कहनेसे यह बताया है, कि उस समय गौओंका धीरे-धीरे चलना गर्भके कारण नहीं था, अर्थात् वे गर्भवती नहीं थीं. यद्यपि ऊधके भारसे वे धीरे-धीरे चलती थीं, तो भी जब भगवान् उनको बुलाते थे, तब वे प्रेमसे दूधको बहाती हुई शीघ्र भगवान्के पास जाती थीं. यह उनका भगवान्के पास जाना भगवान्से डर, वा उनके आग्रहके कारण नहीं था, किन्तु जैसे भगवान् प्रेमपूर्वक बुलाते थे, वैसे ही ये भी प्रेमसे जाती थीं ।।२६।।

१. हवाना या आयना (वह अंग जिसमें दूध रहता है).

२.योजनाकार लालू भट्टजी कहते हैं कि जिस वनमें प्रलम्ब आदि रहते थे जिनको भगवान्ने मारा था और दावाग्निओंका पान किया था वैसे भयङ्कर वनमें भगवान्का प्रवेश उनकी (भगवान्की) वीर्यशक्ति प्रकट करता है.

३.आठवें श्लोककी टिप्पणीजीमें श्रीप्रभुचरणने कहा है कि यह लीला परोक्षवादसे रहस्यलीला कही गई है, भगवान् सदैव रहस्य लीलामें आसक्त हैं तो भी आप जो अब बलराम, गौ और गोपोंके साथ बाहर रमणकेलिये वनमें पधारे हैं जिससे भगवान्में वैराग्यशक्ति है यह सिद्ध होता है अर्थात् भगवान्ने यह लीलाकर अपनी वैराग्य शक्ति प्रकट की है.

अब इस श्लोकमें गोपोंके सुखका वर्णन करते हैं:

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः।
जलधारा गिरेरासन् आसन्ना ददृशे गुहाः ।।२७।।

वनमें निवास करनेवाले बहुत आनन्दमें थे, वनकी पंक्तियां रसोंको टपकाती थीं, पर्वतोंसे जलकी धाराएं बहती थीं और उनके समीप ही, गुफाएं थीं, भगवान्ने इन सबको देखा।।२७।।

वर्षा ऋतुके कारण, वनवासी जो अन्य समयमें ताप आदिसे वनमें दुःख भोगते थे, वे अब शीतलके कारण प्रसन्न थे. यों कहकर यह बताया है, कि वनवासियोंके सर्व दोष निवृत्त हो गये हैं और सहज सुखकी प्राप्ति हो गई है. न केवल शीतलताके कारण आनन्द मग्न थे किन्तु भोजनकी सम्पत्ति भी प्राप्त थी जैसे कि सर्व वृक्ष, अर्थात् प्रत्येक जातिके वृक्ष मधु धाराएं बहाते थे और पानकी सम्पत्ति भी विद्यमान थी जैसे पहाड़ोंसे शीतल तथा स्वच्छ जलकी धाराएं बह रही थीं. इसके साथ विश्राम और शयनकेलिये पासमें गुफाएं भी थीं, इस प्रकार, तीनों प्रकारकी आवश्यक सामग्रीवाले वनमें वन निवासी गोप तथा अन्य (भील आदि)को भगवान्ने देखा ।।२७।।

इस श्लोकमें बलदेवजीके रमणका वर्णन करते हैं:

क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति।
निर्विशन् भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ।।२८।।

भगवान् रमण करते हुए देखते, कि वर्षा होती है तब वृक्षकी खोहमें, वा पर्वतकी गुफामें प्रवेश करते थे और वहां कन्द-मूल और फल खाते थे।।२८।।

कभी वर्षा होती, तो भगवान् (राम) वृक्षके कोटरमें, वा पर्वतकी गुफामें प्रवेशकर, वहां बिराजते हुए कन्द-मूल और ँफलका भोजन करते थे, वनके कन्दादिक सर्व अलौकिक स्वादिष्ट होते हैं. श्लोकमें 'भगवान्' कहा है किन्तु 'रेमे' क्रिया पदसे ज्ञात होता है कि यह 'बलरामजी'की लीला है, विशेषमें इसका

स्पष्टीकरण आगे कहेंगे, वृक्षके कोटरमें, और छिपकर फलाहार, यह भगवान्‌केलिये उचित[२] नहीं है ।।२८।।

१.इस भोजनसे बलरामजीकी वैराग्य शक्ति कही है यदि पच्चीसवें श्लोकमें वैराग्य शक्ति कही गई तो यहां पुनरुक्ति समझी जायेगी तो यह बलरामजीका चरित्र है जिससे यों समझना कि वीर शक्ति कही है. प्रकाश

२.कन्दरामें छिपकर भोजन करना भगवान्‌के योग्य न होनेसे यह भगवान् बलरामजीकी लीला है. टिप्पणी.

इस श्लोकमें स्वयं भगवान्‌ने जो लीलाकी है उसका वर्णन करते हैं:

दध्योदनमुपानीतं शिलायां सलिलान्तिके।
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः ।।२९।।

जलके समीपवाली शिलापर बैठ, संकर्षणजीके साथवाले भगवान्‌ने अपने साथ भोजन करनेवाले गोपोंसे घरसे आए हुए दहीभातका भोजन किया।।२९।।

जिस समय भगवान् अपने भक्त गोप तथा भ्राता श्रीबलदेवजीके साथ रमण कर रहे थे, उसी समय गोप, गोपीजन अथवा यशोदाजी तथा रोहिणीजी, जो दहीभात लाईं थीं, उसका, पर्वतके शिखरोंपर धीरे-धीरे बादलोंके बरसते हुए पीनेका पानी लानेकेलिये कहीं जाना न पड़े ऐसी जलके समीपवाली चट्टानोंपर बैठकर सजातीय भक्त गोपोंके साथ भगवान् भोजन करने लगे. उस समय श्रीबलरामजी भी, आपके साथमें थे. वह भोजन भगवान्‌ने यहां इसलिये किया, कि वर्षामें उत्पन्न सर्व सम्पत्तियां मेरी और मेरेलिये ही हैं. जो गोप सजातीय नहीं थे, उन्होंने पृथक् भोजन किया अथवा बलरामजीके साथ फलाहार किया ।।२९।।

भगवान्‌ने गोपोंके साथ भोजन किया, किन्तु आपके साथ गौ बैल आदि थे, उनको भोजन न कराके आपने कैसे किया? इस शंकाका निवारण इस श्लोकमें करते हैं :

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान्।
तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ।।३०।।

तृप्त हुए वृष और बछडे हरी घासपर बैठकर आंखे मींचकर जुगारी करते थे और गौ, ऊधके भारसे थककर, बैठी हुई जुगारी करती थीं।।३०।।

भगवान्‌ने देखा कि हरी घासवाली भूमिपर तृप्त हुए बैल, बछड़े तथा गौ

जुगारी कर रही हैं, जिस समय वृष आदि जुगारी करते हैं, उस समय, उनको खानेकेलिये नहीं देना चाहिये, क्योंकि वे तृप्त होकर बैठे हैं और चरे हुए पदार्थके रसका स्वाद ले रहे हैं. गौ ग्रास तो देना चाहिये था, इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे गौ तृप्तिके कारण [१]ऊधके भारसे श्रमित हुई थीं, अर्थात् थक गईं थीं अतः उनको गौ ग्रास ऐसे समय देना व्यर्थ था, इस प्रकार सबके भोजन, पान और शयनके विहारका वर्णन किया है ।।३०।।

१.गौका ऊध भर गया, यह तृप्तिका चिह्न है, जिससे भगवान्की यशशक्ति प्रकट होती है, तात्पर्य यह है कि भगवान्के कारण, गौ इस प्रकार तृप्त होती है कि उनका ऊध दूधसे इतना भर जाता है कि उसके भारसे थक जाती हैं, अतः तृप्तको ग्रास देना व्यर्थ है. प्रकाश

इस प्रकारके वनका, जो अभिनन्दन भगवान्ने किया उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतसुखावहाम् ।
भगवान् पूजयाञ्चक्र आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ।।३१।।

सब जीवोंको आनन्द देनेवाली उस वर्षाकी सम्पदाको अपनी शक्तिसे समृद्ध देखकर भगवान्ने उसकी पूजाकी।।३१।।

व्रजमें आधिदैविकी वर्षा ऋतु आई, उसको देखकर भगवान्ने उसका आदर सत्कार किया, क्योंकि वह (वर्षा ऋतु) तीन कारणोंसे सत्कारके योग्य थीं, १.सर्वप्राणियोंका हित करनेवाली थीं, २.भगवान्की सर्वशक्तियोंसे समृद्ध (बहुत सम्पदावाली) थीं, ३.आधिदैविकरूप धारण कर आई थीं, इन तीनों गुणोंवाली इस वर्षा ऋतुमें भगवान्ने रमण द्वारा उसका समादर किया, यदि भगवान् रमण नहीं करते, तो प्रावृट् (वर्षा) ऋतुका तीन गुणोंको प्रकटकर आना व्यर्थ हो जाता, जिससे वह अपना अपमान वा अनादर समझती, अतः गुणज्ञ सर्वान्तर्यामी भगवान्ने उसकी की हुई सेवाको ग्रहण किया ।।३१।।

वर्षा ऋतुकी लीला वर्णनकी समाप्ति कर, अब अन्य लीलाके कहनेका प्रारम्भ करते हैं, वह लीला शरद् ऋतुमेंकी हुई कहनी है अतः अट्ठारह श्लोकोंमें शरद्का वर्णन करते हैं, जिससे इस एक श्लोकमें, शरद्की प्रवृत्तिका वर्णनकर, शेष १७ श्लोकोंमें उसके कार्योंका वर्णन करेंगे.

एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ।

शरत् समभवद् व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ।।३२।।

इस प्रकार बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रजीके वनमें (व्रजमें) रहते हुए शरद् ऋतु आई, जिसके आनेसे बादल बिखर गए, जल निर्मल हो गया और वायु मन्द-मन्द चलने लगी।।३२।।

भगवान् राम तथा कृष्ण इस प्रकार रमण करते हुए, वन और व्रजमें रहते थे, तब इनका वर्षा ऋतुमें रमण देख, शरद् ऋतुको भी इच्छा हुई, कि मैं भी वहां चलूं तो मुझमें भी प्रभु रमण करेंगे, इस आशासे शरद् ऋतु भी वर्षासे पृथक् लक्षणवाले तीन गुणोंसे युक्त होकर आई, १.वर्षामें जो आकाश, बादलोंसे घिरा रहता था उसको अभ्र रहित बनाके स्वच्छ कर दिया, २.वर्षामें नदियोंका जल, मलवाला हो जाता था उसको निर्मल बना दिया, ३.वर्षामें पवनका स्पर्श तीव्र प्रतीत होता है उसको बदलकर शीत मन्द-मन्द वायु चलाई, इस प्रकार शरद् ऋतुने अपने निवृत्ति परायण गुणोंसे निवृत्ति धर्म प्रवृत्यर्थ सेवा की और वर्षा ऋतुके प्रवृत्ति धर्मको बन्द किया. ऊपर तो आकाश निर्मल किया नीचे जल स्वच्छ बना दिया और चारों तरफ वायुमें निर्मलता प्रकट कर दी. प्रवृत्ति धर्ममें, उत्पत्तिका होना मुख्य है, निवृत्ति धर्ममें, उत्पन्न हुए पदार्थोंकी शुद्धि होना मुख्य है, भूमिसे जल महान् है और परिधि(जहां तक दृष्टि पहुंचती है)से वायु बड़ी है, अतः वैसी शरद्में, भगवान् रमण करेंगे क्योंकि इस (शरद् ऋतु)में स्त्री जीवों (प्रेमी भक्तों)का आनन्द प्रतिष्ठित है ।।३२।।

निवृत्ति धर्मवाली शरद्ऋतु शुद्धिकेलिए आई है, अतः जो जीव, सप्तदशात्मा (१६ गुण और १ वाणी स्वयं जीव इस प्रकार जीव सप्तदशात्मा) है, उसकी शुद्धिके वर्णनका क्रमशः प्रारम्भ करते हैं :

जलानां सर्वभूतानाम् अभ्राणां ज्ञानिनां तथा ।
कुटुम्बिनां दरिद्राणां विरक्तानां विमुक्तिनाम् ।।का.१।।
योगिनां गोपिकानाञ्च शरत्सम्बन्धतो हरिः ।
दश दोषान् निवार्याथ चित्तस्यापि निवार्य च ।।का.२।।
सर्वानशोभयद् देवः षड्गुणैश्चन्द्रमानवाः ।
गावः पद्मानि भूमिश्च वर्णाश्चैव विभाविताः ।।का.३।।
शरदः कार्यमेतावद् भगवानविशद् यतः ।।

भगवान्ने शरद्के सम्बन्धसे जलों, सर्व भूतों, मेघों, ज्ञानियों,

कुटुम्बियों, दरिद्रों, विरक्तों, मुक्तों, योगियों और गोपीजनोंके दश प्रकारके दोष निवृत किये तथा चित्तके दोषोंका निवारण किया, इस प्रकार, सबके दोष मिटाकर सबको हरिने सुशोभित किया.

यह कार्य शरद् ऋतुने किया है, क्योंकि भगवान्ने इस शरद् ऋतुमें प्रवेश किया है.

इन कारिकाओंमें जो एक–एक जल आदि पदार्थ कहे हैं वे निम्नलिखित श्लोकोंका सारांश लेकर कहे हैं अर्थात् इन पदार्थोंका एक – एक श्लोकमें, विवेचन है जैसे कि इस ३३वें श्लोकमें जलोंके दोषोंके मिटानेका वर्णन हैं:

शरदा नीरजोत्पत्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ।।३३।।

जैसे योग सिद्ध होनेसे, जो योगी योग भ्रष्ट होकर जन्म लेता है, वे पुनः उसी दूसरे जन्ममें योग द्वारा निरोध प्राप्त करते हैं. अर्थात् शुद्ध होकर (योग सिद्धकर) अपने लक्ष्योंको प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही वर्षाके कारण, मल युक्त हुए जल, शरद्के कारण, कमलोंको उत्पन्नकर, शुद्ध वन अपने मूल निर्मल शुद्ध रूपको प्राप्त करते हैं।।३३।।

जल सर्व पदार्थोंको शुद्ध करते हैं, किन्तु यदि वे ही शुद्ध न होवें तो, अन्य पदार्थोंको शुद्ध कैसे करेंगे, अतः शरद्ने आकर, प्रथम जलोंकी शुद्धि की है. किस प्रकार जलोंकी शुद्धि की, उसका वर्णन करते हैं कि, शरद् ऋतु पहले तो जलोंकी भौतिक सर्व रज को पृथ्वीमें लीनकर, उनका स्वरूप आध्यात्मिक बनाके तथा शुद्ध मकरन्दवाला आधिदैविक सिद्धकर, सर्व प्रकारकी रज दूर कर देती है, जिससे वे जल, नीरज हो गये हैं, अतः उन जलोंमें कमल उत्पन्न हुए हैं उनसे वे जल स्वाभाविक निर्मलरूपको प्राप्त हुए. जैसे, मनुष्य पुत्रोंको उत्पन्नकर, पितृ ऋणसे उन्मुक्त होते हैं और चिन्तासे छूटकर आनन्दको प्राप्त करते हैं, वैसे (ही) ये जल भी, कमलोंको उत्पन्नकर, अपने मलको निवृत्तकर, आनन्दित हो गये, क्योंकि अपनी प्रकृति (चित्तरूप शुद्ध स्वरूप)को प्राप्त हुए. शरद् ऋतु केवल भौतिक (बाहरके) दोषोंको मिटानेकेलिये कमलोंको उत्पन्न नहीं करती है, किन्तु भगवान्की क्रीड़ाकेलिये, जलका हृदय भी कमलोंके विकाससे गुणातीत करती है, अर्थात् हृदयरूप कमलके विकाससे, हृदय गुणातीत होता है. हृदयके गुणातीत होनेमें, शरद् योग देती है इसलिये योगका दृष्टान्त दिया है, अथवा योग

द्वारा शुद्धि धीरे-धीरे होती है इसी कारणसे, योगका दृष्टान्त दिया है, जैसे कि योगसे जो पतित होते हैं, उनके चित्त भी पतित हो जाते हैं. वे योग भ्रष्ट मनुष्य, योगके सेवनसे, रजोगुणको प्राप्त, चित्तका निरोध करते हैं, अर्थात् रजोगुणको नाशकर, चित्तको सतोगुणी बनाते हैं, जैसे वह भगवान्के विराजनेके योग्य हो जाये ।।३३।।

यों सर्वशुद्धिके कारणरूप अन्तःकरण और जल की शुद्धिका प्रतिपादन कर, महाभूतोंकी शुद्धि कहते हुए, आश्रमोंकी शुद्धिका प्रकार बताते हैं :

व्योम्नोब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ।।३४।।

जैसे श्रीकृष्णमें की हुई भक्ति, चारों आश्रमवाले पुरुषोंका पाप(दुःख) हरण करती है, वैसे ही शरद् ऋतुने महाभूतोंकी संकरता (जैसे अग्नि तथा वायुकी मिलावट, भूमि तथा जलकी कीच, आकाशके मेघ, इस प्रकार चारोंका चार मल) दूर की।।३४।।

जब महाभूत शुद्ध होंगे, तब देह भी शुद्ध रहेगी, क्योंकि देह महाभूतोंसे बनी है. इस प्रकार, चारों आश्रम शुद्ध रहेंगे, तो धर्मकी भी शुद्धि रहेगी अन्यथा नहीं, अतः शरद्ने जिस प्रकार, आकाशादि एवं आश्रमोंकी शुद्धि की, उसका वर्णन करते हैं. शरद् ऋतु प्रत्येकके मलको निवृत्त करती है, 'मल' उसको कहा जाता है जो कार्यमें वा स्वरूप दर्शनमें रुकावट डाले, जैसे 'मेघ' आकाशके मल हैं क्योंकि मेघोंसे आच्छन्न होनेपर आकाशका शुद्ध स्वरूप देखनेमें नहीं आता है. शरद्ने आकर मेघोंको हटाकर आकाशका मल मिटाया, जिससे, आकाशका स्वच्छ स्वरूप देखनेमें आने लगा. महाभूतोंकी मिलावट, अग्नि और वायुका मल है, स्पर्श एवं [1]भूखकेलिये इनकी (अग्नि और वायुकी) आवश्यकता है. पृथ्वी और जलका मल कीच है, इन सब मलोंको शरद्ने हरण कर लिया.

शरद्ने जैसे महाभूतोंके मलोंको मिटाया, वैसे ही आश्रमोंके मल भी निवृत्त किये. जैसे कि, संन्यासियोंका धर्म घूमनेका है, उनकेलिये एक स्थानपर रहनेका शास्त्रोंने निषेध किया है, किन्तु वर्षा, इस संन्यास आश्रमके धर्ममें रुकावट डालती है, जिससे, वे एक ही स्थानमें रहते हैं, वहां एक ही स्थानका भोजन करते हैं उससे दोषोंकी उत्पत्तिका सम्भव है ब्रह्मचारी भी वर्षाके कारण भिक्षा मांगकर गुरुको देना, उनकी आज्ञासे, भिक्षान्न भोजन करना, इस धर्मका

पालन नहीं कर सकते हैं. वर्षाके कारण समयके अज्ञानसे, गृहस्थी भी अपना कर्म समयानुसार नहीं कर सकते हैं. वानप्रस्थी भी, इस कारणसे, सङ्ग्रहकर रखते हैं, इससे दोष उत्पन्न होनेका सम्भव है. इसी प्रकार, वर्षामें, सर्व आश्रमवालोंमें, दोष आनेकी, जो सम्भावना थी उसको शरद्ने आकर मिटा दिया. शरद् ऋतुसे भगवान्का सान्निध्य होनेसे, आधिदैविकके समान वह (शरद्) भी दोषोंको मिटानेवाली हुई है. शरद् ऋतु किस प्रकार दोषोंको मिटाती है, उसकेलिये दृष्टान्त देते हैं, कि जैसे श्रीकृष्णकी भक्ति, दोषों (पापों) को मिटाती है. भक्ति, शोकसे आंखोंमें उत्पन्न आंसूरूप, हृदयाकाशके मेघोंको नष्ट करती हैं, अर्थात् हृदयके शोकको मिटाकर हृदयको शुद्ध (आनन्दित) बनाती हैं.

जीव सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदसे, तीन प्रकारके हैं. उनको आसन्य तथा अग्नि मिला देते हैं, अर्थात् एक समान दिखा देते हैं. जैसे आसन्य, सब जीवोंकी इन्द्रियोंमें बल उत्पन्नकर, उनको संसारमें प्रवृत्त कराते हैं और वाणीकी अधिष्ठात्री देवता अग्नि, वाणीमें बल देकर, अन्योंसे सङ्ग कराती है, इसी प्रकार, संसार एवं सङ्गमें सब जीव समानसे दिखते हैं. जिससे, उनमें दोष आ जाते हैं, किन्तु जब उन जीवोंमें भक्तिका उदय होता है, तब उनके वे सर्व दोष मिट जाते हैं. आसन्य तथा अग्नि जो जीवोंमें दोष उत्पन्न करनेवाले थे, वे ही भक्तिके प्रतापसे, दोषोंके नाश कर्ता होते हैं, आसन्य, उन दोषोंको दूर करता है और भक्ति उनको भस्म कर देती है.

भक्तको भक्ति करनेसे भगवत्प्रसादकी प्राप्ति होती है जिससे हृदयरूप भूमिकी कीच नष्ट हो जाती है.

जब तक, भक्ति द्वारा, भक्त भगवान्के चरणोंकी स्नेहरूप जलसे आर्द्रकर, हृदयमें स्थापित नहीं करता है, तब तक हृदयमें, शोकसे उत्पन्न जलकी आर्द्रता रहती है. भगवान्के चरणोंके बिराजते ही, शोकरूप जलसे उत्पन्न वह आर्द्रता मिट जाती है, कारण कि, भगवान्के चरणारविन्द [२]आधिदैविक भूमि है. भूमि जलको चूंसती है, यह तो प्रसिद्ध ही है कि भक्त सर्व प्रकारके जलोंका मैल दूर कर देता है, क्योंकि भक्तके हृदयमें भगवान् बिराजते हैं, जिससे, भक्त तीर्थरूप हो के, तीर्थोंके मलको नाशकर, तीर्थोंको शुद्ध तीर्थ बना देता है.

ब्रह्मचर्यमें ब्रह्मचारी गुरुको जलदान करता है, भक्ति ब्रह्मचारीके इस श्रमको दूर करती है, कारण कि भक्ति करनेसे ब्रह्मचारी भक्तिसे उत्पन्न

अलौकिक दानके सामर्थ्यसे भगवान्‌की प्रीतिरूप जलका दान गुरुको दे देता है:

गृहस्थाश्रममें, अनेक प्रकारके जीवोंसे सङ्ग होता है, जो दोषरूप संसारासक्त करानेवाला है. भक्ति उस सङ्गको मिटाकर, गृहस्थाश्रमको सुखदायी बना देती है. यह स्पष्ट देखनेमें आता है, कि भक्तिका उदय होनेपर, जीव (गृहस्थी भी) निःसङ्ग हो, भगवत्परायण ही रहते हैं.

जैसे भूमि, कीचरूप मलसे दूषित रहती है, वैसे ही वानप्रस्थी भी मल युक्त (केश, नख, दाढी आदि धारण करनेसे मल युक्त) रहते हैं, किन्तु भक्ति प्राप्त होनेपर, वानप्रस्थी भगवत्सेवा करते हैं, तो उनको निर्मल स्वच्छ शुद्ध रहना पड़ता है, देव[३] बनकर (आन्तर बाह्य शुद्धि स्वच्छता रखकर) देवकी सेवा करे अतः भक्ति, वानप्रस्थका मल भी दूर कर देती है.

संन्यासी चार प्रकारके होते हैं, १.कुटीचक , २.बहूदक, ३.हंस और ४.परमहंस. इनमेंसे कुटीचकको एक ही स्थानपर रहना पड़ता है, शेष तीनोंको भ्रमणकर भिक्षा द्वारा उदर पूर्ति करनी पड़ती है, अतः उन तीनोंका यह भ्रमणकर भिक्षा मांग-मांग (कर) उदर भरनेका कष्ट भी भक्ति मार्गपर चलनेसे मिट जाता है, अर्थात्, जब वे भक्ति पथके पथिक बनते हैं, तब उनको, एक स्थान (देवालय)में निवास करना पड़ता है, वहां ही भगवत्प्रसादसे उदर पूर्ति करते हुए भगवद् ध्यानमें मग्न रहते हैं, जिससे उनका भ्रमण एवं भिक्षा मांगनेका कष्ट मिट जाता है, इतना ही नहीं, किन्तु जो पाप, अन्य उपायोंसे नहीं मिटते हैं, वे भी भक्तिसे मिट जाते हैं पाप (दोष) आदिको मिटानेकेलिये जो उपनिषदोंमें ज्ञानके साधन कहे हैं, वे भी भक्तिसे सिद्ध हो जाते हैं ।।३४।।

१.वर्षा ऋतुमें सर्व पदार्थ गीले रहते हैं अतः वे शुष्क हों तो, उनका स्पर्श किया जा सके अर्थात् वे काममें लानेके योग्य हों, इसलिये अग्नि तथा वायुकी आवश्यकता रहती है. शरीरके भीतर वर्षा कालमें वायुका प्रकोप होता है, जिससे भूख नहीं लगती है, उसकेलिये मन्द हुई जठराग्निको प्रदीप्त करनेकेलिये औषध सेवनकी आवश्यकता होती है. इससे समझा जा सकता है, कि अग्नि और वायुका साङ्कर्य है, जिससे मन्दाग्नि तथा गीलापन होता है. उसको शरद्ने आकर मिटाया.

२. वैश्वानर विद्यामें भगवान्‌के चरणोंको आधिदैविक भूमि कहा है. प्रकाश.

३.''देवो भूत्वा देवं यजेत्''.

इस प्रकार शरद्ने इन(महाभूत तथा आश्रमों)के दोष मिटाए अब अन्न के उत्पन्न करनेवाले मेघोंके दोषोंको जिस प्रकार मिटाया उसका वर्णन करते हैं:

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ।।३५।।

जैसे शान्त मुनि लोग, तृष्णाका त्यागकर, पाप रहित हो, स्वच्छ (शुद्ध) तेजवाले होनेसे शोभते हैं, वैसे (ही) मेघ अपना सर्वस्व (जलरूप धन) छोडनेसे स्वच्छ होके, शोभा युक्त हुए।।३५।।

जैसे मरणके समय, कोई भी प्राणी अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं जा सकता है, वैसे ही, शरद्ऋतुरूप कालके आनेपर, मेघ भी अपने पास कुछ भी नहीं रख सकते हैं अतः शरद्के आते ही, मेघोंने अपना सर्वस्व (जल) दान कर दिया, क्योंकि यह मेघोंका धर्म है. धर्मानुसार आचरणकर, सर्वस्व त्याग देना ही सर्व पापोंका प्रायश्चित है, वह प्रायश्चित मेघोंने ज्ञानपूर्वक किया है, जिससे स्वच्छ तेजवाले होकर सुशोभित हुए. पापका रूप काला है और पुण्यका रूप स्वच्छ है, सर्वस्वदानसे मेघोंका पापरूप काला रङ्ग नष्ट हो गया और पुण्यरूप स्वच्छ रङ्ग प्रकट हुआ. मेघ केवल सफेदरूपवाले, (ही) नहीं हुए किन्तु विशेष तेजवाले भी हुए. केवल स्वच्छता तो वृद्धावस्थामें केशोंमें भी आ जाती है, वैसी स्वच्छता मेघोंमें नहीं आई, किन्तु इससे विलक्षण, कालवशसे, ही दीप्ति युक्त स्वच्छता आई.

तब (शरद्ऋतुमें) मेघोंमें रमण अथवा दीप्ति तो दृष्टिगोचर नहीं होती है, इस प्रकारकी शङ्काको मिटानेकेलिये कहते हैं कि मेघोंमें जो दीप्ति आई वह शास्त्रानुसारिणी थी, उसका विवेचन करते हैं कि, अन्तःकरण चार (चित्त, बुद्धि, मन तथा अहङ्कार) प्रकारका है, इनके चारों प्रकारके दोष जावें, तब बाहरके त्यागसे, वह दीप्तिवाला होता है, यदि त्याग नहीं तो शोभता नहीं. अब अन्तःकरणके एक-एक वृत्ति (विभाग)के दोष बताते हैं:

१.चित्तके दोष तीन ईषणा है,
२.बुद्धिका दोष अतिशय मूर्खता,
३.मनका दोष बाहरके विषयोंमें आसक्ति,
४.अहङ्कार तो दोषोंका भण्डार होनेसे सन्निपातरूप है.

इस प्रकार उनके दोष बताकर अब क्रमसे उनका निराकरण कहते हैं. ईषणा तीन हैं, १.लोकेषणा, २.वित्तेषणा और ३.अर्थेषणा. इनमें लोकेषणा दो प्रकारकी है (१)भुवनकी(लोककी) कामना, (२)जन(सेवकादि)की कामना.

२.वित्तेषणा सर्व पदार्थ मात्रकी कामना, ३.अर्थेषणा स्त्री और पुत्रकी कामना. इस ईषणा कहनेका तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंकी कामना. इन तीन पुरुषार्थोंकी कामनाके त्यागसे वे तीन ईषणाएं नष्ट होती हैं, जिससे शांति प्राप्त होती है, यह सत्त्व गुणसे भी होती है, किन्तु यदि अन्य गुण रजो वा तमोगुणका प्रभाव बढ़ने लगे, तो वह शांति लुप्त हो जाती है, अतः 'मन' परमात्मामें पिरोनेसे, जो स्वरूपात्मक शांति प्राप्त होती है, वह लुप्त नहीं होती है यह शांति सत्त्वगुण उदय होनेपर, भगवद्भक्ति से प्राप्त होती है, इस प्रकार जो मनको परमात्मामें पिरो देते हैं वे मुनि हैं.

जिन्होंने अहङ्काररूप दोषोंको मिटा दिया है और बाहरके भी सर्व पदार्थोंको त्याग दिया है, वे शुद्ध तथा तेजवाले होते हैं. यह शरद्के द्वारा ही होता है क्योंकि आध्यात्मिक शरद्में भगवान् स्वयं बिराजते हैं अतः आगे कहेंगे कि शरद्की सर्व रात्रियां भगवान्की लीलाकी रात्रियां हुईं ।।३५।।

इस प्रकार शरद् ऋतुने जिस भांति दोषोंकी निवृत्ति की, उसका वर्णनकर अब उसके गुणोंका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचित् न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ।।३६।।

जैसे, ज्ञानी लोग, अपना ज्ञानरूप अमृत किसी समय देते हैं, और कभी नहीं भी देते हैं, वैसे ही पर्वत अपना निर्मल जल किसी स्थलपर छोडते हैं कहीं नहीं भी छोडते हैं।।३६।।

ज्ञानरूप गुण उनमें है, जिनके अन्दर सत्य तत्त्व है, वह ज्ञान शुद्ध तथा दोषोंको मिटानेवाला होता है. यहां जलका निरूपण करते हुए, उस ज्ञानका, दृष्टान्तसे निरूपण करते हैं. पर्वत सर्व स्थानपर जल नहीं बरसाते हैं, जो स्थान योग्य समझते हैं, वहां बरसते हैं जैसे कि, जहां पर्वतोंमें ऐसे स्थान हैं, जहांसे वह जल स्रोतोंके रूपमें बहकर नीचे जाता है, वहां ही बरसते हैं. उस स्थानपर बहना नहीं चाहते हैं, जहां झरने न बन सकें और आगेका बरसाया हुआ पानी खड्डोंमें भरा-भरा मलीन हो जाये. पर्वतोंके ऊपरके पानीका गुण 'शिवम्' शब्दसे प्रकट करते हैं जिसका तात्पर्य है कि वह जल शान्त, शीतल तथा स्वादिष्ट है. जैसे पर्वतके अन्दरका जल शीत एवं शान्त है, वैसे ही महान् पुरुषका अन्तःकरण शान्त तथा शीतल होनेसे, सूर्य आदिके ताप भी उनके अन्दर ताप (दुःख) आदि

नहीं कर सकते हैं. इससे यह बताया, कि जैसे पर्वत योग्य स्थानपर जल बरसाते हैं अन्यत्र नहीं, वैसे ही महान् पुरुष भी योग्य अधिकारीको ज्ञानका दान करते हैं.

उनके, ये दो प्रकारके रूप स्वाभाविक हैं? अथवा अपनी बुद्धिसे किये हुए हैं? ऐसा विचारकर, निर्णय करते हैं, कि स्वाभाविकरूपमें तो शरद् ऋतुका कोई बल नहीं चलेगा इसलिये बुद्धिसे किये हुए होनेसे, शरद्का बल चल सकता है, अर्थात् शरद् अपना प्रभाव डाल सकती है. ज्ञान ही अमृत (मृत्युको मिटानेवाला) है, जब शुभ समय होता है, तब ज्ञानी स्वयं ज्ञानसे परिपूर्ण होते हुए भी देश, काल तथा ज्ञान लेने योग्य अधिकारीको देख और ज्ञान लेनेके अनन्तर इस सम्प्रदाय (ज्ञान मार्ग)को स्थिर करता रहेगा एवं कुमार्गपर न जायेगा, इन सर्व विषयोंका पूर्ण विचारकर, जब समझते हैं कि ये ज्ञान देनेके योग्य हैं, तब उनको ज्ञान देते हैं अन्यथा नहीं देते हैं, शास्त्रोंमें आज्ञा है कि 'ज्ञानवान् महापुरुष शरीर छोड़ देवें तो भी बिना विचारे अनधिकारीको किसी सूरतमें भी ज्ञान न देवें.' महाभूतादिकी शुद्धि शरद् ऋतुनेकी है, अतः शुद्धिसे बुद्धि (ज्ञान) भी शुद्ध हो गई है, जिससे किसको ज्ञान देना चाहिये और किसको नहीं देना चाहिये, पर्वत कहां जल छोड़ें कहां नहीं छोड़ें इत्यादि सर्व ज्ञान शरद्के कारण हुआ है ।।३६।।

इस प्रकार शरद्के ज्ञानकेलिए उपयोग सिद्धकर, अब इस श्लोकमें, वैराग्यकेलिए भी शरद् उपयोगी है यह बताते हैं:

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः।
यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ।।३७।।

जैसे कुटुम्बी मूर्ख मनुष्य, अपनी नित्य क्षय होती जा रही आयुको नहीं जानते हैं, वैसे ही उथले(छिछले या थोडे) जलमें रहनेवाले जलके जन्तु नित्य क्षीण होनेवाले जलको नहीं पहचान सकते हैं।।३७।।

एक तो जल जन्तु, यों ही उथले हुए जलवाले सरोवरमें रहते हैं, फिर शरद्ऋतु उस जलका धीरे-धीरे शोषण करती रहती है, जिसका ज्ञान उन जन्तुओंको जलमें रहते हुए भी नहीं होता है. वे तो, उस उथले पानीमें ही, क्रिया शक्तिका कार्य (चलना, फिरना और खेलना आदि) आनन्दसे निश्चिन्त होकर करते रहते हैं और न उस उथले पानीके साथ, किसी अथाह जलवाले नदमें चले जाते हैं, प्रयत्नकर, यदि चले जाते तो, कोई चिन्ता नहीं रहती, किन्तु, न जानेका परिणाम, यह होता है, कि पानी नष्ट होते ही, वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं, यदि

यह जलका नष्ट होना स्वाभाविक होता, तो शरद् ऋतुका कोई उपयोग न रहता, अर्थात् यदि वह पानी स्वतः सूख जाता तो शरद्की आवश्यकता नहीं पड़ती. इस शास्त्र सिद्ध विषयको समझानेकेलिये दृष्टान्त देते हैं, कि जैसे आयु है, आयुसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ सिद्ध किये जा सकते हैं, किन्तु एक तो, वह आयु परिमित है, फिर हम ऐसे स्थानमें रहते हैं, जहां उसका अपव्यय होता है और न उस स्थान गृहको छोड़कर उसी दूसरे निर्भय स्थान (भगवान्के चरणाविन्दरूप गृह)का आश्रय करें तो किसी प्रकारकी हानि न हो, किन्तु वहां आश्रय करनेसे पूर्ण आधिदैविक आयुकी प्राप्ति तथा सर्व प्रकारके इष्टकी सिद्धि हो. इतना होनेपर भी जीव यों नहीं करता है, उसका कारण अज्ञान ही है. अतः अज्ञानकी निन्दा करते हुए कहते हैं कि अज्ञानसे ही, वे इसको नहीं समझ सकते हैं, कि हमारी आयु प्रतिदिन क्षीण होती जाती है. यहां 'क्षीण' शब्द देनेका तात्पर्य यह है कि यदि कोई चाहे तो वह क्षीण न हो, तो वह अक्षय भी हो सकती है. क्योंकि 'आयुः'का भावार्थ कोई वर्ष वा मास बतानेका नहीं है किन्तु आयुका अर्थ प्राण विशेष बताना है अर्थात् इसकी इतनी आयु है, जिसे कहनेका भाव यह है कि इसको इतने 'प्राण' मिले हैं. पूर्वमें यों भी कह आये हैं, कि ''शतायुर्वै पुरुषः'' पुरुषकी आयु शत वर्षकी है इसी प्रकार 'मृत्यु' भी सर्वत्र कहे हैं तथा उनके प्रतीकार भी बताये हैं. आयु क्षीण होती है एवं प्रतिदिन क्षय हो रही है. यदि मनुष्यको यह विषय ध्यानमें आ जाये कि मेरी आयु दिन-प्रतिदिन क्षय होती जा रही है, इसको मैं अक्षय बनानेकेलिये भगवान्के चरणोंका आश्रय करूं ऐसा विचार हो जाये, तो मनुष्य पश्चाताप करनेसे बच जाये, किन्तु वैसा होता नहीं, कारण कि अज्ञान है. अज्ञान होनेके १.नरत्व, २.मूढत्व, ३.कुटुम्बित्व ये तीन कारण हैं. इन तीनोंसे ज्ञान नहीं होता है. नरत्व-मनुष्य स्वभाव, वैसा है जो उस ओर रुचि करने नहीं देता है, २.मूढत्व मूर्खताके कारण शास्त्र ज्ञान न होनेसे, अज्ञान नहीं मिटता है. ३.कुटुम्बित्व इससे स्त्री, पुत्र, धन आदिमें सङ्ग होनेसे भी अज्ञान नहीं मिटता है ।।३७।।

जैसे किसी समय अज्ञान भी सुखकर हो जाता है, वैसे ही वे (अज्ञानके तीन कारण नरत्व आदि) भी सुख देनेवाले होते हैं, वैराग्यके अभावमें उनसे लोकके सुख भोगे जाते हैं, इस प्रकार शंका हो तो उसका निवारण करते हैं:

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम्।

यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ।।३८।।

जैसे दरिद्री, कृपण और अजितेन्द्रिय कुटुम्बी पुरुष, संसारके दुःखोंको भोगता है, वैसे ही उथले जलमें रहनेवाले जन्तु शरद्के सूर्यके तापको सहन करते हैं।।३८।।

अज्ञान सुखदायी तब हो सकता है जब काल अथवा कर्म, प्राणीको दुःख न दे सकें, वे तो अज्ञानदशामें भी दुःख देते ही हैं, जैसे कि उथले जलमें रहनेवाले अज्ञानी जन्तुओंको शरद् सूर्य तथा जलाशयके बीचमें अन्तराय डालनेवाले मेघोंको दूरकर जलको तप्तकर शुष्क करनेवाले सूर्य द्वारा उनको दुःखी करती हैं.

जहां चार दोष (१.अन्तःकरण २.इन्द्रिय ३.शरीर ४.विषय) नहीं है वहां दुःख नहीं होते हैं. जैसे वर्षाऋतुमें वर्णन है कि व्रज निर्दोष होनेसे वहां किसी प्रकारका पाषण्ड धर्म नहीं है, जिससे दुःख हो. यहां भी दृष्टान्तसे इसको समझाते हैं कि यद्यपि ये अन्तःकरण आदि चार स्वयं अथवा दूसरोंसे मिलकर प्राणियोंका पोषण करनेवाले तथा सुखदाता हैं, तो भी वे सब स्वाभाविक दोषवाले हैं. जिन दोषोंमेंसे दरिद्रता सर्व विषयोंका नाश करनेवाली तथा बहिर्मुखोंको दुःख देनेवाली है, समपन(कंजूसी) अन्तःकरणका लोभरूप दोष है, यदि गरीब होते हुए भी लोभी नहीं हैं, तो वह दुःखको प्राप्त नहीं होता है. यदि मनुष्य एकाकी हो तो भी हानि नहीं, किन्तु कुटुम्बवाला है, यह देहदोष है. कुटुम्बी होकर यदि जितेन्द्रिय बन जाये तो भी कोई चिन्ता न रहे, किन्तु इन्द्रियोंको जीता नहीं है. अतः अज्ञान होते भी काल-कर्मवश दुःख भोगना ही पडता है, सुखप्राप्ति नहीं होती है।।३८।।

इस प्रकार शरद् ऋतुके किये हुए गुण सहित तीन दोषोंका वर्णनकर, अब एकादश ११ श्लोकोंसे शरद्के निर्दोष गुणोंका वर्णन करते हैं:

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहम्ममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ।।३९।।

जैसे धीर पुरुष धीरे - धीरे, अनात्मरूप शरीर आदि पदार्थोंमेंसे अहन्ता एवं ममताका त्याग करते हैं, वैसे ही स्थलों(भूमि)ने कीचको तथा लताओंने कच्चेपनका त्याग किया।।३९।।

धीरे-धीरे अर्थात् क्रमके अनुसार, ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों भूमिने कीचको छोड़ा (भूमि सूखी होने लगी) जिससे, यह जताया है कि

तामसोंने अपने दोषोंका त्याग किया. बेल और झाड़ियोंने अपना कच्चापन छोड़ दिया, मूल श्लोकमें 'च' (और) कहनेका तात्पर्य यह है, कि सात्त्विक वृक्षोंने भी कच्चेपनको छोड़ा. जैसे वर्षा ऋतुके प्रकरणमें, दृष्टान्त देकर समझाया है वैसे ही यहां भी दृष्टान्त देकर समझाते हैं.

जैसे भूमिमें कीच, वैसे ही मनुष्यमें ममता है, जैसे लता वृक्षादिमें कच्चापन है वैसे ही मनुष्यमें अहन्ता है. इन दोनों (अहन्ता तथा ममता)के छोड़नेमें शास्त्र कारण होते हैं किन्तु धैर्यके अभावसे तथा स्वाभाविक दोषोंसे पूर्ण मनुष्य, शास्त्रोंमें कहे हुए ज्ञान आदि साधनोंको नहीं मानते हैं, अतः धैर्यको यहां अहन्ता-ममताके त्यागका कारण कहा गया है. लोकमें देखा जाता है कि महान् पुरुषोंको केवल ममता होती है. अन्योंको अहन्ता तथा ममता दोनों होती है. इसलिये अहन्ता-ममताका अभेद बतानेकेलिये दोनों (अहन्ता तथा ममता) एक ही है. श्लोकमें कहे हुए 'शरीरादिषु' में जो 'आदि' शब्द दिया है जिससे इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण कहा है उसका भावार्थ अहन्ता त्याग ही जाना जाता है, तो फिर उसके साथ ममता क्यों जोड़ी जाती है इस प्रकारकी शङ्का मिटानेकेलिये ही उपर्युक्त विवेचन (दोनों एक ही हैं) आचार्यश्रीने किया है.

१.कोई अहन्ता तथा ममताका स्वरूप इस प्रकार कहते हैं. आत्माके साथ तादात्म्य सम्बन्ध (आत्मवत्-आत्माकी तरह हो जाना) अहन्ता है और उस आत्मासे केवल सम्बन्ध ममता है, अतः अहन्ताका त्याग नहीं हो सकता है (न करना चाहिये) केवल ममताका त्याग हो सकता है और वह करना भी चाहिये.

२.ब्रह्मवाद तथा नैयायिक आदि सिद्धान्तमें अहङ्कार (अहंभाव) उत्पन्न करनेवाली अहन्ता नहीं है, किन्तु शरीर आदिको आत्मा समझना और उसी प्रकार कर्त्तव्य करना यह अहन्ता है. यही शुद्ध वैदिक सिद्धान्तसम्मत मत है.

३.देह आदिमें आत्माका जो अध्यास (एक पदार्थको दूसरा समझना अध्यास है, जैसे देहको आत्मा समझना यह देहमें आत्माका अध्यास कहा जाता है) किया जाता है वह अहन्ता है.

४.आत्माके साथ तादात्म्य (एकीभाव) अहन्ता है यों भी कोई मानते हैं. (यह ऊपर बताया है)

यह अहन्ता सर्वथा त्याज्य है, ँगौण पक्षवाली अहन्ता भी नहीं करनी चाहिये. केवल तभी ममताका त्याग नहीं करना चाहिये जब वह ममता

भगवान्की सिद्धिकेलिये हो, तब वह 'ममता' लीलाकी सिद्धिमें करण (साधन) होती है अतः त्यागके योग्य नहीं है. इसीलिये ही श्लोकमें 'धीराः' पद देकर बताया है कि धीर पुरुष इनका त्याग करते हैं किन्तु भक्त नहीं करते हैं.

श्लोकमें दिये हुए (आदि) शब्दसे स्त्री पुत्र आदिमें अहन्ता होती है, यों कितनेक कहते हैं. वेदमें कहे हुए सिद्धान्तके अनुसार तो, स्त्री और पुत्रमें अहन्ता ही होती है, जैसे कि कहा है ''आत्मा वै पुत्र नामासि'' ''स पतिः पत्नी चाभवताम्'') 'तू स्वयं पुत्र रूप है' 'वह पति और पत्नी दो रूप हुए, अर्थात् पत्नी पतिका आधा शरीर है. त्याग किये हुए अंशको फिर ग्रहण नहीं करनेकेलिये धीरे-धीरे त्याग करते हैं कहा है, और त्यागमें कारण बताते हैं कि वे आत्मा न होनेसे अपनेसे भिन्न हैं इसलिये त्याग योग्य है ।।३९।।

१.शरीरको आत्मा समझना यह गौणी बुद्धि है, निश्चित न होकर थोड़े समयकेलिये होनेसे ऐसी बुद्धिको गौणी कहते हैं.

इस प्रकार बाहरके दोषोंका परिहारकर अब इस श्लोकमें भीतरके दोषोंके निवारण करनेकेलिए 'समुद्र'का निरूपण करते हैं

निश्चलाम्बुरभूत् तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ।।४०।।

जैसे अन्तःकरणके उपराम(विषयोंसे वैराग्य) पाते ही मुनि, वेदसे निवृत्त हो जाता है, वैसे ही शरद् आनेपर समुद्र स्थिर जलवाला हो शान्त हो गया।।४०।।

पृथ्वीसे जल उत्तम है, जलमें भी समुद्र उत्तम है, उसमें चञ्चलता दोष है, समुद्रके जलमें रजका (पृथ्वीकी मिट्टी व कूड़ा) मेल स्वभावसे ही नहीं है, गर्जनाकी ध्वनिरूप दोष जलके चलनेसे उत्पन्न होता है. ये दोनों दोष (चञ्चलता तथा ध्वनि) राजस हैं, तमोगुणका दोष पृथ्वीमें है, इसमें नहीं है. शरद्के आनेसे, वे दोनों दोष नष्ट हो गये जिससे समुद्र स्थिर जलवाला बनकर, शान्त हो गया. वर्षाके समान, यहां भी दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि, जब अन्तःकरण लय तथा विक्षेप रहित होकर शान्त हो जाता है, तब मनन करनेवाले 'मुनि'को वेदके अर्थका अनुसन्धान नहीं करना पड़ता है वा नहीं रहता है. कारण कि, इस मुनिने मनन, निदिध्यासादि साधन पूरे कर लिये हैं. आगम(वेद) शब्द है और चञ्चलताका अभाव यह उपरति है. तात्पर्य यह है, कि जैसे मुनिको, वेद ध्वनि वा उनके अर्थके अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता न रहनेसे, शान्ति प्राप्त होती

है, वैसे ही शरद्में समुद्र भी चञ्चलता व ध्वनि बन्द हो जानेसे शान्त हो जाता है. पृथ्वीके तामस दोष और जलके राजस दोषोंके ३९वें तथा ४०वें श्लोकोंमें दूर करनेका वर्णन किया. सात्त्विक दोष तो होते नहीं हैं ।।४०।।

अब इस श्लोकमें जलके भिन्न – भिन्न भेदोंका वर्णन करते हैं:

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षुका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवद् ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ।।४१।।

जैसे योगीजन प्राणोंके द्वारा निकल जाते (स्रवित) हुए ज्ञानको, उन (प्राणों)का नियमन (निरोध)कर रोक रखते हैं, वैसे ही किसान भी बह जाते हुए जलको दृढ मेंडोंसे पकड रखते हैं और समय पर क्यारोंमें पुनः भर देते हैं।।४१।।

खेतीमें किसान अन्नके उत्पादनकेलिये पृथक्–पृथक् क्यारे बनाते हैं, जिनमें धान बोते हैं, धानकेलिये पानी चाहिये. वर्षा ऋतुमें वे क्यारे भर जाते हैं, किन्तु शरद् आते ही वह पानी सूख जाता है वर्षा भी निश्चितरूपसे पड़ती नहीं, ऐसी सूरतमें यदि पानी न मिले तो खेती नष्ट हो जाये, अतः किसान लोग प्रथम ही सावधान होकर पहाड़ नदी आदि जहांसे भी पानी निकल जानेका मार्ग होता है उस मार्गपर दृढ़ बान्ध बनाकर पानीको रोक रखते हैं जब भी आवश्यकता होती है तब खेतीकेलिये क्यारोंमें पानी ले लेते हैं, जिससे, खेती नाशसे बच जाती है धान भी पुष्कल उत्पन्न होता है. इसी प्रकार योगी जन भी, प्राण वायु तथा इन्द्रियों द्वारा निकलते हुए ज्ञानको रोकनेकेलिये योगके साधनरूप बान्धोंको बनाते हैं अर्थात् योगके साधन करते हैं.

भगवान्की ज्ञान और क्रिया दो शक्तियां हैं उनके साधन, प्राण और इन्द्रियां हैं. यदि वे दोनों शक्तियां प्राण तथा इन्द्रिय सहित निकल जावें तो उनके अभावके कारण, भगवान् भी वहां न रहेंगे और इन्द्रियां विषयोंमें आसक्त हुईं तो ज्ञान नष्ट हुआ. ज्ञान नष्ट न हो, इन्द्रियां विषयासक्त न हों, तदर्थ (ज्ञानकी रक्षा केलिये इन्द्रियोंको सन्मार्गपर चलानेकेलिये) योग शास्त्र प्रवृत्त हुआ है ।।४१।।

ऊर्ध्वेन्द्रियैस्तु विक्षेपो ज्ञानस्याधो विनाशनम् ।
निरोधे पुञ्जभावेन स्वकार्यं साधयेद् ध्रुवम् ।।का.

ऊर्ध्व इन्द्रियोंसे (जिन इन्द्रियोंका निरोध नहीं हुआ है उनको ऊर्ध्व इन्द्रियां कहते हैं) ज्ञान वह जाता है (बाहर निकल जाता है) और नीचेसे जाते हुए, यों नष्ट हो जाता है जैसे छिद्रवाले घडेसे पानी बहकर नष्ट हो जाता है, अतः

निरोधसे उनका संयमकर, योगीको अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए.

योगीजन प्राण तथा इन्द्रियोंका निरोधकर बहते हुए ज्ञानको रोक लेते हैं. इस (ज्ञानको रोकने)में योगके जो मार्ग हैं वे दृढ़ बान्ध हैं. मूल श्लोकमें 'केदारेभ्यः' यह पद चौथी विभक्तिका है जिसका तात्पर्य है पानीको रोकनेका कारण ये क्यारे हैं अर्थात् क्यारोंकेलिये पानी रोका जाता है. मूल श्लोकमें 'तु' शब्द इसलिये दिया है कि केवल पानी रोक रखनेसे भी सिद्धि नहीं होती है उसकी सदैव देख भाल करनी ही चाहिये, जैसे योगीको साधन दशामें योग नित्य करना पड़ता है. आसन, प्राणायाम आदि योगके अङ्ग जब स्थिर हो जाते हैं, तब फिर, ज्ञान निकल नहीं सकता है. योग, शरद् ऋतुमें सिद्ध होता है क्योंकि शरद् ऋतु, महाभूत आदिकी शुद्धि कर देती है, उनकी शुद्धि होनेपर ही, योगकी क्रिया, की जा सकती है और तब वह क्रिया योगको सिद्ध करनेमें समर्थ होती है ।।४१।।

इस प्रकार जलकी आधिभौतिक तथा [१]आध्यात्मिक शुद्धि कहकर अब इस श्लोकमें, आधिदैविक प्रकारसे शुद्धि कहते हैं :

शरदर्काशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत्।
देहाभिमानजं तापं मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ।।४२।।

जैसे मुकुन्द भगवान्ने व्रजकी स्त्रियोंका देहाभिमानसे उत्पन्न दुःख (ताप) हरण कर लिया, वैसे ही चन्द्रमाने शरद्के सूर्यकी किरणोंसे उद्भूतभूतोंका ताप नाश किया।।४२।

जैसे शरद्का सूर्य तीव्र तापवाला है वैसी ही उग्र तापवाली उसकी किरणें भी हैं. भूत अनेक हैं, तापसे उत्पन्न रोग भी अनेक हैं, उन भूतोंके रोगों (तापों)को नाश किया यह बतानेकेलिये मूल श्लोकमें 'ताप' शब्द बहुवचन दिया गया है. ताप हरण करनेवाला 'चन्द्र' क्यों हुआ ? इस शङ्काकी निवृत्ति करते हुए कहते हैं कि 'चन्द्रमा' जलका अधिपति है तथा जल प्रकृतिवाला है और भूत जलात्मक है अतः अधिपति होनेके नाते उनका ताप मिटाना चन्द्रमाका यह कार्य योग्य ही है. चन्द्रमाको मूल श्लोकमें 'उडुप' नाम इसलिये दिया है कि वह 'उडु' (नक्षत्रोंको) 'प' (पालनेवाला) है. इससे चन्द्रमा नक्षत्रों द्वारा भी तापको हरण करनेवाला है. चन्द्रमा स्वयं तापको हरण करे अथवा नक्षत्रों द्वारा ताप मिटावे इन दोनों प्रकारोंमें शरद् कारणरूप है. अब पूर्ववत् दृष्टान्त देकर समझाते हैं जैसे चन्द्रमाने आधिभौतिक तापको मिटाया, वैसे (ही) भगवान्ने आध्यात्मिक तापका नाश

किया. वह आध्यात्मिक ताप देहाभिमानरूप है, जीव जब पुष्टिमार्गमें प्रवेश हुआ तब धीरे–धीरे उसका देहाभिमानसे उत्पन्न तापका हरण हुआ. पुष्टिमार्गमें प्रवेश होते ही देहादिका भगवान्‌में विनियोग होता है उससे (विनियोग होनेसे) सब ताप नाश हो जाते हैं किसी अंशसे भी ताप नहीं रहता है.

भगवान्‌ने व्रज सीमन्तनियोंका ताप हरण किया, कारण कि उस समय, वहां वे ही स्थित थीं. भगवान्‌ने उनका ताप चन्द्रमाकी भांति निवारण किया. चन्द्रमा रात्रिके समय, तापको मिटाता है, प्रभुने भी उनके स्त्रीपनका अभिमान, काम और उससे उत्पन्न ताप ये तीन दुःख रात्रिमें ही मिटाये, कारण कि, स्त्रियोंको ये रात्रिको ही होते हैं.

भगवान्‌ने उनके तापोंका नाश किया, जिससे उनका जाति धर्म (स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म स्त्रीत्व आदि) भी नाश हुआ. इसलिये भगवान्‌को उनके तापोंको नाश नहीं करने चाहिये थे? ऐसी शङ्काका निवारण 'मुकुन्द' नाम देकर किया है. भगवान् मोक्ष दाता है, जब मुक्ति दान करनेका समय होता है, तब पूर्व अवस्था (बन्धनमें जकड़ रखनेवाली कामादि अवस्था)को छोड़ना योग्य होता है, इसलिये जाति धर्मका त्याग योग्य ही है. यदि उनका त्याग न करें, तो शरद्‌में उनकी मृत्यु हो जाती, भगवान्‌की उपस्थितिमें उनको मोक्ष न होता. किन्तु भगवान्‌ने उनका सर्वात्म भावसे अङ्गीकार किया था, इससे उनको तापाभाव हुआ. शरद् ऋतुका तो दर्शककी भांति इस लीलामें उपयोग है. पूर्व श्लोकमें क्यारोंका दृष्टान्त दिया, जिससे वायुकी शुद्धि कही, इस श्लोकमें सूर्य चन्द्रके निरूपणसे तेजकी भी शुद्धि बताई ।।४२।।

१. प्राणकी शुद्धि कहनेसे जलकी आध्यात्मिक शुद्धि कही है क्योंकि श्रुतिमें ''आपोमयः प्राणः'' कहा है कि प्राण जलमय है. २. 'शुद्धि' पदका तात्पर्य है अपने कार्यकरने की शक्ति. प्रकाश.

इस श्लोकमें आकाशकी शुद्धि कहकर, गुणोंका वर्णन करते हैं. शरद्‌के कारण, जिसमें निर्मल तारे हैं और मेघोंका अभाव है, वैसे आकाश शोभा पाने लगा.

खम् अशोभत निर्मेघं शरद्‌विमल–तारकम्।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ।।४३।।

वेदके अर्थके प्रकाश होनेसे, सत्त्व गुणवाला चित्त, जैसे शोभा पाता है

वैसे ही मेघ रहित शरद्के कारण निर्मल तारों गणवाला आकाश शोभा पाने लगा।।४३।।

मासाष्टकं तथाकाशे तमस्तापैः कृतं रजः।
मेधैरपोह्यते सम्यगतः शरदि निर्मलाः।।का.१।।
सर्वं नभो दिशश्चैव तारकाश्चन्द्र एव च।

आठ मास पर्यन्त (चार्तुमासके बिना) आकाशमें सूर्यके तापोंने रजरूपी तम किया उसको मेघ (वर्षा ऋतुमें) पूर्ण प्रकारसे मिटाते हैं, जिससे शरद् ऋतुमें, सम्पूर्ण आकाश, दिशाएं तारागण और चन्द्रमा भी निर्मल होते हैं।।१।।

शरद्ने आकर, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीन प्रकारके दोष आकाशके नाश किये. आकाशमें मेघोंका होना आधिभौतिक दोष था, शरद्ने उन (मेघों)को हटाकर, आकाशका आधिभौतिक दोष निवारण किया, आकाशमें रज, आध्यात्मिक दोष था, शरद्ने उस (रजको नष्टकर आकाशको निर्मल बनाके उसका आध्यात्मिक दोष दूर किया. तारागण गुण हैं उनसे आकाशका सुशोभित होना आधिदैविकी शरद् है, यह बतानेकेलिये दृष्टान्त देते हैं, चित्तके दो दोष, रजोगुण और तमोगुण हैं. वे दोनों ही, सतोगुणका जब चित्तसे सम्बन्ध होता है, तब चले जाते हैं, जिससे सतोगुण युक्त चित्तमें, वेदके अर्थका प्रकाश होता है उस प्रकाशसे वह (चित्त) शोभा पाता है. सर्व पदार्थोंका तत्त्वसे (वास्तविक प्रकारसे) ज्ञान होना ही गुण है. वे पदार्थ श्रुति द्वारा ही समझे जाते हैं. शुद्ध हुए अन्तःकरणमें, वेदकी भावनासे वे स्फुरित होते हैं. शुद्धि करनेवाली होनेस शरद्का यहां उपयोग है. जैसे आकाशमें मेघ न होनेसे आकाश स्वच्छ रहता है, वैसे ही चित्तमें सत्त्व आनेसे (रज तम जाते हैं) चित्त शुद्ध हो जाता है. जैसे आकाश निर्मल हो तो शोभा देता है वैसे ही 'चित्त' शब्द ब्रह्मसे निर्मल हो सुशोभित होता है. जैसे आकाशमें तारे चमकते हैं तो आकाश अलङ्कृत सा दिखता है वैसे ही चित्तको वेदोंके अर्थका ज्ञान तारोंके समान चमकता है तथा अलङ्कृत करता है.

इस वर्णनसे दूर करने योग्य दोषोंका (मेघ, रज तथा तम) तथा महाभूत आकाश, एवं भीतरके आकाश (चित्त)की शुद्धिका निरूपण किया ।।४३।।

पूर्व श्लोकमें कहे हुए, सत्त्व युक्त चित्तमें, भगवान्की शोभाका वर्णन करनेकेलिए, इस श्लोकमें, प्रथम आकाशमें हुई चन्द्रमाकी शोभा कहते हैं,

कारण कि मन महाभूतोंके अनन्तर ही आता है.

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ।।४४।।

जैसे यादवोंके पति श्रीकृष्ण, भूमिपर यादव मण्डलसे आवृत हो शोभा देते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण मण्डल सहित चन्द्र, तारामण्डलसे आवृत हो आकाशमें शोभता है।।४४।।

इस श्लोकमें दो प्रकारके [१]चन्द्रमाओंकी शोभाका वर्णन किया है. एककी शोभाका आकाशमें और एककी शोभाका पृथ्वीपर वर्णन करते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण बिम्बवाला पूर्णिमाका चन्द्र तारागणोंके साथ जैसे आकाशमें शोभता है वैसे ही पृथ्वीपर यादवोंसे आवृत्त श्रीकृष्णचन्द्र शोभते हैं. मूल श्लोकमें [२]'अखण्डमण्डल' शब्दसे निष्कलङ्क सम्पूर्ण भगवदीय चन्द्रका वर्णन किया है और 'शशी' शब्दसे कलङ्कवाला लौकिक चन्द्र कहा है. जैसे लौकिक चन्द्रमाको आकाशमें नक्षत्र सुशोभित करते हैं वैसे ही भगवदीय चन्द्रमाकेलिये स्वामिनीयोंके मन नक्षत्ररूप हैं अतः जब स्वामिनीयां उन अपने नक्षत्ररूप मनसे, भगवदीय चन्द्र (भगवान्के मुखचन्द्र)का दर्शन करती हैं, तब भगवान्का मन भी स्वामिनीयोंमें संलग्न होनेसे सुशोभित होता है अथवा आगे उनका प्राकट्य होगा, जैसे हृदयमें.

श्लोकमें 'व्योम्नि' पद दिया है जिसका आशय है कि यह 'लौकिक चन्द्र' आकाशमें शोभता है और 'अलौकिक चन्द्र'(श्रीकृष्ण) भक्तोंके हृदयाकाशमें प्रकट होकर शोभा देता है.

यद्यपि यदुपति सर्वत्र अन्य अवतारोंमें भी शोभा देता है तो भी यादवोंके चक्रसे आवृत अवतारी साक्षात् भगवान् तो यहां ही सुशोभित होते हैं ।।४४।।

१.एक चन्द्रमा जो आकाशमें स्थित है, दूसरा 'भगवदीयचन्द्र' (भगवान् ही चन्द्र, अथवा भगवन्मुखचन्द्र) पृथ्वीपर है.

२.यह भावार्थ प्रभुचरणोंकी 'टिप्पणी'से लिया है. अनुवादक)

इस श्लोकमें शरद् ऋतुके द्वितीय मासका कृत्य वर्णन करते हैं:

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम्।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ।।४५।।

जिस (शरद्)में पुष्पोंवाले वनकी समान उष्ण और शीत युक्त वायुसे

आलिंगनकर, मनुष्योंने तो अपना ताप मिटा दिया, किन्तु जिनका मन श्रीकृष्णने हर लिया है, वैसी गोपीजनोंका ताप उस वायुका चित्तसे स्पर्श न होनेसे नहीं मिटा।।४५।।

शरद् ऋतुके कारण, वनकी वायु, गरमी और ठंडी समान होनेसे मन्द-मन्द चलती थी, और पुष्पोंके सम्बन्धसे वह वायु सुगन्धि युक्त भी हो गई थी. इस प्रकार सर्व गुण युक्त वायुका आश्रयकर मनुष्योंने अपने ताप मिटा दिये. यह स्वाभाविक नहीं है, अतः दृष्टान्तरूपसे यह नहीं दिया है, किन्तु इससे वायुकी हीनता प्रकट करते हुए कहते हैं कि गोपीजनका ताप नहीं मिटा, कारण कि उनके चित्तको भगवान्ने हरण कर लिया था, अतः वह चित्त भगवान्के पास था, जिससे वायुके साथ तो चित्तका आलिङ्गन न हुआ किन्तु भगवान्ने भी उस (चित्त)का आलिङ्गन नहीं किया था, जिससे गोपीजनका ताप मिटा नहीं, चित्त स्थानपर होये तो आलिङ्गन हो सके यह हरण किया हुआ होनेसे, स्थानपर नहीं है, अतः भगवान्का भी आश्लेष न हो सका है, ताप मिटकर, सुख चित्तको होता है, वह चित्त, कृष्णके सम्बन्धवाले देहमें स्थित है. अतः गोपीजनकेलिये यह आध्यात्मिकी शरद् सुखदायी नहीं हुई है, आधिदैविकी शरद्का वर्णन आगे कहेंगे ।।४५।।

आध्यात्मिक शरदके प्रसंगमें उसका अन्य उपयोग कहते हैं:

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यःशरदाभवन्।
अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ।।४६।।

गायें हरिणीयां, पक्षिणीयां और स्त्रियां शरद्से पुष्पवाली (ऋतुमती) होती हैं तथा पति उनके पीछे लग जाते है तब जैसे ईश्वराराधन रूप क्रियाओंसे फल प्राप्त होता है वैसे ही वे भी फल प्राप्त कर लेती हैं।।४६।।

वर्षाके कारण, पृथ्वीमेंसे बीज उत्पन्न होते हैं, अतः इससे सिद्ध होता है, कि यह काल गर्भाधानका है, गायें, हरिणियां, चिड़ियां ये तामस भेदवाले जन्तुओंकी स्त्रियां हैं इनके अतिरिक्त स्त्रियां (मनुष्य जातिकी स्त्रियां) भी कही हैं, किन्तु इस बातको स्पष्ट समझानेकेलिये वे पृथक् कही हैं, तामस जातिकी स्त्रियां ही शरद्ऋतुमें पुष्पवती (गर्भ धारण योग्य) होती हैं जिसका अन्य कोई चिह्न नहीं है केवल इससे जाना जाता है कि नर उनके पीछे लगे रहते हैं जिससे निश्चय होता है कि शरद्ने इनमें प्रवेश किया है. मनुष्योंकी स्त्रियोंकी रज (पुष्प वा ऋतु) तो चिह्नवाली होनेसे प्रकट दिखाई देती है.

फल अवश्य होता है इसकेलिये दृष्टान्त देते हैं कि भगवत्सम्बन्धी क्रियाएं जैसे अभिलषित फलको देती ही हैं वैसे ही शरद् भी देती है, कारण कि, भगवान्के सम्बन्ध होनेसे शरद्में ये गुण प्रकट हुए हैं जैसे क्रियाके फल सिद्ध करनेमें भगवान् ईश हैं वैसे ही वहां 'पति' 'ईश' समझना चाहिये. फल अभिलषित हो वा सहज हो दृष्टान्त तो अभिलषित सिद्धिका है ।।४६।।

जंगमोंका वर्णनकर अब स्थावरोंका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

उदह्रष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद् विना ।
राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ।।४७।।

हे नृप ! जैसे चारोंके अतिरिक्त अन्य सब लोग राजासे (राजाके होनेसे) निर्भय होते हैं, वैसे ही सूर्यके उदय होनेपर कुमुदिनीके अतिरिक्त अन्य कमल प्रफुल्लित हो गए।।४७।।

सूर्यके उदय होते ही, कुमुदिनी(कुई, कमोदनी, रातमें खिलनेवाला एक प्रकारका कमल) के अतिरिक्त अन्य कमल प्रफुल्लित होकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, कुमुदिनी तो समयपर जब चन्द्र उदय होता है, तब खिलने लगती है. सात्त्विक ही सात्त्विकोंके पतिकी ओर स्वयं खिच जाते हैं, अन्य जो सात्त्विक नहीं हैं वे खिचते नहीं. यद्यपि सात्त्विक सुखदाता हैं, तो भी वह सुख, सात्त्विकोंके सिवाय अन्योंको नहीं मिलता है, कारण कि अन्योंका आनन्द कुत्सित है. राजा (चेतन)का दृष्टान्त इसीलिये दिया है कि स्थावरोंकी भांति चेतनोंमें भी यों होता है, जैसे कि राजाका उदय होते (राजाका सिंहासनपर विराज राज्यकी वागडोर हाथमें लेते) ही सब लोक निर्भय होनेसे प्रसन्न होते हैं, किन्तु चोर निर्भय न होनेके कारण, प्रसन्न नहीं होते हैं. श्लोकमें महाराजाको 'नृप' कहकर यह बताया है कि आपकी भी इसमें सहमति है. श्लोकमें 'लोक' शब्द देनेका भाव यह है, कि राजासे सब 'भुवन' निर्भय बनते हैं, न कि, केवल (वह स्थान) जहां उसका राज्य है वह निर्भय होता है, अतः राजाके कारण शरद्में कहीं भी चोरी नहीं होती है, जिससे सब भुवन निर्भय कहे हैं ।।४७।।

इस प्रकार शरद्से हुए लौकिक सर्व गुण आदिका वर्णनकर, अब इस श्लोकमें, जो वैदिक गुण हुए उनका वर्णन करते है:

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।
बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ।।४८।।

पके हुए धानसे समृद्ध भूमि, नगरों और गांवोंमें होनेवाले श्रौत और स्मार्त यज्ञादि तथा लौकिक महोत्सवोंसे तो शोभा देती ही थीं किन्तु हरिको दो कलाओंसे विशेष शोभित होने लगी।।४८।।

सात्त्विक नगर और राजस ग्राम, दोनोंमें, श्रौत (वैदिक) तथा स्मार्त यज्ञ आदि तथा लौकिक महोत्सव और कुल धर्म इत्यादि होनेवाले सर्व उत्सवोंसे भूमि सुशोभित होने लगी. पृथ्वीकी शोभा एक प्रकारसे नहीं हुई, किन्तु दोनों (आधिभौतिकी एवं आधिदैविकी) प्रकारसे होने लगी. चारों तरफ धान्य आदि पक जानेसे, आधिभौतिकी शोभा हुई तथा भार हरणकेलिये प्रकट हुए सङ्कर्षण और श्रीकृष्णसे आधिदैविकी शोभा हुई. इस प्रकार, केवल साधारण शोभा कहकर, अब विशेष शोभाका वर्णन करते हैं, कि यह भूमि भगवान्के चरणोंसे, उनके प्रभावोंसे तथा उनकी लीलाओंसे सम्बन्धवाली हुई, अतः विशेष सुशोभित होने लगी.

यह प्रसङ्ग भूमि का ही है और भगवान्का नाम यहां हरि कहकर यह बताया है, कि उस (भूमि)का ही दुःख हरण करनेकेलिये आप प्रकटे हैं, वह (दुःख हर्ता) पुरुषोत्तम ही हैं और भार हरण कार्य सङ्कर्षणने किया है वह (सङ्कर्षण) उन (पुरुषोत्तम)का कलारूप भी है अतः इस कलारूपसे भी भार हरण (दैत्योंका वध)कर, हरिने भूमिका दुःख दूर किया है.

श्लोकमें दिये हुए 'हरेः कलाभ्यां' पदसे शङ्का होती है, कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं यहां उनको 'कला' कैसे कहा है? इस शङ्काको मिटानेकेलिये आचार्यश्री कहते हैं, कि आपने अपने चित् और आनन्द कलाओं (अंशों)को प्रकटकर, भूमिके दुःखको हरण किया है अतः 'कलाभ्यां'[१] पद दिया है और भागवत (२।७।२६)के 'सितकृष्णकेशः' कहनेका भी यह भाव है. सत् कला (अंश) तो सिद्ध ही है (प्रकट ही है) ।।४८।।

१.योजनाकार लालूभट्टजी इसको विशेष स्पष्टकर लिखते हैं कि भगवान्की तीन कलाएं (सत् चित् तथा आनन्द) हैं, उनमेंसे एक 'सत्' कला तो सर्वदा प्रकट देखनेमें (अनुभवमें) आती ही है, शेष दो कलाएं 'चित्' और 'आनन्द' तिरोहित रहती हैं, वे दो कलाएं, भगवान् जब श्रीकृष्ण और बलराम स्वरूपसे लीलार्थ अब प्रकटे हैं, तो वे दो कलाएं भी, लीलार्थ उनके साथ पृथ्वीपर प्रकट हुई हैं; अतः उन कलाओंसे भूमि विशेष सुशोभित होने लगीं.)

शरद्के वर्णनका उपसंहार (समाप्ति) करते हुए इस श्लोकमें कहते हैं कि यह (शरद्) सर्वको सिद्ध कर देनेवाली है.

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ।।४९।।

जैसे बहुत वर्षोंसे जिन्होंने संयम कर, अपनेको सिद्ध बना लिया है, वे समय आनेपर अपनी देहों (देवादि)को प्राप्त करते हैं, वैसे ही वर्षाके कारण घरमें रुके हुए वैश्य, मुनि, राजा और स्नातक शरद्का समय होते ही बाहर निकल अपने अर्थोंको प्राप्त हुए।।४९।।

वैश्य, ब्राह्मण और क्षत्रियों में जो श्रेष्ठ (उद्यमी अपने कर्म करनेके उत्साही) थे वे अपने कामोंपर जाने लगे अर्थात् अपने अर्थ प्राप्त करनेका उद्यम करने लगे. 'अर्थ' शब्द तो लोकमें प्रसिद्ध ही है, वह अर्थ वैश्योंकेलिये 'धन' है, मुनियोंकेलिये वैदिक अर्थ (धर्म) है और राजा (क्षत्रियों)केलिये वह अर्थ स्मार्त (काम) है. इन तीन प्रकारके अर्थोंमें जो 'धन' अर्थ है वह तमोगुण प्रधान है, वैदिक अर्थ (धर्म) सतोगुणी है और स्मार्त अर्थ 'काम' रजोगुणी है. इस प्रकारके धनकी प्राप्ति जो घरमें बैठे रहते हैं उनको नहीं होती है अतः शरद् होते ही वे[१] (वैश्य और मुनि) राजाके उपकारका कार्य करने लगते हैं. स्नातकोंने (तीर्थ वासियोंने) भी अपने वाञ्छित धर्म, अर्थ और कामको पृथक्-पृथक् अथवा साथमें सिद्ध किया.

यहां भी पहलेकी भांति दृष्टान्त देते हैं बहुत वर्षोंसे संयमकर बैठे हुए सिद्धोंने समय आनेपर, फलको (प्रथम स्थित देहोंको) प्राप्त किया अर्थात् योग आदिसे बहुत समय तक इन्द्रिय, प्राण आदिका निरोध करनेसे सिद्ध हो उस सिद्धपनके फलका अनुभवकर, समय (प्रलय फल प्राप्तिका) आनेपर फिर उन देव देहोंको प्राप्त करते हैं. जब वे योगाभ्यास आदि करते हैं, तब वह काल साधक (फलको सिद्ध करनेवाला) काल, आधिभौतिक काल है, और यह काल, फल काल होनेसे आध्यात्मिक है. कालकी [२]प्रधानता स्थापन करनेकेलिये ही भगवान् पधारे हैं. इस प्रकार लीलाके साथ शरद्का वर्णन किया ।।४९।।

१.वैश्य व्यापारादि तथा गोपालन आदि अपने कर्तव्यसे राजाका उपकार करते हैं तब राजा प्रजाको सन्तुष्ट कर सकता है.२.मुनि लोग धर्म द्वारा देवताओंको प्रसन्नकर वर्षा आदि करवाते हैं तथा अधर्मके नाशसे रोगादिका नाश करते हैं जिससे प्रजा

सुखी हो राजाके गुण गान करती हैं. इस प्रकार दोनों राजापर उपकार करते हैं.

२.लेखकारका आशय प्रत्येक वस्तुमें जब उसका स्व(अपना) भाव(स्वरूप रस) प्रकट हो तब उसमेंसे रस प्राप्त होता है तब ही लीला रसजनक होती है. भगवान् रसको प्रादुर्भूत करनेकेलिये ही लीला, करते हैं. रसका प्रादुर्भाव काल करता है वह काल भगवान् ही स्थापना कर सकते हैं अतः भगवान् कालकी स्थापनाकेलिये प्रकटे हैं.

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके वैराग्य निरूपक अध्याय ६ (स्कन्धानुसार अध्याय १७/२०) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १८

वेणुगीत

अष्टादशे गोपिकानाम् आसक्तिर्वर्ण्यते स्फुटा।
वर्ण्यवर्णकभेदेन गोपानामपि सोच्यते ।।का.१।।
प्रवेशकूजने तासाम् उद्‌बोधाय निरूपिते।
तद्‌गुणेषु प्रसक्ता हि तदासक्ता भवन्ति हि ।।का.२।।

अठारहवें अध्यायमें गोपीजनकी आसक्ति प्रकट रूपसे वर्णनकी जाती है, वर्णनीय वस्तु तथा वर्णन करनेवालोंके भेदसे, गोपोंकी आसक्ति भी कही जाती है।।१।।

उनकी (गोपीजनकी) आसक्तिको जगानेकेलिए भगवान्‌का वृन्दावनमें प्रवेश तथा उनके वेणुनाद करनेका वर्णन किया गया है, जो भगवान्‌के गुणोंमें आसक्त हैं वे ही भगवान्‌में भी आसक्तिवाले होते हैं।।२।।

आसक्तिः प्रेमपूर्वेव प्रेमापि हरिणा कृतम्।
उद्‌बोधकं च हरिणा कृतं नान्येन केनचित् ।।का.३।।
आसक्त्या वर्णनं तस्माद् विद्यान्ते वर्ण्यते स्फुटम्।
कालाधिको हरिश्चात्र पुरुषोत्तम एव च ।।का.४।।
त्रयोदशविधा लीला तत उक्ता पृथक् पृथक् ।।

प्रेमके अनन्तर आसक्ति होती है, वह (प्रेम) हरिने ही कराया है, और उद्‌बोधन भी हरिने कराया है, हरिके सिवाय, कोई अन्य उद्‌बोधक नहीं है।।३।।

इस कारण पञ्च पर्वात्मक विद्याके वर्णनके अनन्तर आसक्तिसे उनका स्फुट वर्णन किया जाता है. यहां जिस हरिका वर्णन है, वह पुरुषोत्तम है, कारण कि कालसे अधिक है. अतः तेरह प्रकारकी लीला, पृथक्-पृथक् कही गई हैं।।

यद्यपि समग्र प्रमेय प्रकरणमें आसक्तिका ही वर्णन है, तो भी गोपीजनकी आसक्तिके स्पष्ट वर्णनको इस १८वें अध्यायमें ही प्रदर्शित किया गया है, अतः प्रकरण और अध्यायकी सामान्य वर्णन रूप संगति है, अर्थात् प्रकरणमें, आसक्तिका सामान्य वर्णन है और अध्यायमें विशेष वर्णन है.

शंका गोपीजनकी आसक्तिका स्पष्ट वर्णन तो है ही नहीं?

उत्तर इस अध्यायमें यह कथा है कि गोपीजनने दिनमें भगवान्‌के गुणोंको

गाते हुए, सारा दिन पूर्ण किया है, जिससे भगवान्के गुणोंमें गोपीजनकी आसक्ति का स्पष्ट वर्णन है, अतः आचार्यश्री, कारिकामें कहते हैं, कि ''भगवान्के गुणोंमें जो आसक्त हैं वे ही भगवान्में आसक्तिवाले हैं'' अर्थात् गोपीजन भगवान्के गुणोंमें आसक्त हैं अतः भगवान्में आसक्त हैं ही, यदि भगवान्में उनकी आसक्ति न होती, तो वे भगवान्के गुणोंका गान ही न करतीं, जिसमें आसक्ति होती है, उसके ही गुण गान किये जाते हैं. परोक्षमें उसके गुणगानके सिवाय, जीवन दुर्भर हो जाता है अथवा रहता ही नहीं है.

जो कि, वर्णनका विषय एक ही भगवान्का चरित्र है, तो भी, जैसे दिनका चरित्र और रात्रिका चरित्र पृथक्-पृथक् होनेसे, चरित्रके दो भेद हैं, वैसे ही चरित्रके कहनेवालोंके भी दो भेद हैं, दिनमें चरित्रोंका गान करनेवाली गोपीजन हैं और रात्रिमें चरित्रगान करनेवाले गोप हैं, अतः इस भेदके होनेसे गोपोंकी आसक्ति भी कही गई है. गोपोंका जो पांच अध्यायोंमें आसक्तिरूप निरोध प्रभुने किया है, वह उनका निरोध भी गोपीजनके कार्यकी सिद्धिकेलिए ही किया है.

शंका भगवान्ने वेणु कूजन क्यों किया? जब कि आसक्तिका उद्बोधन तो कोकिलकी कुहू ध्वनिसे भी हो सकता है ?

उत्तर भगवान्ने केवल, वेणु ध्वनिसे आसक्तिका उद्बोधन नहीं किया है, किन्तु सब कुछ जो भी लीलाकेलिए आवश्यक था, वह स्वयं भगवान्ने ही किया है जैसे कि आसक्ति तब होती है जब प्रेम हो इसलिए भगवान्ने प्रथम 'प्रमाण' प्रकरणकी लीलाओं द्वारा 'प्रेम' प्रकट किया, तदनन्तर आसक्त्यर्थ 'प्रमेय' प्रकरणकी लीलाएं की, उस आसक्तिको जगानेकेलिए 'वृन्दावन प्रवेश' और 'वेणु कूजन' किया. वृन्दावन प्रवेश और वेणु कूजनसे सिद्ध है कि भगवान्का इनपर (गोपीजनपर) प्रेम था, वृन्दावनमें आप अकेले नहीं पधारे हैं किन्तु गौ और गोपोंके साथ पधारे हैं. तात्पर्य यह है कि प्रेमसे अंगीकृतिके कारण लीलार्थ अपेक्षित सर्वसामग्री हरिने ही सिद्ध की है. कोकिल कूजनसे वा अन्यके वेणुनादसे, इस अलौकिक आसक्तिका जागरण नहीं हो सकता है, न केवल इतना (ही) किन्तु अन्य साधनसे भी वह नहीं हो सकता है, अतः श्रीहरिने ही उसका उद्बोधन करनेकेलिए यह लीला की है.

पुष्टिमार्गमें, प्रभुकी प्राप्तिका साधन प्रभु स्वयं हैं, अतः ''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'' इस श्रुतिके अनुसार प्रभु कृपा पूर्वक अंगीकारकर, जीवके

सर्वसाधन, आप सिद्ध करते हैं.

यद्यपि गोपीजन दिनको गोकुलमें अपने घरमें बैठी थीं और भगवान् वनमें जो-जो लीलाएं करते थे उन सर्व लीलाओंका गोपीजन भगवद्भावके उद्रेकसे अनुभव कर सकती थीं जिससे वे लीलाएं घरमें बैठे-बैठे गाया करती थीं, एवं गोप भी भगवान्की रात्रि लीलाओंका गान गोपीजनोंके समक्ष करते थे. यद्यपि रात्रि लीला रहस्य लीला होनेसे, शुकदेवजीने गोपोंकी गाई हुई लीलाओंका स्पष्ट वर्णन नहीं किया है तो भी, ''अन्ये तदनुरूपाणि'' इस श्लोकसे गोपोंने लीला गान किया है इसका संकेत मिलता है. यद्यपि गोप, बालक थे और बालकोंका स्वभाव है जो कुछ देखें वा सुनें उसको जहां तहां कह देते हैं किन्तु गोप, बालक होते हुए भी इस बातको समझते थे कि यह 'भगवच्चरित्र' हमारा सर्वस्व धन है, वह जिस किसीको देने योग्य नहीं है अतः इसके योग्य भगवदासक्त, निरुद्ध गोपीजनोंको ही योग्य समझ, उनके आगे वर्णन किया करते हैं. इससे सिद्ध है कि गोप भी गोपीजनोंकी भांति आसक्त चित्तवाले निरुद्ध भक्त थे, इसलिए भगवान् इनको अन्तरंग लीलामें ले गए हैं. वहां साक्षी रूपसे रहकर, लीलाओंका अनुभवकर, आनन्द मग्न हुए हैं, अर्थात् पूर्णानन्द प्राप्त किया है.

'कुसुमित वनराजि' श्लोकमें अन्य पदार्थ भी आसक्तिके बोधक कहे हैं, तो भी सर्वका वास्तविक उद्बोधक भगवान् ही हैं, क्योंकि इनका वर्णन करनेवाले, श्रीशुकदेवजी स्वयं भगवद्गुणोंमें आसक्त हैं.

यद्यपि ''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'' इस श्रुतिका अक्षरार्थ इतना ही है कि भगवान् जिस जीवको अंगीकार करते हैं उसको वे मिलते हैं, किन्तु गूढार्थ स्वारस्य यह है कि आसक्ति तक जीव पहुंचा हो, तो भी जब तक विद्या+१का (पञ्चपर्वा) दान हरि नहीं करते हैं, तब तक प्रभुके स्वरूपका तथा उनके गुण और लीलाओंका ज्ञान नहीं होता है.

भगवान्ने वेणुनाद द्वारा आसक्त गोपीजनमें अपनेलिए काम (मिलनेकी कामना)उत्पन्न किया, गोपीजन भी कामवश होनेसे भगवान्में अपनेलिए काम (मिलनेकी कामना)का उद्भव करणार्थ अपनी सखियोंके सन्मुख भगवान्के गुणोंका गान करना प्रारम्भ करने लगीं, किन्तु उनकी आसक्ति विद्या रहित थी, अतः प्रभु गुण गान करते ही स्मरके वेगसे चित्त विक्षिप्त हो गया जिससे गुणादिकाका गान न कर सकीं, तब स्वभक्त जन पक्षपाती पुष्टि, प्रभुने भक्तोंका

दुःख न सह सकनेके कारण शुक द्वारा ''बर्हापीडं'' श्लोकसे विद्याका दान उनको किया, तदनन्तर वे विद्या प्राप्तकर १३ श्लोकोंसे गुणगान करनेमें समर्थ हुईं.

प्रभुने गोपीजनको प्रथम नाद ब्रह्मरूप अमूर्त विद्याका अन्तःकरणमें अनुभव कराके, उस (अमूर्त) विद्याका जो फलरूप स्वरूप है, उसका भी अनुभव 'वेणुगीत'में नाद द्वारा अन्तःकरणमें ही कराया है, आगे रासोत्सवमें व्यापिवैकुण्ठकी मूर्तिमती विद्या, स्वरूपानन्दके अनुभवका दान करेगी यह प्रसंग 'फल' प्रकरणमें विशेष स्पष्ट होगा.

'विद्या' भी एक भगवत् शक्ति है, अतः श्रुति कहती है ''विद्यया अमृतम् अश्नुते'' विद्यासे ही अमृतका भोग होता है, अर्थात् इस भगवत् शक्तिरूप विद्याकी प्राप्ति विना भगवत् स्वरूपानन्द नहीं मिलती है. अतः यहां व्रजभक्तोंको भी विद्याका दान हुआ है. जब पञ्चपर्वा विद्या(१.वैराग्य, २.सांख्य, ३.योग, ४.तप और ५. भक्ति) प्राप्त हुई तब तत्क्षण गोपीजन भगवद् गुणगान करनेमें समर्थ हुईं यह गुण गान साधारण गुणगान नहीं हुआ है, किन्तु फलदान होनेका प्रारम्भ हुआ है, अर्थात् यह निश्चय हो गया, कि इस (गुणगान)से अविलम्ब निश्चित ही फलकी प्राप्ति होगी.

यह पञ्चपर्वा विद्या भी अलौकिक है, उसका दान श्रीगोपीजनको हुआ है, इस अलौकिक विद्याका स्वरूप निम्न प्रकारका है, १. वैराग्य भगवान्के सिवाय सर्व पदार्थ मात्रमें अनुरागका अभाव अर्थात् केवल भगवत्स्वरूपमें अनुराग– वैराग्य है. २. सांख्य परब्रह्मका स्वरूप रसमय है इस ज्ञानको सांख्य कहते हैं. ३.योग चित्त भगवान्में यों तन्मय हो जाए जैसे मनिकोंमें तागा लीन हो जाता है. ४. ताप भगवान्के वियोगसे उत्पन्न ताप क्लेशका अनुभव 'तप' है. ५.भक्ति चारों पुरुषार्थोंकी कामना को त्याग भगवान्में पूर्ण आसक्ति 'भक्ति' है.

यह पञ्चपर्वा विद्या पुष्टिमार्गीय है, जिसका दान गोप सीमन्तिनियोंको हुआ है. इस विद्याके पञ्चम् पर्व भगवदासक्तिरूप भक्तिका निरूपण इस अध्यायमें हुआ है.

भगवान्ने गीतामें कहा है कि ''भक्त्या मामभिजानाति'' जीव मैं जैसा हूं, जो हूं, जितना हूं, इसको पूर्ण रीतिसे, भक्ति द्वारा मुझे जान सकता है, अतः गोपीजनोंने विद्याके अन्तिम पर्व पुष्टिमार्गीय भक्ति द्वारा ''बर्हापीडं'' श्लोकमें वर्णित जिस स्वरूपका अनुभव किया उसका वर्णन ''अक्षण्वतां फलम् इदं''

श्लोकमें किया है, तदनन्तर गुण वर्णन प्रारम्भ हुआ है, इससे सिद्ध है कि गोपीजनका यह वर्णन आसक्ति पूर्वक किया हुआ है, अतः वह साधन रूप होते हुए भी फल रूप ही है. इसलिए कारिकामें आचार्यश्रीने कहा है कि ''विद्यान्ते वर्ण्यते स्फुटम्'' फलरूप होनेसे ही विद्याके अन्तमें इसका वर्णन हुआ है.

गोपीजनोंने ''अक्षण्वतां फलमिदं'' इस ७वें श्लोकसे ''गा गोपकैः'' इस १९वें श्लोक तक तेरह श्लोकोंसे भगवान्के गुणोंका वर्णन किया है. २०वें श्लोकमें श्रीशुकदेवजीने इस अध्यायको सम्पूर्ण किया है.

१३ श्लोकोंमें भगवान्के गुणोंका वर्णन इस आशयसे गोपीजनोंने किया है, कि जिस स्वरूपके गुणोंका हम वर्णन करती हैं, वह स्वरूप द्वादशांग पुरुष तथा द्वादशमासात्मक काल पुरुषसे अतीत अर्थात् उत्तम है. जिसके कहनेका भाव यह है, कि यह पुरुषोत्तम स्वरूप प्रभु तथा इनके गुण, लीला एवं स्वरूप सब कालातीत होनेसे नित्य हैं और यही 'इन्द्रियवालोंका परम फल' है।।१ -४।।

।। कारिका व्याख्या सम्पूर्ण।।

१७वें अध्यायके अन्तमें भगवान्की लीला सामग्री सिद्ध करनेवाली शरद् ऋतुका वर्णन हुआ है. अब इस १८वें अध्यायमें भगवान् लीलार्थ वृन्दावनमें प्रविष्ट हुए जिसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं:

श्रीशुकः उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे, कि इस प्रकारकी शरद् थी, जिससे(जिस वनका) जल स्वच्छ हो गया था और जिससे कमलोंकी सुगन्धिसे व्याप्त वायु लग रहा था, वैसे वृन्दावनमें, भगवान्ने गौ और गोपोंके साथ प्रवेश किया।।१।।

इस प्रकारकी शरद् ऋतुने निर्मल जल युक्त हुए वृन्दावनमें अच्युत (भगवान्)ने प्रवेश किया. इस अध्यायमें पहलेकी भांति ही आधिदैविकी [१]शक्तियोंके साथ की हुई लीला कहनी चाहिये. इस लीलामें लीलाका नायक श्रेष्ठ है अतः उनका उत्कर्ष बतानेकेलिये 'अच्युत'[२] शब्द दिया है, उस (लीला सामग्री)में भी गौ अनुभव करनेवाली है और गोप सेवक हैं, शक्तियोंके निर्भयत्व केलिये ये देव (गोप) साक्षी[३] हैं. रमण, जलमें और स्थलमें, होता है, अतः रमण

दो प्रकारका है. निर्भर रमणके समयमें वायुकी आवश्यकता होती है, जलकी क्रीड़ामें तो निर्मलता होती है और शीतलताका अभाव होता है. शरद् ऋतुके वर्णनसे ये दोनों (निर्मलता और शीतका अभाव) बता दिये हैं. जैसे कि श्लोकमें 'शरत्-स्वच्छ जलं' से स्पष्ट कहा है, कि शरद्ने जलको स्वच्छकर दिया है, जिससे यह बता दिया है, कि वैसे स्वच्छ जलमें क्रीड़ार्थ प्रवेश किया है. श्लोकमें विशेषकर 'वनं' कर्म नहीं दिया है इससे भी जलमें प्रवेशको कहा, समझा जाता है. वनमें प्रवेशके समय जो वायु चल रही थी उसका वर्णन करते हुए कहते हैं, कि वह वायु कमलोंकी सुगन्धिसे सुगन्धवाली एवं ठंडी तथा धीमी थी. जितनी क्रीड़ामें अपेक्षा थी उतनी ही सुगन्धि ठंडक तथा धीमीपन धारण की हुई वायु थी. श्लोकमें विशेष्य 'वन' शब्द क्यों नहीं कहा? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि यहां विशेष्य(वन)से भी विशेषण धर्मोंकी प्रधानता है अतः विशेष्य यहां नहीं कहा है, कारण कि, प्रधान विशेषणोंसे (वनके गुणोंसे) स्वतः विशेष्य(वन)का ज्ञान भी हो जाता है. 'नि' उपसर्ग देनेका यह भाव है कि भगवान्ने केवल आधिभौतिक (दृश्य) वनमें प्रवेश नहीं किया किन्तु आधदैविक[४] गुप्त वन (निकुञ्जों)में भी प्रवेश किया[५] ।।१।।

१.यहां 'श्री गोपीजनके साथ' स्पष्ट न कहकर शक्तियोंके साथ लीला करनेको कहा है, उसका कारण श्रीप्रभुचरण टिप्पणीजीमें कहते हैं, कि एक तो जिन अज्ञानियोंको श्रीगोपीजनके अलौकिक, नित्य तथा स्वाभाविक धर्मवाले स्वरूपका ज्ञान नहीं है और ये (गोपीजन) भी भगवान्के समान ही सर्व अलौकिक धर्म तथा स्वरूपवाली हैं, इसका ज्ञान नहीं है उससे भगवद् भोग्य श्रीगोपीजनके साथ हुई लीलाओंको गुप्त रखनेकेलिये 'शक्ति' शब्द दिया है.

२.जिसके स्वरूपकी कभी भी किसी प्रकार भी च्युति(नाश-कमती) नहीं होती है.

३.प्रभुचरण टिप्पणीमें 'साक्षी' शब्दका भाव बताते हैं कि, जैसे उपनिषद्में भगवान्को साक्षी कहा है, वैसे ही यहां (इस लीलामें) गोप भी साक्षी हैं, कारण कि, जैसे स्वार्थ अथवा स्वार्थ बिना फल भोगका दाता तथा अधिकार अनुसार उसमें प्रवृत्त करानेवाला, साक्षी कहा जाता है, वैसे ही यहां गोपोंमें ये लक्षण हैं तथा वे अन्तरङ्ग भक्त हैं अतः इनको (सेवक गोपोंको) साक्षी कहा गया है.

४.आधिदैविक शब्द 'परोक्षवाद' से निकुञ्ज प्रवेश बतानेकेलिये दिया है. योजना

५.जहां (निकुञ्जोंमें) देवता आकर अपना-अपना कार्य नेत्र तथा भृकुटीके विलासोंसे करते हैं. लेख)

प्रथम श्लोकमें प्रवेशका वर्णनकर अब इस श्लोकमें देवताके उद्‌बोधनका वर्णन करते हैं:

कुसुमित–वनराजि–शुष्मि–भृङ्ग–द्विजकुल–जुष्ट–सरः–सरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सह–पशु–पाल–बलश्चुकूज वेणुम् ।।२।।

फूले हुए वनकी पङ्‌क्तियोंसे उत्पन्न रस तथा गन्धके मदसे उन्मत हुए भ्रमर तथा पक्षियोंके समूहसे सेवित, तलाब, नदी और पर्वतवाले वनमें प्रवेशकर, गोप तथा बलदेवजीके साथ गौओंको चराते हुए मधुपति भगवान्‌ने वेणुका कूजन किया।।२।।

वसन्तके अधिपति सरस शृङ्गारात्माने [१]धर्मको (गोचारणरूप धर्मको) करते हुए देवताके [२]उद्‌बोधनके (जागृत करनेके)लिये क्रिया और [३]ज्ञानशक्तिके साथ हो वेणुका कूजन किया. भगवान्‌को 'मधुपति' इसलिये कहा है कि आप वसन्तके स्वामी होनेसे, जैसे वसन्तमें सर्व प्रकारकी रस सामग्री सिद्ध (स्थित) होती है वैसे ही भगवान्‌में भी सर्व रस सामग्री विद्यमान है अतः आप सरस शृङ्गारात्मा मधुपति हैं. जिससे उद्‌बुद्ध किये हुए देवताओंको रत होनेमें किसी प्रकार प्रतिबन्ध नहीं हुआ, वे (देवता) जागृत होते ही, रत (क्रीड़ारत) होने लगे. इस प्रकार भगवान्‌का (मधुपतित्व) सिद्धकर, अब रसको उद्‌दीप्त करनेवाले, जो विभावादि हैं उनका वर्णन करते हैं कि भ्रमर और पक्षी, वनकी पङ्‌क्तियोंको खिले हुए पुष्पोंवाली देखके तथा उनसे आते हुए रस एवं सुगन्धियुक्त वायुका सेवनकर मत्त बन गये और उनमत्त भ्रमर एवं अनेक जातिवाले पक्षियोंसे नदी, सरोवर तथा पर्वत सेवित हैं. इस प्रकारके समलङ्‌कृत वनमें प्रवेशकर, वहां रहनेवाले तीन प्रकारके [४]देवताओंको जगानेकेलिये केवल शृङ्गारकेलिये ही कूजन किया ।।२।।

१.श्रीविट्‌ठलेश प्रभुचरण 'धर्म' शब्दका भाव 'टिप्पणीजी'में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'धर्म' साक्षात् अथवा परम्परा भेदसे धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला होता है, जिस–जिस स्थानमें जैसी–जैसी लीला करनी योग्य होती है वहां जाकर वैसी लीलाएं की जाती हैं. किसी लौकिक कार्यके सिद्ध करनेके बिना, यों ही वनमें जाना लोकके विरुद्ध हैं, अर्थात् वनमें किसी कार्य सिद्ध करनेकेलिये ही जाना चाहिये, जिसे अपने गुप्त इच्छित कार्यकेलिये जाना हो उसका अन्योंको ज्ञान हो जाये (पता पड़ जाय) तो उससे स्वारस्य (सरसपना) निकल जावे

तो वह रस विरुद्ध है, अतः भगवान् वनमें जिस रहस्य लीलाकेलिये पधारे थे उसको तो गुप्त ही रखा जैसे उसका सरसपन बना रहे और गोचारणरूप धर्मको प्रकट दिखाया, जिससे पुरुषार्थ (अपने इच्छित कार्य)की भी सिद्धि की है, अतः वह लीला कार्य न लोक विरुद्ध हुआ तथा न रस विरुद्ध हुआ.

२.'उद्बोधन'का भावार्थ है, शृङ्गार रसको जगाना, शृङ्गारका अर्थ (भाव-आशय) है. 'प्रेम' 'रति' उसको (प्रेमको) जगानेकेलिये उद्बुद्ध प्रेम ही आसक्ति कही जाती है.

३.योजनाकार कहते हैं कि मधुपति, सदैव ही ''या सर्वज्ञः सर्वशक्तिः'' इस श्रुतिके अनुसार सदैव लीलार्थ ज्ञान शक्तिको साथमें रखते हैं, अतः अब भी क्रिया शक्तिरूप गोपोंको (अन्तरङ्ग कार्यकेलिये उनको) साथमें ले 'गोचारणरूप धर्म' भी करते हैं, और ज्ञान शक्तिरूप बलरामजी द्वारा लीलामें प्रतिबन्धक दैत्योंका वध एवं भक्त रक्षा करते हैं. (अन्तरङ्ग लीलामें आपको साथ नहीं लेते हैं कारण कि आपका (बलरामजीका) वहां अधिकार नहीं) लेख

४.'देवताओं' शब्दसे तलाव, सरोवर तथा पर्वतोंके समीप रहनेवाली व्रज सुन्दरियां समझनी चाहिये, अर्थात् व्रजसुन्दरियोंमें प्रेमको जगाकर उनकी आसक्ति दृढ़ की.)

इस प्रकार उद्बोधन कहकर यह बताया कि उन देवताओंसे एक प्रकारसे रमण हुआ जिससे, उस कूजनसे कामिनियोंमें काम उद्भव हुआ. वह देखकर व्रजसुन्दरियोंमें भी अभिलाषा जगी जिससे (कामवश होनेसे) वे व्रज सुन्दरियां भगवान्में अपनेलिए काम पैदा करणार्थ, अपने जैसी (समान शील और व्यसनवाली) सखियोंके आगे उनके गुणोंका वर्णन प्रारम्भ करने लगीं. जिसका वर्णन 'तद् व्रजस्त्रिय' इस निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षे कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्।।३।।

व्रजकी स्त्रियोंने कामको जगानेवाला वह वंशीका नाद पूर्ण रीतिसे सुना. उनमेंसे कितनी ही गोपीजन श्रीकृष्णके परोक्षमें अपनी सखियोंके आगे उसका वर्णन करने लगीं।।३।।

भगवान्ने वेणुनाद वनमें किया था और उस समय गोपीजन व्रजमें स्थित थीं वनमें हुआ प्रथम वेणु कूजन पश्चात् (नाद) व्रजमें स्थित गोपीजनने ही पूर्ण रीतिसे (पूर्ण) सुना, उसका कारण यह है, कि वह कूजन 'आधिदैविक' था. यदि वह आधिदैवक न होता तो, व्रज स्थित गोपीजन ही उसको नहीं सुन सकती थीं किन्तु अन्य भी सुनते. इस नादसे उद्दीपनविभाव होनेसे, जैसे सब देवोंको जगाया

वैसे कामको भी जागृत किया क्योंकि वह भी देव है. कामके जागृत होनेसे, कामके कारण कितनी ही (व्रज स्त्रियां) मूर्च्छित हो गईं वे तो अज्ञानावस्थामें पड़ी रहीं और कितनी ही जिनको मूर्च्छा न हुई, वे भगवान्‌की कृपासे (अन्तःस्थित भगवान्‌का) सङ्ग प्राप्त करनेके अनन्तर कृष्णके परोक्षमें वहां विद्यमान अपनी सखियोंके समक्ष भगवद्‌गुणगान करने लगीं ।।३।।

१.गोपियोंने ही सुना जिसका कारण यह है कि भगवान्‌ने स्वामिनी भाव स्थापनकर जिन व्रज भक्तोंका अङ्गीकार किया है, वे ही भगवान्‌की इच्छासे वेणुनादमें स्थित सुधा पानकर भगवदीय बने अतः उन्होंने ही सुना अन्योंने नहीं सुना, नाद आधिदैविक है अतः अन्य अधिकारी नहीं.

वे गोपीजन जो मूर्च्छित नहीं हुई थीं वे भी भगवान्‌में काम जगानेकेलिए सखियोंके आगे वर्णन करनेकी इच्छा करने लगीं, किन्तु कामके उद्‌बोधसे वर्णन करनेमें असमर्थ हुईं जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं:

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ।।४।।

हे नृप! गोपीजनने वर्णन करना आरम्भ किया, किन्तु भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करनेसे उत्पन्न कामके वेगसे व्याकुल हो गई, जिससे वर्णन नहीं कर सकीं।।४।।

गोपीजन, अपने अनुभव किये हुए भगवान्‌के स्वरूपका अथवा वेणु गीतका कार्यसे, कारणसे, फलसे और स्वरूपसे निरूपण करनेकेलिये प्रस्तुत हुईं, किन्तु वर्णन करनेकेलिये जो कृष्णकी लीलाओंका स्मरण करने लगीं, तो उस स्मरणसे स्मरका वेग ऐसा हुआ जिससे उनका मन विक्षिप्त हो गया, जिससे[१] वर्णन न कर सकीं. राजाको यहां 'नृप' सम्बोधन देकर यह सूचना की, कि आप धर्मनिष्ठ तथा जितेन्द्रिय हो ।।४।।

१.कुछ गोपीजन जो वेणु कूजनसे मूर्च्छित हो गई थीं शेष (जो मूर्च्छित होनेसे बची थीं वे वर्णन करने लगीं. परन्तु वर्णन प्रारम्भ करते हुए जो श्रीकृष्ण लीलाओंका स्मरण हुआ, तो वे भी चित्तके विक्षेपसे गुण-गान न कर सकीं किन्तु जब वह क्षोभ शान्त हुआ तब निम्न श्लोकोंसे चार प्रकारसे वेणुगीतका वर्णन करने लगीं. १.''वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं'' इस श्लोकमें कार्यसे वर्णन किया. २.''अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम'' इस श्लोकमें कारणसे वर्णन किया. ४.''गोप्यः किमाचरद् अयं कुशलं स्मः'' इस श्लोकमें स्वरूपसे वर्णन किया. ५.''गा गोपकैरनुवनं

नयतोरुदार वेणु स्वनैः'' इस श्लोकमें फलका वर्णन किया.

गोपीजन विक्षिप्त होनेसे जब वर्णन न कर सकीं तब शुकदेवजी स्वयं निम्न श्लोकसे वर्णन करने लगे:

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ।।५।।

शिरपर मोर पिच्छका मुकुट, कानोंमें कनेरके पुष्प, श्रीअंगपर सुवर्ण सम पीत पट और कण्ठमें वैजयन्ती माला धारण किये नट और वरके समान रूपवाले, अपने अधरामृतसे वेणुके छिद्रोंको पूर्ण करते हुए गीत कीर्ति(जिनकेकी कीर्तिका गान हो रहा है वैसे) भगवान्ने गोपोंके साथ अपने चरणोंके स्पर्शसे सुन्दर तथा रमण स्थल बने हुए वृन्दावनमें प्रवेश किया।।५।।

यहां वाक्यके अर्थका वर्णन करना है क्योंकि उससे रूप, वेणुनाद तथा क्रीड़ा इन तीनोंका वर्णन हो जाता है, केवल रूपके वर्णनसे तीनोंका वर्णन नहीं होगा, तीनोंका(रूप, वेणुनाद और लीलाका) परस्पर सम्बन्ध होनेके कारण वर्णनका यह विशेष प्रकार है, अब वाक्यार्थका प्रकार कहते हैं वैसे वपु(श्रीअङ्ग) को धारण करते हुए और वेणुके रन्ध्रोंको भरते हुए प्रभु वृन्दावनमें प्रविष्ट हुए. यह सम्बन्ध(वाक्यान्वय-वाक्यका सम्बन्ध) है इस वाक्यार्थसे स्वरूप, गुण और लीला तीनों क्रमसे कही.

जिनके श्रीअङ्गका मयूर पिच्छ ही शिरोभूषण है, और जिनका नृत्य भी मयूरका अनुकरण है. मयूर नृत्य तब करता है, जब उसमें रस जागृत होता है, इससे (मयूरके नृत्यका अनुकरण तथा मयूर पिच्छको शिरपर धारण करनेसे) यह बताया कि भगवान्में भी रस जागृत हुआ है, जिससे भगवान्के स्वरूपका स्मरण करते ही गोपीजनके चित्त आकुल व्याकुल हो गये और वे गुणगान न कर सकीं यह योग्य ही है. प्रभुका रूप (श्रीअङ्ग) दो प्रकारका है, एक नटके समान और दूसरा वरके समान, कारण कि, आप रस स्वरूप हैं. रस दो प्रकारका होता है, अतः आपका रूप भी दो प्रकारका है. रसके दो प्रकार बताते हैं १.एक रस 'केवल' होता है और दूसरा रस 'धर्म सहित' होता है. 'केवल' रस, नाट्यमें होता है उस रसमें भोग नहीं होता है, वहां नट मात्र इङ्गितोंसे रसके आनन्दका अनुभव

कराता है, क्योंकि, वहां उद्दीपन सामग्रीका अभाव रहता है. किन्तु 'धर्म सहित' रसमें, उद्दीपन करनेवाली सर्व भोग्य सामग्री सिद्ध होती है. अतः वहां भोग करता है, जिससे रसका आविर्भाव होता है, अर्थात् धर्म सहित रस प्राप्त होता है. अतः 'केवल' रसको 'विप्रयोग' शृङ्गार रस कहते हैं और 'धर्म सहित' रसको 'संयोग' शृङ्गार रस कहते हैं.

भगवान् वर भी हैं, नट भी हैं, अतः आपके श्रीअङ्गमें, दोनों रस सदैव स्थित हैं. वर, नूतन पदार्थका भोक्ता होता है, यद्यपि भगवान् गोपीजनके हृदयमें भी हैं, तो भी ज्ञानिओंके समान उनको इतनेसे ही सुखकी प्राप्ति नहीं हुई, अतः भगवान्ने उन (गोपीजन)को रस दान करनेकेलिये 'वपु'को धारण किया. शरीर धारण करनेका भावार्थ यह है, कि जैसे कोई मनुष्य किसीको, कोई पेय पदार्थ पिलाना चाहता है, तो प्रथम वह पेय किसी पात्रमें धरता है उसके द्वारा पीनेवालेको पिलाता है अन्यथा(अर्थात् पात्र बिना) वह पेय पदार्थ बह जाता है, इसी प्रकार भगवान् व्रजजनोंको रस पिलाना चाहते थे, अतः रसरूप आप अपने रसरूपको धरनेलिये श्रीअङ्गरूप पात्र बने, उसमें उस रसको धर गोपीजनोंको पिलाया, जिससे वह रस इधर-उधर बह नहीं सका. भगवान्ने रसको धरनेकेलिये श्रीअङ्गरूप पात्र बनाया, उसमें दोनों रस धरे उनको जगानेकेलिये आपने दोनों कानोंमें कनेरके आभूषण पहने, क्योंकि, कनेरके फूल शृङ्गार (रस)को जगानेवाले हैं. वैसे उच्छृङ्खल (स्वतन्त्र जगे हुए) रसको गुप्त रखना चाहिये, क्योंकि गुप्त रस ही रसको उत्पन्न करता है. अतः भगवान्ने रसको गुप्त रखनेकेलिये पीताम्बर धारण किया है, पीताम्बर होते हुए भी रसके जागृत होनेसे, यदि गोपीजन, उस वस्त्रकी परवाह न करें तो कहते हैं, कि वह पीताम्बर, कनकके समान चमकीले वर्णमाला व्यामोहक मायाका रूप था, जिससे गोपीजन उस पीताम्बरको भी जब न देख सकीं तो उससे वेष्टित उद्बुद रसको कैसे खोल सकेंगी.

भगवान्ने रसको गुप्त रखेनेकलिये वैसा केवल पीताम्बर (ही) धारण नहीं किया था किन्तु उससे भी विशेष आच्छादनकेलिये कीर्त्तिमती वनमाला तथा वैजयन्ती मालाको भी धारण किया था. 'वैजयन्ती' मालाके 'वै' और 'जयन्ती' दो पदोंसे, यह स्पष्ट होता है, कि जिसने इसको धारण किया, उसकी अवश्य जय होगी क्योंकि यह माला निश्चयसे जय करानेवाली है. इसी भांति दोनों रस, उन दोनों रसोंका उद्बोध, उनका आच्छादक और विक्षेपकरूप भगवान्के रूपमें

वर्णन किया है.

अब नाम लीलारूप वेणुनादका वर्णन करते हैं. अर्थात् भगवान्ने जो बंशी बजाकर लीला की है, वह 'नामलीला' है, उसका अब श्लोकके उत्तरार्ध 'रन्ध्रान् वेणोः'से वर्णन करते हैं. वेणुके छिद्र सात हैं, सुधा तीन प्रकारकी है, १.देव भोग्या, २.भगवद् भोग्या और ३.सर्वसे अभोग्या.(जिसका सब कोई भोग नहीं कर सकता है)

१.देवभोग्य सुधा वह है, जिसका भोग देव कर सकते हैं (यहां 'देव' शब्दसे स्वर्गमें रहनेवाले देव नहीं समझने चाहिये, किन्तु ''देवाः अत्र साक्षिणः'' इस आचार्यश्रीकी उक्तिके अनुसार जो लीलामें गोप, गौ आदि थे वे देव समझने चाहिये उन देवोंके भोग योग्य सुधाको 'देव भोग्य' सुधा कहा है.

२.'भगवद् भोग्या' सुधा वह है जिस अधर सुधाको भगवान् 'वेणुनाद' द्वारा भक्त हृदयमें (गोपीजन एवं वृन्दावनके नदी पुष्प आदि पदार्थोंमें) प्रवेश कराके पुनः आप (प्रभु) स्वयं उनके द्वारा पान करते हैं वह 'भगवद्भोग्या' सुधा है.

३.'सर्वाभोग्या' सुधा वह है जो द्रव पदार्थके समान सर्वत्र प्रसरण करती है, यह सुधा द्रवानन्दात्मक प्रभुका स्वरूप है इसका प्रवेश कर्ण द्वारा सीधा हृदयमें होकर सर्व इन्द्रियोंमें प्रसरता है.

इस त्रिविध सुधाको 'सुधा' इसलिये कहते हैं, कि वह प्रभुने अपने लोभात्मक अधरमें स्थापित की है. अतः यह सुधा सब सुधाओंसे उत्तम है, इस सर्वोत्कृष्ट सुधाका साक्षात् अनुभव उच्छिष्टसे (मुख द्वारा) नहीं होता है किन्तु कर्ण द्वारा पान होता है. वह सुधा कर्ण द्वारा हृदयमें पहुंचकर सर्व इन्द्रियादिमें फैलकर सबको भगवदीय बना देती है. वह प्रकट द्रवीभूत सुधा, ब्रह्मानन्दसे भी अधिक आनन्दरूप है तथा आनन्दकी सारभूत है. वह किसी प्रकार भी स्वतः साधनरूप नहीं होती है. अतः प्रभुने इसको अमूर्त होनेसे, नाद ब्रह्ममें मिलानेकेलिये नादको उत्पन्न करनेवाले वेणुके छिद्रोंमें भरा. प्रभुने वेणुमें भरा तो सही, किन्तु उस (वेणु)के स्पर्श किये बिना ही नादके साथ मिलकर सीधी भक्तोंके कर्ण द्वारा उनके हृदयमें प्रवेश करती है. इसके (प्रवेश होनेके) पश्चात् गोपीजन निष्काम हो, भगवद्गुणगान करनेमें समर्थ होती हैं. वर्णन करनेके समय, वह सुधा मुखमें आकर, मुखको भी भोग योग्य बना देती है. जब तक रसके पूरसे, वह अंश भीतर प्रवेश नहीं करती है, तब तक उस भोगकी साक्षात् योग्यता नहीं

होती है. इसलिये ही गोपीजनका यह गुण वर्णन है. इस प्रकार रसके प्रवेश होनेसे, निरोध सिद्ध होता है. इस कारणसे, गोप तथा भोग्य गोपीजनसे भिन्न अन्य सर्वमें यह रस अतिशय स्वल्प है. यह ही कारण है, कि जिससे निरोधका भक्तिके पश्चात्, निरूपण किया है. इस सृष्टिमें(लीला सृष्टिमें) उत्पन्न जीवोंको यहां तक ही इस प्रकारका उत्कृष्ट भोगप्राप्त होता है अतः यह भोगकी चरमावधि है, उसके पश्चात् मोक्ष और अपना प्राप्तिरूप, पहली जैसी स्थिति, कर देते हैं, जो यों न करें तो उस सृष्टिका प्राकट्य वृथा हो जाये.

लक्ष्मीकी भांति यह मुख्य रस भोग, तब प्राप्त होता है, जब ब्रह्मानन्द (आध्यात्मिक)का भाव उद्भव होवे और पश्चात् वह पुनः आधिदैविक होवे जब तक यह भाव प्राप्त नहीं होता है, तब तक, मुख्य रस भोगकी प्राप्ति नहीं होती है. लक्ष्मीके अंशोंको तो, (वह रस) क्रमशः प्राप्त होता है, इसलिये कहते हैं कि 'निरोध' महाफल है. अर्थात् निरोधसे जिस फलकी प्राप्ति होती है वह फल महान् है. अतः इस प्रकरणमें स्त्रियोंका वर्णन शुकदेवजीने अन्तमें किया है. इस लीलामें, प्रथम भगवान् भोक्ता बनते हैं. जब भगवान् भोग कर लेते हैं, तदनन्तर भगवान् भोग्य बनते हैं. गोपियां भोक्ता बनती हैं, जिससे शुकदेवजीने मुख्यरूपसे, स्त्रियोंका वर्णन किया है, इसीलिये ही 'अग्निकुमार' स्त्रीरूप हुए हैं. पुरुषोत्तमका कोई अन्य पुरुष भोग नहीं कर सकता है और न स्वयं अपना भोग कर सकते हैं. किन्तु स्वरूपको जानकर उसके पानमें महारसकी प्राप्ति होती है, इस कारणसे ही, भगवान्ने ज्ञानके उपदेशका अभिनिवेश किया है. यह उपदेश मुख्य फलकी प्राप्तिकेलिये अथवा दुःख दूर करनेकेलिये किया है. इसी वास्ते आगे आधिदैविकी स्त्री(कात्यायनी)की प्रार्थना करेंगे. अतः रूपसे वशकर, अधरामृतको पिलाकर, स्वच्छन्दता सिद्ध करते हैं.

श्लोकमें कहे हुए 'गोपवृन्दैः' पदसे भगवान्की स्वच्छन्दता बताई है. सर्व कार्यकर (सब लीला सामग्री आदिकी सिद्धिकर) गोपोंको अपने साथ लेके वृन्दा (स्त्री)के अरण्यमें प्रवेश किया.

जगत्में तो भक्तिकी स्थापना अभी की नहीं है तो कृतकृत्यता कैसे हुई? इस शङ्काको निवारण करनेकेलिये कहते हैं, कि भगवान्ने अपने भक्तिरूप चरणोंसे रमणकर, भक्तिकी स्थापना की है तथा गोपोंको साथ लेकर क्रीड़ा की, जिससे धर्मकी स्थापना की है, आपकी कीर्तिका गान हो रहा है जिससे बाकी बचे

हुए पुरुषार्थोंकी भी स्थापना की है.

'कृष्ण' पदके अर्थका विवरण यहां यह किया है, कि वह 'पुष्टिमार्ग' में कृष्ण हैं, अर्थात् जिसमें प्रकट पुरुष भाव है और गुप्त स्त्री भाव है ऐसा जो 'रस' स्वरूप परब्रह्म है वह 'कृष्ण' है जिसका भीतरी भाव यह है कि रस शास्त्रमें जो 'स्त्री भाव'को ही परमानन्द स्वरूप कहा है वह परमानन्द स्वरूप 'कृष्ण' हैं ।।५।।

इस श्लोकमें शुकदेवजी कहते हैं कि व्रजकी स्त्रियां वेणुरव(नाद) सुनकर उसका ही वर्णन करने लगीं, कारण कि अन्य सर्व पुरुषार्थ नादके आगे गौण हैं:

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेमिरे ।।६।।

हे राजन! सर्व जीवोंके मनको हरण करनेवाला वेणु गीत सुनकर, सब व्रजकी स्त्रियां उसका वर्णन करती हुई चारों ओर रमण करने लगीं।।६।।

सर्व पुरुषार्थोंमें यह श्रेष्ठ है, इस कारणसे, वेणु रवका वर्णन करनेकेलिये ही, उसको श्रवण किया, पश्चात् वर्णन करने लगीं. गोपीजन जिसका वर्णन करने लगीं, वह दूसरे श्लोकमें कहा हुआ वेणु रव है, प्रथम श्लोकमें कहे हुए, वेणुनाद और दूसरे श्लोकमें कहे हुए वेणु रवमें भेद है. पहला 'नाद' केवल (अधर सुधासे मिला हुआ नहीं था) और दूसरे श्लोकमें कहा हुआ 'रव' अधर सुधासे सम्मिलित था. 'रव' शब्दका भावार्थ यह है, कि 'र' अग्नि बीज होनेसे 'विरहाग्नि' प्रकट करता है, और 'व' अमृत बीज होनेसे विरहको शान्तकर आनन्दोत्पत्ति करता है. अतः प्रथम केवल नाद श्रवणसे उत्पन्न विरहाग्निसे उदय हुए कामके कारण मन विक्षिप्त हुआ, जिससे वर्णन न कर सकीं, अब सुधा मिश्रित रवने कर्ण द्वारा हृदयमें प्रवेशकर कामाग्नि शान्तकी, तब सचेत हो, इस (वेणु रव)को ही मुख्य समझ वर्णन करने लगीं. परीक्षितको हे राजन् ये सम्बोधनकर यह बताया, कि आप राजधर्म निष्ठ होनेसे, इस रसके भावको नहीं समझ सकते हो. किन्तु फिर भी, आप(राजा)को इस चरित्रके सुननेकी अभिलाषा इसलिये हुई है, कि यह 'वेणु रव' सर्व प्राणी मात्रके मनको अपनी तरफ खींचनेवाला है, अतः यह अपने प्रमेय बलसे, सबकी प्रवृत्ति कराता है. इसलिये गोपीजन भी, भली भांति श्रवणकर, उसमें सर्व प्रकार रमण करने लगीं. गोपीजन व्रजकी स्त्रियां हैं, अतः उनको दिनमें घरका कोई काम नहीं रहता है, कारण कि, उनके पति प्रातः गौ

चारणकेलिये चले जाते हैं, जिससे वे सब भी काम काजसे प्रातः ही निबट जाती हैं, फिर जब गोप, शामको घर लौटे, तब तक गोपीजनको कोई काम नहीं होता है, इस कारणसे, वे समस्त दिन वेणु रवका वर्णन करती हुई, आगे पीछे चारों ओरसे उसमें ही रमण करती थीं. दुःखरूप संसारको भूलकर उस परमानन्दमें विलास(शृङ्गार चेष्टा–हावभाव) करती रहती थीं ।।६।।

अब गोपीजन १३ श्लोकोंसे 'वेणु रव'का वर्णन करती हैं. उसका क्रमशः भाव कारिकाओं द्वारा समझाते हैं :

रस–द्वयार्थं द्वितयं वेणु–पूरणम् एकतः ।
स्वच्छन्द–पाद–गमने हेतुश्चापि तथापरः ।।का.१।।
चतुर्भिः पीठिकैवं स्यात् षड्भिर्वेणोस्तु वादनम् ।
द्वाभ्यां भक्तेः प्रतिष्ठा च दोषः स्याद् वर्णनेऽन्यथा ।।का.२।।
वैपरीत्यात् समाधानम् अन्यथा स्यात् तु दूषणम् ।।

सातवें श्लोकसे वर्णनका प्रारम्भ होता है. अतः पहले, दो श्लोकों (७–८)में संयोग तथा विप्रयोग रसका वर्णन किया है. पश्चात् एक श्लोक(९)में वेणुके पूरण(भरनेकी क्रिया)का वर्णन, तथा दूसरे एक (१०)में स्वच्छन्दतासे चरणोंके गमनका हेतु कहा है. इस प्रकार इन चार श्लोकोंसे पीठिका कही(वर्णनकी) पश्चात् छ (११से १६) श्लोकोंसे वेणु वादनसे जो कुछ नाम लीलाका आनन्द जिन–जिनको हुआ उनका वर्णन है. पीछे दो (१७,१८) श्लोकोंसे भक्तिकी स्थापनाका वर्णन है, यदि भक्तिकी स्थापना नहीं की जावे तो दोष हो. उस (दोष)का समाधान विपरीतता बताकर किया है नहीं तो दूषणकी प्राप्ति हो जाए।।२।।

इन कारिकाओंमे पहले यह बताया है कि किन–किन श्लोकोंमें किस–किस प्रकारकी लीला हुई है और अन्तमें भक्तिकी स्थापना दोष निवारणकेलिए की हुई है, कारण कि, जो कार्य लोकमें 'दूषण' देखनेमें आता है, वह यहां भक्तिमार्गमें भूषण है. यही भक्तिमार्गमें विशेषता है. भक्ति रसमें यह बल है कि जडको चेतन बना दे चेतनको जड बनादे जैसे वेणु रव श्रवण(पान)से चेतन नदियां जड हो गईं और जड चेतन हो गए. भगवान्के चरण भक्ति रूप हैं, उनका सम्बन्ध चरणोंसे हुआ, तो वे हीन जातिकी पुलिन्दियां भी भक्त बन गईं, जिससे अयोग्य होते हुए भी योग्य बन गईं. भक्त होनेके कारण उनकी उच्च कोटि हुई,

अतः उनके संसर्गसे जो दोष भगवान्‌में दिखता है वह भक्ति स्थापना करनेसे निवृत्त हो गया. भगवान्‌की लीला लोकसे विपरीत है, अतः भगवान्‌ने वनमें गोपोंके साथ, गौओंको लेकर, वंशी बजाते हुए वनमें जब अटन किया तब समस्त वन, वनस्थ सर्व पदार्थ शुद्ध होकर भक्ति रसवाले हो गए.

ये पुलिन्दियां भी गोवर्धन पर्वत, जो कि हरिदासोंमें श्रेष्ठ हैं उनके संगसे भगवच्चरण संगको प्राप्त हो उत्तम बनी हैं. तात्पर्य यह है कि भक्तिमार्ग(अनुग्रह मार्ग) सर्व मार्गोंसे उत्कृष्ट है, अतः इसमें लौकिक दृष्टिसे जो दोष दीखते हैं वे दोष नहीं हैं, कारण कि, भक्तिमें यह शक्ति है जो दोषोंको नष्टकर गुण प्रकट कर देती है. इसलिए भक्ति मार्गकी स्थापना हुई है.

गोपीजन जिस भगवद् स्वरूपादिके वर्णनार्थ प्रथम उद्यत हुई थीं, किन्तु काम वेगसे विक्षिप्त हो वर्णन न कर सकीं, जिससे वह वर्णन 'श्रीशुकदेवजी'ने 'बर्हापीडं' श्लोकमें कर दिया. अब गोपीजन व्याकुलता नष्ट होकर, सावधानी आनेसे, जो शुकदेवजीने उस ' बर्हापीडं ' श्लोकमें वर्णन किया था उसका क्रमशः चार श्लोकोंमें वर्णन करती हैं. उनमें प्रथम, स्वरूपसे रसात्मक भगवान्‌का वर्णन 'अक्षण्वतां फलमिदं' श्लोकमें करते हैं[१].

१. श्लोकमें 'इदं' पदसे सन्मुख उपस्थित और जो हृदयमें मनोरथसे भासमान हैं, वही स्वरूप 'फल' है.

गोप्यः ऊचुः

अक्षण्वतां फलम् इदं न परं विदामः सख्यः पशूननु निवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतम् अनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।७।।

गोपीजनने कहा कि, हे सखिओं ! वेणुनाद करते हुए तथा बंशी बजाते हुए एवं स्नेह भरे कटाक्ष चलाते हुए मित्रोंके द्वारा पशुओंको वनमें ले जानेवाले व्रजराजजीके पुत्रोंके मुखका सेवन तथा पान ही इन्द्रियवाले अथवा नेत्रवालोंका फल है किन्तु 'मोक्ष' फल नहीं है इस प्रकार हम जानती हैं।।७।।

'अक्षण्वतां' एकादश इन्द्रियवालोंका तथा नेत्रवालोंका यह जो गोपीजनके हृदयमें मनोरथरूपसे भासमान हो रहा है वह प्रभु स्वरूप ही फल है:

भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च ।।का.३।।
आश्लेषः सेवनं चापि स्पर्शश्चापि तथाविधः ।
अधरामृतपानं च भोगो रोमोद्‌गमस्तथा ।।का.४।।

तत्कूजितानां श्रवणम् आघ्राणं चापि सर्वतः।
तदन्तिकगतिर्नित्यम् एवं तद्भावनं सदा।।का.५।।
इदमेवेन्द्रियवतां फलं मोक्षोपि नान्यथा।
यथान्धकारे नियता स्थितिर्नाक्ष्णोः फलं भवेत्।।का.६।।
एवं मोक्षोपीन्द्रियादि–युक्तानां सर्वथा न हि।
बाधकानां परित्यागे साधकानां न तद् भवेत्।।का.७।।

नेत्र अथवा इन्द्रियधारियोंका वह स्वरूप ही फल है, क्योंकि इस स्वरूपसे वार्तालाप, दर्शन, आश्लेष, सेवा, स्पर्श, अधरामृतका पान, भोग पुलकता, भगवान्के किये हुए कूजनका श्रवण, श्री अंगकी सुगन्धि, नित्य प्रभुके निकट जाना, सदा इस प्रकारकी भावना, आदि होती है अतः यह स्वरूप ही इन्द्रियधारियोंका मोक्ष फल है अन्य प्रकारका जो 'मोक्ष' है वह फल नहीं है. जिस प्रकार अन्धकारमें स्थिति नेत्रोंका फल नहीं है, अर्थात् नेत्रोंका होना सफल तब होता है, जब प्रकाश हो जिसमें सर्व प्रकारकी कृतिकी जा सके अन्यथा (अन्धकार होना) निष्फलता है. इसी प्रकार इन्द्रियधारियोंकी इन्द्रियां तब फलवती होती हैं, जब वे इन्द्रियां रसमय इस वपुधारी स्वरूपसे सर्व प्रकारकी चेष्टाएं करती हैं अन्यथा नहीं, अतः इन्द्रियांवालोंका यह वपुधारी रसेश ही फल है. जिनको साधारण जन 'मोक्ष' कहते हैं, जिससे सर्व इन्द्रियां निरर्थक हो जाती हैं, वह 'मोक्ष' इन्द्रियवालोंकेलिए मोक्ष नहीं है. बाधकोंको परित्यागकर, साधकोंके प्राप्तिसे वैसा मोक्ष प्राप्त नहीं होता है. अतः मोक्ष फल नहीं है.

जिन इन्द्रियवालोंने भगवान्के सिवाय अन्य सर्वको बाधक(आनन्दमें रुकावट) समझ उनका त्याग किया है, वे तो इस रसेशकी प्राप्ति ही मोक्ष फल समझते हैं, कारण कि, उनकी इन्द्रियां अलौकिक होनेसे नित्य हैं और उनके रसमय प्रभुका वपु भी अलौकिक होनेसे नित्य है, अतः वे भक्त आनन्दमय वपुका अलौकिक इन्द्रियोंसे रस लेनेको ही मोक्ष फल समझते हैं उनकेलिए यही फल मोक्ष है, शेष, जो इस फलके अधिकारी नहीं हैं जिनका अन्तःकरण आदिका हरण हो गया है, वे उस 'अण्वीगति'(मोक्ष)को प्राप्त होते हैं और उसको फल समझते हैं.

गोपीजन कहती हैं कि हम इस फलसे उत्तम फल अन्य(मोक्ष) नहीं समझती हैं, ''आत्मलाभाद् न परं'' इस श्रुतिमें जब आत्मरूपके लाभको 'पर'

कहा गया है, तब आप कैसे कहती हो कि अन्य(आत्मलाभ) उत्तम नहीं है, इसके उत्तरमें गोपीजन श्लोकमें 'विदामः' पद कहकर कहती हैं, कि हम भी उपनिषद् रूपा हैं अतः इस श्रुतिके तत्वको हम ही जानती हैं. श्रुतियां अनुभवके विरुद्ध ऐसा कुछ भी नहीं कहेंगी जिसका अन्त अनुभवमें न आ सके, अर्थात् श्रुतियां वही कहेंगी जो अनुभवसे सिद्ध हो. यों कहनेका तात्पर्य यह है, कि जो इन्द्रिय रहित हैं, उनका फल मोक्ष है. जो इन्द्रियवाले हैं उनका फल 'यह' रस स्वरूप है. जो श्रुतिरूप गोपीजन यों कह रही हैं वे अपने इस सिद्धान्तकेलिये अन्य उपनिषद्रूप अपनी सखियोंसे सम्मति लेती हैं हे सखियों! इस सम्बोधनसे यह बताया कि, अन्य गोपीजन भी हमारे समान शील एवं व्यसनवाली हैं, अतः वे भी उपनिषद्रूपता ही हैं, अतः उनकी सम्पत्ति भी प्रमाण है. इस प्रकारका अनुभव विरल गोपीजनको ही होता है, शेष साधारण गोपीजनोंको जो अनुभव होता है वह कहते हैं कि नेत्रधारियोंका यह ही फल है. 'अक्षण्वतां' पदके दो अर्थ होते हैं एक 'इन्द्रियवाले' दूसरा 'नेत्रवाले' अतः जो जैसी अधिकारिणी थी उनको वैसा ही फल मिला. जो उत्तम अधिकारिणियां थीं, उन्होंने सर्व इन्द्रियोंसे उस स्वरूपका आनन्द प्राप्त किया, जो उत्तम नहीं थीं उन्होंने केवल नेत्रोंसे दर्शनका ही आनन्द लूटा. अतः दोनों प्रकारकी गोपीजनने इस स्वरूपको ही परम फल समझा.

जो भगवान् राम कृष्ण, मित्रोंके साथ गौओंके पीछे आते थे और साथ पशुओंको भी वनमें प्रवेश कराते थे उनके एक ही मुखारविन्दको जिन्होंने भली भांति पान किया है उन इन्द्रियधारी वा नेत्रधारियोंका यह ही फल है, 'वा' शब्द यह समझानेकेलिये दिया है कि सकल इन्द्रियोंको प्रभुमें जोड़ देनेसे केवल नेत्रोंसे दर्शन करना यह फल गौण है, अर्थात् जिन्होंने केवल नेत्रोंसे मुखारविन्दका ही दर्शनकर उसको ही परम फल समझा वह फल 'गौण' है. मुख्य फल सर्व इन्द्रियोंसे उस रसका अनुभव करना है. भगवान् अपने समान आयुवाले मित्र गोपोंके साथ उन गोपोंको भी वनमें प्रवेश कराते हैं जो इस रसको नहीं जानते हैं. अर्थात् जो पशु समान अज्ञ हैं, भगवान् यों इसलिये करते हैं कि, जो निर्गुण अवस्थावाले नहीं हैं उनकी सात्विक अवस्थामें स्थिति करानी योग्य है, नहीं तो वे अनधिकारी अन्तरङ्ग लीला देख भगवान् तथा गोपीजनमें दोषारोपण करते अतः उनको केवल वन(आधिभौतिक वन) तक ही प्रवेश कराया है. और निर्गुणावस्थावाले वयस्य गोपोंको आधिदैविक वन तक (निकुञ्जादिमें) ले गये हैं. भगवान्की लीलामें

काल निमित्त है, गोप तथा लीलाके आधार, जो भगवान्का प्राकट्य है वह ही निमित्त है, इसी कारणसे, समान अवस्थावाले गोप मित्र हैं. अतः भगवान् उनके द्वारा पशुओंको वनमें प्रवेश करवाते हैं अथवा जो गोप समान आयुवाले हैं उनके साथ भगवान् गोप तथा गौओंको वनमें प्रवेश कराते हैं, अथवा वयस्योंका भगवान्के साथ सदैव सहभाव है. भगवान् वयस्योंको सदैव साथमें इसलिये रखते हैं कि कदाचित् अन्य गोप कहें कि 'गौ दूर' चली गई है हम थक गये हैं तो उस कार्य करनेकेलिये वयस्योंको नियुक्त कर दें.

श्लोकमें मुखकेलिये 'वक्त्रं' एक वचन दिया है और यह मुख किसका है वहां 'व्रजेशसुतयोः' राम और कृष्ण दोनोंका एक मुख कहा है तथा 'राम'को भी व्रजेश(श्रीनन्दरायजी)का पुत्र कहा है, इसको स्पष्ट समझानेकेलिये कहते हैं कि, जिस मुखारविन्दको चक्षु द्वारा गोपीजनोंने अन्तःकरणमें प्रवेश कराया है वह मुखारविन्द भगवान्(कृष्ण)का ही है, अतः वह मुख फलरूप है, आविष्ट स्वरूप बलभद्रजीका 'मुख' स्पष्ट नहीं है, क्योंकि, वह भगवान्के मुखमें तिरोहित(छिपा हुआ) है अतः श्लोकमें 'मुख' एक वचन दिया है, जिससे दोनों स्वरूपोंका यही 'मुख' है यह उक्ति भी सत्य है, तथा 'राम' व्रजेशका पुत्र नहीं है तो भी यहां व्रजेश कहा है उसका कारण यह है कि उस समय भगवान् 'राम' स्वरूपमें आविष्ट थे. अतः रामको भी 'व्रजेश' कहना असत्य नहीं.

जो भक्त, केवल भगवान्के स्वरूपके रसाभिलाषी अनन्य उपासक हैं, वे तो भगवान्के मुखारविन्दके सिवाय अन्य मुखारविन्दके रसकी स्वप्नमें भी केवल भावना भी, नहीं करते हैं, तो वे भगवान्के मुखके सिवाय अन्य मुखके दर्शनको फलरूप कैसे मानेंगे? अतः यहां 'व्रजेशसुतयोः मुखं' एक वचन देकर यह स्पष्ट किया है कि यह 'मुख' भगवान् कृष्णका ही है जिसको गोपीजन 'फल'रूप मानते हैं.

भगवान्का श्रीमुख उस समय वेणुवादनमें रत था अर्थात् भगवान् उस समय बंशी बजा रहे थे अतः जो गीत रसके अभिज्ञ भक्त थे वे वेणुनादके श्रवणार्थ भगवान्के मुखारविन्दको देखते थे वेणुवादका श्रवणकर जिन्होंने उसका केवल श्रवणरूप सेवन किया और जिन्होंने पान किया अन्तःकरणमें प्रवेश किया उन दोनोंको पृथक्-पृथक् लाभ (फल) मिले.

श्रवण करनेवालोंको वह 'मनोहर' है वैसा ज्ञात हुआ, जिससे उन्होंने

केवल श्रवण ही किया. अन्योंने पानकर, उसको शिक्षाकेलिये अन्तःकरणमें धरा, कारण कि, उनकी भावना यह थी, कि हम भी इस नाद गानको सीखकर कभी भगवान्की भांति गान करेंगे.

कितनी ही गोपीजन कामके सम्बन्धसे भी भजन कर रहे हैं, वह पाक्षिक हैं, यह भजन श्लोकमें 'अनुरक्त कटाक्ष मोक्षम्' पदसे कहा है, अर्थात् भगवान्के जिस मुखारविन्दपर अनुराग युक्त प्रेमी भक्तोंके कटाक्षोंका पात होता है, वह मुख चक्षुवालोंका फल है. इस प्रकार इस श्लोकमें गोपीजनके निर्गुण तथा सगुण भेद कहे हैं. निर्गुण भक्त वे हैं, जो सर्व ११ इन्द्रियोंसे भगवद्स्वरूपानन्दका भोग ही फल मानते हैं, और सगुण भक्त वे हैं जो केवल नेत्र इन्द्रियसे श्रीमुखका सेवन, पान तथा उसपर (मुखारविन्दपर) कटाक्ष मोक्ष करते हैं ।।७।।

निम्न 'चूतप्रवाल' श्लोकमें केवल रस(विप्रयोग शृंगाररसात्मक) स्वरूपका वर्णन करते हैं:

चूत–प्रवाल–बर्ह–स्तबकोत्पलाब्ज–मालानुपृक्त–परिधान–विचित्र–वेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशु–पाल–गोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ।।८।।

आमकी कोंपल कानोंमें, मयूर पिच्छोंके गुच्छक मस्तकपर, कमलोंकी माला कण्ठमें धारण किये हुए और इनसे मिले हुए पीताम्बर आदि वस्त्रोंसे विचित्र वेशवाले राम–कृष्ण दोनों भ्राता कभी उत्तम नटके समान ग्वाल बालोंकी सभामें गान करते हुए ऐसे शोभा देते हैं जैसे नट नाट्यशालामें शोभायमान होते हैं।।८।।

आमके कोंपल कानोंके ऊपरके भागमें, मयूर पिच्छोंके गुच्छ्क मस्तकपर, कमलोंकी माला कण्ठोंमें धारण किये हुए ओर [१]इनसे मिले हुए पीताम्बर आदि वस्त्रोंसे विचित्र वेषवाले [२]बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भ्राता कभी उत्तम नटके समान ग्वाल बालोंकी सभामें गान करते हुए शोभा दे रहे हैं.

श्लोकमें 'विचित्रवेषौ' द्विवचन देनेका भावार्थ यह है, कि जैसे अवतारके कार्यमें बलरामजी(आवेश स्वरूप)का उपयोग है, वैसे ही रसके अभिनयमें भी उनका उपयोग (आवश्यकता) है ।।८।।

१.भगवान्ने कानोंमें कर्णिकार(कनेरके पुष्प)के साथ ऊपरके भागमें आम्रके कोपल भी धारण किये हैं, कारण कि शिरपर धारण किया हुआ मोर पिच्छका मुकुट जिसमें पीले वस्त्रका जो टुकड़ा बान्धा हुआ है उससे वे कोंपल भी सम्मिलित हो, और उत्तरीय वस्त्र(नीचे धारण किया हुआ पीताम्बर)का भी मालासे मेल हो यों करनेसे वेषमें

विचित्रता आ गई है. सुबोधिनीजीमें 'पीताम्बरादि'में 'आदि' शब्दसे श्रीबलदेवजीके नील वस्त्रका सूचन किया है.

२.श्रीबलदेवजीमें जो श्रीपुरुषोत्तमका आवेश स्वरूप है, वह रसरूप है उस रसरूपकी ही इस रसके अभिनयमें आवश्यकता है.

गुणा माया च वेषार्थमुपयुक्ता भवन्ति हि।
अतो रसस्याभिनये चत्वारोऽर्था निरूपिताः ।।का.१।।
रसरूपसुगन्धानां प्रतिष्ठा त्रिषु निश्चिता।
धर्म्याच्छादनबोधाय मायाप्यत्र निरूप्यते ।।का.२।।

गुण और माया ये दोनों निश्चयसे वेषकेलिए उपयोगी होते हैं, इस कारणसे रसके अभिनयार्थ चारों पदार्थ निरूपण किए हैं।।१।।

रस, रूप और सुगन्ध की प्रतिष्ठा तीनमें निश्चत रूपसे की है, धर्मी स्वरूपके रसका आच्छादन करनेकेलिए मायाका भी यहां निरूपण किया गया है।।२।।

वस्तुनिर्देशमात्रेण श्रोतणां काव्यवद् रसः।
रसवत्फलबोधाय प्रथमं पल्लवो मतः ।।का.३।।
शास्त्रार्थस्य परिज्ञानाद् भावस्य कलिका भवेत्।
ततस्तस्य च वैचित्यं पुष्पस्थानमिहोच्यते ।।का.४।।

केवल वस्तुके निर्देशसे ही श्रोताओंको काव्यके समान रस प्राप्त होता है, यह फल रस भरित है यह जतानेकेलिए पहले पल्लव कहा है।।३।।

भावरूप कली तब उत्पन्न होती है जब शास्त्रके अर्थका पूर्ण ज्ञान होता है, उसके पश्चात् उसमें विचित्रता आती है, उसको यहां पुष्पका स्थान दिया है।।४।।

अहोरात्रं वासना स्यात् तत आच्छादनं स्मृतम्।
रसोत्पत्यर्थमेतावन् निरूपितमितिस्थितिः ।।का.५।।
आविर्भावे रसास्वादान्नृत्यं शोभा ततो भवेत्।
अतोऽतिगुप्तो भगवान् रसत्वं प्रतिपद्यते ।।का.६।।

रात दिन वासना होती रहे इसलिए आच्छादनकी स्मृति कराई गई है, यह सब रसके प्राकट्यकेलिए कहा है, इस प्रकारकी स्थिति है।।५।।

रसाविर्भाव होता है तब रसके स्वादकी प्राप्ति होती है तथा नृत्य एवं शोभा भी होती है जिससे अतिशय गुप्त रसरूप भगवान्का रसपन प्रकट होता है।।६।।

कारिकामें जो 'गुण' कहे हैं उनके दो भाग हैं: (१)एक भाग प्रवाल [१]स्थायिभाव, स्तबक([२]व्यभिचारी भाव), माला([३]विगाढभाव) है, (२)दूसरा भाग प्रवाल(अ. रजोगुणरूप), स्तबक(आ.तमोगुणरूप), माला(इ.सत्व गुणरूप) है, ये तीन गुण और चौथी पीताम्बर वस्त्ररूप माया ये चार, वेषकेलिए उपयोगी है तथा रस प्रकट करनेमें भी उपयोगी है. १.आलम्बन विभावात्मक धर्मी स्वरूपमें धर्म रूप स्थायिभाव, व्यभिचारिभाव और अनुभावसे ही विचित्रता उद्भव होती है.

२.(अ) प्रवाल(रजोगुणरूप)से अनेक प्रकारके भावोंको उत्पत्ति होती है.

(आ) मकर गुच्छ(तमोगुणरूप)से भगवान्के किसी भी एक स्वरूपमें(वा अवयवमें) विशेष प्रेम होकर उसमें मनका लय होता है.

(इ) कमल माला(सत्त्व गुणरूप)से यह ज्ञान होता है कि सर्व पदार्थ रसमें उपयोगी हैं ।।१।।

१.''यमालम्ब्य रसः उत्पद्यते सः स्थायिभावः आलम्बनविभावः'' जिसके आश्रयसे रस उद्भव होता है वह स्थायिभाव, आलम्बन विभाव है.

२.''यो इतः ततः सञ्चरन्ति रसेषु अनेकरसव्याप्ताः भवन्ति, ते व्यभिचारी भावाः'' जो भाव यहां वहां रसोंमें संचारणकर अनेक रसोंमें व्याप्त होते हैं वे 'व्यभिचारि भाव' हैं.

३.''विलोडितः(संचालितः उन्मादपर्यन्तं संचालितः) कटाक्षादिरूपो भावः अनुभावः'' (उन्माद हो तब तक चलाया हुआ) जो कटाक्षादिरूप भाव रसोंका अनुभव करता है वह विगाढभाव वा अनुभाव है.

प्रवाल(कोंपल), मयूर पिच्छके गुच्छ, कमलोंकी माला और मायारूप पीताम्बर धारण इन चार पदार्थोंके धारण करनेके भाव निम्न लिखित हैं:

१.मैं रसरूप हूं, इसकी सूचनाकेलिए आम्रके रसरूप कोंपल धारण किए हैं, क्योंकि आम्र वृक्षमें रस प्रतिष्ठित है.

२.मैं रूपसे सुन्दर हूं इसका ज्ञान करानेकेलिए 'मयूर पिच्छ गुच्छ'को धारण किया है.

३.मेरे श्रीअंगमें सहज सुगन्ध है इसको प्रकट करनेकेलिए 'कमलोंकी माला' धारणकी है.

४.'रस' गोप्य है अतः मायारूप पीताम्बर धारण किया है.

आम्रमें रस स्थित हैं अतः आम्रके पल्लव(कोंपल) स्थायिभाव हैं, मयूरमें रूप है, रस नहीं है इसलिए मयूर पिच्छ गुच्छ व्यभिचारीभावके द्योतक हैं,

कमलोंमें सुगन्ध रहती है, इसी कारणसे कमल माला अनुभाव है जिससे सुगन्ध ग्रहण करते हुए जो 'चुम्बन' होता है वह अनुभावक है. ये तीनों(रस, रूप और सुगन्ध) वेषमें विचित्रता उत्पन्न करते हैं. तो भी पूर्ण वैचित्र्य तो आच्छादन वस्त्र ही करता है अतः उसकी भी अपेक्षा रहती है अतः चौथी वस्त्ररूप मायाको भी धारण किया है।।२।।

अनुभव करनेके सिवाय केवल कहनेसे रसका अनुभव कैसे होगा? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ''काव्य उसको कहा जाता है जिसके वाक्य रस भरित हों'' उस काव्यके श्रवण मात्रसे श्रोताओंको जैसे रसका आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही यहां भी जो रसवाले शब्द हैं वे फलरूप सुधामय हैं, अतः उनसे गलित हुई सुधा गोपीजन परस्पर कहकर, पान करती हुई रसका आस्वाद लेती हैं. अतः केवल वस्तुके कहनेसे भी रसका आस्वाद होता है, यह सिद्धान्त सत्य है इसलिए यहां प्रथमः रसमय 'कोंपल' धारण किया है।।३।।

प्रथम पल्लवके कहनेका कारण यह है कि 'फल' रसवाला है, उसके पश्चात् रस शास्त्रके अर्थ(फल)के ज्ञान होनेपर, भावकी कली प्रकट होती है. अतः कलीके समान मयूर पिच्छ गुच्छको कहा है. 'फल' रसमय थे, इस प्रकारके ज्ञान होते ही, वह भावरूप कलिका पुष्परूप होकर अव्यक्त रसादिको व्यक्त कराके, अनुभव करानेमें सहायभूत होती है. प्रमाण प्रकरणकी लीलाओंसे उत्पन्न प्रेमरूप भाव बढकर प्रमेय प्रकरणकी लीलाओंसे आसक्तिरूप भावमें बदल जाता है किन्तु आसक्ति भी कलिकाके समान ही है जिससे उसमें भी कटाक्षादि जो कुछ होता है वह अव्यक्त ही होता है. पश्चात् जब वह भाव बढकर व्यसन दशाको प्राप्त होता है तब पुष्परूप बनता है अतः यहां कमल माला कही है उसको धारणकर व्यसनका सूचन किया है. व्यसन दशामें वे सर्व अव्यक्त भाव स्फुट हो जाते हैं और उनमें विचित्रता प्रदर्शित होती है।।४।।

जब व्यसन होता है तब सर्वदा मिलन संभाषण आदिकी वासना होती रहती है उसके प्रकट होनेसे, रस रसाभाव हो जाता है अतः उसको गुप्त रखनेकेलिए मायारूप पीताम्बर धारण करना आवश्यक समझ उसको धारण किया है गोप्य रस, रस ही रहा है।।५।।

इस प्रकार क्रमसे जब भावात्मक भगवान्का आविर्भाव होता है और स्वामिनीजीके सम्बन्ध होनेसे रसका अनुभव प्राप्त होता है तब प्रभु नृत्य कर

शोभाको विशेष रूपसे प्रकट करते हैं।।६।।

श्लोकमें 'विचित्रवेषौ' इस विशेषणको देनेका आशय बताते हैं कि सब रसोंका वहां अभिनिवेश है.

तीन गुणोंके परस्पर मुख्य एवं गौणभावसे नव रसकी सिद्धि होती है. इस प्रकार रसरूप भगवान्का निरूपणकर, समाजमें, उस रसके पोषक गीत और वाद्योंका निरूपण करते हैं. वे दोनोंके मध्यमें भली-भांति शोभा पा रहे थे. पशुओंके पालन करनेवालेकी गोष्ठी बहुत गूढ नहीं होती है, इससे यह बताया कि रस सुलभ है. गीत और वाद्य इन दोनोंके मध्यमें तीनों(नृत्य, वाद्य तथा गीत)की समानता ही सर्वोत्तम है. नृत्यकी विशेषता कदाचित् ही होती है अतः 'वाद्य' ही कहा है किसी समय ही वैसा होता होगा? इस शङ्काको मिटानेकेलिये 'अलम्'(बहुत अच्छी रीतिसे) कहा है. राम और श्रीकृष्णके गीतोंमें यहां शास्त्र नियामक नहीं होगा? ऐसी शङ्काके निवारणकेलिये दृष्टान्त देकर कहते हैं कि जैसे शास्त्रानुसारी रङ्ग मण्डपमें नट शास्त्रके अनुसार ही गीत नृत्यादि करते हैं, वैसे(ही) ये दोनों भी शास्त्रार्थके अनुसार ही अलौकिक नाट्य(नृत्यादि) करते हैं अतः 'वर' पद दिया है, इस प्रकार राजस भावका नृत्य कहकर ''क्व च गायमानौ'' पदसे कहते हैं, कि सात्विकभावका नृत्य करते हैं जैसा कि अमुक स्थानमें केवल हस्तके अभिनयके साथ इसी प्रकार गान करते हैं, जिससे कुछ भी परिश्रम नहीं होता है. यह बात भी लोकमें प्रसिद्ध ही है ।।८।।

इस प्रकार रसके स्वरूपका वर्णनकर उस रसको आधिदैविक बनानेकेलिए इस 'गोप्यः किमाचरत्' श्लोकमें वेणुनादका[१] निरूपण करते हैं:

१.श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण टिप्पणीमें आज्ञा करते हैं कि जो काम रस सहज है अर्थात् लौकिक है उसको यह वेणुनाद अधर सुधाके साथ अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर आधिदैविक भगवदीय(भगवत्सम्बन्धी अलौकिक आधिदैविक रसमय) बनाता है.

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्मवेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशशिष्टरसं ह्रदिन्यो ह्रष्यत्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः ।।९।।

हे गोपीजनों ! इस मुरलीने ऐसा कौनसा पुण्य किया है कि जो केवल गोपीजनोंके ही भोग्य दामोदर भगवान्के अधरामृतको स्वतन्त्र होकर यथेच्छा पान कर रही है उससे शेष रहे रसको झरने तथा वृक्ष भी भोग रहे हैं और वे आर्योंके समान रोमांचित होते हैं एवं आनन्दके आंसू गिराते हैं।।९।।

हे गोपीजन! यह सम्बोधन, प्रथम कहे हुए सहज काम रसका बोधक है, यह वेणु भगवान्के अधरपर स्थित है, चाहे इसने रस पान नहीं किया है, तो भी यों समझा जाता है कि यह दूसरोंकेलिये भोग करता है, अतः यहां जानने व कहने योग्य कुछ नहीं है. श्लोकमें 'गोपिकानां' पद देकर बताया है कि यह अधर सुधा गोपीजनकेलिये है तब यह 'वेणु' जो पुरुष है, वह इसका भोग कैसे करेगा? यह भोग तो स्त्रियोंका है यदि पुरुषोंके योग्य होता, तो भगवान् ही इसका भोग करते वे तो करते नहीं, अतः इस रसका भोगना पुरुषोंकेलिये सर्वथा असम्भव है. जब चेतन पुरुष ही इसका भोक्ता नहीं बन सकता है, तो अन्य योनिमें उत्पन्न जीव उनमें भी वेणु? इसका भोग कैसे कर सकता है?. 'गोपिकानाम्' यह बहुवचन देनेका भाव यह है, कि इन(गोपीजन)में लक्ष्मीका अंश भी है. लक्ष्मीके बिना दूसरा कोई इस (सुधा)का भोग नहीं कर सकता है. आधिदैविक वस्तु चेतन होती है, चाहे उसका ऊपरका रूप जड़ भी हो. हम सब आधिदैविकी हैं अतः हमें उस(वेणु)का विचार करना चाहिये कि इसको इतनी उच्च कोटिका अधिकार क्यों मिला है? यह सब धर्मका फल है, ऐसा वैदिक सिद्धान्त है, इसलिये गोपीजन वेणुके इस अधिकार पानेका कारणभूत धर्म विचारती हैं, कि इसने कौन-सा धर्म किया है? धर्म मात्र वेदसे सिद्ध है, हम वेदरूप हैं इसलिये जिसका हमको ज्ञान नहीं है वह 'धर्म' कैसे हो सकता है? जिस धर्मसे, हम (गोपीरूपमें) उत्पन्न हुई हैं. वह उसने भी किया हो तो भी हममें तो मर्यादानुसार साधनका विरोध नहीं है क्योंकि हम तो उस धर्म साधनसे आधिदैविक स्त्रियां बन गई हैं, किन्तु यह तो वेणुरूप पुरुष बना है, इस प्रकार (विरुद्ध) फल देखनेसे सन्देह होता है कि जैसा साधन हमने किया है वैसा इसने नहीं किया है, यदि वैसा साधन किया होता तो, फलमें वैषम्य न होता. इसलिये अन्य गोपीजनको भी सम्मति लेनेकेलिये 'हे गोप्यः' सम्बोधन दिया है. श्लोकमें 'अयं' पदसे वेणुकी पुरुष जाति बताई है. वह इसके भोग करनेमें रुकावट है और 'स्म' पद प्रसिद्धि सूचक है 'अधरसुधा'का भोग तो गुप्त स्थानमें होता है, जैसे उसकी प्रसिद्धि न होवे, यहां प्रसिद्धि सूचक 'स्म' भी भोगमें बाधक है. वास्तविक रीतिसे देखा जाये तो 'वेणु'की फल प्राप्ति है ही नहीं, वह 'बर्हापीडम्' श्लोकमें प्रथम ही प्रतिपादन कर दिया है. तब दोनों(साधन और फल)में से एकका बाध करना चाहिये. यों करनेसे, यदि साधनका बल निश्चित किया जायेगा तो साधनका अभाव नहीं है,

यह सिद्धान्त होगा. इसको बताते हुए 'वेणु' शब्दका रहस्य प्रकट करते हैं. 'वेणु' शब्दमें 'व' 'इ' और 'अणु' ये तीन शब्द हैं, 'व'का अर्थ है ब्रह्मानन्द 'इ'का अर्थ है विषयानन्द ये दोनों जिसने तुच्छकर छोड़ दिये हैं वह 'वेणु' है, दोनों प्रकारके सुखोंका त्याग करनेसे वह अन्योंको आनन्द देता है, अतः उस(वेणु)में धर्म है, यद्यपि अधरके सम्बन्धसे इसमें धर्म है, वैसा निश्चय नहीं है तो भी स्वयं ही साधन हैं, पुष्टि बलके आश्रयसे उसकी सिद्धि हुई है. यह जतानेकेलिये मर्यादामें साधनकी हीनता है, अर्थात् मर्यादामार्गमें, ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे भगवान् वश हो जावें, पुष्टिमें दीनता आदि साधन हैं जिससे भगवान् भक्तोंके आधीन होते हैं जैसे 'दामोदर' लीलामें भगवान्ने, दीनतासे भक्ताधीन हो, अपने आपको रस्सीसे बन्धवाया है.

'अधर' लोभात्मक है कारण कि उसमें 'सुधा'की स्थिति है अतः स्वतः वा परतः उस(वेणु)को साधनका अभाव है. वेणुको रसना इन्द्रिय नहीं है इसलिये भी वह सुधाका भोग करनेमें असमर्थ है, क्योंकि सुधा रसरूप है उसकेलिये जिह्वाकी आवश्यकता है. वेणुके नादका भोग(श्रवण) करता है, इसमें किसी प्रकार शङ्का नहीं है किन्तु सुधाका भोग करता है यह विवादका विषय है क्योंकि भगवती श्रुति कहती है कि ''सा वनस्पतीन् प्राविशत्'' वह वाणी(वा-सुधा) वनस्पतिओंमें प्रविष्ट हुई. वेणु पुरुषरूप है इसलिये वह सुधाका अधिकारी नहीं है, यह पहले प्रतिपादन किया है किन्तु यदि भगवान् अनधिकारियोंको भी दान करें, तो कदाचित् वैसे सम्भव हो सकता है, जैसे स्त्री अनधिकारी उपपतिको अपने रसका कदाचित् दान करे, तो वह उस रसको भोग सकता है अन्यथा नहीं. फिर ऐसा होते हुए भी यह(वेणु) गोपीजनकी भांति स्वयं भोग करता है वह आश्चर्य है. वेणु सुधापान करता है इसका निर्णय आपने कैसे किया? इसके उत्तरमें कहती हैं कि जैसे अधर तथा मुखके सम्बन्धसे हम पान करती हैं वैसे ही उसका भी उनसे सम्बन्ध है, अतः वह भी पान करती होंगी ऐसा हम मानती हैं और हमसे भी उसमें यह विशेषता है, जो उसका बचा हुआ रस नदियां(झरणें) और वृक्ष भोगते हैं जैसे सन्तान माता पिताकी पालना करता है वैसे ही वेणु, नदियां तथा वृक्षोंका सन्तान(उनसे उत्पन्न हुआ) है अतः अवशिष्ट रस देकर उनका पोषण करता है. वे पान करते हैं इसका हेतु देते हैं, रस भोगसे झरनोंमें, हर्षसे रोमाञ्च होते हैं वे रोमाञ्च यहां कमलरूप हैं. वह कमलोंका रूप जगत्में

सबसे उत्तम है. यदि सुधाका पान न किया होता तो, कमल उत्पन्न न होकर शैवालका ही उद्‌भव होता. इस सुधा पानके कारण, लक्ष्मीकी उत्पत्ति कमलोंसे होती है. 'जहां अतिशय देखनेमें आता है, वहां स्वार्थका उल्लङ्घन करनेके सिवाय ही वह होता है, इस न्यायानुसार लक्ष्मीजी, केवल उसका ही भोग करती हैं, यह उपलक्षण है, अर्थात् इससे यह सिद्ध हुआ है. जिस प्रकार मातारूप नदियां रसपानसे आनन्द मग्न होकर रोमाञ्चित हुईं, वैसे ही पितृ स्थानीय पेड़ भी इस रसका पानकर आनन्द युक्त हुए, जिससे रोमाञ्चरूप फलोंको उत्पन्न किया, तथा अश्रुरूप मकरन्द(मधुधारा)का आविर्भाव किया, इस प्रकार ये दोनों सुधा रसके पान बिना उत्पन्न नहीं हो सकते हैं. यों भी नहीं समझना चाहिये कि इनमें ये(रोमाञ्च आदि) स्वाभाविक हुए हैं, क्योंकि, वेणुनाद होनेके अनन्तर हुए हैं, यदि स्वाभाविक होते तो, प्रथम ही हो जाते और इनमें स्वभावसे भी विलक्षणता दिखती है. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं, कि जैसे सत्पुरुष, भगवद्धर्मके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होनेसे, रोमाञ्चित होकर आंसू बहाते हैं, वैसे (ही) झरने तथा वृक्ष भी वेणु भुक्तसे शेष रसके पानसे वैसे हुए हैं ।।९।।

वृन्दावनके विहारमें, भगवान्‌के चरणोंका स्वरूप इस 'वृन्दावनं सखि भुवो' श्लोकमें वर्णन करते हैं:

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्वम् ।।१०।।

हे सखि ! देवकीजीके पुत्रके चरण कमलसे जिसने लक्ष्मी(शोभा सुन्दरता) प्राप्तकी है और गोविन्दके वेणुके अनुसरण करनेसे, मत्त बने हुए मयूरोंके नृत्यको देखकर श्रीगिरीराजपर स्थित सर्व प्राणी मात्र मूक हो गए हैं. वैसे यह वृन्दावन पृथ्वीकी कीर्तिको बढा रहा है।।१०।।

यह वर्णन गोपीजन ईर्ष्यासे कर रही हैं, जब पृथ्वीका स्पर्श देवताओंके चरण भी नहीं करते हैं, तब इस वृन्दावन भूमिका स्पर्श देवोत्तमके चरण नहीं, किन्तु पुरुषोत्तमके चरण कर रहे हैं. पुरुषोत्तमके अंशरूप पुरुषके आधिभौतिक चरण पृथ्वी हैं, आध्यात्मिक चरण अतीन्द्रिय(इन्द्रियोंसे जो देखे नहीं जाते हैं वे) हैं और आधिदैविक चरण आनन्दरूप हैं, उनका भी भूमिसे सम्बन्ध नहीं होता है, तब पूर्ण पुरुषोत्तमके चरणोंका सम्बन्ध होना अत्यन्त विस्मयका कारण है, उसमें भी, यह भूमि दैत्य भूमि होनेसे अधम है, उसमें(अधम होते हुए) भी स्त्रीके

सम्बन्धवाली है. इतना सब होनेपर भी, वृन्दावनकी भूमिमें जो भगवान्के चरणारविन्द स्थित हैं, जिससे यह महाभाग्यवती हैं, यों निश्चय होता है, इसके भाग्यको सराहनासे अपने हृदयकी भी उत्कण्ठा प्रकट करती हैं कि, हमारा हृदय प्रदेश ही भूमि है तथा इस भूमिमें स्त्रियोंका हृदय कठोर है, वहां पर्वत भी हैं, अन्तःकरणमें जो भगवत्रस विद्यमान है वह नदीरूप है, रोम कूपरूप वन है तथा वह स्त्रीरूप भी है अतः यह कहकर गोपीजनने अपनी वृन्दावनसे समानता सिद्ध की है, इस प्रकार समानता होते हुए भी भगवान् उस(वृन्दावन)में अपने चरण स्थापित करते हैं हमारे हृदय भूमिपर क्यों नहीं धरते हैं? इसी भांति यह वृन्दावनका भाग्याभिनन्दन ईष्यासे कर रही हैं. किसीकी राय है कि पहलेका वर्णन सगुण गोपीजनका किया हुआ है और यह वर्णन निर्गुण गोपीजनका है अतः यह वर्णन ईर्ष्यासे नहीं है. हे सखि! यह सम्बोधन देकर यह बताया है कि इस मेरे कथनमें अन्य गोपीजन भी सहमत हैं. यह सम्मति देनेवाली अनेक नहीं है किन्तु एक है अतः एकवचन दिया है. असूया(गुणोंमें दोष दृष्टि) पक्षमें भी वैसे समझना.

भगवान्के चरणारविन्द जैसे व्यापि वैकुण्ठमें स्थित हैं, वैसे ही वृन्दावनमें भी हैं इसमें आश्चर्य करनेका क्या कारण है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, इन चरणोंकी स्थिति होनेसे, वृन्दावन पृथ्वीकी कीर्तिको बढ़ाता है, क्योंकि, यदि यह वृन्दावन व्यापि वैकुण्ठमें होता तो किसी प्रकार विचार करनेकी आवश्यकता न पड़ती, किन्तु यह पृथ्वीपर है अतः यह वृन्दावन चरणोंकी स्थिति होनेसे केवल पृथ्वीकी कीर्तिको बढ़ा रहा है, इसलिये यह भूमि धन्य बखाननेके योग्य है: जिसपर वृन्दावन जैसा वन है, यह कहना उसका है जो भगवान्की नित्य स्थिति नहीं मानती है. चरणाविन्द तो आधिदैविकमें नित्य ही स्थित रहेंगे, किन्तु उनका दर्शन तो स्वतन्त्र भगवान् अपनी इच्छासे कभी कराते हैं. उन(चरणों)के दिखानेमें वृन्दावनका सामर्थ्य नहीं है. भक्तिको तो सब स्थानोंमें(सब समय) ऐसा सामर्थ्य है जो चरणारविन्दका दर्शन करा सके, वृन्दावनकी यों तो प्रतिष्ठा(यश) नहीं है किन्तु प्रतिष्ठाका जो कारण है वह ''यद् देवकीसुतपदाम्बुज-लब्धलक्ष्मि'' पदसे कहा है.

भूमिमें स्थित वृन्दावनने देवकीके सुतके चरण कमलके चिह्नों(ध्वज, वज्र आदि)के धारण करनेसे लक्ष्मी(शोभा)को प्राप्त किया है, भगवान्से अपना

स्वच्छन्द सम्बन्ध दिखानेकेलिये 'देवकी सुत' कहा है 'यशोदा सुत' नहीं कहा क्योंकि वह गोपी, नन्द गोपकी सम्बन्धिनी है, अतः यशोदा नन्दनसे इसका स्वच्छन्द सम्बन्ध नहीं हो सकता. 'पुत्र' शब्द न देकर 'सुत' पद दिया जिसका भावार्थ यह है, कि भगवान्के साथ देवकीका केवल प्रसूति(प्रकट होने)का सम्बन्ध है न अन्य कुछ भी. 'वसुदेवसुत' न कहकर 'देवकीसुत' कहा उसका कारण यह है कि स्त्रीकी प्रधानता दिखलाकर अपनी, स्त्रियोंपर कृपा प्रकट की है, पुष्टिमार्गमें स्त्रियोंकी प्रधानता है(कोमल प्रकृतिवाले जीव स्त्री जीव है उनकी पुष्टिमार्गमें प्रधानता है देह सम्बन्धी स्त्री यहां स्त्री नहीं मानी गई है.) वह पहले ही हम कह चुके हैं, भक्तिमार्गमें दोनों चरण, प्रधान हैं, उनमें भी चरणाम्बुज (अम्बुज) कहा क्योंकि कमल जलसे उद्भूत होनेसे ताप हारक है, अतः चरणाम्बुज ताप हारक होनेसे स्त्रियोंके हृदयमें उत्पन्न तापको नाश करनेकेलिये 'शोभा' दे रहा है. इस प्रकार ताप हारक 'चरणारविन्द'की ध्वज, वज्र और अंकुश आदि शोभा अन्यत्र नहीं खिली है, वृन्दावनमें ही खिल रही है इससे उसका (वृन्दावन भूमिका) चरणत्व सिद्ध किया, जिससे लक्ष्मी भी वहां सदैव निवास करती है, इसलिये कहा है, कि चरण कमलोंके कारण वृन्दावनमें शोभा प्राप्त की है. भूमि आर्द्र होती है, तब यों होता है, अर्थात् चरण स्थापित होते हैं, इसी कारणसे, उसने(वृन्दावन भूमिने) ही वह लक्ष्मी(शोभा) प्राप्त की है इसलिये यों कहना, कि इसने(वृन्दावनने) भूमिकी कीर्तिकी वृद्धि की वह योग्य ही है.

केवल शोभा प्राप्त नहीं की है, किन्तु भक्ति तथा ज्ञान भी प्राप्त किये हैं, जिसका वर्णन 'गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं' पदसे किया गया है. जब भगवान् वेणुनाद करते हैं तब यों प्रतीत होता है कि मानो नील मेघ गर्जना कर रहे हैं जिसको सुनकर मयूर मत्त होकर नृत्य करते हैं, वेणुनादसे जो नृत्य करते हैं, वह(नृत्य) देहकी सुधि भुलाकर भक्तिका उद्रेक(वृद्धि) करता है. यहां मयूर कहे हैं, वे वृन्दावनके उपलक्षण हैं, अर्थात् वेणुनादसे देह विस्मृति और भक्तिकी वृद्धि वृन्दावनमें हो गई. यह वृन्दावनकी प्रशंसा है.

यह नृत्य देखकर, गिरिराजके शिखरपर आकर स्थित हुए, अन्य प्राणी भी, 'मूकभाव'को प्राप्त हो गये, मूकभाव कहनेका भावार्थ यह है, कि उनको भगवान्की भक्तिके साथ ज्ञान भी हुआ है, इनमें एक भक्त, अन्य सर्व ज्ञानी हुए हैं. ज्ञानका फल तो ऊपर जाता है, अतः ये नीचे बिलोंमें रहनेवाले कैसे ज्ञानी

हुए? इसके उत्तरमें कहते हैं कि वे ज्ञानी हो जानेके कारण 'अद्रिसानुषु' गिरिराजके शिखरपर चढ़ गये. शिखरपर जहां कहीं भी स्थित हुए वहांसे, भगवल्लीलाके दर्शन करने लगे, जिससे निश्चय होता है, कि उनके दोष नष्ट हो गये हैं, वे अब निर्दोष हैं अतः उनको लीलाका दर्शन हो रहा है. इस योग्यताके कारण उन्होंने अपना स्थान छोड़ ऊपर गमन किया है ।।१०।।

इस प्रकार वेणुके स्वरूपका[१] वर्णनकर छः प्रकारसे(ऐश्वर्यादि धर्मसे) वेणुका वर्णन निम्न ६ श्लोकसे करते हैं:

१. 'वेणु' शरीरवाला है इसका प्रमाण 'बर्हापीडं' इस श्लोकमें कहे हुए नादके श्रवणसे समझमें आता है पृथक् नहीं. रस द्वयका वर्णन तथा चरणका जो निरूपण है वह निरूपण 'वेणु'के स्वरूपका ही है. लेख.

धन्यास्तु मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनम् उपात्त-विचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ।।११।।

ये हरिणियां मूढमति होते हुए भी धन्य हैं जो भगवान्के वेणुनादको सुनकर, अपने प्रेम भरित अवलोकनों(नेत्रों)से विशेष विचित्र वेशधारी नन्द नन्दनका स्वागत(पूजा) करती हैं।।११।।

हरिण्योऽप्सरसो गावः पक्षिणो नद्य एव च ।
मेघाश्चेतिक्रमेणैव कृष्णैश्वर्यादिबोधकाः ।।का.१।।
ईश्वरः पूज्यते लोके मूढैरपि यदा तदा ।
निरुपाधिकमैश्वर्यं वर्णयन्ति मनीषिणः ।।का.२।।

श्रीकृष्णके षड्गुणोंके क्रमशः बोधक ये(हरिणियां, अप्सराएं, गाएं, पक्षिगण, नदियां तथा मेघ) छः हैं।।१।।

विद्वान् कहते हैं कि जब लोकमें मूढ लोग भी ईश्वरकी पूजा करते हैं तब समझना चाहिए कि ईश्वरमें बिना उपाधिवाला, ऐश्वर्य है।।२।।

वीर्यं देवेषु तत्रापि स्त्रीषु तत्रापि कामतः ।
सान्निध्ये पुरुषाणां च मूर्च्छा तेन ततो महत् ।।का.३।।
यशो यदि विमूढानां प्रत्यक्षासक्तिवारणात् ।
स्वधर्मं योजयेत् तेषु तदा भवति नान्यथा ।।का.४।।

इस कारिकामें वेणुनादका महान् प्रभाव सिद्धकर, भगवान्का वीर्य दिखाया है, जैसे कि वेणुनादसे देवोंमें(अप्सराओंमें) देवाङ्गनाओंमें भी कामका

उदय हुआ जिससे पुरुषोंके समीप वे(देवाङ्गनाएं) मूर्छित हो गईं।।३।।

अतिशय मूढ प्राणियोंकी जिन प्रत्यक्ष पदार्थोंमें आसक्ति हो, उनमेंसे आसक्तिको छुडाकर, जब उन(मूढ प्राणियों)में अपना धर्म(अपने स्वरूपमें आसक्ति) पीयूष पान द्वारा स्थापन करे तब यश होता है अन्य प्रकारसे नहीं होता है।।४।।

तामसा राजसाश्चान्ये गुणातीताश्च रूप्यते ।
वृन्दावनं गुणातीतं मुनयश्चापि पक्षिणः ।।का.५।।
गोवर्धनश्च त्रितयं गुणातीतमिह स्थितम् ।
तद्व्रताश्चापि लोकेऽस्मिन् गुणातीता भवन्ति हि ।।का.६।।

अब तामस, राजस, सात्त्विक और गुणातीतका निरूपण करते हैं, यहां वृन्दावन, पक्षीरूप मुनि तथा गोवर्द्धन ये तीनों गुणातीत हैं. इस लोकमें जिनकी रति इनमें है वे भी गुणातीत होते हैं।।५।।

''जब पुरुष निश्चय पूर्वक श्रीका भोग करता है तब उसकेलिए वीणा बजाई जाती है'' इस श्रुति न्यायके अनुसार सर्व भगवदीय पक्षीगण भी परम श्रीको प्राप्त करते हैं।।६।।

श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि ।
ज्ञानोत्कर्षस्तदैव स्यात् स्वभावविजयो यदि ।।का.७।।
हरेश्चरणयोः प्रीतिः स्वसर्वस्वनिवेदनात् ।
उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदा ।।का.८।।
भक्त्या च तादृशत्वं च सा सेवा सेवकोचिता ।।

श्री ही परम सीमा है, जब सेवक इस श्रीको प्राप्त करते हैं और इससे जब सेवक, स्वभावको जीत लेते हैं, तब ही ज्ञानका उत्कर्ष होता है।।७।।

जब सेवक अपना सर्व सर्वस्व भगवान्को अर्पण करता है, तब भगवान्के चरणोंमें प्रीति होती है. वैराग्यका भी उत्कर्ष तब होता है, जब सेवक हरिके दुःखोंका हरण करनेवाला बनता है, ऐसा भक्ति(प्रेम)से हो सकता है. सेवकको इस प्रकारकी सेवा करनी ही योग्य है।।८।।

व्याख्या: द्वितीय कारिकामें जो यह कहा है कि भगवान्में निरुपाधिक ऐश्वर्य है, वह कहना योग्य है, क्योंकि लोकमें, जिसमें भी ऐश्वर्यके गुण दीखते हैं, वह चाहे ईश्वर न भी हो, तो भी, उसकी पूजा होती है, अर्थात् जिसमें

ऐश्वर्यके गुण नहीं दीखते हैं, उसकी पूजा नहीं होती है. यदि ऐश्वर्यकी सामग्री न हो तो भी जिसकी पूजा होती हो तो समझना चाहिए कि उसमें स्वाभाविक ऐश्वर्य है. ज्ञानी ऐश्वर्य सामग्री न होते हुए भी जो पूजा करता है जिसका कारण यह है कि ज्ञानीको उसके स्वरूपका ज्ञान है परन्तु अज्ञानी जिसको, उसके स्वरूपका ज्ञान नहीं है और ऐश्वर्यके गुण भी प्रकट नहीं दीखते हैं, तो भी उसकी पूजा करता है, इससे निश्चय पूर्वक समझा जा सकता है कि यहां असाधारण ऐश्वर्य है. इस प्रकारका परमैश्वर्य भगवान्में स्थित है भगवान्में ही समझा जाता है।।२।।

तृतीय कारिकामें भगवान्के वीर्यकी महत्ता दिखाते हैं, भगवान् मनुष्य रूपसे दिखाई दे रहे थे तो भी देवतारूप देवाङ्गनाओंको, उनको देखकर जो काम उत्पन्न हुआ वह असम्भव था अर्थात् न होना चाहिए, कारण कि देवाङ्गनाएं जिस रसको चाहती हैं वह मनुष्यसे तो उनको मिल नहीं सकता है, फिर उनको इसके लिए काम क्यों उत्पन्न हुआ? और न भगवान्ने उन(देवाङ्गनाओं)को अपना अलौकिक प्रभाव दिखाया है, किन्तु केवल वनिताओंको मोहित करनेवाला सुन्दर वेश तथा वेणुनादसे ही साधारण स्त्रियोंके समान इन(देवाङ्गनाओं)को मोह हो गया. वैसा होनेका कारण, भगवान्का 'वीर्य' गुण ही है।।३।।

चतुर्थ कारिकामें यशकी सिद्धिका कारण कहा है, यश तब सिद्ध होता है जब अन्य पदार्थोंमें जो आसक्ति है, उसको छुडाकर अपनेमें करावें. वह तब होता है जब अन्यमें आसक्तिवालोंके अन्दर अपना धर्म स्थापना करे. यहां भगवान्ने गौओंकी जो तृण आदिमें आसक्ति थी वह(आसक्ति) अपने पीयूषरूप धर्मका उनमें स्थापनाकर छुडा दिया. जिससे भगवान्के यशका विस्तार हुआ है अन्यथा नहीं होता।।४।।

५-६ कारिकाओंमें केवल यह बताया है कि वृन्दावन, पक्षीरूप मुनिगण तथा गिरिराज ये तीन ही गुणातीत हैं और जो इनमें रतिवाली गोपीजन हैं वे भी गुणातीत हैं. इनका विशेष विवेचन उन-उन श्लोकोंमें होगा जहां-जहां इनका वर्णन आया है।।५-६।।

यह तो लोकमें प्रसिद्ध है, कि यदि सेवक सुखपूर्वक आनन्दसे भोग करता है, अर्थात् सर्व प्रकारसे सुखी है, तो इससे यह सिद्ध होता है, कि स्वामी परम सौभाग्यवाला है अर्थात् वह(स्वामी) तो इससे भी विशेष सुखी होगा. नीचे(भूमि पर) स्थित भगवान्के किए हुए वेणुनादको वृक्षोंके उपर बैठे हुए

मुनिरूप पक्षी सुन रहे हैं अर्थात् उस नादामृतका पान(अनुभव) कर रहे हैं इस प्रकार पक्षी श्रीका भोग कर रहे हैं,(इसीलिए श्रुति कहती है कि जब पुरुष श्रीका भोग करता है तब उसके लिए वीणा बजती है).

इस लीलामें, भगवान्में स्थित श्री, जो भगवान्के श्रीकी कार्यरूप है वह पक्षिओमें आ गई, जिस कार्यरूपश्रीसे भगवान्की श्री जो कि कारणरूप है उसका ज्ञान हो जाता है. इसी प्रकार नदियोंके ज्ञानसे भगवान्के कारणरूप ज्ञानका बोध होता है तथा वैराग्यरूप भगवद्धर्म भी मेघमें कार्यरूपसे आ गया है.

जब सेवक वैसे होते हैं(सर्व प्रकारसे आनन्दका अनुभव करनेवाले होते हैं) तब श्रीकी पराकाष्ठा होती है. ज्ञानका भी उत्कर्ष तब कहा जाता है जब ज्ञानी स्वभावको अपने अधीन कर ले. वैराग्यके प्रकार

१.सब पदार्थोंमें आसक्ति न होना यह सामान्य वैराग्य है, यदि वह अनासक्ति त्यागवाली है अर्थात् उन पदार्थोंको परार्थ दिया जाता है तो वह वैराग्यका उत्कर्ष है.

२.यदि उस वैराग्यसे हरि चरणमें रति हो जाती है तो वह वैराग्य भक्तिमार्गीय है, यदि उस(भक्तिमार्गीय वैराग्य)में जो हरि चरणमें रति है वह(रति) सर्वस्व(अपने घन आदि) भगवान्में निवेदन युक्त है तो वह भक्तिमार्गीय वैराग्य उत्कृष्ट है.

३.यदि उस वैराग्यसे पुष्टिमार्गीय सेवा(भगवान्में बालभाव आदिके कारण शीतादि निवारण पूर्वक)की जाती हो तो वह वैराग्य 'पुष्टिमार्गीय वैराग्य' है, यदि वह सेवा प्रेमपूर्वककी जाती है तो इस पुष्टिमार्गीय वैराग्यका उत्कर्ष समझना चाहिए. इसमें भी इस वैराग्यकी विशेष उत्कृष्टता तब होती है, जब हरिके दुःखों (परिश्रम)को समझकर अपना सब कुछ इस प्रकार निवेदन कर दे, जैसे प्रभुका सर्व क्लेश एवं परिश्रम नष्ट हो जाए और प्रभु सुख पूर्वक विराजमान होकर आनन्दका अनुभव करावें इस प्रकारकी सेवा करना ही सेवकको उचित है, जैसे मेघोंने अपना सर्वस्व त्याग प्रभुका आतप कष्ट निवारण किया.

भगवान्के ऐश्वर्यादि छ धर्मोंका बोध करानेवाले हरिणी आदि छमेंसे, इस श्लोकमें पहले हरिणियोंके भाग्यकी प्रशंसा करते हैं.

ज्ञान, क्रिया(जो कर्म किया जाता है)का विशेषण(गुण) है, जो पूजा ज्ञानमय द्रव्योंके द्वारा भगवान्के सम्बन्धवाली होती है, उस पूजासे ही क्रियाका

उत्कर्ष होता है, किन्तु ऐसी पूजाके भी दो अङ्ग हैं एक भगवान्का[१] ज्ञान और दूसरा अपना ज्ञान, इन दोनों अङ्गोंसे जब क्रिया की जाती है तब वह सफल होती है. उन अङ्गोंके ज्ञानके सिवाय, यदि यों ही पूजाकी जाती है, तो वह सर्व व्यर्थ है. यदि यहां यह अङ्गज्ञान न हो, अन्यत्र हो, तो वह ही उत्तम है, इस प्रकारके पूर्व पक्षका निराकरण करनेकेलिये मूल श्लोकमें 'धन्यास्तु मूढमतयोऽपि हरिण्यः' पद दिया है. 'तु' शब्द देनेका यह आशय है, कि अङ्गोंका ज्ञान न होना, यह दोष, यहां न समझना, कारण कि, यहां मूढ मतिवाली, अर्थात् जिनको भगवान्का अथवा अपना ज्ञान नहीं है ऐसी भी हरिणियां[२] 'धन्य' हैं. इस प्रकरणमें स्त्रियोंका ही अभिनन्दन है, अतः यहां हरिण न कहकर हरिणकी स्त्रियां कही गई हैं, सर्वत्र अन्य पूर्वा गोपिकाएं ही वर्णन करती हैं ऐसा समझना चाहिये. हरिणियोंका यह भाग्य देखकर गोपीजनने अपनी अकृतार्थता(हरिणियों जैसा भी हमारा भाग्य नहीं है इस प्रकार अकृतार्थता) समझी, जिससे उनके हृदयमें दीनताका प्रादुर्भाव हुआ, उससे यहां जैसा यहां वर्णन किया जा रहा है उन सारी सामग्रियोंके सहित भगवान् इनके समक्ष प्रकट हुए यह हरिणियोंको 'एता' अर्थात्, 'ये हरिणियां' यों मानो प्रत्यक्ष दर्शन पूर्वक वर्णन कर रही हों इससे सिद्ध होता है. वे इसलिये भाग्यवती हैं. उनके भाग्यवती होनेमें हेतु कहती हैं, जिन हरिणियोंने नन्दनन्दनको देखकर तथा वेणुनाद सुनकर, भगवान्के किये हुए प्रेमावलोकनसे की हुई पूजाको ग्रहण किया है. 'या' शब्दसे यह बताया है कि १२वें अध्यायके ७वें श्लोकमें 'नृत्यन्त्यमी' पदोंसे इन मूढ हरिणियोंने ही भगवान्की, की हुई पूजाको अपनेमें धारण किया, अर्थात् पूजाको ग्रहण किया वे हरिणियां धन्य हैं.

(१-अ).भगवान्का ज्ञान, यहां भगवान्के ज्ञान कहनेका आशय यह है कि सेवकको सेवा करनेकेलिये यह ज्ञान आवश्यक है कि देश कालानुसार भगवान्को किस वस्तुकी अपेक्षा(भगवान्को किसीकी भी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वह पूर्ण है किन्तु तो भी भक्त द्वारा समयानुसार सर्वकी अपेक्षावाला है यही भक्तिमार्गकी उत्कृष्टता है.) होगी जैसे कि शीतकाल है इसलिये रुईके वस्त्र चाहिये, उष्ण काल है महीन सूतके वस्त्र चाहिये इत्यादि ज्ञान भगवद् ज्ञान कहा जाता है यों समझकर भगवत्सेवा करनी चाहिये.

(१-आ.)जो भी पदार्थ उत्तम हैं वही भगवान्के विनियोगकेलिये योग्य हैं अर्थात् भगवान्को सुन्दर वस्तु ही अर्पण करनी यह ज्ञान सेवककेलिये अपना(सेवक पनका) ज्ञान है.

२.यद्यपि हरिणियोंमें ज्ञान नहीं है तो भी उन्होंने अपनेमें जो सुन्दर अंग नेत्र हैं वे ही भगवान्‌को अर्पण किए अर्थात् उन ज्ञानेन्द्रियरूप नेत्रोंसे भगवान्‌की पूजाकी जिससे वे मूढमति होते भी वैसी सेवा कर सकीं जो अन्योंने नहीं की अतः वे धन्य हैं.

यह नन्दनन्दन हैं अर्थात् नन्द(जो स्वयं आनन्दरूप हैं उन)को भी आनन्द देनेवाले हैं और ब्रह्माजीके वचनानुसार भक्तोंके उद्धारार्थ प्रकट हुए हैं अतः यह प्रकरण उद्धार लीलाका है, इसलिये इनका भी उद्धार करेंगे. इस कारणसे हरिणियोंके सान्निध्यमें ही विचित्र वेष धारण किया है जिससे यह कहा जाता है कि भगवान् इसके अभिनय केलिये ही प्रवृत्त हुए हैं. इस प्रकार भगवान् नन्दनन्दन स्वरूपसे उद्धारके अनुकूल कार्यके कर्ता हैं और वेष कारणरूप साधनसे फल देनेवाले कर्ता हैं, विचित्र वेष धारणकर, यह बताया कि सर्व रस मैंने ग्रहण किये, अर्थात् विचित्र वेषसे सर्व रस मुझमें हैं यह बताया है. हरिणियोंके समीप वेष धारण करनेका कारण यह था कि उनमें ब्रह्मानन्द प्रविष्ट हो, जिससे हरिणियां आधिदैविक वन जायें और रस स्वरूपके आनन्द ग्रहण करनेके योग्य हो जायें.

'आकर्ण्य' श्रवणकर, यह सुननेकी जो क्रिया है, उसको वेणुकी रणकारमें तथा भगवान्‌में अर्थज्ञान तथा 'शब्द' ज्ञानसे संयुक्त करना चाहिये, इस प्रकार कहना शास्त्र दृष्टिसे है शास्त्र दृष्टिसे कहनेका कारण यह है, कि पशु दृष्टि विशेष ग्रहण नहीं कर सकती है. इतना कहनेका तात्पर्य यह है, कि जो सुना जाये वह कार्यरूपमें लाना चाहिये, अर्थात् वेणुनाद सुनकर, अपना मन तथा इन्द्रियां भगवान्‌में एवं वेणुके रणकारमें पिरो देना चाहिये.

पश्चात् प्रत्यक्ष हुई दृष्टि दूसरी दृष्टिके समान होते हुए भी उसको ग्रहण नहीं किया है केवल श्रवणको ही ग्रहण किया है इसलिये 'आकर्ण्य' पद कहा है. 'वेणोरणितं सर्वसाधारणं' पद कहकर यह बताया है, कि वेणुके रणकारका जो रस है, उससे अन्य सर्व रस साधारण हैं, 'रणित' रणकार कहनेका तात्पर्य यह है, कि यह रस(सुधारस) बाहर न चला जाये अतः इसी प्रकारके शब्द विशेषको 'रणित', अर्थात् रणकार कहा जाता है. वैसे भी 'रणकार'को समीप जाकर, सुनने लगीं. इस प्रकार सुननेसे देह सम्बन्धी जो धर्म(हम स्त्रियां हरिणियां) हैं उसको भूल गईं, उस समय(वेणुनाद सुननेकेसमय) वे पतियोंके साथ थीं, देह सम्बन्धी धर्मकी निवृत्ति हो जानेसे एवं पति साथ थे इससे पतियोंका निरोध(रोकना) भी मिटा दिया और साथमें सापत्न्य भावका भी परिहार कर दिया, अर्थात् सापत्न्य भावको भी

मिटा दिया. हरिण तो कृष्ण सार हैं, अर्थात् कृष्णके तत्वको जाननेवाले हैं इसीलिये ये कृष्ण सार हैं किन्तु गोप कृष्णके तत्वको नहीं समझते हैं इसलिये वे कृष्णसार नहीं हैं अतः गोपोंमें सापत्न्य भावका अभाव है यदि अभाव न होता, तो वे गोचारणके समय हम (गोपियों)को भी साथ ले चलते जैसे हरिण हरिणियोंको साथ लाये हैं किन्तु ये (गोप)अभिमानी हैं और वे कृष्णसार, हरिण धन्य हैं, अतः ये हरिणियां भी सर्व प्रकार धन्य हैं. कृष्णसार हरिणोंकी स्त्रियां(हरिणियां) धन्य इसलिये भी हैं जो स्नेह पूर्वक अवलोकनोंसे भगवान्की पूजा करने लगी, इस पूजामें नेत्र ही ज्ञान गन्ध युक्त कमल हैं उनसे की हुई पूजा सर्वोत्तम कही जाती है इस पूजाको धारण करना उससे भी उत्तम है, भगवान्ने जो उसी प्रकार प्रति पूजन(दया पूर्वक अवलोकन किया) उसको हरिणियोंने अपने अन्तःकरणमें स्थिरकर दिया. भगवान् तथा प्राणियोंका इतना ही कर्तव्य है, कि जीव भगवान्का प्रेम सहित दर्शन करे यह जीवका कर्त्तव्य (धर्म) है और भगवान् दया सहित दृष्टिसे जीवको कृतार्थ करें यह भगवान्का कर्त्तव्य है ।।११।।

इस 'कृष्णं निरीक्ष्य' श्लोकमें अप्सराओंकी अवस्थाका वर्णन करते हैं:

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवचारुवेषं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणु विचित्रगीतम् ।
देव्योविमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ।।१२।।

स्त्रियोंको आनन्दित करनेवाले वेशको धारण किए हुए भगवान्का अच्छे प्रकार दर्शनकर, उनकी बजाई हुई बंसीका विचित्र गीत सुनकर, विमानमें बैठकर जाती हुई अप्सराओंका, कामदेवसे व्याकुल होनेके कारण, विवेक नष्ट हो गया, इस प्रकार मोहित हो गई कि जिससे उनके गूंथे हुए केश पाससे पुष्प समूह गिरते जाते हैं तथा गांठ खुल गई है उसका भी ध्यान नहीं रहा।।१२।।

श्लोकमें 'कृष्ण नाम कहनेका भाव यह है, कि परब्रह्म इस स्वरूपसे स्त्रियोंका(कोमल हृदयवाले प्रेमी जीवोंका) निरोध करते हैं. यह तो योग्य ही है, कि जब आनन्दका दर्शन हो जाता है, तब आनन्दके साधनोंसे आसक्ति स्वतः मिट ही जाती है, उसमें भी यदि सदानन्द स्वरूपका पूर्ण दर्शन हो जाये तो, साधनोंसे आसक्ति मिट जाती है, इसकेलिये तो कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है. श्लोकमें 'ईक्ष्य' देखकर इतना ही न कहकर जो 'ईक्ष्य'के 'निर्' जोड़ा है, अर्थात् 'निरीक्ष्य' कहा है जिसका भावार्थ यह है, अप्सराओंने मनुष्याकृतिका दर्शन नहीं किया, किन्तु दिव्य दृष्टिसे भगवान्के उस अलौकिक रसमय स्वरूपका

दर्शन किया और उन(अप्सराओं)को इससे यह विशेष ज्ञान भी हो गया कि इस स्वरूपका प्राकट्य हमारी जातिके उद्धारकेलिये हुआ है. इस विषय(स्त्रियोंके उद्धारार्थ प्रकटे हैं)को प्रमाणित करनेकेलिये 'वनितोत्सवचारुवेषं' वाक्य कहा है. जिस कृष्णने वनिताओंको आनन्द देनेकेलिये ही सुन्दर वेष धारण किया है, यह आनन्द देनेवाला उत्सव, अनेक प्रकारका है, उस भिन्न-भिन्न उत्सवमें भिन्न-भिन्न उत्सवके रसके अनुभवकेलिये वे अनुभव करनेवाले जीव भूषित होते हैं. जहां केवल वनिताओंका ही उत्सव है, आचार्यश्री 'वनिता' शब्दके गुप्तभावको प्रकट करनेकेलिये दो अर्थ कहते हैं कि

१.अर्थ 'वनम् इता प्राप्ताः' जो पुरुष संसार त्यागकर, भगवदानन्द रसकी प्राप्तिकेलिये बनमें गये हैं वे 'वनिता' हैं.

२.अर्थ 'वनं यौवनम् इताः प्राप्तवत्यः' जो स्त्रियां युवावस्थाको प्राप्त हुई हैं वे 'वनिताः' हैं.

इस प्रकार अर्थ करनेसे यह भाव प्रकट करते हैं, कि भगवान्ने सुन्दर वेष यौवन प्राप्त स्त्रियोंकेलिये(जिन स्त्रियोंमें भगवान्की प्राप्तिकी कामना उत्पन्न हो गई है उनकेलिये) तथा जो पुरुष होते हुए भी भगवान्की प्राप्तिकेलिये हृदयमें प्रेम उत्पन्न होनेसे संसार त्याग वनमें जाकर निवास करते हैं उनकेलिये धारण किया है.

भगवान्के इस प्रकारके सुन्दर वेष धारण करनेसे, स्त्रियोंमें कामका प्रबोध होता है और पुरुषोंमें, स्त्री भावकी भावना उत्पन्न होती है, जिससे वे(पुरुष भी) स्त्री भाव उत्पन्न होनेसे, इस रसपानके अधिकारी होते हैं. जिस प्रकार भगवान्ने सुन्दर वेष धारण किया है, वैसे ही रस एवं पुरुषार्थके अनुभव करने केलिये वनिताओंने भी सर्व आभूषणों सहित सुन्दर वेष धारण किये हैं. जिन्होंने ऐसे उत्सवके समय भी सुन्दर वेष धारण नहीं किया है उन स्त्रियोंका स्त्रीत्व विधवाओंके समान व्यर्थ है. जैसे बाहरके अलङ्कार, रस ग्रहण करनेमें, कारण है वैसे ही भीतरके भी, अतः रसकी प्राप्तिकेलिये भीतरके अलङ्कारोंसे अन्तःकरणको भूषित करना चाहिये वे आभूषण प्रेम और ज्ञान आदि हैं जिससे बाहरकी भांति भीतर भी रसका पूर्ण अनुभव होता है.

यों कहनेसे यह बताया, कि अप्सराओंको भगवान्के पास आनेकेलिये जो उपाय करने चाहिये वे उन्होंने किये हैं. अब भगवान्के पास तो आई किन्तु रसके अनुभवमें विलम्ब न हो तदर्थ समीप आकर आलाप किये हुए विचित्र

गीतका श्रवण किया. यहां 'गीत' शब्द एक वचनमें इसलिये दिया है, कि एक ही गीतके श्रवणसे अप्सराएं मूर्च्छित हो गईं. 'विचित्र' शब्दका भावार्थ यह है कि सर्व रस इसमें ही समाये हुए हैं, क्योंकि नाट्यशास्त्र, शृङ्गार रसको ही, रस मानता है, अन्य रसोंको रस ही नहीं मानता हैं, अतः यह विचित्र गीत शृङ्गार–रसात्मक होनेसे सर्व रस इसमें समाये हुए हैं.

जैसे महापुरुष सुवर्णके ही आभूषण बनवाकर शृङ्गारार्थ पहनते हैं, शृङ्गारमें ही सर्व रस मानते हैं, अन्यथा यदि सुवर्णके आभूषणोंसे शृङ्गार न किया जाये तो रसिक पुरुषोंमें आनन्द ही उत्पन्न नहीं होता है.

जो कि अप्सराएं देवतारूप होनेसे, पूज्या हैं इसमें भी वे विमानोंमें बैठकर जा रही हैं और न वे भोगके योग्य हैं तथा वे दुःखको भी सहन नहीं कर सकती हैं ऐसी अप्सराओंके भी शरीर एवं इन्द्रियोंसे भी बलवान मनका कामने विवेक नष्टकर दिया. पृथ्वीपर न आईं, क्योंकि देवताएं थीं, पैरोंसे न आनेका कारण विमानमें बैठी थीं भोग्या न होनेसे स्वतः भी नहीं आईं. इस सबके होते हुए भी गीतसे वे मूर्च्छित हो गईं.

केवल भीतर हृदय प्रवेशमें मोह(मूर्च्छा) हुआ, किन्तु बाहर भी सर्वत्र मोह हुआ, जिससे केश पासके पुष्प गिरने लगे, नीवी छूट गई. इसका आन्तर भावार्थ यह है, कि इस लोक तथा परलोकके फलोंका त्याग कर दिया है. देवता होनेसे मृत्यु भी न हुई विमानमें होनेके कारण नीचे गिरी भी नहीं और विवेक नष्ट हो गया था इसलिये आनेमें भी असमर्थ थीं.

जिस वस्तुका उपयोग भगवान्केलिये नहीं होता है, उस वस्तुमें रस उत्पन्न नहीं होता है, इस सिद्धान्तानुसार अप्सराओंका उपयोग भगवान्केलिये नहीं हुआ, इससे यह सिद्ध हुआ, कि उनमें रसाभास ही उत्पन्न हुआ न कि सत्य रस उत्पन्न हुआ.

वे अप्सराएं अपने पतियोंको ढूंढनेकेलिये निकली थीं, किन्तु भगवान्के सुन्दर वेष तथा गीतको सुनकर, वह कार्य भूल गईं और मनमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि 'भगवान् ही हमारे पति हों' गोपीजन कहते हैं, कि जब वे अप्सराएं भी यों चाहती हैं तो, हम भगवान्की कामना करें वह तो योग्य ही है ।।१२।।

गाएं और बछडोंके चरित्रका वर्णन इस 'गावश्च' श्लोकसे करते हैं:

गावश्च कृष्ण–मुख–निर्गत–वेणु–गीत–पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।

शावाःस्नुतस्तनपयःकवलाःस्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाःस्पृशन्त्यः।१३

ऊपर किए हुए कर्णरूप दोनोंसे श्रीकृष्णके मुखसे निकले हुए वेणुगीत रूपी अमृतका पान करती हुईं गाएं तथा स्तनोंसे टपकते हुए दूधके कवलको मुखमें धारण किए हुए बछडे अपने नेत्र आंसुओंसे भर जानेके कारण अन्तःकरणमें ही श्रीगोविन्दका स्पर्श करते हुए स्थित(वहां ही खडे) हो गए।।१३।।

श्लोकमें 'च' देकर बताया है कि गौओंकी भी दशा अप्सराओं जैसी हो गई, जो कि अप्सराएं उत्तम हैं और गाएं अधम हैं, तो भी, दोनोंकी मध्यम अभिलाषा(सायुज्यरूपी अभिलाषा)का निरूपण करते हैं, यह अभिलाषा करनी तो, इनकेलिये असम्भव सी थी, क्योंकि इनको तो मोह है और ये जो केवल वेणुमें आसक्त हैं इसलिये यों करती हैं, इस प्रकारकी शङ्काको मिटानेकेलिये ही कहा है, कि श्रीकृष्णके मुखसे निकले हुए वेणुगीतरूप अमृतको पानकर अन्तःकरणमें गोविन्दका स्पर्श(आलिङ्गन आदि आनन्द) पानेसे उसमें मग्न हो, एक स्थानपर ही खड़ी हो गईं. यह वेणुगीत भगवान्के मुखसे निकला है इसका ज्ञान इनको कैसे हुआ? इस शङ्काका निवारण करनेकेलिये, मूल श्लोकमें 'पीयूष' पद दिया है, जिसका भावार्थ यह है, कि वह गीत जिसको कर्ण पुटों द्वारा गाएं पान कर रही हैं, वह साधारण नहीं था, किन्तु वाणीके अधिपतिरूप भगवान्के मुखसे निकला हुआ और जो वेणु अन्योंका विस्मारक है उसके द्वारा कर्णपुटोंमें आया हुआ है तथा गीत ऐश्वर्यादि षड्गुणवाला है, इस प्रकार सर्व सामग्रीसे युक्त यह अमृतरूप गीत भगवान्का ही गाया हुआ है, गौओंको यह निश्चय हो गया था. यदि यह वैसा न होता, अर्थात् सर्व सामग्री युक्त पूर्णरूप न होता, तो केवल 'कृष्णगीतपीयूष' पद कहते. इस गीतके सिवाय अन्य गीत 'अमृत' नहीं हैं, यह ही अमृत है, इसलिये गायोंने अपने कर्णोंको ऊंचा किया है. 'कर्णपुटैः' बहुवचन देकर यह बताया है, कि प्रतिक्षण कर्ण नये बनते हैं 'पुट' शब्दसे यह कहा है कि कान इसीलिये ही हैं, क्योंकि पुट दूसरे कामकेलिए नहीं 'दोनोंमें' दूध पिया और उनको फेंका जाता है, फिर दूध आदि पीनेकेलिए दूसरे दोने लाये जाते हैं, इसी प्रकार ये गाएं भी, इस गीतरूपी अमृतपानकेलिये क्षण-क्षणमें, कर्णोंको नवीन बनाती थीं. इससे यह भाव निकला, कि यह गीत रस भी, क्षण-क्षणमें नूतन बन नूतन आनन्द देता है. यहां श्लोकमें 'शावाः' पद दिया है, जिसका अर्थ बालक होता है. वे बालक हरिणादि अन्य जीवोंके अथवा गायोंके हों अथवा गोकुलमें

जो छोटे बालक थे उनकेलिये है. स्तनोंसे टपकता हुआ कवलरूप पय मुखमें ही रहा, वा भीतर गया, यह निश्चित नहीं है, इसलिये 'स्म' शब्द दिया है. गौएं और बालक एक ही स्थानपर स्तब्ध हो खड़े हो गये, कारण कि उनके नेत्र आंसुओंसे भर गये थे इसलिये गोविन्द भगवान्का वे अन्तःकरणमें ही दर्शन एवं स्पर्श करते थे, जिससे उनको बाहर किसी प्रकारसे वेदना न होती थी. अन्तःकरणमें केवल भावनासे स्पर्श आदि नहीं था, किन्तु भगवान् आविर्भूत विराजमान हो गये थे यदि यों न होता तो, अपने साथ भगवान्की तुल्यता कैसी होती, अर्थात् बराबरीका स्फुरण कैसा होता. बाहर दर्शन न होनेका कारण नेत्रोंमें आंसुओंका भर जाना था. यहां श्रीकृष्णकेलिये 'गोविन्द' नाम देनेका भाव यह है, कि आप गायोंके इन्द्र हैं इसीलिये उनके दोषोंके नाश करनेकेलिये आप भीतर हृदयमें प्रकट हुए हैं ।।१३।।

पक्षियोंकेलिए वेणुगीतका श्रवण असम्भव है, क्योंकि उनको न सत्संग है और न ज्ञान है, इस शंकाके निवारणकेलिए इस श्लोकमें कहते हैं, कि पक्षी, मुनिरूप होनेसे, श्रवण कर सकते हैं:

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ।।१४।।

हे माता! इस वनमें जो पक्षी हैं वे बहुधा मुनि हैं क्योंकि ये पक्षी भगवान्का दर्शन करते करते सुखसे आंखोंको मींचकर सुन्दर कोंपलवाली वृक्षकी शाखारूप भुजाओंपर बैठकर सर्व प्रकारसे बोलचाल बन्दकर, भगवान्के सुन्दर वेणुके गीतको सुन रहे हैं।।१४।।

हे माता यशोदाजीको प्रेम पूर्वक हे अम्ब! हे माता! कहनेवाली ये गोपियां निर्गुण हैं. हे माता! कहनेसे यशोदाजीमें अपना प्रेम प्रदर्शित किया है. मनुष्य जिस प्रकार गाएं, रत्न और धनका सङ्ग्रह करते हैं वैसे(ही) पूर्वकालमें उत्तम, कन्याओंका भी सङ्ग्रह करते थे. पैसा देकर भी कन्याएं खरीदते थे, वे कन्याएं इसलिये खरीदते थे, जो राजाओंको भेट स्वरूप कन्याएं देनी पड़ती थीं. यशोदाके घरकी कन्याएं वा खरीदी हुई वे निर्गुण कन्याएं यशोदाजीको कहती हैं, कि हे माता! ये पक्षी बहुत करके मुनि हैं. 'बहुत करके' इस पद कहनेका भाव यह है, कि कोई यों कह दे कि ये कौन है? जो कहती हैं, कि ये पक्षी मुनि हैं इसलिये 'बहुत करके' ये शब्द कहे हैं. 'वत्'शब्द कहनेका भाव यह है, कि हमको दुःख है, कि 'मुनि' होकर, ये 'पक्षी' कैसे हुए हैं? अथवा 'वत्' पद हर्षका सूचक है,

क्योंकि मुनियोंने यहां वृन्दावनमें इस गीत रसके पान तथा नाद श्रवणकेलिये यह पक्षीरूप धारण किया है. वह अच्छा किया है. 'अम्ब' यह शब्द कुमारिकाओंने दया प्रकट करनेकेलिये कहा है. किन्हीं टीकाकारोंकी राय है, कि यह सम्बोधन यशोदासे भगवान्का आविर्भाव हुआ है इसलिये वह माता है, तदर्थ 'अम्ब' कहा है, अतः इन निर्गुण गोपीजनके कहनेसे ज्ञात होता है, कि ये पक्षी बहुधा मुनि होनेसे मननशील हैं. मनन करनेवाले हैं इसी कारणसे इन्होंने समझ लिया है, कि 'यहां भगवान् प्रकटेंगे' उसकेलिये कृष्णके दर्शनार्थ ही जिसका क्षण है, ऐसे ये भगवान्के दर्शन करते हुए, उनके किये हुए वेणुनादको वृक्षरूप भुजाओंपर बैठकर सुनते हैं, जब तक वेणुनाद नहीं सुना था, तब तक भगवान्का दर्शन नहीं करते थे. जब वेणुनाद प्रारम्भ हुआ दोनों कार्य करने लगे, अर्थात् नाद भी सुनते थे और दर्शन भी करते थे. जब भगवान् दूर पधारते थे, तो भी, वहांसे आये, अन्यत्र+३ नहीं जाते, क्योंकि, अन्यत्र जानेपर वेणुनादका रस चला जायेगा इसलिये वहां ही स्थित रहे. यदि किसीको यह शङ्का हो, कि यह(वेणुनाद) दूसरे रसको उत्पन्न करेगा, तो दूसरे रसके उत्पन्न होनेसे, इस रसमें प्रतिबन्ध हो जायेगा, इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहते हैं कि यह वेणुगीत, साधारण गीत नहीं है, यह तो वह गीत है जिसमें छुपा हुआ स्थिर मधुर रस है जो बदलता नहीं है और भगवान्से उदित नाद ब्रह्मरूप वेणु भी अव्यक्त मधुर है उस नाद ब्रह्मरूप अव्यक्त मधुर वेणुसे, मधुररस और मधुर गीत ही प्रकट होता है, वह उद्धुत मधुर गीत परमार्थको प्रतिपादन करनेवाला है. जैसे मुनिगण वेदकी शाखाओंका आश्रय करनेसे निश्चिन्त होते हैं, वैसे(ही) ये मुनिरूप पक्षी भी, इन वेदात्मक वृक्षकी भुजारूप शाखाओंका आश्रय कर रहे हैं, जिससे वे पतन मरणादि भयसे निश्चिन्त हो, इस प्रकारके वेणुगीतका श्रवण कर रहे हैं. मन दूसरे किसी भी विषयमें न जाये तथा भगवान्के दूर जानेपर, उनके दर्शन न होंगे, अतः इन मुनिरूप पक्षियोंने अन्तःकरणमें मनन और अभ्यास करनेकेलिये आंखे मूंद ली हैं तथा वाणीसे भी कोई अन्य विषय(जिससे भगवत्सम्बन्ध न हो वैसा) न बोला जाये इसलिये बोलचाल बन्द कर दी है. पक्षीरूप मुनियोंकी यह कृति सदैव की है. यदि सुननेके समय बोला जाये तो सुननेमें प्रतिबन्ध हो और उसकी उक्ति निरर्थक हो जाये. अतः पक्षीगण उपर्युक्त प्रकारसे(मीलित नेत्र और मूक) हो गये, जिससे यह सिद्ध किया है, कि सदा इस रसको हृदयमें अनुभव कर रहे हैं. इससे इस वेणुनादका

अलौकिकपन तथा दुर्लभ होना बतलाया है. यदि वेणुनाद वैसा न होता, तो मुनिरूप पक्षियोंकी इसमें आसक्ति न होती. उनकी इन गुणोंसे रहित पदार्थमें, आसक्ति नहीं होती है. 'रुचिर प्रवालान्' पदका भावार्थ कोई टीकाकार यों कहते हैं, कि इन सुन्दर पल्लवोंसे इनके शरीर आच्छादित हैं, अतः इनको शर आदिका भय नहीं है. ये पल्लव सुन्दर हैं इनकी सुन्दरताके कारण हमारी दृष्टि इनको देखना चाहेंगी तो भगवत्दर्शनमें रुकावट होगी इसलिये नेत्र मून्द लिये हैं. नेत्र मून्दनेमें यह भी एक कारण है तथा मुखके मून्दनेमें भी एक प्रकारसे ये पल्लव भी कारण हैं क्योंकि मुख खुला होगा तो इनके भक्षणका सम्भव होगा, इसके सिवाय मुखको मून्दनेका और यह भी कारण है कि यदि मुख खुला रखेंगे तो पक्षी स्वभावसे, शब्द निकल जायेंगे कोलाहल होगा अथवा आपसमें बोलचाल करने लगेंगे ।।१४।।

भगवान्के वेणुनादसे नदियोंमें जो कुछ हुआ उसका वर्णन 'नद्यस्तदा' श्लोकसे करते हैं :

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्द–गीतम् आवर्त–लक्षित–मनो–भव–भग्न–वेगाः ।
आलिङ्गनस्थ–गितम् ऊर्मिभुजैर्मुरारेः गृह्णन्ति पाद–युगलं कमलोपहाराः।।१५।।

उस समय नदियां भी मुकुन्द भगवान्के गीतका श्रवणकर कामके उद्दीपनसे नष्ट वेगवाली हो गईं, जिससे उनमें होनेवाले पानीके भंवर स्थिर हो गए. कमलरूपी उपहारको ली हुई वे(नदियां) आलिंगनकेलिए भगवान्के दोनों चरण जब स्थिर हो गए. तब अपनी ऊर्मि(लहर)रूप भुजाओंसे उनको ग्रहण करती है।।१५।।

जब भगवान्ने मुनियोंके ऊपर अनुग्रह किया जिससे वेणु द्वारा उन्होंने भगवत्स्वरूपात्म रस तत्वको जान लिया, तब नदियोंने समझा कि हम भी इस प्रकार कृतार्थ हो जायेंगी यों जानकर और मुनियोंके ज्ञानोपदेशका निश्चयकर, मोक्ष देनेवालेका वह प्रसिद्ध गीत सुनकर, जलके भ्रमण(भंवर) अथवा मूर्च्छासे प्रतीत होनेवाला, यह उद्भूत काम, जिसने नदियोंका वेग बन्द कर दिया है जो कि वेग स्वाभाविक है तो भी इससे(कामसे) वह (वेग) बन्द हो गया, जिससे नदियां स्तब्ध हो गई हैं, किन्तु यहां यह 'मनोभव' विवेकवाला है(अप्सराओंके समान अविवेकवाला नहीं है) चेतन प्राणियोंको तो भगवान्से सम्बन्ध होनेकी इच्छा हो यह युक्त है अर्थात् वैसा बन सकता है, किन्तु यहां वह अभिलाषा अचेतन प्राणियोंमें भी उत्पन्न हुई है यह यहां विशेषता है. नदियोंका वेग रुक गया,

अर्थात् नदियां स्थगित हो गईं यह स्थिर होना आसक्तिका कारण नहीं है. क्योंकि, स्थिरता तो औषधि आदिसे भी हो सकती है, किन्तु यहांकी स्थिरता औषधादिसे नहीं हुई है इसकी स्थिरतामें भगवान्से मिलनेकी इच्छा कारण है, अतः इनकी आसक्तिका कारण भी भगवान्से मिलना है, अतः आलिङ्गनकेलिये स्थिर भगवान्के चरणयुगल कमलरूप भेट करती हुई नदियां उनको(चरण युगलको) अपनी उर्मिरूप भुजाओंसे ग्रहण करती हैं. अपना हृदयरूपी कमल भगवान्के चरणारविन्दमें अर्पणकर वह(चरणारविन्द) स्वयं ग्रहण करती हैं. अर्थात् हृदय अर्पणकर, उनमें चरणोंको स्थापित करती हैं. नदियां भी देवता हैं उनसे अन्य प्रकारकी लीला नहीं हो सकती है, इसलिये मिलनेकेलिये भगवान्ने स्थिति की है, यों स्थित होनेका कारण यह है, कि आप, मुर दैत्य, जो जलमें दोषरूप अविद्या हैं, उसका शत्रु(नाश कर्त्ता) हैं, इसलिये नदीसे चरण सम्बन्ध कराके, नदीकी अविद्याका नाश किया. इसलिये मूल श्लोकमें, भगवान्का दूसरा नाम मुरारि कहा है, 'मुकुन्द' नामसे पुष्टिमार्गीय मोक्ष दाता बताया है ।।१५।।

१.व्रजमें नदी एक ही श्रीयमुनाजी हैं, फिर 'नद्यः' नदियां बहुवचन क्यों दिया है इसका आशय यह है कि केवल श्रीयमुनाजीका वेग नहीं रुक गया था किन्तु झरणें आदि भी स्तब्ध हो गये थे इसलिये 'नद्यः' बहुवचन देकर यह बताया है कि नदी, सरोवर, झरणें आदिकी भी ऐसी दशा हो गई थी. योजना

२.यदि विवेकवाला मनोभव न होता तो नदियां भी अप्सराओंके समान मिल नहीं सकती थीं किन्तु वे भगवान्के समीप आ सकीं.

इस 'दृष्ट्वातपे' श्लोकमें मेघोंकी दशा तथा उनके कार्यका वर्णन करते हैं :

दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सह रामगोपैः सञ्चारयन्तम् अनुवेणुम् उदरीयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ।।१६।।

धूपमें बलरामजी और ग्वाल बालकोंके साथ व्रजके पशुओंको चराते हुए एवं वेणुगीत गाते हुए अपने मित्र श्रीकृष्णका दर्शनकर प्रेमसे प्रवृद्ध हुए मेघने अपने शरीरसे उनपर छायाकी तथा पुष्पोंकी(बूंदरूप पुष्पोंकी) वर्षाकी।।१६।।

जो पशु सदा छायामें रहनेके अभ्यासी हैं, जिनके रक्षक गोप हैं तथा जिनमें प्रेम बढ़ानेवाले राम हैं, इन गोप और बलरामके साथ आप अथवा इन(गोपों)के द्वारा[१] शरद् ऋतुवाली धूपमें व्रजके पशुओंको सर्व सामग्री(देवता, वेद और धर्म) सहित चराते हुए और वेणु बजाकर सर्वके आधिदैविकोंका उद्पीन

करते हुए, सर्व शक्तियों सहित, आप उनसे क्रीड़ा करते हैं, उस समय धूपके कारण, छाया अवश्य चाहिये, यह समझकर, जिस मेघने भगवान्में स्नेह होनेसे, सखा भावकी भक्ति सिद्ध कर ली है, उस मेघने विशेष प्रकारसे, बढ़े हुए शरीरको अपने मित्रपर छाता बना लिया, इस श्लोकके मूल पाठमें 'प्रेमप्रवृद्ध उदितः' और 'प्रेमप्रवृद्ध मुदित' इस प्रकार दो भेद हैं, 'प्रेमप्रवृद्ध उदित'का भावार्थ ऊपर दे दिया है, अब 'प्रेमप्रवृद्ध मुदित' पाठसे इस प्रकार आचार्यश्रीने दो अर्थ बताये हैं १.प्रेमसे बढ़ा हुआ तथा आनन्दको प्राप्त हुआ मेघ, २.ज्यों-ज्यों प्रेम बढ़ता है, वैसे(ही) आप(मेघ) बढ़ता है ऐसे मेघने मित्रपर छाया करनेकेलिये छत्ररूप धारण किया. मेघने यहां तक तो सख्य भक्ति की थी, इससे आगे बढ़कर अब आत्मनिवेदन करने लगा है, जैसे कि अपने सूक्ष्म कणिकारूप पुष्प प्रभुको अर्पणकर आत्मनिवेदन किया है. धन रस (बादलोंके सूक्ष्म कण)को कोषमें, मेघ पुष्प कहा गया है, अतः मूल श्लोकमें 'कुसुमावलीभिः' कहा है. मेघ प्रेमसे बढ़ा इसका भावार्थ यह है कि मेघ श्रवण भक्तिसे लेकर सख्य भक्ति तक बढ गया, अथवा स्नेहके कारण स्थूल हो गया. बादल कामरूपी होते हैं, अतः अपनी इच्छानुरूप बना सकते हैं. चालू प्रसङ्गमें भगवान्में स्नेह होनेके कारण, अपना वैसा इच्छितरूप बनाया, जिससे सबके(भगवान् गोप गौ आदिके) ऊपर छाया हो सके. ऐसेरूप बनाने और छातारूप बननेमें, मेघको भी कष्ट हुआ होगा तो कष्टप्रद कार्य मेघने क्यों किया? इस शङ्काको मिटानेकेलिये 'मुदितः' पद दिया है जिसका भावार्थ यह है कि उस(मेघ)को कष्ट तो नहीं हुआ, किन्तु इससे आनन्द ही हुआ. जन्मसे लेकर जो भक्ति से बढता रहता है वह अन्तमें आत्मनिवेदन कर ही देता है.

कितने ही टीकाकार कहते हैं, कि मेघकी भगवान्से मित्रता इसीलिये हुई है, कि मेघमें भी भगवान् जैसे तीन गुण,(लोकोपकार करना, नील वर्ण, जीवन देना) है, अतः समान शील गुणवालोंमें मित्रता होती है. मेघने अपने रसमय सूक्ष्म कणरूप पुष्पों द्वारा अपना सर्वस्व भगवान्को अर्पण कर दिया, जिससे यह बताया, कि भगवान् साक्षात् लक्ष्मीजीसे क्रीड़ा कर रहे हैं इसी कारणसे आगे पुलिन्दियोंकी स्तुति की जायेगी(गोपीजन भीलनियोंकी प्रशंसा करेगी).

भगवान्ने, गोपोंसे गौ चराईं, बलभद्रसे रक्षा कराई, वेणुनादसे प्रबोधन कराई, इसके अनन्तर रमण किया, शेषके समान, मेघ भी जो मित्र हैं, उसको भी

ऐसे समयमें छाया करनी योग्य ही है ।।१६।।

१.भगवान् लीलामें क्रियाशक्तिरूप गोपोंको तथा ज्ञानशक्तिरूप बलरामजीको रखते हैं क्रियाशक्तिरूप गोपोंसे 'गौचारण' आदि क्रिया करवाते हैं और ज्ञानशक्तिरूप बलरामजीसे लीलामें प्रतिबन्ध करनेवाले राक्षसोंको पहचानकर उनका नाश करना आदि कार्य करवाते हैं प्रतिबन्ध निवृत्त करवाकर फिर आप श्रीकृष्ण भक्तोंके साथ स्वच्छन्द क्रीडा करते हैं इस प्रकार दोनों(क्रिया तथा ज्ञान) शक्तियोंको साथमें रखनेका प्रयोजन समझना चाहिये.

इस 'पूर्णाः पुलिन्द्य' श्लोकसे कहते हैं कि वनमें रहनेवाले क्षुद्र(नीच) जातिवाले भील तथा उनकी स्त्रियोंमें भी भगवान्की समीपताके कारण भक्ति उत्पन्न हुई :

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ।।१७।।

भगवान्के केवल दर्शनसे ही कामसे व्याकुल हुई पुलिन्दियों(भीलोंकी स्त्रियों)ने लक्ष्मीजीके स्तनोंके आभरणरूप कुङ्कुम भगवान्के चरण कमलों द्वारा तृणोंपर लगा हुआ था उसको अपने मुख और स्तनोंपर लेप करनेसे अपनी आधि(कामसे उत्पन्न दुःख)को दूर किया अतः वे पुलिन्दियां पूर्ण हैं।।१७।।

सर्वकी अपेक्षा पुलिन्दियां ही पूर्ण हैं(भाग्यशाली हैं) क्योंकि उनको सदैव साक्षात् भगवान्के चरण कमलोंकी रजका सम्बन्ध है. सर्व प्रमाणोंसे सिद्ध और सकल गुणोंसे परिपूर्ण, जिनके गुणोंका बहुत भक्त गान करते हैं, वैसे उरुगाय भगवान्के युगल चरण कमलानुरागी लक्ष्मीजीने जिनका महान् विचारके अनन्तर वरण किया है. भगवान्के चरणारविन्दकी लक्ष्मीजीने दिव्य कुङ्कुम सिद्धकर, भगवान्के चरणारविन्दमें अर्पण किया. वह ही कुङ्कुम पुनः रसदानके समय जब बन्ध विशेष हुआ तब लक्ष्मीजीके स्तनोंपर सुशोभित किया गया(होने लगा) अथवा उस(लक्ष्मीजी)ने ही अपने हृदयमें स्थापित किया. अथवा श्रीलक्ष्मीजीने वह कुङ्कुम आधिदैविक शक्तियोंके स्तनोंपर अलङ्कृत किया उनसे वह (कुङ्कुम) भगवान्के चरणारविन्दोंमें आया. (लगा) अथवा तृणोंके कारण वह कुङ्कुम मकरके समान आकृतिवाला हो गया और वे तृण भगवान्के हाथमें आ गये, किन्तु हाथसे भूमिपर गिर गये. अथवा भगवान्के चरणारविन्दमें लगा हुआ कुङ्कुम पृथिवीपर पदार्पणके समय तृणोंको लग गया.

वैसे कुङ्कुमको देखकर अथवा लक्ष्मीजीकी शक्तियोंसे भगवान्का किया हुआ भोग देखकर जब पुलिन्दियां विशेष काम पीड़िता होने लगीं, तब उस कामसे उत्पन्न पीड़ाको मिटानेकेलिये उन्होंने स्वयं उस कुङ्कुमको अपने मुख तथा स्तनोंपर लेप कर दिया.

उस लेप करनेसे इन(पुलिन्दियों)की कामपीड़ा इसलिये निवृत्त हो गई, जो इस लेपसे पुलिन्दियोंमें लक्ष्मीका आवेश आ गया जिससे वे, भगवान्के उपभोगकी पात्र हो गईं. अतः भगवद्भोगसे उनका काम शान्त हो गया और उससे उद्भूत पीड़ा भी नष्ट हो गई. इसलिये वे पुलिन्दियां पूर्ण हैं. यह भगवान्का चरित्र अलौकिक है. भगवान्का नाम 'उरुगाय' देनेका यह भी भावार्थ है कि इन्होंने भी भगवान्का श्रवण किया है. यह सर्व वनमें रहनेसे होता है, गोपियां कहती हैं, कि वह तो हम लोगोमें है नहीं इसलिये हम अपूर्ण हैं. 'काम' तो वास्तविक मनकी पीड़ा(आधि)रूप है. वह 'आधि' उपभोगसे शान्त हो गई, जैसे अन्नके भोजनसे भूखकी निवृत्ति होती है ।।१७।।

'हन्तायमद्रिरबला' यह श्लोक निर्गुण गोपीजन कहती हैं:

हन्तामयद्रिरबला हरिदास–वर्यो यद् राम–कृष्ण–चरण–स्पर्श–प्रमोदः ।
मानं करोति सह–गोगणयोस्तयोर्यत् पानीय–सूयवस–कन्दरकन्दमूलैः ।।१८।।

गोपीजन अन्य गोपीजनको कहती हैं कि हम अबलाएं हैं. अतः हे अबलाओं ! खेद है, कि जैसे राम–कृष्णके चरणारविन्दके स्पर्शसे यह गिरिराज आनन्दित हुआ है वैसे हम नहीं हुई हैं, यह गिरिराज गौ गण सहित श्रीरामकृष्णका जल, घास, कन्दरा, कन्द, मूल आदि सत्कार कर रहा है, इसलिए यह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है।।१८।।

पुलिन्दियां वैसी(पूर्ण) कैसे हो गईं? इस शङ्काके उत्तरमें कहती हैं कि भगवद्भक्त(गोवर्धन)का साथ सङ्ग होनेसे वैसी हुईं. यह कहकर अनन्तर, गोवर्धनका भगवदीयत्व सिद्ध करती हैं, और 'हन्त' इस पदसे अपनेलिये दुःख प्रकट करती हुई कहती हैं, कि यदि हम भी गोवर्धनपर रहती तो हमारी आधि निवृत्त हो जाती किन्तु वैसा न होनेसे, हम अपूर्ण ही रह गई हैं अतः खेद है. श्रेष्ठ भगवद्भक्त वह होता है जिसको भगवान्के चरणारविन्दके स्पर्शसे अत्यन्त मोद होता है, अतः यह गोवर्धन हरिदासों(भगवानके दासों)में श्रेष्ठ है, क्योंकि इसको रामकृष्णके चरणारविन्दके स्पर्श होते ही प्रकृष्ट मोद हुआ है, और यह(गोवर्धन)

सात्विक अथवा गुणातीत है, कारण कि निर्धन होते हुए भी गौ और देवरूप बालक(गोप) समेत इन दोनों(राम कृष्ण)का आतिथ्य सत्कार कर रहा है, निर्धन है तो फिर आतिथ्य सत्कार कैसे किया? इसके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे शास्त्रमें कहा है कि "**तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता, एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन**" भक्तोंके यहा चार पदार्थ बैठानेकेलिये १.तृणासन, २.भूमि, ३.पिलानेकेलिये जल, ४.मन प्रसन्न करनेकेलिये मधुर वाणी ये चार पदार्थ भक्तोंके घरसे कभी भी नष्ट नहीं होते हैं चाहे अन्य पदार्थ सभी चले जाएं. इस प्रकार गोवर्धनजीके यहां भी चार पदार्थ विद्यमान थे जिनसे उसने आतिथ्य किया, वे चार पदार्थ ये हैं जल, सुन्दर घास, और कन्द मूल. इन चारोंसे इस(निम्न) प्रकार आतिथ्य सत्कार किया, जलसे सबकी तृषा निवृत्ति, सुन्दर घाससे गौओंको भोजन कराया और अन्योंका बिछोना बनाया, कन्दरामें बिठाकर उस समय पड़ रही वर्षासे रक्षा की कन्द तथा मूलसे रामकृष्ण तथा बालकोंको भोजन कराया. कन्द भूंजकर खाये जाते हैं और मूल बिना भूंजे भी खानेमें आते हैं. कन्द और मूलमें भिन्न-भिन्न रस हैं अतः कन्द, अन्नके स्थानपर दिये गये और मूल, व्यञ्जनके एवजमें दिये गये बहुवचन देकर यह कहा है, कि इनके भी अनेक भेद होते हैं सारांश यह है, कि गोवर्धनने निर्धन होते हुए भी शास्त्रानुसार प्रेम पूर्वक अपना दास धर्मपालन किया है. क्योंकि भक्तोंमें सन्तोष विशेष होता है, जिससे वे उस सन्तोषामृतसे सभी दशामें सन्तुष्ट रहते हैं. गोपीजनने अपनेको 'अबला' कहकर यह बताया है कि हम वहां (गोवर्धनके पास) जानेमें असमर्थ हैं. इससे उन्होंने अपना चिल्लाना वा गुस्सा भी दिखलाया है, जैसे कि जब भगवान् माखन आदि खाते थे तब हम मन ही मन कुड़बुड़ाती थीं अतः हम अपूर्ण हैं यह कहना योग्य ही है. जाना जाता है कि ये पुलिन्दियां वे ही हैं, जिनका वर्णन पहले किया गया है इसलिये पर्वतकी प्रेरणासे वे कन्द मूलादि लाती हैं ।।१८।।

इस निम्न 'गा गोपकैः' श्लोकसे जब हम सजातीय हैं वे विजातीय हैं तब हमको छोडकर गिरिराज तथा उनपर कृपा क्यों? इस शंकाकी निवृत्तिकी गई है.

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-वेणुस्वनैः कल-पदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां निर्योगपाश-कृत-लक्षणयोर्विचित्रम् ।।१९।।

हे सखियों! गोप बालकोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें गौओंको ले जाते हुए, तथा निर्योग तथा पाशके चिह्नसे विभूषित उन दोनोंके उदार, वेणुके

नादोंसे और अव्यक्त(अस्पष्ट जो साफ समझमें न आवे, सूक्ष्म मधुर हो ऐसे) चर पदार्थों(चलनेवाले नदी, पशु आदि)में रुकावट डालना अर्थात् स्थिरता कर देना, और अचरों(वृक्षादि)में रोमाञ्च उत्पन्न करना, इत्यादिसे यह देहधारियोंमें विलक्षणता दीखती है ।।१९।।

भगवान्के चरित्रोंकी गति लोकसे विपरीत होती है, यद्यपि भगवान् स्वयं कुछ नहीं करते हैं तो भी उनके(भगवान्)के साक्षी मात्रसे ही चर(चेतन) प्राणियोंमें जड़ता आ जाती है अर्थात् जो चेतन होनेसे चलते रहते हैं वे जड़की तरह स्तम्भित हो जाते हैं, अर्थात् चल नहीं सकते हैं ठहर जाते हैं, और जो जड़ होनेसे क्रिया हीन हैं उनमें चेतनता(क्रिया उत्पन्न) हो जाती है जैसे कि नदियोंका वेग रुक गया और वृक्षोंमें रोमाञ्च होने लगा. इसी प्रकार हम(गोपियां) जो रस लेनेके योग्य थीं, वे तो अयोग्य हो गईं, जिससे हमको उस रसकी प्राप्ति नहीं हुई, किन्तु जो पुलिन्दियां अयोग्य थीं, वे योग्य बन गईं जिससे रस प्राप्त होनेके कारण उनकी आधि नष्ट हो गई. इस प्रकारकी विपरीतता होनेके तीन कारण हैं, १.कारण यह है कि भगवान् गोप बालकोंके साथ गौओंको एक वनसे दूसरे वनमें ले जाते हैं, २.वेणुके स्वरोंकी ध्वनिओंसे, ३.मधुर अव्यक्त पद अर्थात् अस्फुट श्री चरण. इन तीनों कारणोंसे सब वनोंकी शुद्धि हुई जिससे वन दोष रहित हो गये हैं. सारांश यह है कि भगवान् बंशी बजाते हुए गोपोंके साथ गौओंको चराते हुए प्रत्येक वनमें घूमते हैं, तब गौओंका, गोपोंका, भगवान्के चरणों तथा वेणुके स्वरोंका वनोंसे सम्बन्ध होता है, जिससे वे वन निर्दोष हो जाते हैं और इनके धर्म तथा इनकी शुद्धि वनोंमें प्रवेश करती है. चर प्राणी, गौओंमें क्रियाकी निवृत्ति हुई, जिससे वे स्थिर हो गईं इन(गौओं)के सम्बन्धसे, वन भी अपनी क्रिया(स्थिरता)से निवृत्त हो गये, जिससे उनमें रोमाञ्च उत्पन्न होने लगे अर्थात् चेतनोंमें जड़ता आ गई और जड़ोंमें चेतना आ गई. इस प्रकार जब स्वभावपर विजय होती है, तब रसकी प्राप्ति होती है. गोप जो रसिक(रसवाले अथवा रसको जाननेवाले) हैं उनका धर्म(रसिकत्व) जब वनोंमें प्रविष्ट हुआ तब वन भी(रसिक) हो गये. अनन्तर उदार, जो वेणुके रव, अथवा वेणु, उनके भोगसे बाकी रही हुई, सुधा(रस) वे (वन) भोगते हैं(रसको लेते हैं) इसलिये उनको रोमाञ्च होना योग्य ही है. जो गतिवाली चेतन गौ है, वे जब देखती हैं, कि भगवान् दोहनेकेलिये आये हैं, तब मन(प्रसन्नता)से अपना अमृत(दूध) देनेकेलिये वहां उस समय किसी प्रकार विघ्न न हो, तदर्थ

कुछ नहीं बोलती हैं, चुपचाप खड़ी रहती हैं, न केवल मौन रहती हैं, किन्तु कुछ शब्द मात्र भी न हो जाये इसलिये एक ही स्थानपर खड़ी रहती हैं. इसी कारणसे, भगवान् भी धीरे-धीरे पधारते हैं, जिससे आपके चरण भी अव्यक्त तथा मधुर दिखते हैं, धीरे-धीरे चलनेका कारण दोहनेका समय है, अर्थात् दोहनेके समय, किसी प्रकारकी ध्वनि न होकर, शान्ति होनी चाहिये शान्तिमें ही अमृतकी प्राप्ति होती है. हे सख्यः इस सम्बोधनसे यह बताया है कि, वहां जाकर जो गोपीजन भगवान्के उस समयकी लीलाका दर्शन कर आई थीं उनकी इस विषयमें सम्मति है, अतः जड़ और चेतन प्राणियोंमें विचित्रता दिखाई गई है. जिन(रस्सियों)से गौके साथे बछड़ेका योग(मिलापका बन्धन) होता है उनको 'निर्योगपाश' कहते हैं वह निर्योगपाश भगवान्के हाथमें है, जिनसे भगवान् चेतन (गौओं)को बान्धते हैं, यह देखकर सब जङ्गम(चेतन प्राणी) डरने लगे कि हमको भी बान्धेंगे. स्थावरों(वृक्षों)से तो भयके कारण स्वतः(बान्धनेके बिना ही) ही मधु धारा बहने लग गई ।।१९।।

निम्न 'एवं विधा' श्लोकसे श्रीशुकदेवजी इस 'प्रमेय प्रकरण'का उपसंहार करते हैं:

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ।।२०।।

वृन्दावनमें स्वच्छन्द विहार करनेवाले भगवान्की इस प्रकारकी क्रीडाओंका परस्पर गान करती हुई गोपीजन तन्मय बन गईं।।२०।।

श्रीशुकदेवजी उपसंहार करते हुए कहते हैं कि, यहां तो अब लीलाका एक ही प्रकार कहै हैं, यों तो षड् ऐश्वर्यादि गुणोंवाले धर्मी स्वरूप भगवान्की वैसी कोटिशः लीलाएं हैं, और मर्यादामार्गमें तो लीलाओंकी सीमा हो सकती है, किन्तु स्वच्छन्द गतिवाले वृन्दावन विहारी भगवान्में, किसी प्रकार मर्यादा न होनेसे, उनकी अगणित लीलाएं हैं. इसीलिये श्लोकमें कहा है, कि ''वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीड़ास्तन्मयतां ययुः'' वे गोपीजन इन लीलाओंका परस्पर वर्णन करती हुई तन्मय हो गईं. वर्णन करती हुई जागृत अवस्थामें तथा स्वप्न अवस्थामें [१]''आसक्ति भ्रमन्याय'से क्रीड़ाओंका ही दर्शन करती थीं जिससे उनमें ऐसी लीन हो गईं जैसे उनसे फिर बाहर न निकल सकीं अर्थात् पुनः संसारमें जन्मी नहीं.

इस प्रकार मध्यम निरोधवाला यह प्रमेय प्रकरण सात अध्यायोंसे पूर्ण

किया है जिससे अविद्यानिवृत्ति पूर्वक अन्तःकरणमें भगवत्प्राप्तिरूप निरोधका वर्णन है।।२०।।

१.'आसक्ति भ्रमन्याय'का तात्पर्य यह है कि जिसको जिस पदार्थमें 'आसक्ति' लगन(मन फंस जाता है) होती है उसको दिन रात अर्थात् जागते सोते वही पदार्थ याद आता है एवं दिखता है जिससे वह आसक्तिवाला उस पदार्थकारूप बन जाता है अतः गोपीजनका मन भी भगवान्में तथा उनकी लीलाओंमें आसक्त(फंस गया.) हो गया था, जिससे उनको दिन रात भगवान् तथा उनकी लीलाओंके बिना कुछ भी न याद आता था न कुछ दिखता था, बस भगवान् और उनकी लीलाओंके दर्शन तथा वर्णनमें ही वे लोग मग्न रहती थीं जिससे वे तन्मय बन गईं.

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके अवान्तर 'प्रमेय' प्रकरणके धर्मी निरूपक अध्याय ७ (स्कन्धानुसार अध्याय १८/२१) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.